दो शब्द !

"नारद पुराण" के इस दूसरे खण्ड में कुछ ऐसे विषयों का समावेश हुआ है, जो सामान्यतः पुराणों से सम्बन्धित नहीं समझे जाते। उदाहरणार्थ इसमें ज्योतिष-शास्त्र का विषय इतने विस्तार से दिया गया है कि उसका एक स्वतन्त्र ग्रन्थ ही बन सकता है। उसी प्रकार विविध देवताओं के मन्त्र-विधान भी समस्त क्रियाओं तथा उपासना विधि के साथ खूब समझाकर लिखे गये हैं। यद्यपि स्थानाभाव के कारण हम इन विषयों का वर्णन पूर्ण रूप से नहीं कर सके हैं तो भी उसका जितना अंश हमने ग्रहण किया है, वह भी पाठकों को पर्याप्त उपयोगी और ज्ञान वर्धक प्रतीत होगा इसमें सन्देह नहीं।

पुराणों का मुख्य लक्षण सृष्टि और प्रलय, मन्वन्तरों का वर्णन, ऋषि और राजवंशों का इतिहास आदि पांच विषयों को ही माना गया है और शिवपुराण, विष्णु पुराण, श्रीमद्भागवत, वायु पुराण, मार्कण्डेय पुराण आदि कई प्रसिद्ध पुराणों में उसका ध्यान भी रखा गया है, पर अन्य कितने ही पुराणों में इन विषयों को संक्षिप्त करके अन्य जीवनोपयोगी विषयों को भी सम्मिलित कर दिया गया है। "अग्निपुराण" तो इस दृष्टि से प्रसिद्ध है ही, जिसे विद्वान् लोग प्राचीन काल का "विश्वकोश" कह कर सम्मानित करते हैं। इसमें ज्योतिष, आयुर्वेद, मूर्ति निर्माण, गृह निर्माण, युद्ध शास्त्र, स्वप्न-विज्ञान, शकुन विचार, रत्न परीक्षा, पशु चिकित्सा, छन्द शास्त्र, व्याकरण, योग शास्त्र आदि सौ-डेढ़ सौ विषयों का विवेचन किया गया है। इसी प्रकार "गरुण पुराण" में समस्त रोगों की औषधियों तथा चिकित्सा प्रणाली का इतने विस्तार से वर्णन किया गया है कि उसमें से आयुर्वेद का एक साङ्गोपाङ्ग ग्रन्थ ही तैयार हो सकता है। इसके अतिरिक्त ज्योतिष, सामुद्रिक,

स्वर-विज्ञान, रत्न परीक्षा और मृतक सम्बन्धी कर्मकाण्ड का बहुत विस्तार से वर्णन किया गया है। अन्य पुराणों में भी विभिन्न देवताओं की उपासना को प्रधानता देकर उनकी उपासना विधि तथा माहात्म्य का ही विशेष रूप से वर्णन किया गया है।

इस प्रकार पुराणों में विविध विषयों का संग्रह देखकर कितने ही विद्वान, विशेष रूप से विदेशी आलोचक, विभिन्न पुराणों के असली नकली होने की चर्चा किया करते हैं और उनको अपनी साहित्यिक कसौटी पर कस कर उनके काल का निर्णय किया करते हैं। इधर पुराने विचारों के धार्मिक मनुष्य सभी पुराणों को भगवान वेदव्यास द्वारा प्रणीत ही मानते हैं और उनमें किसी प्रकार की मिलावट की बात उनको किसी प्रकार माननीय नहीं होती। वह इस बात को धार्मिक श्रद्धा का विषय कहते हैं, जिसमें तर्क या खोज-बीन की कोई गुंजायश नहीं। उनका कहना है कि यदि हम श्रद्धापूर्वक इन ग्रन्थों का पारायण करेंगे तो उससे हमारा कल्याण ही होगा।

पर यदि हम इन दोनों प्रकार के चरमवादियों का ध्यान न करके स्वतन्त्र बुद्धि से पुराणों का पारायण और मनन करें तो यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि पुराण चाहे जिसके बनाये हों, उनका लक्ष्य सर्वसाधारण में धार्मिक भावना को जाग्रत और जीवित रखना ही है। सामान्य जनता के व्यक्तियों से यह आशा नहीं की जा सकती कि वे वेद और उपनिषदों का अध्ययन करके धर्म और अध्यात्म के गूढ़ गम्भीर तत्वों को हृदयंगम कर सकेंगे। उनका आश्रय पुराण ही सिद्ध होते हैं। उनमें वे सहज में समझ में आने लायक कथाओं और उपाख्यानों को पढ़कर या सुनकर धर्म के प्रति अपनी श्रद्धा को दृढ़ बनाये रहते हैं और आचार विचार, सामाजिक व्यवहार, व्यक्तिगत सदाचार आदि के सम्बन्ध में उपयोगी शिक्षा भी प्राप्त कर सकते हैं। इस प्रकार भारतीय जन जीवन की दृष्टि से इन ग्रंथों की उपयोगिता अनेक अंशों में माननी ही पड़ेगी।

पुराणों से एक लाभ और है कि इनसे प्राचीन भारत की सभ्यता, संस्कृति, रहन-सहन का परिचय मिलता है, और पाठक उनसे कई प्रकार की सद्प्रेरणायें प्राप्त कर सकते हैं। हम यह नहीं कहते कि पुराणों में जैसा प्राय. कहा गया है, उनकी घटनायें लाखों, करोड़ों वर्ष पुरानी हैं। यह तो एक प्रकार की पौराणिक शैली है कि प्रत्येक घटना को लाखों करोड़ों ही नहीं अरबों खरबों वर्ष पुरानी कह देना, जब पृथ्वी का अस्तित्व भी न था। पर अपनी बात को ठीक सिद्ध करने का पुराणकारों ने एक उपाय यह निकाल लिया है कि वे इन तमाम घटनाओं को इसी 'कल्प' से सम्बन्धित नहीं बतलाते, वरन् प्रलय से पूर्व इसी पृथ्वी या किसी अन्य पृथ्वी पर भी उन घटनाओं का होना सम्भव मानते हैं।

कुछ भी हो विद्वानों के मतानुसार कोई भी पुराण दो हजार वर्ष से अधिक पुराना नहीं है। इस मत को सत्य मान लेने पर भी, यदि हम पुराणों द्वारा डेढ़ दो हजार वर्ष पुराने समाज का रहन-सहन, नागरिक और ग्रामीण जीवन, व्यापार-व्यवसाय, आर्थिक जीवन, राजनीतिक परिस्थिति, वस्त्राभूषण, खान पान, जातीय रीति रिवाज आदि की झलक प्राप्त कर सकें तो यह भी कम महत्व पूर्ण नहीं है। भारतीय इतिहास अन्धकार में डूबा हुआ है, पुराणकारों ने उनमें वर्णित उपाख्यानों को प्रभावयुक्त बनाने के उद्देश्य से अपने समय की सामाजिक परिस्थितियों का चित्रण किया है। इसलिये पुराणों का विश्लेषण करने से हम अपने सांस्कृतिक इतिहास की बहुमूल्य सामग्री पा सकते हैं

पुराणों के अध्ययन से जो सबसे मुख्य बात प्रकट होती है वह है तीर्थों तथा दान और पुण्यादि का महत्व स्थापित करना। इसमें तो सन्देह ही नहीं कि पुराणों के रचयिता प्राय. सभी के सभी ब्राह्मण थे, उनकी वृद्धि (उप बृहण) और प्रचार करने वाले भी ब्राह्मण ही थे और ब्राह्मणों का वर्ण-धर्म धार्मिक कृत्य कराना और दान-दक्षिणा लेना

निश्चित किया गया है। इसलिये यह स्वाभाविक है कि वे तीर्थों तथा व्रत और पर्वों का महत्त्व अधिक से अधिक बढावें और जिस प्रकार सम्भव हो भरपूर दान प्राप्त करें।

"नारद पुराण" मे ही समस्त तिथियो को व्रत करने को इतना अधिक बढ़ाया है कि वर्ष का एक भी दिन बिना व्रत के नहीं बचता। एकादशी के महत्त्व का तो कहना ही क्या है। पुराण के सम्पूर्ण उत्तरार्ध मे उसी का प्रतिपादन किया गया है। उसी के प्रसग मे समस्त प्रमुख तीर्थों का माहात्म्य भी वर्णित कर दिया गया है। गया, काशी, प्रयाग, हरिद्वार, जगन्नाथ, पुष्कर, मथुरा, वृन्दावन आदि समस्त तीर्थों का वर्णन और वहाँ पर स्नान, ध्यान, दर्शन तथा दान करने का वर्णन इतना बढा-चढ़ाकर किया गया है कि उससे हमारे कथन की पुष्टि बहुत अच्छी तरह हो जाती है। पर हमने अपने इस "जनोपयोगी सस्करण" मे इस प्रकरण को अत्यन्त सक्षेप मे ही दिया है। कारण यह कि तीर्थों और व्रतो यह वर्णन तो "स्कन्द पुराण," "मत्स्य पुराण" "वाराह पुराण" मे पर्याप्त किया जा चुका है। "नारद पुराण" की विशेषता तो उनके शिक्षा, कल्प, ज्योतिष आदि के वर्णन को माना गया है। ज्योतिष शास्त्र के कुछ जानकारो ने तो "नारद पुराण" मे वर्णित गणित ज्योतिष का महत्त्व बहुत अधिक बतलाया है। इसलिये जहाँ तक सभव था हमने इस ग्रन्थ मे ज्योतिष विषय को देने की चेष्टा की है और हमारा अनुमान है कि ज्योतिष प्रेमियो के लिये वह अवश्य लाभदायक सिद्ध होगा।

फिर भी इस पुराण की लेखन शैली को एक बात से हम सहमत नही हो सके। इसमे तीर्थों और व्रतो के माहात्म्य मे जो फल लिखा है वह सर्वत्र एक सा लिखा है। अर्थात् जब जिस तीर्थ का वर्णन आया है, उसी को ससार का सर्वश्रेष्ठ और सबसे अधिक पुण्य दायक स्थल बतलाया गया है। यही बात तिथियो के व्रत के विषय मे देखने मे

आती है। प्रत्येक तिथि के व्रत की जो खोलकर महिमा गाई गई है और हर एक का अपार पुण्य बतलाया गया है। इससे एक सामान्य पाठक इसी नतीजे पर पहुँचता है कि इनके लेखकों को किसी तीर्थ या तिथि से कुछ लेना-देना न था, उन्होंने तो दान-दक्षिणा को मुख्य मानकर सब तीर्थों को खूब बढ़ाया-चढ़ाया है। यह बात उनके हित की दृष्टि से लाभदायक हो सकती है, और साधारण तीर्थ-यात्री इन बातों पर ध्यान भी नहीं देते, पर धर्मज्ञाताओं की दृष्टि से ऐसे विरोधाभास से पुराणों का महत्व घटता ही है। हमने इस त्रुटि को अनुभव करके, इस प्रकार के वर्णनों को संशोधन करके ही प्रकाशित किया है जिससे पुराण के मूल अर्थ की कोई हानि न हो। इससे पाठकों को पुराणों का वास्तविक लाभदायक अंश प्राप्त हो जाता है। व्रत और तीर्थों का वर्णन सब पुराणों में लगभग एक सा ही होने से उसके बार बार पढ़ने में मन भी कम लगता है। इस प्रकार की व्यवस्था पुराण-पाठकों को पसन्द आयेगी और पुराणों के प्रचार में भी सहायक होगी ऐसा हमारा दृढ़ विश्वास है।

—प्रकाशक



विषय-सूची

नारद पुराण

(द्वितीय खण्ड)

★

।। तिथि आदि का निर्णय ।।

तिथीना निर्णयं वक्ष्ये प्रायश्चित्तविधिं तथा ।
शृणुष्व तन्मुनि श्रेष्ठ कर्मसिद्धिर्यतो भवेत् ।।१
श्रौतं स्मार्तं व्रतं दानं यच्चान्यत्कर्म वैदिकम् ।
अनिर्णीतासु तिथिषु न किंचित्फलति द्विज ।।२
एकादश्यष्टमी षष्ठी पौर्णमासी चतुर्दशी ।
अमावास्या तृतीया च ह्युपवासव्रतादिषु ।।३
परविद्धा प्रशस्ता स्युर्न ग्राह्या पूर्वसंयुता ।
नागविद्धा तु या षष्ठी शिवविद्धा तु सप्तमी ।।४
दशम्येकादशीविद्धा नोपोष्या स्युः कदाचन ।
दर्शं च पौर्णमासीं च सप्तमीं हरिवासरम् ।।५
पूर्वविद्धं प्रकुर्वाणो नरकायोपपद्यते ।
कृष्णपक्षे पूर्वविद्धा सप्तमी च चतुर्दशीम् ।।६
प्रशस्ता केचिदाहुश्च तृतीया नवमी तथा ।
व्रतादीना तु सर्वेषां शुक्लपक्षो विशिष्यते ।।७

महामहर्षि श्री सनकजी ने कहा—हे मुनिश्रेष्ठ ! अब मैं आपके सामने तिथियों का निर्णय और प्रायश्चित की विधि का वर्णन —

और बाप श्रवण करे । इससे समस्त कर्मों की सिद्धि हुआ करती है ॥ १ ॥ हे द्विजवर ! श्रुति स्मृतियों में कहा हुआ व्रत दान तथा वेदोक्त अन्य भी कर्म कलाप निर्णय न की हुई तिथियों में करने पर भी कुछ फल नहीं दिया करते हैं ॥ २ ॥ एकादशी—अष्टमी—षष्ठी—पूर्णिमा—चतुर्दशी और अमावस्या एवम् तृतीया उपवास और व्रत आदि के कर्मों में परविद्धा होने पर अर्थात् अगली आने वाली तिथि से विद्धा (विधी हुई) ही परमश्रेष्ठ फल प्रदान किया करती हैं । अतएव गत तिथि से मिली हुई कभी भी ग्रहण नहीं करनी चाहिए । पचमी से विधी हुई षष्ठी-शिवविद्धा सप्तमी और दशमी विद्धा एकादशी—इनमे भूलकर भी कभी उपवास नहीं करना चाहिए । अमावस्या पूर्णमासी सप्तमी और हरिवासर एकादशी इनका पूर्व विद्धा ग्रहण किया जावे तो नरक की प्राप्ति हुआ करती है । कोई २ आचार्य कृष्ण पक्ष में पूर्व विद्धा सप्तमी—चतुर्दशी—तृतीया और नौमी को श्रेष्ठ बताया करते हैं अन्य सब व्रतादि में शुक्ल पक्ष ही श्रेष्ठ माना जाता है ॥३—७॥

अपराह्णाच्च पूर्वाह्ण ग्राह्य श्रेष्ठमर मत ।
असम्भवे व्रतादाना यदि पौर्वाह्णिकी तिथि ॥८
मुहूर्तद्वितय ग्राह्य भगवत्युदिते रवौ ।
प्रदोष व्यापिनी ग्राह्या तिथिर्नक्तव्रते सदा ॥९
उपोषितव्य नक्षत्र येनास्त याति भास्कर ।
तिथिनक्षत्रसयोगविहितव्रतकर्मणि ॥१०
प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या त्व यथा निष्फल भवेत् ।
अर्द्ध रात्रादधो या तु नक्षत्रव्यापिनी तिथि ॥११
सव ग्राह्या मुनिश्रेष्ठ नक्षत्रविहितव्रत ।
यदार्द्ध रात्रया व्याप्त नक्षत्र तु दिनद्वय ॥१२
त पुण्य तिथिमयुक्त नक्षत्र ग्राह्यमुच्यत ।

अर्द्ध रात्रद्वये स्याता नक्षत्र च तिथिर्यदि ॥१३
क्षये पूर्वा प्रशस्ता स्याद् वृद्धौ कार्या तथोत्तरा ।
अर्द्ध रात्रद्वयव्याप्ता तिथिर्नक्षत्रसयुता ॥१४
ह्रासवृद्धिविशून्या चेद् ग्राह्या पूर्वा तथा परा ।
ज्येष्ठासमिश्रित मूल रोहिणी वह्निसयुता ।
मैत्रेण सयुता ज्येष्ठा सन्तानादिविनाशिनी ॥१५

सर्वदा अपराह्न स पूर्वाह्न को ही परम श्रेष्ठ माना जाया करता है । यदि तिथि व्रत समय मे न मिले तो भगवान् सूर्य के उदय काल म दो मुहूर्त भर की ही ग्रहण करनी चाहिए । यदि रात्रि का व्रत होवे तो प्रदोष व्यापिनी तिथि का ही ग्रहण करना चाहिए ॥८॥९॥ जो नक्षत्र व्रतो के उपासक हैं उन्हें जिस नक्षत्र मे सूर्य अस्त हो वही दिन लेना चाहिए । जो ऐसे व्रत हैं जिनम तिथि और नक्षत्र दोनो का सयोग वाला व्रत किया करते हैं उन्हे प्रदोष व्यापिनी तिथि ही का ग्रहण करना चाहिए । अन्य प्रकार से करने पर वह व्रत चला जाया करता है । यदि नक्षत्र व्यापिनी तिथि आधी रात के पीछे हो तब हे नारद ! उसको नक्षत्र यह न हो ग्रहण करे । यदि अर्ध रात्रि व्यापी नक्षत्र दोनो दिन मिलें ॥१०-१२॥ उस समय म पवित्र तिथि युक्त नक्षत्र ग्रहण करने के योग्य माना जाया करता है । यदि दोनो अर्ध रात्रियो मे तिथि और नक्षत्र हो तो श्राद्ध कर्म म प्रथम तथा वृद्धि कार्य म अगली ग्रहण करनी चाहिए । इस भाति दोनो अर्ध रात्रियो म व्याप्त नक्षत्र तिथि वाली ह्रास और वृद्धि से शून्य तिथि को पूर्वा और परा रूप म लेवे । ज्येष्ठा नक्षत्र से मिला हुआ मूल नक्षत्र-कृत्तिका से मिली हुई रोहिणी एव अनुराधा मे सम्मिलित ज्येष्ठा सन्तति आदि के विनाशक होते हैं ॥१२--१५॥

तत स्युस्तिथय पुण्या कर्मानुष्ठानतो दिवा ॥१६
रात्रिव्रतेषु सर्वेषु रात्रियोगो विशिष्यते ।

और आप श्रवण करे । इससे समस्त कर्मों की सिद्धि हुआ करती है ॥ १ ॥ हे द्विजवर ! श्रुति-स्मृतियों में कहा हुआ व्रत दान तथा वेदोक्त अन्य भी कर्म कलाप निर्णय न दी हुई तिथियों में करने पर भी कुछ फल नहीं दिया करते हैं ॥ २ ॥ एकादशी—अष्टमी—षष्ठी—पूर्णिमा—चतुर्दशी और अमावस्या एवम् तृतीया उपवास और व्रत आदि के कर्मों में परविद्धा होने पर अर्थात् अगली आने वाली तिथि से विद्धा (विधी हुई) ही परमश्रेष्ठ फल प्रदान किया करती हैं । अतएव गत तिथि से मिली हुई कभी भी ग्रहण नहीं करनी चाहिए । पञ्चमी से विधी हुई षष्ठी-शिवविद्धा सप्तमी और दशमी विद्धा एकादशी-इनमें भूलकर भी कभी उपवास नहीं करना चाहिए । अमावस्या-पूर्णमासी-सप्तमी और हरिवासर एकादशी इनका पूर्व विद्धा ग्रहण किया जावे तो नरक की प्राप्ति हुआ करती है । कोई २ आचार्य कृष्ण पक्ष में पूर्व विद्धा सप्तमी—चतुर्दशी—तृतीया और नौमी को श्रेष्ठ बताया करते हैं अन्य सब व्रतादि में शुक्ल पक्ष ही श्रेष्ठ माना जाता है ॥३—७॥

अपराह्णाच्च पूर्वाह्ण ग्राह्य श्रेष्ठतर यत ।
असम्भवे व्रतादीना यदि पौर्वाह्णिकी तिथि ॥८
मुहूर्तद्वितय ग्राह्य भगवत्युदिते रवौ ।
प्रदोष व्यापिनी ग्राह्या तिथिर्नक्तव्रते सदा ॥९
उपोषितव्य नक्षत्र येनास्त याति भास्कर ।
तिथिनक्षत्रमयोगविहितव्रतकर्मणि ॥१०
प्रदोषव्यापिनी ग्राह्या त्वन्यथा निष्फल भवेत् ।
अर्द्ध रात्रादधो या तु नक्षत्रव्यापिनी तिथि ॥११
सब ग्राह्या मुनिश्रेष्ठ नक्षत्रविहितव्रते ।
यद्यर्द्धरात्रयोर्व्याप्त नक्षत्र तु दिनद्वये ॥१२
त पुण्य तिथिसयुक्त नक्षत्र ग्राह्यमुच्यते ।

अर्द्धरात्रद्वये स्याता नक्षत्र च तिथिर्यदि ॥१३
क्षये पूर्वा प्रशस्ता स्याद् वृद्धौ कार्या तथोत्तरा।
अर्द्धरात्रद्वयव्याप्ता तिथिर्नक्षत्रसयुता ॥१४
ह्रासवृद्धिविशून्या चेद् ग्राह्या पूर्वा तथा परा।
ज्येष्ठामभिश्रित मूल रोहिणी वह्निसयुता।
मैत्रेण सयुता ज्येष्ठा सन्तानादिविनाशिनी ॥१५

सर्वदा अपराह्न से पूर्वाह्न को ही परम श्रेष्ठ माना जाया करता है। यदि तिथि व्रत समय मे न मिले तो भगवान् सूर्य के उदय काल मे दो मुहूर्त भर की ही ग्रहण करनी चाहिए। यदि रात्रि का व्रत होवे तो प्रदोष व्यापिनी तिथि का ही ग्रहण करना चाहिए ॥८॥९॥ जो नक्षत्र व्रतो के उपासक हैं उन्हे जिस नक्षत्र मे सूर्य अस्त हो वही दिन लेना चाहिए। जो ऐसे व्रत हैं जिनमे तिथि और नक्षत्र दोनो का सयोग वाला व्रत किया करते हैं उन्हे प्रदोष व्यापिनी तिथि ही को ग्रहण करना चाहिए। अन्य प्रकार से करने पर वह व्रत चला जाया करता है। यदि नक्षत्र व्यापिनी तिथि आधी रात के पीछे हो तब हे नारद! उसको सप्तम ग्रह मे ही ग्रहण करे। यदि अर्द्ध रात्रि व्यापी नक्षत्र दोनो दिन मिले ॥१०--१२॥ उस समय मे पवित्र तिथि युक्त नक्षत्र ग्रहण करने के योग्य माना जाया करता है। यदि दोनो अर्द्ध रात्रियो मे तिथि और नक्षत्र हो तो श्राद्ध कर्म मे प्रथम तथा वृद्धि कार्य मे अगली ग्रहण करनी चाहिए। इस भांति दोनो अर्द्ध रात्रियो मे व्याप्त नक्षत्र तिथि वाली ह्रास और वृद्धि से शून्य तिथि को पूर्वा और परा रूप म लेवे। ज्येष्ठा नक्षत्र से मिला हुआ मूल नक्षत्र--कृत्तिका से मिली हुई रोहिणी एव अनुराधा से समन्वित ज्येष्ठा सन्तति आदि के विनाशक होते हैं ॥१३--१५॥

तत स्युस्तिथय पुण्या कर्मानुष्ठानतो दिवा ॥१६
रात्रिव्रतेषु सर्वेषु रात्रियोगो विशिष्यते।

हे परम श्रेष्ठ मुने ! प्रतिपदा के दिन याग करे, पर्व दिन का चतुर्थ अंश और प्रतिपदा के प्रथम तीन भाग, प्रातःकाल के समय में ही विद्वान् लोगों ने याग करने का समय बतलाया है। यदि दोनों मध्याह्न मे अमावस्या अथवा पूर्णिमा हो तो फिर हे विप्रवर ! अगले दिन ही पुण्यकाल समझना चाहिए ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ ३८ ॥ यदि अमावस्या और पूर्णिमा अगले दिन सगम से पर होवें तो फिर पुण्यकाल अगले दिन मे ही समझ लेवे। तिथि के क्षय मे भी ऐसी ही व्यवस्था होती है ॥ ३९ ॥ सब भक्तो को एकादशी तिथि तो दशमी के वेध से रहित ही ग्रहण करनी चाहिए। जो एकादशी दशमी से विद्धा अर्थात् युक्त होती है उसमे व्रतादि करने से तो तीन जन्मो मे सञ्चित किये हुए पुण्य का विनाश कर दिया करता है ॥ ४० ॥ यदि एकादशी एक कला मात्र हो और शेष में द्वादशी हो और इसी तरह से द्वादशी भी त्रयोदशी मे हो अगली ही का ग्रहण करना चाहिए ॥ ४१ ॥ यदि एकादशी सम्पूर्ण शुद्ध हो और द्वादशी मे भी प्रतीत होती हो और रात्रि के अन्त मे त्रयोदशी आ जावे तो वहाँ पर भी निर्णय किया जाता है ॥ ४२ ॥

पूर्वा गृहस्थै सा कार्य्या ह्युत्तरा यतिभिस्तथा ।
गृहस्था सिद्धिमन्छन्ति यतो मोक्ष यतीश्वरा ॥४३
द्वादश्या तु कलायां न यदि लभ्येत पारणा ।
तदानी दशमीविद्धाप्युपोष्यैकादशी तिथि ॥४४
शुक्ले वा यदि वा कृष्णे भवेदेकादशीद्वयम् ।
गृहस्थाना तु पूर्वोक्ता यतीनामुत्तरा स्मृता ॥४५
द्वादश्या विद्यते किंचिद्दशमी सयुता यदि ।
दिनक्षये द्वितीयैव सर्वेषा परिकीर्तिता ॥४६
विद्धाप्येकादशी ग्राह्या परतो द्वादशी नचेत् ।
अविद्धापि निषिद्धैव परतो द्वादशी यदि ॥४७

एकादशी द्वादशी च रात्रिशेष त्रयोदशी ।
द्वादशद्वादशीपुण्य त्रयोदश्या तु पारणे ॥४८
एकादशी कलामात्रा विद्यते द्वादशीदिने ।
द्वादशी च त्रयोदश्या नास्ति वा विद्यतेऽथवा ॥४९
विद्धाप्येकादशी तत्र पूर्वा स्याद् गृहिणा तदा ।
यतिभिश्चोत्तरा ग्राह्या ह्यचोराभिस्तथैव च ॥५०

यहा पर यही निर्णय है कि प्रथम को तो गृहस्थाश्रमी करें और दूसरी को विरक्त लोग करें। क्योंकि गृहाश्रमी तो फलकी सिद्धि के इच्छुक हुआ करते हैं और जो विरक्त हैं उनको मोक्ष की ही आकाक्षा हुआ करती है ॥ ४३ ॥ यदि एक कला मात्र भी द्वादशी के न होने से पारणा न होती हो तो दशमीविद्धा एकादशी का भी व्रत किया जा सकता है ॥ ४४ ॥ यदि कृष्ण और शुक्ल पक्ष में भी दो एकादशी होवें तो वहा पर भी गृहस्थ्याश्रमियो के लिये प्रथम और यति विरक्त लोगों को दूसरी ग्रहण करनी चाहिए ॥४५॥ यदि दिन का क्षय होने पर द्वादशी में भी कुछ दशमी सयुक्त होवे तो फिर सभी के लिये दूसरी ही लेनी चाहिए ॥४६॥ यदि आगे देखें कि द्वादसी है ही नहीं तो उस दशा में विद्धा एकादशी भी ग्रहण की जा सकती है यदि आगे द्वादशी हो तो अविद्धा एकादशी को भी निषिद्ध कहा गया है ॥४७॥ एकादशी द्वादसी हो और रात्रि के शेष में त्रयोदशी हो तो त्रयोदशी में व्रत की पारणा करने से बारह द्वादशियों का पुण्य हुआ करता है ।४८। द्वादशी के दिन एकादशी एक कला मात्र ही होवे और त्रयोदशी में द्वादशी हो या न हो तो गृहस्थियों को प्रथम विद्धा एकादशी को ही ग्रहण करना चाहिए और जो स्त्रिया पतिहीना विधवा हो इनको और यतियों को दूसरी का ग्रहण करना उत्तम होता है ॥४९॥५०॥

सम्पूर्णैकादशी शुद्धा द्वादश्या नास्ति निश्चन ।
द्वादशी च त्रयोदश्यामस्ति तत्र कथ भवेत् ॥५१

पूर्वा गृहस्थै: कार्यान्त्र यतिभिश्चोत्तरा तिथि ।
उपोष्यैव द्वितीयेति केचिदाहुश्च भक्तित: ॥५२
एकादशी यदा विद्धा द्वादश्या न प्रतीयते ।
द्वादशी च त्रयोदश्यामस्ति तत्रैव चापरे ॥५३
उपोष्या द्वादशी शुद्धा सर्वैरेव न संशय: ।
केचिदाहुश्च पूर्वां तु तन्मतं न समंजसम् ॥५४
संक्रांतौ रविवारे च पातग्रहणयोस्तथा ।
पारणं चोपवासं च न कुर्यात्पुत्रवान्गृही ॥५५
अर्केन्दुपर्वरात्रौ च चतुर्दश्यष्टमी दिवा ।
एकादश्यामहोरात्रं भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥५६

यदि सम्पूर्ण शुद्ध एकादशी हो और द्वादशी कुछ भी नहीं और द्वादशी त्रयोदशी में हो तो वहां क्या करना चाहिए ? ऐसा प्रश्न उपस्थित हो सकता है। उसका भी उत्तर यह दिया जाता है ॥५१॥ उस दशा में प्रथम गृहस्थ को करनी चाहिए और द्वितीय यति-विरक्त और सन्यासियों को करनी चाहिए कतिपय विद्वानों का यह भी मत है कि भक्तिभाव के साथ दूसरी ही सबको करनी चाहिए ॥५२॥ यदि एकादशी द्वादशी में वेध करने वाली प्रतीत न होवे और द्वादशी त्रयोदशी में हो तो निस्सन्देह सभी को उस शुद्धा द्वादशी का ही व्रत करना चाहिए। जो ऐसी दशा में भी प्रथम को उपवास करना बतलाते हैं उनका मत उचित नहीं है ॥५३॥५४॥ जो पुत्र वाला गृहस्थी हो उसको संक्रान्ति-रविवार, व्यतीपात और ग्रहण में व्रत नहीं करना चाहिए और पारणा भी वह न करे ॥५५॥ सूर्य ग्रहण में रात्रि में—कृष्णाष्टमी और शिव चतुर्दशी में दिन में तथा एकादशी में दिन-रात दोनों समयों में जो भोजन किया करता है तो इस दोष के निवारण करने के लिए उसे चान्द्रायण व्रत करना चाहिए ॥५६॥

आदित्यग्रहणे प्राप्ते पूर्वयामत्रये तथा ।
नाद्यार्द्यदि भुञ्जीत सुरापेन समो भवेत् ॥५७

अ वाधानेष्टिमध्ये तु ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः ।
प्रायश्चित्तं मुनिश्रेष्ठ कर्तव्यं तत्र याज्ञिकैः ॥५८
च द्रोपरागे जुहुयाद्दशमे सोम इत्यृचा ।
आप्यायस्वेति चैवर्चा चव सोमपास्त इति द्विज ॥५६
सूर्योपरागे जुहुयादुदुत्यं जातवेदसम् ।
आसत्येनोद्वय चैव ऋचो मया उदाहृता ॥६०
एवं तिथिं विनिश्चित्य स्मृतिमार्गेण पण्डितः ।
यः करोति व्रतादीनि तस्य स्यादक्षयं फलम् ॥६१
वेदप्रणिहितो धर्मो धर्मेस्तुष्यति केशवः ।
तस्माद्धर्मपरा याति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥६२
धर्मा ये कर्तुमिच्छन्ति ते वै कृष्णस्वरूपिणः ।
तस्मात्तांस्तु भवव्याधिः कदाचिन्नैव बाधते ॥६३

सूर्य ग्रहण में तीन प्रहर ग्रहणारम्भ के पूर्व ही सूतक होने से भोजन नहीं करना चाहिए। यदि इस सूतक के समय में कोई भोजन कर लेता है तो वह सुरापी के ही समान पातकी हो जाया करता है। ॥ ५७ ॥ हे मुनिवर! यदि अन्वाधानेष्टि के अवसर पर चन्द्र या सूर्य का ग्रहण पड़े तो याज्ञिकों को निम्न प्रकार से अवश्य ही प्रायश्चित्त करना चाहिए ॥५८॥ हे द्विज! चन्द्र ग्रहण में दशम में कथित साम — आप्यायस्व — सोमपास्ते इत्यादि ऋचाओं से आहुतियाँ देकर प्रायश्चित्त करे ॥५९॥ सूर्यग्रहण में उदुत्यं जातवेदसम् — आसत्येन और उद्वयम् इन तीन मन्त्रों के द्वारा अग्नि में आहुतियाँ देनी चाहिए ॥ ६० ॥ जो विद्वान् इस रीति से तिथि का स्मृति वचनानुसार निर्णय करके व्रतादिक क्रिया करते हैं उन्हें अक्षय पुण्य फल प्राप्त हुआ करता है ॥ ६१ ॥ वेदों में ही धर्म की स्थिति होती है और धार्मिक कर्मों से ही भगवान् केशव परम प्रसन्न हुआ करते हैं। अतएव जो पुरुष धर्म में सदा तत्परता रखते हैं वे निश्चय ही भगवान् विष्णु के

परम पद को प्राप्त हुआ करते हैं ॥ ६२ ॥ जो धर्म के कर्मों के करने की इच्छा रखते हैं वे श्रीकृष्ण के ही स्वरूप हैं। अतएव यह संसार का रोग उनको कभी भी पीड़ा नहीं दिया करता है ॥६३॥



महापातकी तथा उपपातकियों का प्रायश्चित्त

प्रायश्चित्तविधिं वक्ष्ये शृणु नारद साम्प्रतम् ।
प्रायश्चित्तविशुद्धात्मा सर्वकर्मफलं लभेत् ॥१
प्रायश्चित्तविहीनैस्तु यत्कर्म क्रियते मुने ।
तत्सर्वं निष्फलं प्रोक्तं राक्षसं परिसेवितम् ॥२
कामक्रोधविहीनैश्च धर्मशास्त्रविशारदैः ।
प्रष्टव्या ब्राह्मणा धर्मं सर्वधर्मफलेच्छुभिः ॥३
प्रायश्चित्तानि चीर्णानि नारायणपराङ्मुखम् ।
न निष्पुनन्ति विप्रेंद्र सुराभाण्डमिवापगा ॥४
ब्रह्महा च सुरापी च स्तेयी च गुरुतल्पगः ।
महापातकिनस्त्वेते तत्संसर्गी च पंचमः ॥५
यस्तु संवत्सरं ह्येतैः शयनासनभोजनैः ।
संवसेत्सह तं विद्यात्पतितं सर्वकर्मसु ॥६
अज्ञानाद् ब्राह्मणं हत्वा चीरवासा जटी भवेत् ।
स्वेनैव हतविप्रस्य कपालमपि धारयेत् ॥७

श्री सनकदेवाचार्यजी ने कहा—हे नारद ! जिनका चित्त प्रायश्चितादि के द्वारा दोषों से विशुद्ध होजाया करता है उन्हीं को समस्त किए हुए कर्मों का पुण्य फल प्राप्त हुआ करता है। अतएव परमावश्यक एवं अत्यन्त समयोपयोगी समझकर प्रायश्चित की विधि का वर्णन करना चाहता हूँ। आप समाहित हो श्रवण कीजिए ।॥१॥ हे मुने ! उपस्थित दोषों का जो प्रायः अवश्य ही सभी को होजाया करते हैं उनका प्रायश्चित आवश्यक रूप से प्रत्येक को करना ही चाहिये क्योंकि

प्रायश्चित के अभाव में किये हुये कर्मों का फल राक्षसगण ही उठा ले जाते हैं और कर्म करने वाले को उनका कुछ भी फल नहीं मिला करता है। कर्मों का फल तो अवश्य होता है किन्तु उसका लाभ राक्षसों को ही मिलता है करने वाले को कुछ भी नहीं मिलता क्योंकि प्रायश्चित नहीं किया गया है ॥२॥ जो धर्म का फल यथाविधि प्राप्त करने की अभिलाषा रखते हैं उनको समस्त धर्मों के सम्बन्ध में काम क्रोध से रहित और धर्मशास्त्र के महान् विशारद मनीषियों से पूछ लेना चाहिए ॥३॥ हे विप्रवर! जिस प्रकार से मदिरा का पात्र चाहे पवित्र नदियों में भी प्रक्षालित किया जावे तो भी वह पवित्र नहीं हो सकता है उसी भाँति भगवान् से विमुख होकर किये गये प्रायश्चित भी उसको पवित्र नहीं कर सकते हैं ॥४॥ ब्राह्मण की हत्या मदिरा पान, तथा चोरी करने वाला और इनका सङ्ग करने वाला ये सब महान् पातकी कहे गये हैं ॥५॥ जो इन लोगों के साथ एक वर्ष तक निरन्तर उठता बैठता सोता और भोजन किया करता है एवं एक साथ निवास करने का सम्बन्ध रखता है वह सभी सत्कर्मों से पतित हो जाया करता है ॥६॥ यदि अज्ञानवश किसी से ब्राह्मण का वध हो जावे तो उसको चीर वस्त्र और जटा धारण करना चाहिये। जान-बूझ कर यदि कोई विप्र का वध करता है तो उसकी खोपड़ी को लिये उसे भ्रमण करना चाहिये ॥७॥

तदभावे मुनिश्रेष्ठ कापालं वान्यमेव वा ।
तद् द्रव्यं ध्वजदण्डे तु धृत्वा वनचरो भवेत् ॥८
वन्याहारो वसेत्तत्र वारमेकं मिताशनः ।
सम्यक्सन्ध्यामुपासीत त्रिकालं स्नानमाचरेत् ॥९
अध्ययनाध्यापनादीन्वर्जयेत्संस्मरेद्धरिम् ।
ब्रह्मचारी भवेन्नित्यं गन्धमाल्यादि वर्जयेत् ॥१०
तीर्थान्यनुव्रजेच्चैव पुण्याश्रमांस्तथा ।

यदि वन्यैर्न जीवेत ग्रामे भिक्षा समाचरेत् ॥११
द्वादशाब्दं व्रतं कुर्यादेवं हरिपरायण ।
ब्रह्महा शुद्धिमाप्नोति कर्मार्हश्चैव जायते ॥१२
व्रतमध्ये मृगैर्वापि रोगैर्वापि निपूदित ।
गोनिमित्तं द्विजार्थं वा प्राणान्वापि परित्यजेत् ॥१३
यद्वा दद्याद् द्विजेंद्राणां गवामयुतमुत्तमम् ।
एतेष्वन्यतमं कृत्वा ब्रह्महा शुद्धिमाप्नुयात् ॥१४

हे विप्रेन्द्र ! यदि उसकी खोपड़ी प्राप्त न हो सके तो एक काष्ठ की खोपड़ी उसके स्थानापन्न समझकर उसको साथ रक्खे। और जो भी द्रव्य मुख्य रूप से उसका वध कर प्राप्त किया हो उसकी ध्वजा के दण्ड में बाँध कर वन में भ्रमण करना चाहिये ॥८॥ उस वन में जो कुछ भी निवास और भ्रमण करते हुए प्राप्त होवे उसी का दिन में एक बार थोड़ा सा आहार करना चाहिए। नित्य प्रति सन्ध्यावन्दना भी करे और तीनों कालों में स्नान करना चाहिये ॥६। भगवान् का निरन्तर स्मरण करता हुआ पढ़ना पढ़ाना सर्वथा त्याग देना चाहिए। सदा ब्रह्मचर्य धारण करे। गन्ध और माला आदि उत्तम पदार्थों को धारण करने का त्याग कर देना चाहिये ॥१०॥ जो भी परम पावन स्थल एवं तीर्थ हो उन पर भ्रमण करे और यदि वन्य पदार्थों से निर्वाह न हो सके तो गाँवों में भिक्षा ग्रहण करे ॥१२॥ उसके मध्य में वन्य मृगों के द्वारा या किसी रोग से चोट खाकर या गौ-ब्राह्मणों के निमित्त अपने प्राणों का परित्याग कर देता है और ब्राह्मणों को दश हजार गौओं का दान कर देवे, इन प्रायश्चितों में से कोई सा भी एक प्रायश्चित करने पर ब्रह्महत्या के महा पातक से छुटकारा पा सकता है ॥१३।१४॥

दीक्षितं क्षत्रियं हत्वा चरेद्धि ब्रह्महव्रतम् ।
अग्निप्रवेशनं वापि मरुत्प्रपतनं तथा ॥१५

दीक्षित ब्राह्मण हत्वा द्विगुण व्रतमाचरेत् ।
आचार्यादिवधे चैव व्रतमुक्त चतुर्गुणम् ॥१६
हत्वा तु द्विजमात्र च चरेत्संवत्सर व्रतम् ।
एव विप्रस्य गदित प्राय श्चत्तविधिर्द्विज ॥१७
द्विगुण क्षत्रियस्योक्त त्रिगुण तु विश स्मृतम् ।
ब्राह्मण हति य शूद्रस्त मुषल्य विदुर्बुधा ॥१८
राज्ञैव शिक्षा कर्तव्या इति शास्त्रेषु निश्चय ।
ब्राह्मणीना वधे त्वर्द्ध पाद स्यात्कन्यकावधे ॥१९
हत्वा त्वनुपनीताश्च तथा पादव्रत चरेत् ।
हत्वा तु क्षत्रिय विप्र षडब्द कृच्छ्रमाचरेत् ॥२०
संवत्सरत्रय वैश्य शूद्र हत्वा तु वत्सरम् ।
दीक्षितस्य स्त्रिय हत्वा ब्राह्मणा चाष्टवत्सरान् ॥२१
ब्रह्महत्या व्रत कृत्वा शुद्धो भवति निश्चितम् ।
प्रायश्चित्तविधान तु सर्वत्र मुनिसत्तम ॥२२

दीक्षा प्राप्त क्षत्रिय का भी वध कर देने पर यही ब्रह्महत्या के शोधक व्रत को करना चाहिए । अग्नि मे स्वेच्छया प्रवेश करे या किसी ऊँचे पर्वत से आँधी के झोंके से निम्न निपात कर प्राणों का त्याग करे ॥१५॥ यदि दीक्षित ब्राह्मण का वध होजावे तो पूर्वोक्त व्रत से दुगुना व्रत का प्रायश्चित्त करना चाहिये । हे द्विज ! यह इस रीति से एक ब्राह्मण के लिये प्रायश्चित्त की विधि कही गयी है ॥१७॥ क्षत्रिय के द्वारा जब यही पाप बन जाता है तो उसकी शुद्धि के लिये द्विगुणित विधि बताई गई है । वैश्य के लिये तिगुनी विधि है । यदि कोई शूद्र किसी ब्राह्मण का वध कर देता है तो उसको मुषल्य कहा जाता है अर्थात् उसकी शुद्धि तभी होती है जब उसे मूसल से मार दिया जावे क्योंकि इसी प्रायश्चित्त का वह पात्र होता है ॥१८॥ शास्त्रकारों का निश्चित सिद्धान्त यही है कि सभी दण्ड राजा के द्वारा ही दिये जाने

चाहिए। ब्राह्मणी के वध मे उससे आधा और किसी कुमारी कन्या के वध हो जाने पर चतुर्थ भाग ही प्रायश्चित का बतलाया गया है ॥१६॥ जिसका उपनयन नही हुआ हो उसके वध मे भी चौथाई व्रत बतलाया गया है। ब्राह्मण यदि किसी क्षत्रिय का वध कर देवे तो उसे छैं वर्ष तक कृच्छ्र व्रत करना चाहिये। वैश्य के वध मे तीन वर्ष और शूद्र के वध मे एक ही वर्ष पर्याप्त कहा गया है। यदि दीक्षित विप्र की स्त्री का वध हो जावे तो आठ वर्ष तक कृच्छ्र व्रत करना चाहिये तभी ब्रह्महत्या के दोष से शुद्धि हुआ करती है। हे मुनि श्रेष्ठ ! विद्वान् पुरुषो से वृद्ध, आतुर स्त्री और बालको के वध के पाप की शुद्धि के लिए सर्वत्र आधा प्रायश्चित ही करना आवश्यक है ॥२०—२२॥

वृद्धातुरस्त्रीबालानामर्द्धमुक्त मनीषिभि ।
गौडी पैष्टी च माध्वी च विज्ञेया त्रिविधा सुरा ॥२३
चातुर्वर्ण्यैरपेया स्यात्तथा स्त्रीभिश्च नारद।
क्षीर घृत वा गोमूत्रमेतेष्वन्यतम मुने ॥२४
स्नात्वार्द्रवासा नियतो नारायणमनुस्मरन् ।
पक्वायसनिभ कृत्वा पिबेच्चैवोदक तत ॥२५
तत्तु लोहेन पात्रेण ह्यायसेनाथवा पिबेत् ।
ताम्रेण वाथ पात्रेण तत्पीत्वा मरण व्रजेत् ॥२६
सुरापी शुद्धि माप्नोति नान्यथा शुद्धिरिष्यते ।
अज्ञानादात्मवुद्धचा तु सुरा पीत्वा द्विजश्चरेत् ॥२७
ब्रह्महत्याव्रत सम्यक्तच्चिह्नपरिवर्जित ।
यदि रोगनिवृत्त्यर्थमौषधार्थं सुरा पिबेत् । २८
तस्योपनयन भूयस्तथा चान्द्रायणद्वयम् ।
सुरासस्पृष्टपात्र तु सुराभाण्डोदक तथा।
सुरापानसम प्राहुस्तथा चन्द्रस्य भक्षणम् ॥२६

गुड की पिटठी की और मधु की निर्मित की हुई तीन प्रकार की मदिरा समझ लेनी चाहिये ॥२३॥ हे नारद! चारों वर्णों के पुरुषों और स्त्रियों को मदिरा का पान कभी नहीं करना चाहिये। शराब पीने वाले को दूध, घृत अथवा गोमूत्र इनमें से किसी भी एक को, स्नान करके पीछे ही वस्त्र धारण करके भगवान् नारायण के चरणों का स्मरण कर गर्म कर लाल २ ही पीना चाहिये ॥२४।२५॥ उसको लौह, ताम्र या शीशा के पात्र मे पीकर मृत होजाना चाहिये ॥२६॥ इतना प्रायश्चित करने के बाद ही मदिरा पान वाले की विशुद्धि होती है अन्य किसी भी प्रकार से नहीं हुआ करती है। यदि अज्ञानता से जानबूझ कर मदिरा का पान करता है तो द्विज को ब्रह्महत्या विशोधक ही व्रत करना चाहिए और इसमे खोपड़ी के धारण करने की आवश्यकता नहीं होती है। यदि रोग निवृत्ति के लिये औषध के रूप में मदिरा पान करना पड़े तो पुनः उपनयन करना नितान्त आवश्यकता होता है और शुद्धि के लिये दो चान्द्रायण व्रत भी करने चाहिये। शराब से स्पर्श किये हुए पात्र का जल तथा चन्द्र भक्षण अर्थात् चन्द्रग्रहण की वेला मे भोजन शराब के पान के तुल्य ही कहे गये हैं ॥२७--२६॥

ताल च पानस चैव द्राक्ष खार्जूरसम्भवम् ॥३०
माधुक शैलमारिष्ट मैरेय नालिकेरजम्।
गौडी माध्वी सुरा मद्यमेवमेकादश स्मृता ॥३१
एतेष्वन्यतम विप्रो न पिबेद्वै कदाचन।
एतेष्वन्यतम यस्तु पिबेदज्ञानतो द्विज ॥३२
तस्योपनयन भूयस्तप्तकृच्छ्र चरेत्तथा।
समक्ष वा परोक्ष वा बलाच्चौर्येण वा तथा ॥३३
परस्वानामुपादान स्तेयमित्युच्यते बुधै।
सुवर्णस्य प्रमाण तु मन्वाद्यै परिभाषितम् ॥३४

वक्ष्ये शृणुष्व विप्रेंद्र प्रायश्चित्तोक्तिसाधनम् ।
गवाक्षागतमार्तण्डरश्मिमध्ये प्रदृश्यते ॥३५
त्रसरेणुप्रमाणं तु रज इत्युच्यते बुधैः ।
त्रसरेण्वष्टकं निष्कस्तत्त्रयं राजसर्षपः ॥३६

ताड, करहल, अगूर, खजूर, महुआ, रीठा, मैरेय, नारियल, पाषाण से घिसी हुई पिट्ठी और गुड—इनसे निर्मित की गई ग्यारह तरह की मदिरा होती है ॥३०।३१॥ इनमें से किसी भी एक तरह की मदिरा को ब्राह्मण को कभी भी नहीं पीना चाहिए। यदि अज्ञानवश द्विज किसी भी एक तरह की मदिरा का पान कर लेता है तो विशुद्धि के लिये फिर उसका उपनयन संस्कार अवश्य ही होना चाहिये और कृच्छ्र व्रत भी करना चाहिए। अब दूसरे चोरी के महापातक के विषय में बतलाया जाता है। आँखों के सामने या आँखों के ओझल में बलात् अथवा चोरी से दूसरे के धन को हड़पने के कार्य को ही विद्वान् पुरुष चोरी कहा करते हैं। सुवर्ण का प्रमाण तो महर्षि मनु आदि ने बताया है ॥३२—३४॥ हे विप्रेन्द्र ! अब मैं उस प्रायश्चित की शक्तियों का साधन एवं मान के विषय में वर्णन करता हूँ। आप समाहित होकर श्रवण करिए। झरोखे में समापतित सूर्य की किरणों में जो अत्यन्त सूक्ष्म धूलिकण उड़ते दिखलाई दिया करते हैं उनको विद्वान् त्रसरेणु कहा करते हैं ऐसे आठ त्रसरेणुओं का एक निष्क होता है और तीन निष्कों का एक राज सर्षप हुआ करता है ॥३५।३६॥

गौरसर्षपस्तत्त्रयं स्यात्तत्षट्कं यव उच्यते ।
यवत्रयं कृष्णलं स्यान्माषस्तत्पंचकं स्मृतः ॥३७
माषषोडशमानं स्यात्सुवर्णमिति नारद ।
हृत्वा ब्रह्मस्वमज्ञानाद् द्वादशाब्दं तु पूर्ववत् ॥३८
वपानष्वजहीनं तु ब्रह्महत्याव्रतं चरेत् ।

गुरुणा यज्ञकर्तॄणां धर्मिष्ठानां तथैव च ॥३६
श्रोत्रियाणां द्विजानां तु हृत्वा हेमैवमाचरेत् ।
कृतानुतापो देहे च सम्पूर्णे लेपयेद् घृतम् ॥४०
करीषच्छादितो दग्धः स्तेयपापाद्विमुच्यते ।
ब्रह्मस्वं क्षत्रियो हृत्वा पश्चात्तापमवाप्य च ॥४१
पुनर्ददाति तत्रैव तद्विधानं शृणुष्व मे ।
तत्र सातपनं कृत्वा द्वादशाहोपवासतः ॥४२

ऐसे तीन राज सर्षपों का एक सर्षप हुआ करता है और छै गौर सर्षपों का एक यव होता है। तीन यवों का मिलकर एक कृष्णल हुआ करता है। पाँच कृष्णलों का एक माष होता है ॥३७॥ हे मुनिवर ! इस तरह से सोलह माषों के मान को सुवर्ण कहा जाया करता है। यदि अज्ञानवश किसी ब्राह्मण के धन का हरण कर लेता है तो उस दोष से शुद्धता पाने के लिये पूर्वोक्त ब्रह्महत्या शोधक व्रत को ही करना चाहिए। इसमें कपाल और ध्वज के रखने की आवश्यकता नहीं होती है। गुरु यज्ञकर्त्ता धार्मिक और श्रोत्रिय द्विज के धन का अर्थात् सुवर्ण का हरण करे तो ऐसा प्रायश्चित करना चाहिए कि अनुताप करने के पश्चात् अपने समस्त शरीर के अङ्गों में घृत का लेपन करे ॥३८—४०॥ फिर प्रज्वलित उपलों में बैठकर आत्म दाह करने से पाप से छुटकारा होता है। क्षत्रिय यदि किसी ब्राह्मण के धन का अपहरण कर ले तो उसे ब्राह्मण को वापिस लौटाकर पूर्ण रूप से पश्चाताप भी करना चाहिये। इसका भी एक पूरा विधान है उसे सुनिए। बारह दिन का उपवास करके सातपन करे ॥४१,४२॥

शुद्धिमाप्नोति देवर्षे ह्यन्यथा पतितो भवेत् ।
रत्नासनमनुष्यस्त्रीधेनुभूम्यादिकेषु च ॥४३
सुवर्णसदृशेष्वेषु प्रायश्चित्तार्द्धमुच्यते ।
त्रसरेणुसमं हेम हृत्वा कुर्यात्समाहितः ॥४४

प्राणायामद्वयं सम्यक् तेन शुद्ध्यति मानवः ।
प्राणायामत्रयं कुर्याद् धृत्वा निष्कप्रमाणकम् ॥४५
प्राणायामाश्च चत्वारो राजसर्षपमात्रके ।
गौरसर्षपमानं तु हृत्वा हेम विचक्षणः ॥४६
स्नात्वा च विधिवज्जप्याद्गायत्र्यष्टसहस्रकम् ।
यवमात्रसुवर्णस्य स्तेयाच्छुद्धो भवेद् द्विजः ॥४७
आसायं प्रातरारभ्य जप्त्वा वै वेदमातरम् ।
हेम कृष्णलमात्रं तु हृत्वा सांतपनं चरेत् ॥४८
माषप्रमाणे हेम्नस्तु प्रायश्चित्तं निगद्यते ।
गोमूत्रपक्वयवभुग्वर्षेणैकेन शुद्ध्यति ॥४९

हे देवर्षे ! तभी उसकी शुद्धि हुआ करती है ऐसा न करने पर वह निश्चित रूप से पतित हो जाया करता है । अपहरण में रत्न, आसन मनुष्य स्त्री धेनु भूमि आदि सभी सुवर्ण के सदृश ही माने जाते हैं किन्तु इनका प्रायश्चित्त होता है । त्रसरेणु के समान सुवर्ण का हरण कर परम सावधानी के साथ दो प्राणायामों के करने से शुद्धि होजाया करती है । निष्क मात्र सुवर्ण की चोरी करने से जो दोष होता है उसकी शुद्धि के लिये तीन बार प्राणायाम करने चाहिए ॥४३—४५॥ राजसर्षप के समान सुवर्ण की चोरी में चार प्राणायाम करे । गौर सर्षप के बराबर सुवर्ण की चोरी करने पर चतुर पुरुष को स्नान करके आठ सहस्र गायत्री का जप करना चाहिये । द्विज को यव के समान मान वाले सुवर्ण के हरण में प्रातःकाल से सायङ्काल तक वेदों की जननी गायत्री देवी के मन्त्र का जाप शुद्धि के लिये करना चाहिए तथा कृष्णल के मान के बराबर सुवर्ण के हरण में सान्तपन व्रत करना चाहिये ॥४६—४८॥ अब एक माष भर सुवर्ण की चोरी का प्रायश्चित्त बताया जाता है उस चोर को गोमूत्र में पके हुए जौ का एक वर्ष तक भोजन करना चाहिए तभी उसकी शुद्धि हुआ करती है ॥४९

सम्पूर्णस्य सुवर्णस्य स्तेयं कृत्वा मुनीश्वर ।
ब्रह्महत्याव्रतं कुर्याद् द्वादशाब्दं समाहित ॥५०
सुवर्णमानान्न्यूने तु रजतस्तेयकर्मणि ।
कुर्यात्सांतपनं सम्यगन्यथा पतितो भवेत् ॥५१
दशनिष्कान्तपर्यंतमूर्द्ध्वं निष्कचतुष्टयात् ।
हृत्वा च रजतं विद्वान्कुर्याच्चान्द्रायणं मुने ॥५२
दशादिशतनिष्कान्तं यः स्तेयी रजतस्य तु ।
चान्द्रायणद्वयं तस्य प्रोक्तं पापविशोधकम् ॥५३
शतादूर्द्ध्वं सहस्रान्तं प्रोक्तं चान्द्रायणत्रयम् ।
सहस्रादधिकस्तेये ब्रह्महत्याव्रतं चरेत् ॥५४
कांस्यपित्तलमुख्येषु सायस्कान्ते तथैव च ।
सहस्रनिष्कमाने तु पराकं परिकीर्तितम् ॥५५
प्रायश्चित्तं तु रत्नानां स्तेये राजतवत्स्मृतम् ।
गुरुतल्पगतानां च प्रायश्चित्तमुदीर्यते ॥५६

हे मुनीश्वर ! पूरे सुवर्ण भर प्रमाण के सुवर्ण (सोने) की चोरी करने पर बहुत ही सावधानता के साथ बारह वर्ष तक ब्रह्महत्या-पाप के व्रत को ही करना चाहिये ॥५०॥ एक सुवर्ण के प्रमाण से कम चाँदी की चोरी में सान्तपन व्रत के किये बिना वह पतित हो रहा करता है उसकी शुद्धि नहीं होती है ॥५१॥ हे मुने ! चार निष्क से

और अगम्यागमन (गुरु स्त्री का भोग) एवं महत्व की चोरी में शुद्धि के लिये प्रायश्चित्त में पराक व्रत की व्यवस्था कही गयी है। इनमें और पापों में प्रायश्चित्त चोरी की ही भाँति के तुल्य करना चाहिए। अब भोजन पानादिक गुरु तल्पगामी के प्रायश्चित्त को बतलाया जाता है ॥५६॥

अज्ञानान्मातरं गत्वा तत्सपत्नीमथापि वा ।
स्वयमेव स्वमुष्कं तु छित्त्वा पापमुदीरयन् ॥५७
हस्ते गृहीत्वा मुष्कं तु गच्छेद्वै नैर्ऋतीं दिशम् ।
गच्छन्मार्गे सुखं दुःखं न कदाचिद्विचारयेत् ॥५८
अपश्यन्गच्छतो गच्छेत्प्राणान्ते स तु शुद्ध्यति ।
आत्मप्रदानं वापि कुर्यात्पापमुदाहरन् ॥५९
स्ववर्णोत्तमवर्णस्त्रीगमने त्वविचारतः ।
ब्रह्महत्याव्रतं कुर्याद् द्वादशाब्दं समाहितः ॥६०
अमत्याभ्यागतो गच्छेत्सवर्णां मातरं तथा ।
पादीपवह्निना दग्धः शुद्धिं याति द्विजोत्तम ॥६१
[illegible]
[illegible]
[illegible]
ब्रह्महत्याव्रतं कुर्यान्नवाब्दान्विष्णुतत्परः ॥६३

अज्ञान वश अपनी माता अथवा सौतेली माता के साथ गमन करने वाले पुरुष को अपने आपके किये हुए पातक को प्रकट करते हुए अपने ही हाथों से दोनों अण्डकोशों को काट डालना चाहिए ॥ ५७ ॥ फिर उन अण्डकोशों को हाथ में लेकर नैर्ऋत्य दिशा में गमन करे और मार्ग में दुःख और सुख का कुछ भी विचार नहीं करे ॥५८॥ ऐसे कुछ भी न देखकर चलते २ प्राणों का अन्त हो जाने पर उस पातक से शुद्धि हो जाती है अथवा अपने आपको प्रकट करता हुआ किसी

पर्वत की शिखर से निम्न पात कर डाले ॥५६॥ अविचारवश अपने वर्ण से किसी उच्च वर्ण की स्त्री के साथ गमन कर लेवे तो सावधानी के साथ बारह वर्ष तक ब्रह्महत्या शोधक व्रत को करे ॥६०॥ यदि दुर्भाग्य से काम के वशीभूत होकर किसी सवर्ण या उत्तम वर्ण की स्त्री के साथ गमन करले तो हे द्विज श्रेष्ठ उपलों की प्रज्वलित अग्नि में प्रवेश करने पर ही शुद्धि होती है ॥६१॥ यदि वीर्यपात से पूर्व ही निवृत्ति करले तो भी ब्रह्महत्या व्रत को प्रायश्चित के लिये करे और शुक्र स्खलन करने पर अग्नि में भस्मीभूत होजावे तभी शुद्धि होती है ॥६२॥ यदि सवर्णा अथवा उत्तमवर्णा स्त्री की योनि में वीर्य का स्खलन करके ही निवृत्त होवे तो विष्णु भक्ति करता हुआ नौ वर्ष तक ब्रह्महत्या-शोधक व्रत का प्रायश्चित करना चाहिये ॥६३

वैश्याया पितृपत्न्या तु षडब्दं व्रतमाचरेत् ।
गत्वा शूद्रा गुरोर्भार्या त्रिवर्षं व्रतमाचरेत् ॥६४
मातृष्वसारं च पितृष्वसारमाचार्यभार्यां श्वश्रुरस्य पत्नीम् ।
पितृव्यभार्यामथ मातुलानीं पुत्रीं च गच्छेद्यदि काममुग्ध ॥६५
दिनत्रये ब्रह्महत्याव्रतं कुर्याद्यथाविधि ।
एकस्मिन्नेव दिवसे बहुवारं निवापिकम् ॥६६
एकवारं गते ह्यब्दं व्रतं कृत्वा विशुद्धयति ।
दिनत्रये गते वह्निदग्ध शुध्येत नान्यथा ॥६७
चाण्डाली पुक्कसी चैव स्नुषा च भगिनी तथा ।
मित्रस्त्रियं शिष्यपत्नीं यस्तुष्वै कामतो व्रजेत् ॥६८
ब्रह्महत्याव्रतं कुर्यात्स षडब्दं मुनीश्वर ।
अकामतो व्रजेद्यस्तु सोऽन्दकृच्छ्र समाचरेत् ॥६९
महापातकिसंसर्गं प्रायश्चित्त निगद्यते ।
प्रायश्चित्तविशुद्धात्मा सर्वकर्मफलं लभेत् ॥७०

यदि वैश्य वर्ण वाली पिता की असवर्णा पत्नी के साथ समागम

कर लेवे तो भी छँ वर्ष पर्यन्त ब्रह्महत्या शोधक व्रत करना चाहिए तथा गुरुदेव की शूद्रवर्णा भार्या से गमन करके तीन वर्ष तक वही व्रत करना चाहिए ॥६४॥ यदि कोई काम स मोहित होकर मौसी, बुआ, गुरुआनी, सास, चाची, मामी और पुत्री से समागम कर लेवे और दो बार समागम करने पर ब्रह्महत्या शोधक व्रत के करने से ही शुद्धि होती है। एक ही दिन मे अनेक बार गमन करने पर तीन वर्ष तक ब्रह्महत्या व्रत करने से शुद्धि होती है ॥६५।६६॥ केवल एक ही बार समागम करे तो एक वर्ष मे शुद्धि हुआ करती है। बराबर तीन दिन तक समागम करते रहने पर बिना अग्नि मे भस्मीभूत हुए बिना शुद्धि नहीं होती है ॥६७॥ चाण्डाली, पुक्कसी, पुत्री, बहिन, मित्र की पत्नी, शिष्य पत्नी से कामना पूर्वक गमन करने स हे मुनीश्वर। छँ वर्ष पर्यन्त ब्रह्महत्या व्रत करे। बिना ही कामना के गमन करने पर एक वर्ष तक कृच्छ्र व्रत करने का विधान है ।६८।६९। अब महा पातकियो से सम्पर्क रखने के दोष का प्रायश्चित बतलाया जाता है क्योंकि जिसका मन प्रायश्चित करने पर शुद्ध हो जाता है उसी को फिर किसी सत्कर्म करने का फल प्राप्त हो सकता है ॥७०॥

यस्य येन भवेत्सगो ब्रह्महादिचतुर्ष्वपि ।
तत्तद् व्रत स निर्वर्त्य शुद्धिमाप्नोत्यसशयम् ॥७१
अज्ञानात्पचरात्र तु सगमेभि करोति ■ ।
कायकृच्छ्र चरेत्सम्यगन्यथा पतितो भवेत् ॥७२
द्वादशाहे तु ससर्गे महासातपन स्मृतम् ।
मग कृत्वार्द्ध मास तु द्वादशाहमुपावसेत् ॥७३
परावो माससंसर्गे चाद्रमासत्रये स्मृतम् ।
कृत्वा सग तु षण्मास चरेच्चान्द्रायणद्वयम् ॥७४
किंचिन्न्यूनाब्दसगे तु षण्मासव्रतमाचरेत् ।
एतच्च त्रिगुण प्रोक्त ज्ञानात्सगे यथाक्रमम् ॥७५

मद्गुवं नकुलं गारं वराहं मूषकं तथा ।
मार्जाराजाविकं श्वानं हत्वा कुक्कुटकं तथा ॥७६
कृच्छ्रार्द्धमाचरेद्विप्रोऽतिकृच्छ्रं चाश्वहा चरेत् ।
तप्तकृच्छ्रं करिवधे पराकं गोवधे स्मृतम् ॥७७

एतेष्वन्यतमं हत्वा द्वादशाहमभोजनम् ।
प्राजापत्यव्रतं कुर्याद्रेतो वण्मूत्रभोजने ॥८२
चान्द्रायणत्रयं प्रोक्तं शूद्रोच्छिष्टस्य भोजने ।
रजस्वला च चाण्डालं महापातकिनं तथा ॥८३
सूतिकां पतितं चैव उच्छिष्टं रजकादिकम् ।
स्पृष्ट्वा सचैलं स्नायीत घृतं सम्प्राशयेत्तथा ॥८४

कामनापूर्वक गाय के वध करने पर तो विद्वान् पुरुषों ने उस पाप से शुद्ध होने के लिये किसी भी प्रायश्चित्त का उल्लेख ही नहीं किया है। शरबत, शैय्या, आसन, पुष्प, फल, मूल, भक्ष्य-भोज्य की चोरी करने पर केवल पञ्चगव्य लेने ही से शुद्धि हो जाया करती है। शुष्क काष्ठ, तृण, वृक्ष, गुड, चमड़ा, वस्त्र, मांस की चोरी करने पर शुद्धि के लिये तीन दिन तक उपवास करे। टटीरी, चकवा, हंस, करेडुआ, उल्लू, सारस, कबूतर, मुरगाबी, तोता, नीलकण्ठ, बगुला, गोह, कछुआ इनमें से किसी का भी वध करने या बन जाने पर बारह दिन तक भोजन का त्याग कर देना चाहिए। पायाला, प्रस्राव के खा-पी लेने पर शुद्धि के लिए प्राजापत्य व्रत करे ॥७८—८२॥ यदि शूद्र का उच्छिष्ट को खा लेवे तो तीन चान्द्रायण व्रत करे। रजस्वला स्त्री, चाण्डाल, महापातकी, सूतिका, पतित उच्छिष्ट, धोबी आदि का स्पर्श हो जाने पर वस्त्रों के सहित स्नान कर घृत का प्राशन करना चाहिए ॥८३।८४॥

गायत्री च विशुद्धात्मा जपेदष्टशतं द्विज ।
एतेष्वन्यतमं स्पृष्ट्वा अज्ञानाद्यदि भोजने ॥८५
त्रिरात्रो पोषणाच्छुद्ध्येत्पञ्चगव्याशनाद् द्विज ।
स्नानदानजपादौ च भोजनादौ च नारद ॥८६
एषामन्यतमस्यापि शब्दं यः शृणुयाद्वदेत् ।
उद्वमेद्भुक्तमन्नं तत्स्नात्वा चोपवसेत्तथा ॥८७

द्वितीयेऽह्नि घृतं प्राश्य शुद्धिमाप्नोति नारद ।
व्रतादिमध्ये यद्यपि शृणुयाद्ध्वनिमप्युत ॥८८
अष्टोत्तरसहस्रं तु जपेद् वै वेदमातरम् ।
पापानामधिकं पापं द्विजदेवतनिन्दनम् ॥८९
न दृष्टा निष्कृतिस्तस्य सर्वशास्त्रेषु नारद ।
महापातकतुल्यानि यानि प्रोक्तानि सूरिभिः ॥९०
प्रायश्चित्तं तु तेषां च कुर्यात्वै यथाविधि ।
प्रायश्चित्तानि यः कुर्यान्नारायणपरायणः ॥९१

इससे भी उपरान्त हे द्विज ! शुद्धि के लिए आठसौ गायत्री मन्त्र का जाप करे। यदि उपयुक्तों में से किसी भी एक का स्पर्श कर अनजाने में भोजन कर लेवे तो तीन रात्रि पर्यन्त व्रत रखकर फिर पञ्चगव्य का प्राशन करने से शुद्धि होती है। हे नारद ! दान स्नान जाप भोजन आदि में इनमें से किसी के शब्द का भी श्रवण कर लेवे या किसी से भाषण कर लेवे तो न्हाए हुए अंग का वमन कर देवे तथा फिर स्नान करके उपवास करना चाहिए ॥ ८५–८७ ॥ हे नारद ! फिर दूसरे दिन घृत चाटकर शुद्ध होता है। यदि व्रत आदि में भी इनकी ध्वनि का श्रवण कर लेवे तो आठ सहस्र गायत्री का जाप करे। देवता और विप्रों की निन्दा करना समस्त अन्य पापों से भी बड़ा पाप होता है ॥८८।८९॥ हे नारद ! किसी शास्त्र में उसका प्रायश्चित नहीं लिखा है। इनको भी विद्वानों ने महापातकों के समान पातक बतलाया है॥९०॥अतएव उनका भी यथाविधि प्रायश्चित करना चाहिए। जो मनुष्य भगवान् में तत्परता रखकर प्रायश्चित किया करता है उसके समस्त पापों का नाश हो जाया करता है अन्यथा वह पतित ही रहा करता है ॥९१॥

तस्य पापानि नश्यन्ति ह्यन्यथा पतितो भवन् ।
यस्तु रागादिनिर्मुक्तो ह्यनुतापसमन्वितः ॥९२

सर्वभूतदयायुक्तो विष्णुस्मरणतत्परः ।
महापातकयुक्तो वा युक्तो वा सर्वपातकैः ॥६३
विमुक्त एव पापेभ्यो ज्ञेयो विष्णुपरोयतः ।
नारायणमनाद्यन्तं विश्वाकारमनामयम् ।
यस्तु संस्मरते मर्त्यः स मुक्तः पापकोटिभिः ॥६४
स्मृतो वा पूजितो वापि ध्यातः प्रणमितोऽपि वा ॥६५
नाशयत्येव पापानि विष्णुर्हृद्‌गमनः सताम् ।
सम्पर्काद्य द वा मोहाद्यस्तु पूजयते हरिम् ॥६६
सर्वपापविनिर्मुक्तः स प्रयाति हरेः पदम् ।
सकृत्संस्मरणाद्विष्णोर्नश्यति क्लेशसञ्चयाः ॥६७

जो पुरुष राग से रहित होते हुए इन पापों के लिये हृदय में प्रायश्चित किया करता है और समस्त प्राणियों पर दया का भाव रखकर निरन्तर भगवच्चरणों में परायण रहा पातकों से और अन्य प्रकार के सभी पापों से मुक्त होजाया करता है । उसको भगवत्परायण होने के कारण सब पापों से मुक्त ही समझना चाहिए ॥६३—६४॥ सज्जनों के मन में विराजमान भगवान विष्णु का स्मरण–अर्चन, ध्यान और नमन से सब पापों को क्षार कर दिया करते हैं । जो सम्पर्क या मोह के वश श्री हरि का पूजन किया करता है वह सम्पूर्ण पातकों से मुक्त होकर अन्त में हरि के परम धाम को प्राप्त किया करता है । भगवान् के स्मरण का बड़ा भारी प्रभाव है । एक बार भी उनका स्मरण करने से सभी क्लेशों का समुदाय भी नष्ट होजाया करता है ॥६५—६७॥

स्वर्गादिभोगप्राप्तिस्तु तस्य विप्रानुमीयते ।
मानुषं दुर्लभं जन्म प्राप्यते यैर्मुनीश्वर ॥६८
तत्रापि हरिभक्तिस्तु दुर्लभा परिकीर्तिता ।
तस्मात्तडिल्लतालोलं मानुष्यं प्राप्य दुर्लभम् ॥६९

हरिं सम्पूजयेद्भक्त्या पशुपाशविमोचनम् ।
सर्वेऽन्तराया नश्यन्ति मनःशुद्धिश्च जायते ॥१००
परं मोक्षं लभेच्चैव पूजिते तु जनार्दने ।
धर्मार्थकाममोक्षाख्याः पुरुषार्थाः सनातनाः ॥१०१
हरिपूजापराणां तु सिध्यन्ति नात्र संशयः ।
पुत्रदारगृहक्षेत्रधनधान्याभिधायतीम् ॥१०२
लब्ध्वेमां मानुषीं वृत्तिं रे रे दर्पं तु मा कृथाः ।
सन्त्यज्य कामं क्रोधं च लोभं मोहं मदं तथा ॥१०३
परापवादं निंदां च भजध्वं भक्तितो हरिम् ।
व्यापारान्सकलांस्त्यक्त्वा पूजयध्वं जनार्दनम् ॥१०४

हे विप्र ! इससे ही से स्वर्गादि के सुखोपयोग की प्राप्ति कर अनुमान कर लेना चाहिए। हे मुनिवर ! इस संसार में यह मनुष्य का शरीर भी प्राप्त होना महान् दुर्लभ होता है। मनुष्य जीवन में भी श्री हरि की प्राप्ति अत्यन्त दुर्लभ है। अतएव विद्युत के प्रकाश की भाँति अस्थिर और चञ्चल इस दुर्लभ मानव देह को पाकर पशुता के अज्ञान-रूपी पाश का छेदन करने के लिए श्री हरि का भक्तिभाव समन्वित अर्चन करे। भगवान् जनार्दन देव की पूजा से सभी विघ्न बाधायें स्वतः ही विनष्ट होजाया करती है—मन शुद्ध होकर मोक्ष की प्राप्ति हो जाया करती है। हरि के पूजन में मग्न रहने वालों को धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष ये चारों पुरुषार्थ सिद्ध होजाया करते हैं। इस क्षण-भंगुर मानव देह को पाकर पुत्र-पत्नी गृह, धन-धान्य आदि का अभिमान कभी नहीं करे। काम क्रोध, लोभ, मोह, मद और परनिन्दा का त्याग कर भक्तिपूर्वक श्रीहरि का अर्चन करना चाहिए। यही इस जीवन में सार है। समस्त कार्यों का परित्याग कर भगवान् का पूजन करे ॥९९-१०४॥

निरर्था एव दृश्यन्ते कृतान्तनगरद्रुमाः ।

यावन्नायाति मरणं यावन्नायाति वै जरा ॥१०५
यावन्नेन्द्रियवैकल्यं तावदेवार्चयेद्धरिम् ।
धीमान्न कुर्याद्विश्वासं शरीरेऽस्मिन्विनश्वरे ॥१०६
नित्यं सन्निहितो मृत्युः सम्पदत्यन्तचञ्चला ।
आसन्नमरणो देहस्तस्माद्दर्पं विमुञ्चत ॥१०७
संयोगा विप्रयोगान्ताः सर्वं च क्षणभंगुरम् ।
एतज्ज्ञात्वा महाभाग पूजयस्व जनार्दनम् ॥१०८

कारण यही है कि इस मानव-जीवन का समय बहुत ही थोड़ा है और यमराज की नगरी के द्वार समीप में ही दिखाई दे रहे हैं। जिस समय तक मौत नहीं आ रही है और सब कार्यों के करने में अशक्ति उत्पन्न करने वाला बुढ़ापा आकर नहीं घेरता है, जब तक शरीर की इन्द्रियों में शिथिलता नहीं आती है उस समय तक ही श्री हरि का पूजनार्चन कर लेना चाहिये। जो मतिमान निपुण पुरुष हैं उनको इस क्षणभंगुर शरीर का तनिक भी विश्वास नहीं होता है क्योंकि मानवों की मृत्यु सदा निकट ही में रहा करती है। इस जीवन में जो भी सुख सम्पत्तियाँ हैं वे सब विद्युत के सदृश चपल हैं और अत्यन्त अस्थिरता वाली होती हैं। यह शरीर मृत्यु के निकटवर्ती ही रहा करता है। अतएव इसका और इसके समीप में रहने वाले पदार्थों का घमण्ड त्याग ही देना चाहिए ॥१०५-१०७॥ यह सार्वदिक नियम सिद्धान्त है कि जिस वस्तु से संयोग हुआ है उससे वियोग अवश्य होगा। अतएव इस जगत् में प्राप्त होने वाले सभी पदार्थ विनाशशील और क्षणभंगुर होते हैं—यही भली भाँति समझ कर हे महाभाग नारद ! जनार्दन के चरणों में भक्ति करनी चाहिए ॥१०८॥

आनन्दा क्षयं यत्र मोक्षोऽप्यत्यन्तदुर्लभ ।
भक्त्या प्रयान्ति यं विष्णुं महात्मानस्तथापि ॥१०९
योऽपि सर्वपरं स्थानं यत्र गत्वा न शोचति ।

सर्वतोथानि यज्ञाश्च सांगा वेदाश्च सत्तम ॥११०
नारायणार्चनस्यते कला नार्हति षोडशीम् ।
किं वै वेदैर्मखै शास्त्रै किंवा तीर्थनिषवणे ॥१११
विष्णुभक्तिविहीनानां किं तपोभिर्व्रतैरपि ॥११२
यजंति ये विष्णुमनन्तमूर्ति निरीक्ष्य चायारगतं वरेण्यम् ।
वेदान्तवेद्यं भवरोगवंद्यं ते यांति मर्त्याः पदमच्युतस्य ॥११३
अनादिमात्मानमनन्तशक्तिमाधारभूतं जगत सुरेड्यम् ।
ज्योति स्वरूपं परमच्युताख्यं स्मृत्वा समभ्येति नरः सखायम्।१४

यह आत्मा ही एक ऐसी है जिससे मनुष्य पीडायें प्राप्त किया करता है और मोक्ष की प्राप्ति अत्यन्त कठिन होती है। कोई महान् पापी होकर भी भक्ति के साथ भजन किया करता है वह भी ऐसा उत्तम पद प्राप्त कर लिया करता है जहाँ पहुँचने पर कोई शोक नहीं होता है। हे नारद ! ये समस्त तीर्थों का सेवन और समस्त सांगवेद भी भगवान की पूजा की सोलहवीं कला के बराबर भी नहीं हैं। जो भगवान का अर्चन नहीं किया करते हैं उनको वेद शास्त्र और तीर्थाटन एवं व्रतोपवास आदि क्या कर सकते हैं ॥१०६—११२॥ जो प्राणी वेद तथा शास्त्र के द्वारा जानने के योग्य इस सांसारिक व्याधि की चिकित्सा करने वाले अनन्त मूर्ति एवं व्यापक वरण करने के योग्य भगवान की मूर्ति रूप में दर्शन प्राप्त किया करते हैं वे मनुष्य अच्युत भगवान् के वैकुण्ठ पद को प्राप्त किया करते हैं ॥११३॥ जो मानव आद्य तथा अन्त रहित आत्म स्वरूप अनन्त शक्ति से सुसम्पन्न जगत् के आधार स्तवनीय ज्योति स्वरूप परमात्मा का स्मरण करके उनको प्राप्त करता है वह अपने परम हित के सम्पादक मित्र प्रभु को प्राप्त कर लिया करता है ॥११४॥

।। यम-मार्ग निरूपण ।।

कथितो भवता सम्यग्वर्णाश्रमविधिर्मुने ।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि यममार्गं सुदुर्गमम् ॥१
शृणु विप्र प्रवक्ष्यामि यममार्गं सुदुर्गमम् ।
सुखदं पुण्यशीलानां पापिनां भयदायकम् ॥२
षडशीतिसहस्राणि योजनानि मुनीश्वर ।
यममार्गस्य विस्तारं कथितं पूर्वसूरिभिः ॥३
ये नरा दानशीलास्तु ते यांति सुखिनो द्विज ।
धर्मशून्या नरा यांति दुःखेन भृशमर्दिताः ॥४
अतिभीता विवस्त्राश्च शुष्ककंठौष्ठतालुकाः ।
क्रन्दतो विस्वरं दीना पापिनो यांति तत्पथि ॥५
हन्यमाना यमभटैः प्रतोदाद्यैस्तथायुधैः ।
इतस्ततः प्रधावंतो यांति दुःखेन तत्पथि ॥६
क्वचित्पंकं क्वचिद्वह्निं क्वचित्संतप्तसैकतम् ।
क्वचिद्दैः शवरूपेण तीक्ष्णधारा शिला क्वचित् ॥७

देवर्षि श्री नारदजी ने कहा—हे मुनिवर ! आपने चारों वर्णों और चारों आश्रमों का वर्णन भली भाँति कर दिया है। अब मेरी अभिलाषा यमपुरी के दुर्गम मार्ग के विषय में श्रवण करने की है।१। श्री सनकाचार्य ने कहा—हे विप्र ! आपके कृपानुसार इस समय मैं परम दुर्गम यमराज के मार्ग का वर्णन करता हूँ। आप परम समाहित होकर उसे सुनिये। सनकजी ने कहा—यह यमराज का मार्ग पुण्यात्मा पुरुषों को तो सुखदायी हुआ करता है और जो पापी हुआ करते हैं उनको यही मार्ग महान् भीषण डरावना सदा करता है ॥२॥ हे मुनीश्वर ! पहिले होने वाले विद्वान् पुरुषों ने यमराज की पुरी के मार्ग का विस्तार छियासी हजार योजन का बतलाया है ॥३॥ हे

जो प्राणी दानशील होते हैं वे तो उसमें सुख के साथ पहुँच जाया करते हैं और जो धर्म से रहित हुआ करते हैं उन्हें उसमें जाने पर अत्यधिक पीड़ा होती है और वे बहुत ही दुःख के साथ वहाँ तक पहुँचा करते हैं ।।४।। वह मार्ग पापात्माओं के लिये तो अत्यन्त ही भयावना एवं कष्टप्रद हुआ करता है । पापी लोग बहुत ही उस मार्ग में भयभीत होते हुए–वस्त्र रहित–सूखे हुए कण्ठ और तालु से युक्त अत्यन्त दुःख दाढ़ों से चबाये हुए दुःख में बहुत ही चीखते–डकराते हुए जहाँ जाया करते हैं ।।५।। मार्ग में यमराज के दूत उन्हें कोड़ों से पीटते हुए ले जाया करते हैं ।।६।। उस समय में वे परम दुःखित होकर उस मार्ग में इधर–उधर को विदिशा करते हैं । उस यमपुरी के मार्ग में कहीं तो कीचड़ मिलता है–कहीं आग होती है–किसी स्थल पर तपता हुआ गर्म रेत होता है–कहीं पर दावानल का प्रकोप है तो कहीं पर नोकदार पाषाण खण्ड बिछे हुए दिखाई दिया करते हैं ।।७।।

क्वचित्कण्टकवृक्षाश्च दुःखारोहशिला नगाः ।
गाढान्धकाराश्च गुहा कण्टकावरण महत् ।।८
विप्राप्रारोहण चैव कन्दरस्य प्रवेशनम् ।
शर्कराश्च तथा लोष्टा सूचीतुल्याश्च कण्टका ।।९
शैवाल च क्वचिन्मार्गे क्वचित्कीचकपङ्क्तय ।
क्वचिद् व्याघ्राश्च गर्जंते वर्धंते च क्वचिज्ज्वरा ।।१०
एव बहुविधक्लेशा पापिनो यान्ति नारद ।
क्रोशतश्च रुदन्तश्च म्लायतश्चैव पापिन ।।११
पाशेन यन्त्रिता केचित्कृष्यमाणास्तथाङ्कुशै ।
शस्त्रास्त्रैस्ताड्यमानाश्च पृष्ठतो यान्ति पापिन ।।१२
नासाग्रपाशकृष्टाश्च केचिदन्त्रैश्च बन्धिता ।
वहतश्चायसा भार शिश्नाग्रेण प्रयान्ति वै ।।१३
अयोभारद्वय केचिन्नासाग्रेण तथापरे ।

वर्णाम्या च तथा वेचिद्वहतो याति पापिन ॥१४

उस माग म किसी जगह पर काँटेदार वृक्ष है—कही ऐसे पवत आते हैं जिन पर कठिनाई स चढा जाया करता है—कही पर अत्य त घोर अ धकार म युक्त खोहे और गुफाएँ आती हैं। कही पर काँटदार झाडे मिला करती हैं ॥८॥ उस माग म ही बडी २ यातनायें प्राप्त होती हैं—कही पर बहुत ऊँची किल की मीनारा स चढकर नीचे गिरा दिया करते हैं—किसी जगह गुफाओ म ढकल कर धक्के दे दिये जाया करते हैं। उम माग म केड्ढू ०ले और सुइ की नौंक वा न कोरे होत हैं जिनके कारण बडी वेग्ना चलने मे होती है ॥६॥ उस परम भीषण माग मे कही पर सिवार नालो को लधार पार करती है कही पर शेरो की दहाडे और कही पर ज्वर चढ आया करत हैं ॥ १० ॥ हे नारद ! इस तरह से वह माग अनेक प्रकार के क्लेशो स घिरा हुआ होता है। इस तरह के अत्यन्त विकट माग मे पापात्मा लोगो को नगे पैरो से चलना पडता है। उम समय म वे बहुत ही दु खित होकर चीखते पुकारते रोत और मूछित एव मुमूर्षु हुए विवश होकर चला करते हैं ॥११॥ वहाँ पर कुछ को बडा र सी स बाध कर खीचा करते हैं। कुछ पापियो के पीठ पर बसते हुए अस्त्र शस्त्रो के प्रहार किए जात हैं ॥१२॥ कुछ का नकेल डाल कर खीचा जाता है। कुछ की आत्र बाध दी जाया करती हैं और कुछ पापियो क उपस्थ के अग्र भाग मे लोहे का बोझा बाध कर उन्हे भगाया जाता है ॥१३॥ वहा उस माग म कुछ पापियो क छिदे हुए नथुना और क ना मे भारी लाहा बाध कर भगाया जाता है जिनके खीचन म उ हे बडी भारी पीडा होती है ॥ १४ ॥

वचिच्च स्खलिता यान्ति ताडयमानास्तथापरे।
अत्यर्थोच्चवसिता न्तिलचिदाच्छ नलोचना ॥१५

छायाजलविहीने तु पथि यान्त्यनिदु र्जिताः ।
शोचन्त स्वानि कर्माणि ज्ञानाज्ञानकृतानि च ॥१६
ये तु नारद धर्मिष्ठा दानशीला सुबुद्धय ।
अतीव सुखसम्पन्नास्ते यान्ति धर्ममन्दिरम् ॥१७
अन्नदास्तु मुनिश्रेष्ठ भुञ्जन्त स्वादु यान्ति वै ।
नीरदा यान्ति सुखिन पिबन्त क्षीरमुत्तमम् ॥१८
तक्रदा दधिदाश्चैव तत्तद्भाग लभन्त वै ।
घृतदा मधुदाश्चैव क्षीरदाश्च द्विजोत्तम ॥१९
सुधापान प्रकुर्वंतो यान्ति वै धर्ममन्दिरम् ।
शाकद पायस भुञ्जन्दीपदो ज्वलयन्दिश ॥२०
वस्त्रदो मुनिशार्दूल याति दिव्याम्बरावृत ।
तथा शय्याप्रदो याति स्तूयमानोऽमरं पथि ॥२१

उन पापियो म कुछ तो लडखडाते हुए चलते हैं कुछ गिरते हुए चला करते हैं। कुछ को वहा पर हानिनी आजाती है तथा कुछ की आँखो पर पट्टी बाँध कर भगाया जाता है ॥१५॥ इस तरह से उस यमपुरी के महान् भीषण मार्ग म अनेक प्रकार की यातनाओ को सहते हुए पापात्मा छाया और अन्न स रहित उजाड म अपने किए हुए ज्ञान या अज्ञान स पापो पर पछताते हुए घिसटते हुए चला करते हैं ॥१६॥ हे नारद ! जो प्राणी दानो के दाता सद्बुद्धि वाले और धर्मात्मा होते हैं वे वहा पर बडे आराम स धमराज को पुरी म पहुँचा करते हैं ।१७। हे मुनिवर ! जिन्होने अन्न का दान लोक मे किया है वे स्वादिष्ट पदार्थो को खाते-पीते वहाँ जाया करते हैं जिन्होने जल का दान किया है वे दूध पीते हुए पहुँचा करते हैं ॥१८॥ हे द्विज श्रेष्ठ ! मट्ठा दध दही घृत मधु का दान करने वाले इन्ही पदार्थो का उपभोग करते हैं और उन्हे कुछ भी पीडा नही हुआ करती है ॥१९॥ ऐसे पुण्यात्मा लोग अमृत पान करते हुए धर्म राज के भवन म उपस्थित

यावन्नायाति मरण यावन्नायाति वै जरा ॥१०५
यावन्नेन्द्रियवैक्ल्य तावदेवार्चयेद्धरिम् ।
धीमान्न कुर्याद्विश्वास शरीरेऽस्मिन्विनश्वरे ॥१०६
नित्य सन्निहितो मृत्यु सपदत्यतचचला ।
आसन्नमरणो देहस्तस्माद्दर्पं विमुञ्चत ॥१०७
सयोगा विप्रयोगान्ता सर्वं च क्षणभगुरम् ।
एतज्ज्ञात्वा महाभाग पूजयस्व जनार्दनम् ॥१०८

कारण यही है कि इस मानव जीवन का समय बहुत ही थोडा है और यमराज की नगरी के वृक्ष समीप मे ही दिखाई दे रहे हैं। जिस समय तक मौत नही आरही है और सब कार्यों के करने मे अशक्ति उत्पन्न करने वाला बुढापा आकर नही घेरता है, जब तक शरीर की इन्द्रियो म शिथिलता नही आती है उस समय तक ही श्री हरि का पूजनार्चन कर लेना चाहिये। जो मतिमान निपुण पुरुष हैं उनको इस नाशवान् शरीर का तनिक भी विश्वास नही होता है क्योकि मानवो की मृत्यु सदा निकट ही मे रहा करती है। इस जीवन मे जो भी सुख सम्पत्तिया है वे सब विद्युत के सदृश चचल है और अत्यन्त अस्थिरता वाली होती हैं। यह शरीर मृत्यु के निकटवर्ती ही रहा करता है। अतएव इसका और इसके समीप म रहने वाले पदार्थों का घमण्ड त्याग ही देना चाहिए ॥१०५-१०७॥ यह सार्वदिक सत्य सिद्धान्त है कि जिस वस्तु से सयोग हुआ है उससे वियोग अवश्य होगा अतएव इस जगत् मे प्राप्त होने वाले सभी पदार्थ विनाशशील और क्षणभगुर होते हैं—यही भली भाँति समझ कर हे महाभाग नारद। भगवान के चरणो मे रति करनी चाहिए ॥१०८॥

आशया व्यथते चव मोक्षस्त्वत्यन्तदुर्लभ ।
भक्त्या यजति यो विष्णु महापातकवानपि ॥१०९
सोऽपि याति पर स्थान यत्र गत्वा न शोचति ।

सर्वतीर्थानि यज्ञाश्च सांगा वेदाश्च सत्तम ॥११०
नारायणार्चनस्यते कला नार्हंति षोडशीम् ।
किं वै वेदैमखै शास्त्र किंवा तीर्थनिषेवणे ॥१११
विष्णुभक्तिविहीनाना किं तपोभिर्व्रतैरपि ॥११२
यजति ये विष्णुमनतमूर्ति निरीक्ष्य चावारगत वरेण्यम् ।
वेदातवेद्य भवरोगवैद्य ते यांति मर्त्या पदमच्युतस्य ॥११३
अनादिमात्मानमनतशक्तिमाधारभूत जगत सुरेड्यम् ।
ज्योति स्वरूप परमच्युताख्य स्मृत्वा समभ्येति नर सखायम्। १४

यह आशा ही एक ऐसी है जिससे मनुष्य पीड़ायें प्राप्त किया करता है और मोक्ष की प्राप्ति अत्य त कठिन होती है। कोई महान् पापी होकर भी भक्ति के साथ भजन किया करता है वह भी ऐसा उत्तम पद प्राप्त कर लिया करता है जहाँ पहुँचने पर कोई शोक नहीं होता है। हे नारद ! य समस्त तीर्थों का सेवन और समस्त साङ्गवेद भी भगवान की पूजा की सोलहवी कला के बराबर भी नही हैं। जो भगवान का अर्चन नही किया करते है उनको वेद शास्त्र और तीर्थाटन एव दनोपवास आदि क्या कर सकते हैं ॥१०६—११२॥ जो प्राणी वेदा तशास्त्र के द्वारा जानने के यो य इस सासारिक व्याधि की चिकित्सा करने वाले अन त मूर्ति एव व्यापक वरण करने के योग्य भगवान की मूर्ति रूप मे दर्शन प्राप्त किया करते हैं वे मनुष्य अच्युत भगवान् के वैकुण्ठ पद को प्राप्त किया करते हैं ॥११३॥ जो मानव आद्य तरहित आत्म स्वरूप अन त शक्ति से सुसम्प न जगत् के आधार व दनीय ज्योति स्वरूप परमात्मा का स्मरण करके उनको प्राप्त करता है वह अपने परम हित के सम्पादक मित्र प्रभु को प्राप्त कर लिया करता है ॥११४॥

~ -o- ~

।। यम-मार्ग निरूपण ।।

कथितो भवता सम्यग्वर्णाश्रमविधिर्मुने ।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि यममार्गं सुदुर्गमम् ॥१
शृणु विप्र प्रवक्ष्यामि यममार्गं सुदुर्गमम् ।
सुखदं पुण्यशीलानां पापिनां भयदायकम् ॥२
षडशीतिसहस्राणि योजनानि मुनीश्वर ।
यममार्गस्य विस्तारं कथितं पूर्वसूरिभिः ॥३
ये नरा दानशीलास्तु ते यांति सुखिनो द्विज ।
धर्मशून्या नरा यांति दुःखेन भृशमर्दिताः ॥४
अतिभीता विवस्त्राश्च शुष्ककण्ठौष्ठतालुकाः ।
क्रन्दतो विस्वरं दीनाः पापिनो यांति तत्पथि ॥५
हन्यमाना यमभटैः प्रतोदाद्यैस्तथायुधैः ।
इतस्ततः प्रधावंतो यांति दुःखेन तत्पथि ॥६
क्वचित्पंकं क्वचिद्वह्निः क्वचित्संतप्तसैकतम् ।
क्वचिद् दावरूपेण तीक्ष्णधारा शिला क्वचित् ॥७

देवर्षि श्री नारदजी ने कहा—हे मुनिवर ! आपने चारों वर्णों और चारों आश्रमों का वर्णन भली भाँति कर दिया है। अब मेरी अभिलाषा यमपुरी के दुर्गम मार्ग के विषय में श्रवण करने की है।१। श्री सनकाचार्य ने कहा—हे विप्र ! आपके कथानुसार इस समय मैं परम दुर्गम यमराज के मार्ग का वर्णन करता हूँ। आप परम समाहित होकर उसे सुनिये। सनकजी ने कहा—यह यमराज का मार्ग पुण्यात्मा पुरुषों को तो सुखदायी हुआ करता है और जो पापी हुआ करते हैं उनको यही मार्ग महान् भीषण डरावना लगा करता है ॥२॥ हे मुनीश्वर ! पहिले होने वाले विद्वान् पुरुषों ने यमराज की पुरी के मार्ग का विस्तार तीन मात्र चोरासी कोस का बतलाया है ॥३॥ हे

जो प्राणी दानशील होते हैं वे तो उसमे सुख के साथ पहुँच जाया करते हैं और जो धर्म से रहित हुआ करते हैं उन्हे उसमे जाने पर अत्यधिक पीडा होती है और वे बहुत ही दुःख के साथ वहाँ तक पहुँचा करते हैं ॥४॥ यह मार्ग पापात्माओं के लिये तो अत्यन्त ही भयावना एवं कष्टप्रद हुआ करता है। पापी लोग बहुत ही उस मार्ग में भयभीत होते हुए—वस्त्र रहित—सूखे हुए कण्ठ और तालु से युक्त अत्यन्त दुःख हालों से घबड़ाये हुए दुःख मे बहुत ही चीखते—डकराते हुए वहाँ जाया करते हैं ॥५॥ मार्ग मे यमराज के दूत उन्हे कोड़ों से पीटते हुए ले जाया करते हैं ॥६॥ उस समय में वे परम दुःखित होकर उस मार्ग में इधर—उधर को विदिका करते हैं। उस यमपुरी के मार्ग मे कहीं तो कीचड मिलता है—कहीं आग होती है—किसी स्थल पर तपता हुआ गर्म रेत होता है—कहीं पर दावानल का प्रकोप है तो कहीं पर नोकदार पाषाण खण्ड बिछे हुए दिखाई दिया करते हैं ॥७॥

क्वचित्कण्टकवृक्षाश्च दुःखारोहशिला नगाः ।
गाढाधकाराश्च गुहा कटकावरण महत् ॥८
विप्राप्रारोहण चैव कन्दरस्य प्रवेशनम् ।
शर्कराश्च तथा लोष्टा सूचीतुल्याश्च कण्टका ॥९
शैवाल च क्वचिन्मार्गे क्वचित्कीचकपङ्कय ।
क्वचिद् व्याघ्राश्च गर्जंते वर्धते च क्वचिज्ज्वरा ॥१०
एव बहुविधक्लेशा पापिनो याति नारद ।
क्रोशतश्च रुदन्तश्च म्लायतश्चैव पापिन ॥११
पाशेन यन्त्रिता केचित्कृष्यमाणास्तथाङ्कुशै ।
शस्त्रास्त्रैस्ताड्यमानाश्च पृष्ठतो यान्ति पापिन ॥१२
नासाग्रपाशकृष्टाश्च केचिदन्त्रैश्च वन्धिता ।
वहतश्चायसा भार शिश्नाग्रेण प्रयान्ति वै ॥१३
अयोभारद्वय केचिन्नासाग्रेण तथापरे ।

कर्णाभ्या च तथा केचिद्वहृतो याति पापिन ॥१४

उस मार्ग मे किसी जगह पर काँटेदार वृक्ष हैं—कही ऐसे पर्वत आते हैं जिन पर कठिनाई से चढा जाया करता है—कही पर अत्यन्त घोर अन्धकार से युक्त खोहे और गुफाऐं आती हैं। कही पर काँटेदार बाडे मिला करती हैं ॥८॥ उस मार्ग म ही बडी २ यातनायें प्राप्त होती हैं—कही पर बहुत ऊँची किले की मीनारो से चढकर नीचे गिरा दिया करते हैं—किसी जगह गुफाओ मे ढकेल कर धक्के दे दिये जाया करते हैं। उस मार्ग मे मच्छड-ढेले और सुई की नौक वाले कीडें होते हैं जिनके कारण बडी वेदना चलने मे होती है ॥६॥ उस परम भीषण मार्ग म कही पर सियार, चीतो की लघार पडा करती है, कही पर शेरो की दहाडें और कही पर ज्वर चढ आया करते हैं ॥ १० ॥ हे नारद। इस तरह से वह मार्ग अनेक प्रकार के क्लेशो से घिरा हुआ होता है। इस तरह के अत्यन्त विकट मार्ग मे पापात्मा लोगो को नग्न पैरो से चलना पडता है। उस समय मे वे बहुत ही दु खित होकर चीखते-पुकारते, रोते और मूर्छित एव मुर्झाते हुए विवश होकर चला करते हैं ॥११॥ वहाँ पर कुछ ना बडा र सी से बाँध कर खीचा करते हैं। कुछ पापियो के पीठ पर चलते हुए अस्त्र-शस्त्रो के प्रहार किए जाते हैं ॥१२॥ कुछ को नकेल डाल कर खीचा जाता है। कुछ की आँखे बाँध दी जाया करती हैं और कुछ पापियो के उपस्थ के अग्र भाग मे लोहे का बोझा बाँध कर उन्हें भगाया जाता है ॥१३॥ वहाँ उस मार्ग मे कुछ पापियो के छिदे हुए नथुना और कानो मे भारी लोहा बाँध कर भगाया जाता है जिससे खीचने मे उन्हे बडी भारी पीडा होती है ॥ १४ ॥

केचिच्च स्कन्धिता यान्ति ताड्यमानास्तथापरे।
अत्युग्रोच्चूर्णिता कम्पितांश्चिराच्छिन्नलोचना ॥१५

छायाजलविहीने तु पथि यान्त्यतिदु खिता ।
शोचन्त स्वानि कर्माणि ज्ञानाज्ञानकृतानि च ॥१६
ये तु नारद धर्मिष्ठा दानशीला सुबुद्धय ।
अतीव सुखमपन्नास्ते याति धममन्दिरम् ॥१७
अन्नदास्तु मुनिश्रेष्ठ भुञ्जन्त स्वादु याति वै ।
नीरदा याति सुखिन पिवन्त क्षीरमुत्तमम् ॥१८
तक्रदा दधिदाश्चैव तत्तद्भोग लभ न्त वै ।
घृतदा मधुदाश्चैव क्षीरदाश्च द्विजोत्तम ॥१६
सुधापान प्रकुर्वतो याति वै धर्ममंदिरम् ।
शाकद पायस भुञ्जन्दीपदो ज्वलयन्दिश ॥२०
वस्त्रदो मुनिशादू ल याति दिव्याम्बरावृत ।
तथा शय्याप्रदो याति स्तूयमानोऽमरै पथि ॥२१

उन पापियो म कुछ तो लम्खडाते हुए चलत है कुछ पिटत हुए चला करते हैं। कुछ को वहाँ पर हानिनी आजाती है तथा कुछ की आँखो पर पट्टी बाँध कर भगाया जाता है ॥१५॥ इस तरह से उस यमपुरी के महान् भीषण माग म अनेक प्रकार की यातनाओ को सहते हुए पापात्मा छाया और जल स रहित उजाड म अपन किए हुए ज्ञान या अज्ञान से पापो पर पछताते हुए घिसटते हुए चला करत हैं ॥१६॥ हे नारद ! जो प्राणी दानो के दाता सद्बुद्धि वाले और धर्मा मा होत हैं वे वहाँ पर बडे आराम स यमराज की पुरी म पहुँचा करत हैं ।१७। हे मुनिवर ! जिन्होंने अन्न का दान माग मे किया है वे स्वादिष्ट पदार्थों को खान-पीते वहाँ जाया करत हैं जिहान जल का दान किया है व दूध प त हुए पहुँचा करत हैं ॥१८॥ हे द्विज श्र ष्ठ ! मट्ठा दध दही घृत मधु का दान करन वाल उन्ही पदार्थों का उपभोग करत हैं और उ ह कुछ भी पीडा नहीं हुआ करती है ॥१६॥ सब पुण्यात्मा माग अमृत पान करन हुए यम राज के भवन म उपस्थित

हुआ करते हैं। हे मुनिशार्दूल ! इस लोक में दिया हुआ दान उस मार्ग में आड़ा आया करता है। जो शाक का दाता है वह खीर खाता हुआ, दीपदाता दिशाओं को प्रकाशित हुआ, वस्त्रों का दान करने वाला दिव्य वस्त्र पहिन कर वहाँ उपस्थित हुआ करते हैं। जो शय्या का दान किया करते हैं उनकी देवगण मार्ग में प्रशंसा किया करते हैं और उसे सुनते हुए ही वे वहां पर प्राप्त किया करते हैं ॥ २०।२१॥

गोदानेन नरो याति सर्वसौख्यसमन्वित ।
भूमिदो गृहदश्चैव विमाने सर्वसंपदि ॥२२
अप्सरोगणसकीर्णे क्रीडन्याति कृपालयम् ।
हयदो यानदश्चापि गजदश्च द्विजोत्तम ।
धर्मालय विमानेन याति भोगान्वितेन वै ॥२३
अनडुद्दो मुनिश्रेष्ठ यानारूढ प्रयाति वै ।
फलद पुष्पदश्चापि याति सतोषसयुत ।
ताबूलदो नरो याति प्रहृष्टो धर्ममन्दिरम् ॥२४
मातापित्रोश्च शुश्रूषा कृतवान्यो नरोत्तम ।
स याति परितुष्टात्मा पूज्यमानो दिविस्थितैं ॥२५
शुश्रूषा कुरुते यस्तु यतीना व्रतचारिणाम् ।
द्विजप्रमब्राह्मणाना च स यात्यतिसुखान्वित ॥२६
सर्वभूतदयायुक्त पूज्यमानोऽमरैर्द्विज ।
सर्वभोगान्वितेनासौ विमानेन प्रयाति च ॥२७
विद्यादानरतो याति पूज्यमानाऽब्जभूमुभि ।
पुराणपाठको याति स्तूयमानो मुनीश्वर ॥२८

जो गायों का दान करने वाला है वह सभी तरह के सुखों का उपभोग करता हुआ वहाँ प्राप्त होता है। जिसने यहाँ पर भूमि तथा गृह का दान किया है वह तो सब सम्पत्तियों से परिपूर्ण अप्सराओं से

युक्त दिव्य विमान मे बैठकर आनन्द की क्रीडायें करता हुआ धर्मराज के मन्दिर म पहुँचा करता है । जिसन हाथी-घोडे और सवारियों का दान दिया है वह अनेक भोगो से पूर्ण विमान में बैठ कर धमराज की सभा मे उपस्थित हुआ करता है ॥२२।२३॥ हे मुनिवर ! बैल का दान दाता मनुष्य भी सवारी मे बैठ कर वहाँ जाता है । फल और पुष्पो का दान देने वाला परम सन्तोष के साथ वहा पहुँचता है और ताम्बूलदाता पुरुष प्रस नता के साथ वहाँ जाता है और धम-राज की सभा मे प्रवेश किया करता है ॥२४॥ जो श्रेष्ठ नर अपने माता पिता की सेवा किया करता है वह वहाँ पर परम सन्तुष्ट होकर पहुँचा करता है । ऐसे मानव का स्वग म निवास करन पर देवगण भी अत्यधिक सत्कार किया करते हैं ॥२५॥ जो यहाँ ब्रह्मचारी सन्यासी और परम श्रेष्ठ विप्रो की सेवा करता रहता है वह परम सुखो का उप योग करता हुआ वहाँ यम की सभा मे पहुँचा करता है ॥२६॥ जो द्विज समस्त प्राणियो पर दया भाव रखता है वह सब भोगो से परिपूर्ण विमान पर समारूढ होकर ओज से प्रशमित होता हुआ उस धर्मराज पुरी म पहुँचा करता है ॥२७॥ जो विद्या का दान करने वाला है वहा ब्रह्माजी से सत्कृत होता हुआ वहाँ पहुँचता है । जो पुराणो का प्रवचन करने वाला है वह मुनिगण से सत्कार पाता हुआ वहाँ पहुँचा करता है ॥२८॥

एव धर्मपरा यानि सुख धर्मस्य मन्दिरम् ।
यमश्चतुर्मुखा भूत्वा शखचक्रगदातिभृत् ॥२६
पुण्यकमरत सम्तवदोहाम्मित्रमिवाचेयि ।
भो भो बुद्धिमता श्रेष्ठा नरकक्लेशभीरव ॥३०
युष्माभि साधित पुण्यमत्रामुत्रसुखावहम् ।
मनुष्यजन्म य प्राप्य सुकृत न करोति च ॥३१
स एव पापिना श्रेष्ठ आत्मघात करोति च ।

अनित्य प्राप्य मानुष्य नित्य यस्तु न साधयेत् ॥३२
स याति नरक घोर कोऽन्यस्तस्मादचतन ।
शरीर यातनारूप मलाद्य परिदूषितम् ॥३३
तस्मिन्यो याति विश्वास त विद्यादात्मघातकम् ।
सर्वेषु प्राणिन श्रेष्ठास्तेषु वै बुद्धि जीविन ॥३४
बुद्धिमत्सु नरा श्रेष्ठा नरेषु ब्राह्मणास्तथा ।
ब्राह्मणेषु च विद्वासो विद्वत्सु कृतबुद्धय ॥३५

इस तरह स निर तर धम कर्मो म तत्पर रहने वाले सुख वे साथ विशेष स्वर्गीय सुखो का उपभोग करन के लिये ही वहाँ धमराज की सभा म उपस्थित हुआ करते हैं । उनके सामने धमराज भी स्वय शख चक्र आदि आयुधो को धारण कर चार मुखा से युक्त होकर पुण्यात्मा प्राणियो के सत्कार के लिए एक मित्र के समान ही प्रस्तुत हुआ करते हैं । अतएव हे बुद्धिमाना म श्रेष्ठ जनो ! हे नारकीय यातनाओ से भयभीत होने वाला ! ॥२६॥३०॥ आप भली भाति समझ लो कि आपके द्वारा किया हुआ पुण्य इस लोक म भी आपको सुख देने वाला होता है । जो मनुष्य इस परम दुलभ मनुष्य का शरीर प्राप्त करके भी पुण्य-दान नही किया करता है वह पापात्माओ म श्रेष्ठ अपना ही पात किया करता है । यह मानव द~ तो अनित्य ही है इसके द्वारा जो नित्य स्थिर यश का सम्पादन नही किया करता है वह महान् घोर नरको म पड़ा करता है । इसम अजिक मूढ़ कौन होगा जो इस शरीर पर विश्वास किया करता है । यह शरीर तो अनेक यातनाओं का स्वरूप है और मलादि से दूषित एव अस्थायी है । शरीर को तो धोखा देन वाला ही सम समझना चाहिए । समस्त भूता म प्राणी(चेतन) श्रेष्ठ होता है । उन प्राणियों म भी जो बुद्धिजीवी होते हैं व श्रेष्ठ होते हैं । बुद्धिमाना म मानव और मानवा म भी ब्राह्मण श्रेष्ठ होता है । विप्रो मे

भी जो विद्वान् होता है वह श्रेष्ठ समझा जाया करता। उन विद्वानों मे भी जो निश्चित मति वाला होता है वह श्रेष्ठ हुआ करता है। ॥३१—३५॥

कृतबुद्धिषु कर्तारि कर्तृषु ब्रह्मवादिन ।
ब्रह्मवादिष्वपि तथा श्रेष्ठो निर्मम उच्यते ॥३६
एतेभ्योऽपि परो ज्ञेयो नित्य ध्यानपरायण ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कर्त्तव्यो धर्मसग्रह ॥३७
सर्वत्र पूज्यते जन्तुर्धर्मवान्नात्र सशय ।
गच्छ स्वपुण्यैर्मत्स्थान सर्वभोगसमन्वितम् ॥३८
अस्ति चेद् दुष्कृत किचित्पश्चादत्रैव भोक्ष्यसे ।
एव यमस्तमभ्यर्च्य प्रापयित्वा सद्गतिम् ॥३९
आहूय पापिनश्चैव कालदडेन तर्जयेत् ।
प्रलयाम्बुदनिर्घोषो ह्य जनाद्रिसमप्रभ ॥४०
विद्युत्प्रभायुधैर्भीमो द्वात्रिंशद्भुजसयुत ।
योजनत्रयविस्तारो रक्ताक्षो दीर्घनासिक ॥४१
दष्ट्राकरालवदनो वापीतुल्योग्रलोचन ।
मृत्युज्वरादिभिर्युक्तश्चित्रगुप्तोऽपि भीषण ॥४२

सुनिश्चित मतिमानो म भी कर्मो का करने वाला श्रेष्ठ है और उनमे भी जो ब्रह्मवादी होता है वह श्रेष्ठ हुआ करता है। ब्रह्मवादियो मे भी ममता का त्याग करने वाला श्रेष्ठ होता है। जो तत्पर रहा करता है उनको इन सबसे श्रेष्ठ समझना चाहिये। अत सबका निचोड यही है कि सभी भाँति से प्रयत्न करके धर्म का नित्य ही सग्रह करना परमावश्यक है। यही किया हुआ धर्म परलोक मे काम आता है ॥३६।३७॥ जो पुरुष धार्मिक होता है उसका सभी जगह पर सत्कार हुआ करता है, इसमे कुछ भी सशय नही है। इसीलिये धर्म-राज कहा करते हैं—हे मनुष्यो ! आप लोग अपने किये हुये पुण्यो से

ही मेरे समस्त भोगो से भरे-पूरे स्थान में आइए ।।३८।। यदि कुछ थोड़ा बहुत पाप भी होगा तो उसको भी यहाँ पर ही भोग लेना। इसी तरह से उन पुण्य कर्म करने वाले मानवों का यमराज सत्कार पूर्वक सद्गति दिया करते हैं ।।३९।। जो घोर पापात्मा होते हैं उनको वे ही बुरी तरह से धमकाया करते हैं उस वक्त उनका स्वर भी प्रलय काल के मेघ के समान हुआ करता है जो बहुत ही गड़गड़ाहट से कर्ण कठोर होता है। यमराज के शरीर का वर्ण सुरमे के समान एक दम काला एवं भयावह हुआ करता है ।। ४० ।। यमराज की बत्तीस भुजाओं में बिजली के समान कड़क रखने वाले आयुध होते हैं। उनके शरीर की विशालता बारह कोस लम्बाई-चौड़ाई रखने वाली हुआ करती है। उनकी आँखें लाल और नासिका लम्बी होती है ।।४१।। उनकी दाढ़े ऐसी भयानक होती हैं जिनसे उनका मुख अत्यन्त विकराल दिखाई दिया करता है। इनके नेत्र बावड़ी के समान गहरे होते हैं। यमराज के प्रधान मन्त्री चित्रगुप्त भी बहुत भयङ्कर वेश में उपस्थित रहा करते हैं। उनके आस-पास में मृत्यु ज्वर उनको घेरे रहा करते हैं।।४२।।

सर्वे दूताश्च गर्जन्ति यमतुल्यविभीषणा ।
ततो ब्रवीति तान्सर्वान्कम्पमानांश्च पापिन ।।४३
शोचन्त स्वानि कर्माणि चित्रगुप्तो यमाज्ञया ।
भो भो पापा दुराचारा अहंकारप्रदूषिता ।।४४
किमर्थमर्जितं पापं युष्माभिरविवेकिभि ।
कामक्रोध दिदृष्टेन संगर्वेण तु चेतसा ।।४५
यद्यत्पापतरं तत्तत्किमर्थं चरित जना ।
कृतवन्त पुण्यं यूयं पापा ह्यत्यनर्हपिता ।।४६
तथैव यातना भोज्या किं वृथा ह्यतिदुःखिता ।
भृत्यमित्रकलत्रार्थं दुष्कृत चरितं यथा ।।४७

तथा कर्मवशात्प्राप्ता यूयमत्रातिदु खिता ।
युष्माभि पापिता ये तु पुत्राद्या अन्यतो गता ॥४८

वहाँ पर यमराज के समान ही उनके दूत भी बहुत डरावने स्वरूप से दहाड़े लगाते हुये घूमते रहा करते हैं। उस समय में अपने कुत्सित कर्मों के कारण काँपते हुये पापियों से कहा करते हैं। वे दूत अपने किये हुये पापों से पश्चाताप करते हुये पापियों से यमराज और चित्रगुप्त की आज्ञा से कहते हैं—अरे! अहङ्कार से दूषित हुये भारी पापियो! तुम सब अविवेकियों ने किस लिये पापों का सञ्चय किया था? क्या अपनों पापों के कुफलों को भोगने का कुछ भी ज्ञान नहीं था? आप लोगों का चित्त तो सदा काम क्रोध और मद में ही भरा रहा करता था ॥४२—४५॥ अरे! महामूढ़ो! ऐसे बड़े २ पापों को तुमने क्यों किया था? तुमने बहुत ही हर्ष से भर कर ये पाप किये थे ॥४६॥ जैसे पाप कर्म तुमने किये हैं उन्हीं के अनुसार अब नरकों में जाकर तीव्र यातनाओं को भोगो। तुम्हारे ही किये हुये पापों का यह बुरा परिणाम है। अब व्यर्थ ही में दुःखित क्यों होते हो। तुमको ज्ञात होना चाहिये कि किये हुये कर्मों का फल तो अवश्य ही भोगना पड़ता है। तुमने जो भी अपने सेवकों और स्त्रियों के लिये पाप कर्म किये थे उनको भोगो ॥४७॥ अपने कर्मों के वशीभूत होकर ही तुमको यहाँ आना पड़ा है और यहाँ पर उनका भोग तुमको भोगना ही पड़ेगा ॥४८॥

युष्माकमेव तत्पाप प्राप्त किं दुःखकारणम् ।
यथा कृतानि पापानि युष्माभि सुबहूनि वै ॥४९
तथा प्राप्तानि दुःखानि किमर्थमिह दुःखिता ।
विचारयध्व यूय तु युष्माभिश्चरित पुरा ॥५०
यम करिष्यते दण्डमिति किं न विचारितम् ।
दरिद्रेऽपि च मूर्खे च पडिते वा श्रियान्विते ॥५१

कादिशोके च वीरे च समवर्ती यम स्मृत ।
चित्रगुप्तेरित वाक्य श्रुत्वा ते पापिनस्तदा ॥५२
शोचत स्वानि कर्माणि तूष्णी तिष्ठन्ति भीपिता. ।
यमाज्ञाकारिण. क्रूराश्चण्डा दूता भयानका ॥५३
चडालाद्या प्रसह्य तान्नरकेषु क्षिपन्ति च ।
स्वदुष्कर्मफल ते तु भुक्त्वाते पापशेषत. ॥५४
महीतल च सप्राप्य भवन्ति स्थावरादय. ।
भगवन्सशयो जातो मच्चेतसि दयानिधे ॥५५
त्व समर्थोऽसि तच्छेत्तु यतो नो ह्यग्रजो भवान् ।
धर्माश्च विविधा. प्रोक्ता पापान्यपि बहूनि च ॥५६

तुमने जिन अपने पुत्रादि के पोषण के लिए सब कुछ किया था वे सब दूसरे मार्ग से चले गये हैं। अब पापो का कुफल तुमको ही भोगना पड रहा है यहाँ पर तो धर्म ही सहायक होता है अन्य कोई भी नही। इसमे तुमको दु ख मानने की क्या बात है। जो भी तुमने बुरे कर्मों को किया है उनका वैसा ही दु ख इस समय मे मिल रहा है। अब उन्हे भोगते हुए तुम क्यो दु खित होकर रो रहे हो? तुमको ही स्वय विचार करना चाहिए कि जब तुमने ये सब दुष्कर्म किये थे उस समय मे तुम्हारे मन मे यह विचार नही आया था कि इनका दण्ड हमको यमराज के यहाँ अवश्य ही भोगना होगा। अरे! यह तो ऐसा स्थान है जहा पर चाहे धनी हो या दरिद्र हो, भले ही कोई पण्डित हो या महा मूर्ख हो, कोई चाहे वीर हो या भीरु हो यहा पर सभी समान समझे जाया करते हैं और सबके साथ एक-सा बर्ताव होता है। कुछ भी यहा पर पक्षपात नही किया जाता है। उस समय मे चित्रगुप्त के द्वारा कहे हुए वचनो को सब पापियो ने सुना था ॥४६--५२॥ वे समस्त पापी लोग अपने किये हुए दुष्कर्मों पर पश्चाताप करते हुये भयभीत होकर चुप होजाते हैं उसी समय मे यमराज की आज्ञा

से उन अत्यन्त भयानक अधिक क्रूर यमदूत उन पापियो को बल पूर्वक पकड कर नरको मे डाल दिया करते हैं। वहा पर वे अपने किये हुए दुष्कर्मो के फलो को भोग कर जब थोड़ा-सा पाप शेष रह जाया करता है तो पुन भूमि पर आकर स्थावर आदि योनियो मे उत्पन्न हुआ करते है। नारदजी ने कहा—हे दयानिधे! मुझे अब एक सन्देह होगया है ॥५३—५५॥ आप हम सबके बडे भाई हैं अतएव आप हमारे इस सन्देह को दूर कर सकते हैं। आपने हमारे सामने बहुत प्रकार के धर्मों का विवेचन पूर्वक उपदेश किया है और बहुत से पापो का भी वर्णन करके श्रवण कराया है। आप सब प्रकार से समर्थ एव योग्य है ॥५६॥

चिरभोज्य फल तेषामुक्त बहुविदा त्वया ।
दिनान्ते ब्रह्मण प्रोक्तो नाशो लोकत्रयस्य वै ॥५७
परार्द्ध द्वितयाते तु ब्रह्माण्डस्यापि सक्षय ।
ग्रामदानादिपुण्याना त्वयव विधिनन्दन ॥५८
कल्पकोपिसहस्रेषु महाभोग उदाहृत ।
सवपामेव लोकाना विनाश प्राकृते लये ॥५९
एक शिष्यत एवेति त्वया प्रोक्त जनार्दन ।
एप मे सशयो जातस्त भवाञ्छेत्तुमर्हति ॥६०
पुण्यपापोपभोगाना समाप्तिर्नास्य सप्लवे ।
साधु साधु महाप्राज्ञ गुह्याद् गुह्यतम त्विदम् ।
पृष्ट तत्तेऽभिधास्यामि शृणुष्व सुसमाहित ॥६१
नारायणोऽक्षरोऽनन्त पर ज्योति सनातन ॥६२
विशुद्धो निर्गुणो नित्यो मायामोहविवर्जित ।
निर्गुणोऽपि परानन्दो गुणवानिव भाति य ॥६३

आपका बहुत से विषयो मे महान् विस्तृत ज्ञान है। इसीलिए इन सबके चिरकाल म भोगे जाने वाले फल भी बतलाए हैं। आप

ब्रह्माजी के दिव्य दिवस के अन्त मे तीनो लोको का विनाश भी बतलाया करते हैं ॥५७॥ आपने ही पहिले बतलाया था कि दूसरे परार्ध के अन्त मे इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का भी क्षय हो जाया करता है। हे विधिनन्दन ! इसके अनन्तर आप यह भी कहते हैं कि ग्राम के दान आदि महान् पुण्य हैं। इसके पुण्यो का फल हजारो करोडो वर्षों मे भोगा जाया करता है। आपने यह भी कहा था कि प्राकृत लय के समय मे समस्त लोको का विनाश होजाया करता है ॥५८॥५९॥ उस समय मे केवल एक भगवान विष्णु ही बचे रहा करते हैं। यहाँ पर ही मुझे यह सन्देह उत्पन्न हो जाता है। उसको आप कृपा कर दूर करिए ॥६०॥ क्या महालय हो जाने पर पुण्य–पाप का योग भी सब विनष्ट हो जाया करता है ? या उन भोगो की समाप्ति उस समय मे भी नही हुआ करती है ? इस प्रकार से पूछे जाने पर श्री सनक देव जी ने उत्तर देते हुए कहा—साधु–साधु अर्थात् बहुत अच्छा प्रश्न पूछा है। हे महाभाग ! आपने तो यह बहुत ही गूढ बात पूछी है। मैं इसका उत्तर देता हूँ। आप सावधान होकर श्रवण कीजिएगा ॥६१॥ ज्योति स्वरूप-सनातन नारायण अक्षर और अनन्त हैं। भगवान् माया से निर्लिप्त है–निर्गुण है और माया के मोह से रहित है। गुण रहित होते हुए भी परमानन्द स्वरूप है और गुणो से युक्त दिखलाई देते है ॥६२॥६३॥

ब्रह्मविष्णुशिवाद्यैस्तु भेदवा नैव लक्ष्यते ।
गुणोपाधिकभेदेषु निष्वेतेषु सनातन ॥६४
सयोज्य मायामखिल जगत्कार्य करोति च ।
ब्रह्मरूपेण सृजति विष्णुरूपेण पाति च ॥६५
अन्ते च रुद्ररूपेण सर्वमत्तो न निश्चितम् ।
प्रलयाते समुत्थाय ब्रह्मरूपी जनार्दन ॥६६
चराचरात्मक विश्व यथापूर्वमकल्पयत् ।

स्थावराद्याश्च विप्रेन्द्र यत्र यत्र व्यवस्थिता ॥६७
ब्रह्मा तत्तज्जगत्सर्वं यथापूर्वं करोति वै ।
तस्मात्कृताना पापाना पुण्याना चैव सत्तम ॥६८
अवश्यमेवभोक्तव्य कर्मणाह्यक्षय फलम् ।
नाभुक्त क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि ॥६९
अवश्यमेव भोक्तव्य कृत कर्म शुभाशुभम् ।
यो देव सर्वलोकानामन्तरात्मा जगन्मय ।
सर्वकर्मफल भुक्तं परिपूर्ण सनातन ॥७०
योऽसौ विश्वभरो देवो गुणभेदव्यवस्थित ।
सृजत्यवति चात्त्येतत्सर्वं सर्वभुगव्यय ॥७१

भगवान् ब्रह्मा–विष्णु और शिव इन तीन स्वरूपो मे स्थित होकर भेद युक्त से दिखलाई दिया करते है । वस्तुत वही पुण्य पुरुष गुणो के स्वरूप इन तीन मूर्तियो म माया के सयोग को रखकर इस जगत् का सब कार्य किया करते है । वही एक ब्रह्मा का स्वरूप धारण कर सृष्टि की रचना का काम किया करते है—विष्णु के स्वरूप से जगत् का पालन करते है ॥६४॥६५॥ वे ही अन्त म रुद्र रूप से सबको ग्रस कर सहार किया करते है । यह बिल्कुल सत्य एव सुदृढ बात है फिर यही ब्रह्मरूपी भगवान् जनार्दन प्रभु प्रलय के अवसान मे उठकर मनम पुन इस जगत् की रचना करने की इच्छा किया करते है ॥६६॥ और वही भगवान् पुन स्थावर और जङ्गम के स्वरूप मे स्थित सम्पूर्ण जगत् की पूर्ववत् रचना कर दिया करते हैं । हे विप्रवर ! ये समस्त स्थावर आदि पहिले जहाँ पर जिस स्वरूप मे स्थित थे उसी भाँति पुन स्थित हो जाया करते है ॥६७॥ ब्रह्माजी इस सम्पूर्ण जगत् का प्रथम कल्पो के समान ही रचना करके बना दिया करते हैं । इसलिए पापो और किए हुए पुण्यो का फल भाग अक्षय होने के कारण यथावत् अवश्य ही सबको भोगना पड़ता है ।

ब्रह्माजी के दिव्य दिवस के अन्त मे तीनो लोको का विनाश भी बतलाया करते हैं ॥५७॥ आपने ही पहिले बतलाया था कि दूसरे परार्ध के अन्त मे इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का भी क्षय हो जाया करता हैं। हे विधिनन्दन ! इसके अनन्तर आप यह भी कहते हैं कि ग्राम मे दान आदि महान् पुण्य हैं। इनके पुण्यो का फल हजारो करोड़ो वर्षो मे भोगा जाया करता है। आपने यह भी कहा था कि प्राकृत लय के समय मे समस्त लोको का विनाश होजाया करता है ॥५८।५९॥ उस समय मे केवल एक भगवान विष्णु ही बचे रहा करते हैं। यही पर ही मुझे यह सन्देह उत्पन्न हो जाता है। उसको आप कृपा कर दूर करिए ॥६०॥ क्या महालय हो जाने पर पुण्य-पाप का योग भी सब विनष्ट हो जाया करता है ? या उस भोगा की समाप्ति उस समय मे भी नही हुआ करती है ? इस प्रकार से पूछे जाने पर श्री सनक देव जी ने उत्तर देते हुए कहा—साधु-साधु अर्थात् बहुत अच्छा प्रश्न पूछा है। हे महाभाग ! आपने तो यह बहुत ही गूढ़ बात पूछी है। मैं इसका उत्तर देता हूँ। आप सावधान होकर श्रवण कीजिएगा ॥६१॥ ज्योति स्वरूप-सनातन नारायण अक्षर और अनन्त हैं। भगवान् माया से निर्लिप्त है-निर्गुण है और माया के मोह से रहित है। गुण रहित होते हुए भी परमानन्द स्वरूप है और गुणो से युक्त दिखलाई देते है ॥६२॥६३॥

ब्रह्मविष्णुशिवाद्यैस्तु भेदवा नैव लक्ष्यते ।
गुणोपाधिकभेदेषु त्रिष्वेतेषु सनातन ॥६४
सयोज्य मायामखिल जगत्कार्यं करोति च ।
ब्रह्मरूपेण सृजति विष्णुरूपेण पाति च ॥६५
अन्ते च रुद्ररूपेण भक्षयत्तो स निश्चितम् ।
प्रलयाते समुत्थाय ब्रह्मरूपी जनार्दन. ॥६६
पराचरात्मक विश्व यथापूर्वमकल्पयन् ।

स्थावराद्याश्च विप्रेन्द्र यत्र यत्र व्यवस्थिता. ॥६७
ब्रह्मा तत्तज्जगत्सर्वं यथापूर्वं करोति वै ।
तस्मात्कृताना पापाना पुण्याना चैव सत्तम ॥६८
अवश्यमेवभोक्तव्य कर्मणा ह्यक्षय फलम् ।
नाभुक्त क्षीयते कर्म कल्पकोटिशतैरपि ॥६९
अवश्यमेव भोक्तव्य कृत कर्म शुभाशुभम् ।
यो देव सर्वलोकानामन्तरात्मा जगन्मय ।
सर्वकर्मफल भुक्ते परिपूर्ण सनातन ॥७०
योऽसौ विश्वम्भरो देवो गुणभेदव्यवस्थित ।
सृजत्यवति चात्येतत्सर्वं सर्वभुगव्यय ॥७१

भगवान् ब्रह्मा–विष्णु और शिव इन तीन स्वरूपों में स्थित होकर भेद युक्त से दिखलाई दिया करते हैं । वस्तुत वही पुण्य पुरुष गुणों के स्वरूप इन तीन मूर्तियों में माया के मयाग को रखकर इस जगत् का सब कार्य किया करते हैं । वही एक ब्रह्मा का स्वरूप धारण कर सृष्टि की रचना का काम किया करते है –विष्णु के स्वरूप मे जगत् का पालन करते है ॥६४॥६५॥ वे ही अन्त म रुद्र रूप से सबको ग्रस कर सहार किया करते हैं । यह बिल्कुल सत्य एव सुदृढ बात है फिर वही ब्रह्मरूपी भगवान् जनार्दन प्रभु प्रलय के अवसान मे उठकर मनम पुन इस जगत् की रचना करने की इच्छा किया करते हैं ॥६६॥ और वही भगवान् पुन स्थावर और जङ्गम के स्वरूप मे स्थित सम्पूर्ण जगत् की पूर्ववत् रचना कर दिया करते हैं । हे विप्रवर ! वे समस्त स्थावर आदि पहिले जहाँ पर जिस स्वरूप म स्थित थे उसी भाँति पुन स्थित हो जाया करते हैं ॥६७॥ ब्रह्माजी इस सम्पूर्ण जगत् को प्रथम कल्पों के समान ही रचना करके बना दिया करते हैं । इसलिए पापों और किए हुए पुण्यों का फल भोग अक्षय होने के कारण यथावत् अवश्य ही सबको भोगना पड़ता है ।

कर्मों का नाश भोगने ही से होता है चाहे कितने ही करोड़ कल्प क्यों न हो जावें ।।६८।६९।। यह अटल सिद्धान्त है कि किये हुए कर्म शुभ हो अथवा अशुभ हो कर्मों का फल सबको अवश्य भोगना होता है। जगन्मय अन्तरात्मा भगवान् नारायण देव हैं वे परिपूर्ण सनातन देव ही सब कर्मों का फल भोगा करते हैं क्योंकि वे ही सबमें विराजमान रहते हैं ।।७०।। जो इस सम्पूर्ण विश्व के भरण करने वाले देव हैं और गुणों के भेद से इस जगत् में स्थित होकर इस सृष्टि का पालन और संहार किया करते हैं वे अविनाशी ईश्वर ही सर्वभुक् हैं। इसका तात्पर्य यही होता है कि वे ही प्रथम सबमें व्याप्त होकर भोग रहे थे और आगे होने वाले कल्पों में भी वे पुनः सबमें व्याप्त होकर स्थूल दृष्टि से अलग २ कर्मों का फल भोगा करते हैं या यों समझिए कि समस्त प्राणियों को उनके नियन्त्रण में रहने के कारण कर्मों का फल अवश्य ही भोगना पड़ता है। प्रलय के समय में पुनः सृष्टि की रचना होने के समय में समस्त प्राणियों का कर्म बीज नष्ट नहीं होता अपितु प्रसुप्त और अव्यक्त रूप में रहा करता है। जब पुनः सृष्टि का समारम्भ होता है उस समय में वह फिर उद्भूत एवं जाग्रत होजाया करता है। कर्मों का फल कभी भी विनष्ट नहीं होता है ।।७१



।। हरि की आराधना ।।

एवं कर्मपाशनियन्त्रितजनाः स्वर्गादिपुण्यस्थानेषु पुण्यभोगमनुभूय यातनासु चातीव दुःखतरं पापफलमनुभूय प्रक्षीणकर्मविशेषेणामुं लोकमागत्य सर्वभयानिहनलेषु मृत्युबाधासंयुतेषु स्थावरादिषु जायन्ते। वृक्षगुल्मलतावल्लीगिरयश्च तृणानि च। स्थावरा इति विख्याता महामोहसमावृता ।।१।। स्थावरत्वे पृथिव्यामुप्तबीजानि जलसेकानुपदं सुसंस्कारसामग्रीवशादन्तरुष्मप्रपाचितान्युच्छूनत्व-

मापद्य ततो मूलभाव तन्मूलादङ्कुरोत्पत्तिस्तस्मादपि पर्णकाण्डना-
लादिक काण्डेषु च प्रसवमापद्यते तेषु च पुष्पसंभव ॥२॥ तानि
पुष्पाणि कानिचिदफलानि कानिचित्फलहेतुभूतानि तेषु पुष्पेषु वृद्ध
भावेषु सत्सु तत्पुष्पमूलतस्तुषोत्पत्तिर्जायते तेषु तुषमात्रेणा
प्राणिना संस्कारसामग्रीवशाद्धिमरश्मिकिरणामन्ततया तदोषधि
रसस्तुषान्त प्रविश्य क्षीरभाव समेत्य स्वकाले तण्डुलाकारतामुप
गम्य प्राणिना भोगसंस्कारवशात्संवत्सर फलिन स्यु ॥३

श्री सनकाचार्य ने कहा—इस भाँति कर्मों का बन्धन बड़ा ही अद्भुत है। इनके पाश में बद्ध प्राणी स्वर्गादि परम पुण्यमय नाकों में अपने किये हुए फलों का भोग करके अथवा नरकों में पापों का फल परम दारुण और दुःखपूर्ण भोग करके कर्मों के क्षय हो जाने पर कर्म शेष के लेप होने से इस लोक में जन्म ग्रहण करके समस्त भयों से विह्वल मृत्यु की बाधा से युक्त स्थावर आदि अनेक योनियों में जन्म लिया करते हैं। वृक्ष—गुल्म—लता—वल्ली—पर्वत—घास आदि सब स्थावर कहे जाते हैं। इन जन्म प्राणियों में अत्यधिक मोह एवं अज्ञान होते हैं ॥ १ ॥ स्थावर स्वरूप में जब पृथ्वी में बीजों का वपन होता है तो जल का सिञ्चन प्राप्त करके तराई आदि होने पर खाद की गर्मी पाकर ये परिपक्व होते हैं और मूल भाव की दशा में होकर उस मूल से ही अङ्कुर की उत्पत्ति हुआ करती है। फिर उसमें पत्र—टहनी—तना—नाली और पुष्पों की उत्पत्ति हुआ करती है ॥ २ ॥ उन पुष्पों में कुछ तो फलहीन हुआ करते हैं और फलों के कारण होते हैं। पुष्पों की वृद्धि होने पर पुष्पों की जड़ से तुष (भूसी) उत्पन्न हुआ करता है। उस तुष में उसका भक्षण करने वाले प्राणियों के संस्कार की सामग्री से चन्द्र किरणों के पड़ने पर उन ओषधियों का रस उस तुष के अन्दर प्रवेश करके क्षीर के भाव को प्राप्त कर लेता है। समय होने पर वही भाग गहराई के होने से चावल जैसे फल का स्वरूप प्राप्त कर लिया करते हैं और खान में आजाया करते हैं ॥३॥

स्थावरत्वेऽपि बहुकालं वानरादिभिर्भुज्यमाना हि छेदनवाग्नि-
दहनशीतातपादिदुःखमनुभूय म्रियते । ततश्च क्रिमयो भूत्वा सदा
दुःखबहुला क्षणार्द्धं जीवन्त क्षणार्द्धं म्रियमाणा बलवत्प्राणि-
पीडाया निवारयितुमक्षमा शीतवातादिक्लेशभूयिष्ठा नित्य क्षुधा-
क्षुधिता मलमूत्रादिषु सञ्चरन्तो दुःखमनुभवन्ति ॥ [illegible] ॥ तत एव
पशुयोनिमागस्य बलवद्बाधोद्वेजिता वृथद्वेगभूयिष्ठा क्षुत्क्षाता नित्य
वनचारिणो मातृष्वपि विषयातुरा वातादिक्लेशबहुला कस्मिंश्चि-
ज्जन्मनि मांसास्थ्याद्यदना कस्मिंश्चिज्जन्मनि मांसागेष्याद्यदना
कस्मिंश्चिज्जन्मनि कन्दमूलफलाशना दुर्बलप्राणिपीडानिरता
दुःखमनुभवन्ति ॥५॥ अण्डजत्वेऽपि वाताशनामात्रा मेध्याद्यशनाश्च
परपीडापरायणा नित्य दुःखबहुला ग्राम्यपशुयोनिमागता अपि
स्वजातिवियोगभारोद्वहनपाशादिबधनताडनहलादिधारणादिसर्व-
दुःखान्यनुभवन्ति ॥६॥ एवं बहुयोनिषु सम्प्राता क्रमेण मानुष
जन्म प्राप्नुवन्ति केचिच्च पुण्यविशेषाद्युत्क्रमेणापि मनुष्यजन्माऽनु-
वते ॥७॥

इस स्थावरता की दशा में भी कितनी ही बार वानर आदि के
द्वारा भक्षण किये जाने पर और छेदन आदि हो जाने पर खाक के रूप
में हो जाना और शीतोष्णादि के दुःख का अनुभव प्राप्त कर मर भी
जाया करते हैं। और पुनः कीटादि बनकर सर्वदा दुःखों का अधिका-
धिक अनुभव किया करते हैं। वे आधे क्षण ही में जीवित रहकर मर
भी जाया करते हैं। ये बलवान प्राणियों के द्वारा प्रदत्त दुःख को दूर
नहीं कर सकते हैं। इनको शीत—वायु आदि का बहुत क्लेश सहना
पड़ा करता है। सदा भूख से बिलबिलाते हुए भय मूत्रादि में पड़े हुए
दुःख का अनुभव करते रहा करते हैं ॥४॥ फिर वे पशु योनि में आ-
कर भी अपने से अधिक बलवान् प्राणियों की बाधाओं से कंपित हुए
रहा करते हैं और भूख से तड़पड़ाते रहा करते हैं और सदा वनादि

हुए रहते हैं। इनमें न तो कुछ ज्ञान ही होता है और न शक्ति ही हुआ करती है। ये सदा वन में टकराते हैं और जड़ता वश अपनी माता से भी भोग करने के लिये आतुर हो जाया करते हैं। वायु—शीत आदि के भी असह्य दुःखों को भोगते रहा करते हैं। किसी जन्म में तो इनका भोज्य घास होता है और किसी में मांसादि अपवित्र वस्तुओं को खाया करते हैं। किसी योनि में कन्द—मूलादि का भक्षण किया करते हैं। ये भी अपने से कमजोर जीवों को पीड़ा दिया करते हैं और स्वयं बहुत कुछ दुःख का अनुभव किया करते हैं॥ ५॥ कभी ये प्राणी अण्डज योनियों में उत्पन्न होकर जीवन बिताया करते हैं। इनमें भी मांस आदि का अपवित्र भोजन कर दूसरों को पीड़ा देते हुए स्वयं भी नित्य अनेक दुःख भोगा करते हैं। ग्राम्य पशुओं की योनि में कभी उत्पन्न होते हैं और इनमें भी अपनी जाति से वियोग—भारवहन करना—रज्जु बन्धन—कशाताडन आदि अनेक कष्टों को भोगते हुए परम दुःखित होने का अनुभव किया करते हैं। इस तरह से अनेक कष्टों को भोगते हुए परम दुःखित अनेक योनियों में भ्रमण करते हुए अन्त में इन प्राणियों को इस संसार में यह मनुष्य योनि प्राप्त हुआ करती है। इसमें कुछ ही लोग अपने पुण्य विशेषता होने के कारण उत्क्रमण करके ही इस परम दुर्लभ एवं सर्वोत्तम मानव जन्म को सफल बनाया करते हैं और इसका असली ध्येय जो मुक्ति है उसे प्राप्त कर लिया करते हैं॥६।७॥

मनुष्यजन्मनापि च चर्मकारचण्डालव्याधनापितरजकभकार-लोहकारस्वर्णकारतन्तुवाय सौचिकजटिलसिद्धधावकलेखकभृतक-शासन हरि नीचे भृत्य दरिद्रहीनागामिकागत्पादिदु खबहुल-ज्वर-तापशीतश्लेष्मगुल्मपादाक्षिशिरो गर्भपार्श्ववेदनादिदु खमनुभवति ॥ ८॥ मनुष्य वेऽपियदा स्त्रीपुरुषयोर्व्यायस्तत्मयरता यदा जरायु प्रविशति तदैव कर्मवशाज्जतु शुक्रेण सह जरायु प्रविश्य शुक्रशोणितान्तर्ले प्रवर्तति ॥९॥ तद्वीर्य जीवप्रवेशात्पञ्चाहात्कलल

भवति अर्द्धमासे पललभावमुपेत्य मासे प्रादेशमात्रत्वमापद्यते ॥१०॥ तत प्रभृति वायुवशाच्चैतन्याभावेऽपि मातुरुदरे दु सहता पक्लेशतयैकत्र स्थातुमशक्यत्वाद् भ्रमति ॥११॥

इस मनुष्य शरीर को भी प्राप्त कर कुछ लोग अपने पुरातन कुत्सित कर्मों के फलस्वरूप चमार, चाण्डाल, नाई, धोबी, बहेलिया, कुम्हार, जुलाहा, लुहार, सुनार, दर्जी, मुर्दाविरा, जोगी, हरकारा, मुहरिर, चाकर, चपरासी नीच भृत्य, दरिद्र, हीनाङ्ग, अधिकाङ्ग आदि अनेक प्रकार के दुखमय जीवन मे दुखो का भोग किया करते हैं और मानव जीवन पाने का कोई भी सुख नहीं होता है। इस जीवन मे भी कर्मवश, ज्वर—ताप—शीत—कफ—शूल—नेत्र रोग पद व्याधि—शिरो वेदना आदि की अनेक पीड़ाओ का अनुभव किया करते हैं और पूरा जीवन कष्टो का ही बीत जाता है ॥ ८ ॥ इस मनुष्य योनि मे जब जन्म धारण किया करता है उस समय मे पुरुष स्त्री के साथ सम्भोग किया करता है और जब पुरुष का वीर्य्य स्त्री की योनि में जाकर गर्भ मे प्रवेश किया करता है उसी समय मे अपने पूर्व सञ्चित कर्म्मो के अनुसार जन्तु उस वीर्य के साथ जरायु मे प्रविष्ट होकर रक्त और वीर्य के कलल मे रहा करता है ॥ ९ ॥ उस जीवात्मा के प्रवेश के समय मे पाँचवे दिन कलल का रूप धारण किया करता है। अर्थात् वीय और रक्त को ढकने वाली झिल्ली बन जाता है। पन्द्रहवें दिन में मास का एक पिण्ड जैसा इसका स्वरूप हो जाया करता है और एक मास में प्रादेश मात्र इसका परिमाण हो जाया करता है ॥ १० ॥ उस समय म भी चैतन्य का अभाव रहते हुए या वायु के वश माता के उदर में अगर्ह्य ताप के क्लेश से यह एक स्थान में टिकने में अशक्त हो जाया करता है और इधर-उधर घूमता रहा करता है ॥ ११ ॥

मासे द्वितीये पूर्णे पुरुषाकारमात्रतामुपगम्य मासत्रिनय पूर्ण कर-

चरणाद्यवयवभावमुपगम्य चतुर्षु मासेषु गतेषु सर्वावयवानां संधिभेदपरिज्ञानं पंचस्वतीतेषु नखानामभिव्यक्तता षट्स्वतीतेषु नखरोमाद्विपरिस्फुटतामुपगम्य नाभिसूत्रेण पुष्यमाणममेध्यमूत्रसिक्ताग जरायुणा वधितरक्तास्थिकृमिवसामज्जास्नायुकेशादिदूषिते कुत्सिते शरीरे निवासिन स्वयमप्येव परिदूषितदेह मातुश्च कट्वम्ललवणात्युष्णभुक्तदह्यमानमात्मान दृष्ट्वा दहो पूर्वजन्मस्मरणानुभावात्पूर्वानुभूतनरकदुःखानि च स्मृत्वातदुःखेन च परिदह्यमानो मातुर्देहातिमूत्रादिदश्लेषेण दह्यमान एव मनसि प्रलपति ॥१२॥ अहोऽत्यन्तपापोऽहं पूर्वजन्मनि भृत्यापत्यमित्रयोविद्गृहक्षेत्रधनधान्यादिष्वत्यन्त–रागेण यत्नापोषणार्थं परधनक्षेत्र दिक पश्यतो हरणाद्युपायैरपहृत्य कामाधतया परस्त्रीहरणादिकमनुभूय महापापान्याचरत्तं पापैरहमेव एवविधनरकानभूनुय पुन स्थावरादिषु महादुःखमनुभूय सप्रति जरायुणा परिवेष्टितो तदुःखेन वहिस्तापेन च दह्यामि ॥ १३ ॥ मया पोषिता दाराश्च स्वकर्मवशादन्यतो गता ॥१४॥

जब दूसरा मास आरम्भ होता है और वह पूरा हो जाया करता है इसका आकार एक पुरुष का सा हुआ करता है और तीसरे मास के पूर्ण होने पर उसके कर–चरण आदि अवयव उत्पन्न हो जाया करते हैं। चार मास पूर्ण होने पर समस्त अङ्गों को सन्धियो का ज्ञान इसको होने लगता है। पाँचवें मास पूर्ण होने पर नखादि मालुम होने लगते हैं। छैं मास समाप्त होने पर नखो की सन्धियो की प्रकटता हो जाती है। सातवें मास में रोम उत्पन्न हो जाते हैं और आठवें मास में इसमें गति पायी जाया करती है। नाभि से जुड़े हुए नाल से यह पोषण प्राप्त किया करता है। उस गर्भावस्था में इस पर विष्ठा–मूत्र का छिड़काव होता रहता है। यह जरायु में बद्ध रहता है उस समय में यह प्राणी रक्त–अस्थि–कीड़े–चर्बी–मज्जा नसें और केशादि

से दूषित एवं कुत्सित शरीर में अपने आपको रहता हुआ देखा करता है। अपनी माता के द्वारा खाये हुए कटु–अम्ल और नमकीन आदि बहुत गर्म भोजन से झुलसता रहा करता है उस समय में गर्भ की बुरी दशा में पड़े हुए परम दुःखित होकर उसको अपने पूर्व जन्मों का स्मरण हो आता है और प्रथम भुक्त नारकीय पीड़ाओं का भी यह स्मरण करके मन ही मन आन्तरिक पीड़ा में बहुत ही सन्तप्त हुआ करता है। माता के शरीर के मूत्र की स्यन्दना से जलता हुआ यह जीवात्मा उस समय विलाप किया करता है ॥ १२ ॥ यह कहता है—अरे ! मैं बहुत ही अधिक पापात्मा हूँ। मैंने अपने पूर्व जन्मों में बड़ा भारी अन्याय किया है। भृत्य, सन्तान, स्त्री, घर, खेत, धन आदि में मेरा बहुत ही अधिक राग बढ़ा हुआ था। अपनी स्त्री आदि के पोषण के लिये मैं सदा पराये धन धान्यादि का अपहरण किया करता था और कामान्ध होकर पराई स्त्री का अपहरण कर महान् पाप कर्म किया करता था। उन्हीं पापों का यह परिणाम है कि मैं इस समय में अकेला ही ऐसे घोर नरकों को भोगता हुआ बारम्बार स्थावर एवं कीट—पशु आदि की योनियों में महान घोर दुःखों का भोग करता हुआ इस समय में इस झिल्ली में बद्ध होकर बाहरी ताप और अन्तर्दुःख से झुलस रहा हूँ। ॥१३॥ जिस स्त्री पर मैं इतना मोहित था और उसके पालन में बड़े-बड़े अनर्थ भी किया करता था वह भी अपने कर्म वश कहीं चली गयी है ॥१४॥

अहो दुःख हि देहिनाम् ॥१५॥ देहस्तु पापात्सजातस्मात्पापं न कारयेत्। भृत्यमित्रकलत्रार्थमन्यद्द्रव्यं हृतं मया ॥१६॥ तेन पापेन दह्यामि जरायुपरिवेष्टितः। दृष्ट्वान्यस्य श्रियं पूर्वं मतप्तोऽहमसूयया ॥१७॥ गर्भाग्निनानुदह्ये यमिदानीमपि पापकृत्। कायेन मनसा वाचा परपीडामकारिषम्। तेन पापेन दह्यामि त्वहमेकोऽतिदुःखित ॥१८॥ एवं बहुविधं गर्भस्था जतुर्विलयं स्वयमेववा

॥१६॥ आत्मानमाश्वास्य उत्पतौ रन्तेतर सत्सगेन विष्णोश्चरित-श्रवणेन व विशुद्धमना भूत्वा सत्कर्माणि निर्वर्त्य अखिलजगदन्तरात्मन सत्यज्ञानानन्दमयस्य शक्तिप्रभावामुष्ठितविश्वपवर्गस्य लक्ष्मीपतेर्नारायणस्व सकलसुरासुरयक्षगन्धर्वराक्षसपन्नगमुनिकिन्नरसमूहार्चितचरणकमलयुग भक्तितः समभ्यर्च्य दु सह ससारच्छेदस्य कारणभूत वेदरहस्योपनिषद्भि परिस्फुट सकललोकपरायण हृदि निधाय दु खतरमिम ससारागारमतिक्रमयिष्यामीति मनसि भावयति ॥२०॥

हाय ! हाय ! इन देहधारियो को कितना महान् दु ख होता है । यह देह पाप कर्म से ही समुत्पन्न हुआ है । अतएव इससे पाप कर्म नही करने चाहिए। मैने अपने कुटुम्ब, सेवक, मित्र और स्त्री के लिए दूसरो के धनो को अपहरण करके महान् पाप कर्म किया था ॥१५॥१६। उसी घोर पाप के कारण से मैं इस समय मे जरायु से लिपटा हुआ इस समय मे जल भुन रहा हूँ । मुझे पहिले दूसरो की सम्पत्ति को देख कर बडी कुढन हुआ करती थी ॥१७॥ ओहो ! इस प्रकार के पाप कर्मो को करने वाला मैं अब इस गर्भ की अग्नि मे भुना जा रहा हूँ ॥१८॥ माता के गर्भ मे रहने वाला यह जीवात्मा बहुत से अपने कर्मों का स्मरण करके बिलपता रहा करता है । कुछ समय मे अपने आप ही समाश्वासित करके कहा करता है । अब मैं जन्म लेकर सदा सत्पुरुषो का सङ्ग किया करूँगा । भगवान् के परम पावन चरित्र का श्रवण करूँगा । ऐसे उत्तम आचरण से मेरा मन पवित्र एव विशुद्ध हो जायगा फिर मैं स्मरण करके इस समस्त विश्व की अन्तरात्मा—सत्य ज्ञान और आनन्दस्वरूप, शक्तिप्रभाव से लोका को वश मे रखने वाले, सब सुरासुर, यक्ष, राक्षस गन्धर्व, पन्नग और मुनिजन तथा किन्नरो के द्वारा वन्द्यमान वाले भगवान् लक्ष्मी के स्वामी का भक्ति भाव के साथ अर्चन, स्मरण किया करूँगा । इस ससार का उच्छेद

करने के कारणस्वरूप वेदों के रहस्य उपनिषदों द्वारा समझ में आने वाले सब लोकों के परायण भगवान् को अपने हृदय में विराजमान करके इस महान् दुःखात्मक संसार के कारागार से मैं मुक्त होकर उत्तम आनन्दमय पद को प्राप्त कर सूँगा। ऐसे बहुत से विचार उसके मन में उस गर्भावस्था में आया करते हैं ॥१८—२०॥

यतस्तन्मातुः प्रसूतिसमये सति गर्भस्थो देही नारदमुने वायुना परिपीडितो मातुश्चापि दुःखं कुर्वन्कर्मपाशेन बलाद्योनिमार्गान्निष्क्रामन्सर्वयातनाभोगमेककालभवमनुभवति ॥२१॥ तेनातिवेगेन योनियन्त्रपीडितो गर्भान्निष्क्रान्तो निःसंज्ञतां याति ॥२२॥ तं तु बाह्यवायुः समुज्जीवयति । बाह्यवायुस्पर्शसमनंतरमेव नष्टस्मृतिपूर्वानुभूताखिलं दुःखानि वर्त्तमानान्यपि ज्ञानाभावविनाशात्यन्तदुःखमनुभवति ॥ २३ ॥ एवं बालत्वमापन्नो जंतुस्तत्रापि स्वमलमूत्रलिप्तदेहः आध्यात्मिकादिपीडाव्यनानोऽपि वक्तुमशक्तः क्षुत्पिपासाद्दितो रुदने सति स्तनादिकं देयमिति मन्वाना प्रयतन्ते ॥२४॥ एवमनेकं देहभोगमन्याधीनतयानुभूयमानो दंशादिष्वपि निवारयितुमशक्तः ॥२५॥

हे नारद ! इसी समय में माता के प्रसव का काल उपस्थित हो जाता है। वह गर्भ में स्थित प्राणी गर्भ की प्रसव वायु से उत्पीड़ित होता हुआ अपनी जननी को भी बड़ी भारी वेदना देता हुआ कर्म पाश के बन्धन से बरबस योनि के मार्ग से निकलने में सभी यातनाओं की बड़ी भारी पीड़ा को भोग कर बाहर आता है। जन्म काल की यातनायें भी बहुत ही कष्टदायक होती हैं जैसे किसी को खींच कर भारी दबाव से बढ़ाया जाता है वैसे ही इस प्राणी का अंग २ खिच्ची से पीड़ा का घोर अनुभव उस समय में किया करता है ॥२१॥ उस महान घोर कष्ट में यानि के अन्त में होकर बाहिर आता हुआ यह प्राणी ऐसा संज्ञा शून्य हो जाया करता है ॥२२॥ जब बाहिर की वायु का स्पर्श होता है तो कुछ चेतना होती है और संसार की

बाहिरी वायु का स्पर्श होते ही उसकी सब स्मृतियाँ विलीन हो जाया करती हैं। उसके गर्भ में जो अनुभव थे वे सभी नष्ट हो जाया करते हैं। वर्तमान दुःखों का भी ज्ञान उस समय में नहीं रहता है अतः वह बहुत दुःखित होता रहता है ॥२३॥ उस बाल्यावस्था में भी वह ज्ञान और दक्षता के अभाव के कारण मलमूत्र में सना हुआ पड़ा रहा करता है और अत्यधिक कष्टों से पीड़ित रह कर भी कुछ कह या कर नहीं पाता है। जब वह रोता है तो लोग उसको क्षुधित होकर रोता है यही समझा करते हैं और स्तन पान कराने की चेष्टा किया करते हैं ॥२४॥ इस तरह से देह के बहुत से भोगों को भोग कर दूसरों के अधीन होकर रहने से दाँतों में दशन का भी स्वयं निवारण नहीं कर पाता है ॥२५॥

बाल्यभावमासाद्य मातापित्रोरुपाध्यायस्य ताडनं सदा पर्यटनशीलत्वं पांसुभस्मपङ्कादिषु क्रीडनं सदा कलहनिरतत्वमशुचित्वं बहुव्यापाराभासकार्यनियतत्वं तदनन्तरं आध्यात्मिकं दुःखमेवंविधमनुभवति ॥२६॥ ततस्तु तरुणभावेन धनार्जनमर्जितस्य रक्षणं तस्य नाशव्ययादिषु चात्यन्तदुःखिता मायया मोहिता: कामक्रोधादिदुष्टमनसः सदासूयापरायणा: परद्रव्यपरस्त्रीहरणोपायपरायणा: पुत्रमित्रकलत्रादिभरणोपायचिन्तापरायणा वृथाहङ्कारदूषिता: पुत्रादिषु व्याध्यादिपीडितेषु सत्सु सर्वकार्याणि परित्यज्य रोगादिभिः पीडितानां समीपे स्वयमाध्यात्मिकदुःखेन परिप्लुतायतमानशरीरेण चिन्तामनुभवति ॥२७॥ दूरेऽप्यस्ति च वर्षं निश्चिन्ता- निरिचारितम् । समुद्धस्य कुटुम्बस्य मम भर्ता वर्तनम् ॥२८

वह सब कुछ भूल कर पुनः उसी सांसारिक जाल में फँसता चला जाया करता है। उस बाल दशा में माता-पिता और अध्यापकों के द्वारा दण्डित भी किया जाता है। वह मिट्टी में लिपटा हुआ चेतना-शून्य सा रहा करता है क्योंकि न तो उस समय में कुछ ज्ञान ही

होता है और न उसमें शक्ति ही होती है। वह बचपन में मैला-कुचैला और सदा अपवित्र रहा करता है। समस्त बचपन इसी तरह उसका व्यतीत होजाया करता है। उस समय में अनेक नई २ संसार की गतिविधियाँ उसके सामने आती रहा करती हैं और पूर्णतया पराधीन होकर आध्यात्मिकता रहित रहकर कष्ट भोगा करता है ॥२६॥ इसके पश्चात् जब वह युवा होजाता है तो माया का मोह चारों ओर से उसे घेर लेता है और वास्तविक आत्मोन्नति के कार्य का उस समय भी उसे ध्यान ही नहीं रहा करता है। यह संसार ही परम प्रिय लगा करता है। धन को कमाई ही सर्वोपरि कर्त्तव्य लगता है। धन की रक्षा और नाश होने पर खिन्नता का अनुभव किया करता है। तरुणता में काम, क्रोध और अहङ्कार उसके मन को दूषित कर दिया करते हैं। पराये धन स्त्री और सुख सम्पदा से ईर्ष्या होती है। रात दिन अपने कुटुम्ब के भरण पोषण में ही डूबा रहा करता है। पुत्रादि की व्याधि से चिन्ता मग्न होता है तो कभी व्यापार की हानि से खिन्न हुआ करता है। धन के अभाव के कारण बड़ी भारी चिन्ता से उद्विग्न होकर कुटुम्ब के निर्वाह की चिन्ता से व्यथित रहा करता है ॥२७।२८॥

मम मूलधन नास्ति वृष्टिश्चापि न वर्षति। अश्व पलायित पुत्र गाव कि नागता मम ॥२६॥ बालापत्या च मे भार्या व्याधितोऽहं च निर्धन। अविचारान्नृपिर्नष्टा पुत्रा नित्य रुदति च ॥३०॥ भग्न छिन्न तु मे सद्म बाधवा अपि दूरगा न रम्यते वर्त्तन च राजशत्रादिदु सहा ॥३१॥ रिपवा मा प्रधावन्ते कथ जेष्याम्यह रिपून्। व्यवसायासमर्थोऽह प्राप्ता प्राघूणका अमी ॥३२॥ एवमत्यन्तचिन्तातुर स्वदु खानि निवारयितुमसमर्थोऽविधिर्विधि भाग्यहीन मा किमर्थं विदधे इति दवमाक्षिपति ॥३३॥ तथा वृद्धत्वमापन्नो

हीयमानसारो जरापलितादिव्याप्तदेहो व्याधिबाध्यत्वादिकमापन्न। प्रकम्पमानावयवश्वासकासादिपीडितो लोलाविलोचन श्लेष्मव्याप्तकण्ठ पुत्रदारादिभिर्भर्त्स्यमान कदा मरणमुपयामीति चिन्ताकुलो मयि मृते सति मदर्जित गृहक्षेत्रादिक वस्तु पुत्रादय कथ रक्षन्ति कस्य वा भविष्यति ॥३४॥ मद्धा परैरपहृत पुत्रादीना कथ वर्तन भविष्यतीति ममतादुःखपरिप्लुतो गाढ नि श्वस्य स्वनवयसा कृतानि कर्माणि पुन पुन स्मरन् क्षणे विस्मरति च सततस्त्वास स्मरण ॥३५

उस समय मे अनेक विचार उसके हृदय म उठा करते हैं। वह सोचा करता है मेरे पास धन नही है वर्षा नही हुई है खेती मे भी कुछ नही होगा मेरे अश्वादि पशु भी नही आये हैं। मेरे बच्चे छोटे २ हैं मैं निर्धन हो गया और रोग ग्रस्त भी रहता हूँ-मेरे बच्चो का निर्वाह कैसे होगा? मेरा घर भी जीर्ण दशा मे है-मेरे बन्धुओ ने भी मुझ त्याग दिया है-शत्रु मुझ सताना चाहते हैं मैं सभी साधनो से हीन और दीन हो गया हूँ-मैं कोई व्यापार भी नही कर सकता हूँ-मेरे घर पर लोग आते हैं उनके सत्कार करने की शक्ति नही है-।२६॥३०॥ ॥३१॥३२॥ ऐसी बहुत-सी चिन्ताओ म डूबकर अपने दु खो को हटाने मे असमर्थ होकर अपने भाग्य को कोसा करता है और कहा करता है कि हे विधाता! तुझे धिक्कार है कि मुझ जैसा भाग्यहीन तूने इस ससार म क्यो उत्पन्न किया है। धीरे २ बुढापा आ जाता है तो सभी तरह धर्महीन होजाया करता है। शरीर म झुरिया बालो म सफेदी इन्द्रियो की शिथिलता होजाया करती है। अनेक व्याधियाँ उग्र दुर्बलता म इस प्राणी को घेर लिया करती है। इसके सभी अङ्ग शिथिल है—खाँसी श्वास आदि व्याधियाँ कष्ट दिया करती है। आँखो से दिखाई नही देता है—बधिरता भी घेर लेती है। उस दशा म उसके पुत्र-कलत्रादि भी धमका दिया करते हैं उस समय म भी उस यही चिन्ता होती है—मैं

कब मरूँगा और बाद मे ये पुत्रादि मेरे वैभव की कैसे रक्षा करेंगे कोई दूसरा तो आकर इसे इनसे नहीं छीन लेगा। यदि ऐसा हो गया तो फिर ये कैसे जीवित रहेंगे। ऐसे अपने जीवन मे अनुभव किये गये कर्मों का स्मरण कर दुःख और चिन्ता म डूबा रहता है और अपनी सद्गति का विचार भी उसके मन मे नहीं आता है। यदि कुछ आता भी है तो एक ही क्षण मे वह भूल जाता है। सासारिक माया के मोह मे ही अहर्निश मग्न रहते हुए उसका समस्त जीवन व्यतीत हो जाया करता है और मृत्यु का समय निकट आजाता है ॥३३—३५॥

व्याधिपीडितोऽन्तस्तापार्त क्षण शय्याया क्षण मचे च ततस्तत पर्यटन् क्षुत्तृट्परिपीडित किंचिन्मात्रमुदक देहीत्यतिकार्पण्येन याचमानस्तत्रापि ज्वराविष्टानामुदक न श्रेयस्करमितिद्वेष कुर्वन्मन्दचेतन्यो भवति ॥३६॥ ततश्च हस्तपादाकर्षणे न तु क्षमो रुदद्भिर्बन्धुजनैर्वेष्टितो वक्तुमक्षम स्वार्जितधनादिक कस्य भविष्यतीति चितापरो बाष्पाविललोचन कठे घुरघुरायमाणे सति शरीरान्निष्क्रान्तप्राणो यमदूतैर्भर्त्स्यमान पाशयन्त्रितो नरकादीन्पूर्ववदश्नुते ॥३७॥ आमलप्रक्षयाद्यद्वदग्नौ ध्मायन्ति धातव ।
तथैव जीविम सर्व आकर्मप्रक्षयाद् भृशम् ॥३८
तस्मात्ससारदावाग्नितापार्तो द्विजसत्तम ।
अभ्यसेत्परम ज्ञान ज्ञानान्मोक्षमवाप्नुयात् ॥३९
ज्ञानशून्या नरा ये तु पशव परिकीर्तिता ।
तस्मात्ससारमोक्षाय पर ज्ञान समभ्यसेत् ॥४०
मानुष्य चैव सप्राप्य सर्वकर्मप्रसाधकम् ।
हरि न सेवते यस्तु कोऽन्यस्तस्मादचेतन ॥४१
अहो चित्रमहो चित्रमहो चित्र मुनीश्वरा ।
आस्यिते रामदे विष्णो नरा याति हि यातनाम् ॥४२

उस शरीरान्त के निकट आने पर यह अनेक व्याधियों से पीड़ित होकर घबड़ाया करता है। शय्या में पड़ा हुआ करवटें बदलता रहता है। भूख प्यास से विकल होकर जल की याचना किया करता है। पुत्रादि के द्वारा यह कहने पर कि ज्वरावस्था में जल पीना ठीक नहीं है वह मनमें ही कुढ़कर चेतनाशून्य होजाया करता है।३६। धीरे २ इतनी अशक्ति हो जाती है कि फिर यह हाथ-पैर भी नहीं हिला डुला सकता है। । बान्धव लोग उसे घेर कर रोते हैं किन्तु इसका बोल बन्द हो जाया करता है। मनमें उस समय भी अपने सञ्चित वैभव की चिन्ता रहा करती है। इसको कौन भोगेगा, मैं तो दुनियाँ से जा रहा हूँ। इसकी आँखों में आँसू भर आते हैं, कण्ठ घुघुराने लगता है। प्राणों के निकलने के समय आजाने पर यम के दूत आकर पाश में बाँध लेते हैं और धमकाते हैं और डराते हैं और फिर पहिले की ही तरह नरकों की यातना भोगा करता है।३७। मल को दूर करने के लिये धातुओं को तपाने के ही समान जैसे शुद्ध एवं तपाया जाता है उसी भाँति कर्मों के क्षय होने तक ये प्राणी भी इस सांसारिक अग्नि में तपते रहा करते हैं।।३८।। अतएव हे द्विजवर। इस संसार की दावाग्नि की लपटों से बचकर प्राणी को ज्ञान का अभ्यास करना चाहिए क्योंकि बिना ज्ञान के मुक्ति किसी प्रकार भी सम्भव नहीं होती है।।३६।। जो मनुष्य ज्ञान से रहित होते हैं वे पशु के ही समान हुआ करते हैं। अतएव इस संसार से छुटकारा पाने के लिए ज्ञान का अभ्यास प्राणी को अवश्य ही करना चाहिए।।४०।। यह मानव का शरीर बहुत ही दुर्लभ है। जीवात्मा इसी को प्राप्त कर अपना कल्याण कर सकता है। जो समस्त कर्मों को सिद्ध करने वाले इस मनुष्य देह को धारण करके भी भगवान् की सेवा और स्मृति नहीं किया करता है और रात दिन संसार की माया के वश मोह में ही पड़ा रहता है उससे अधिक मूढ़ एवं अज्ञानी अन्य कौन होगा ?

हे मुनीश्वर वृन्द ! यह अत्यन्त ही आश्चर्य की बात है कि समस्त कामनाओं के पूर्ण करने वाले भगवान विष्णु के विद्यमान रहते हुए भी मनुष्य मूढ़तावश नरकों की घोर यातनायें सहन किया करते हैं ॥४२॥

नारायणे जगन्नाथे सर्वकामफलप्रदे ।
स्थितेऽपि ज्ञानरहिता पच्यन्ते नरकेष्वहो ॥४३
स्रवन्मूत्रपुरीषे तु शरीरेऽस्मिन्नशाश्वते ।
शाश्वत भावयत्यज्ञा महामोहसमावृता ॥४४
कुत्सित मांसरक्ताद्यैं देंह सप्राप्य यो नर ।
ससारच्छेदक विष्णु न भजेत्सोऽतिपातकी ॥४५
अहो कष्टमहो कष्टमहो कष्ट हि मूर्खता ।
हरिध्यानपरो विप्र चाण्डालोऽपि महासुखा ॥४६
स्वदेहान्निस्सृत दृष्ट्वा मलमूत्रादिकिल्विषम् ।
उद्वेग मानवा मूर्खा किं न याति हि पापत ॥४७
दुर्लभ मानुष जन्म प्रार्थ्यते त्रिदशैरपि ।
तल्लब्ध्वा परलोकार्थं यत्न कुर्याद्विचक्षण ॥४८
अध्यात्मज्ञानसपन्ना हरिपूजापरायणा ।
लभन्ते परम स्थान पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥४६
यतो जातमिद विश्व यतश्चैतन्यमश्नुते ।
यस्मिश्च विलय याति स ससारस्य मोचक ॥५०
निर्गुणोऽपि परोऽनन्तो गुणवानिव भाति य ।
त सम्भ्यर्च्य देवेश ससारात्परिमुच्यते ॥५१

समस्त काम्य कर्मों का फल प्रदान करने वाले इस जगत् के स्वामी, सर्वेश्वर भगवान् के रहने पर भी ज्ञान से शून्य होने के कारण सांसारिक विषयों में अपने मन को एकदम फँसा कर ऐसे मूढ़ हो जाया करते हैं कि नरकों में घोर कष्ट पाते रहते हैं यह बहुत

आश्चर्य की बात है ॥४३॥ यह मल-मूत्र से भरा हुआ मानव शरीर विनाशशील है। इसको अविनाशी समझ कर इसी के लिये जीवन में सब कुछ किया करते हैं॥४४॥जो ऐसे दुर्लभ मानव देह को धारण करके भी इस संसार का उच्छेद कर देने वाले भगवान् विष्णु का भजन स्मरण नहीं किया करता है वह महान् पातकी है ॥४५॥ श्री हरि के ध्यान में परायण रहने वाला चाडाल भी महान् सुख के भोगने का अधिकारी होजाया करता है। अत्यधिक आश्चर्य की तो यह बात है कि यह मूढ़ मूर्ख पापी मनुष्य अपने देह से मलमूत्रादि विविध को निकलता हुआ रातदिन देखकर भी उद्विग्न नहीं हुआ करता है और इसे अनित्य और विनाशशील नहीं समझा करता है ॥४६-४७॥ यह मानव देह अत्यन्त दुर्लभ है। देवगण भी इसके प्राप्त करने की उत्कट अभिलाषा रक्खा करते हैं क्योंकि यह ही देह कर्म करने का अधिकारी होता है शेष अन्य भोगों का भोग करने वाले होते हैं। ऐसे मानव देह को प्राप्त करके भी चतुर पुरुषों को परलोक यात्रा को सुखद बनाने का प्रयत्न करना ही चाहिये ॥४८॥ जो आत्मज्ञानी लोग सर्वदा भगवान् विष्णु के पूजन में संलग्न रहा करते हैं उनका पुनः संसार में लौटकर आना दुर्लभ है क्योंकि वे लोग परम पद की प्राप्ति कर लिया करते हैं ॥४६॥ जिन भगवान् से यह सम्पूर्ण विश्व प्रकट हुआ है। जिनमें यह चेतनता को प्राप्त किया करता है और जिनमें अन्त में लय हुआ करता है वे भगवान् ही इस संसार से छुटकारा दिलाने वाले हैं ॥५०॥ जो निर्गुण होते हुये भी अनन्त गुणगणों से समन्वित से भासित हुआ करते हैं उन्हीं ईश्वर भगवान् का अर्चन और स्मरण करने से इस संसार से मुक्ति प्राप्त हुआ करती है ॥५१॥

~~~
~~~

॥ अष्टांग-योग वर्णन ॥

भगवन्सर्वमाख्यातं यत्पृष्टं विदुषा त्वया ।
संसारपाशबद्धानां दुःखानि सुबहूनि च ॥१
अस्य संसारपाशस्य च्छेदकः कतमः स्मृतः ।
येनोपायेन मोक्षः स्यात्तन्मे ब्रूहि तपोधन ॥२
प्राणिभिः कर्मजालानि क्रियन्ते प्रत्यहं भृशम् ।
भुज्यन्ते च मुनिश्रेष्ठ तेषां नाशः कथं भवेत् ॥३
कर्मणा देहमाप्नोति देही कामेन बध्यते ।
कामाल्लोभाभिभूतः स्याल्लोभात्क्रोधपरायणः ॥४
क्रोधाच्च धर्मनाशः स्याद्धर्मनाशान्मतिभ्रमः ।
प्रनष्टबुद्धिर्मनुजः पुनः पापं करोति च ॥५
तस्माद्देहः पापमूलः पापकर्मरतस्तथा ।
यथा देहभ्रमं त्यक्त्वा मोक्षभाक्स्यात्तथा वद ॥६
साधु साधु महाप्राज्ञ मतिस्ते विमलोर्जिता ।
यस्मात्संसारदुःखानां मोक्षोपायमभीप्ससि ॥७

श्री नारदजी ने कहा—हे भगवन् ! आप तो महान् विद्वान् हैं अतएव मैंने आपसे जो कुछ भी पूछा है वह सभी पूर्ण भली भाँति आपने समझा कर कह दिया है। आपने इस संसार में फँसे रहने वालों के बहुत से दुःखों का भी वर्णन किया है ॥१॥ हे तपोधन ! अब आप कृपा कर मुझे यह बतलाइये कि इस संसार के परम घोर पाश को काटने वाला कौन है ? जिस उपाय और साधनों से मोक्ष की प्राप्ति होती है वही आप वर्णन करके मुझको समझाइये। हे मुनिश्रेष्ठ ! संसार में प्राणी प्रतिदिन कर्म किया करते हैं और उनके फलों को भी भोगा करते हैं। यह कर्मों के फल भोगने की परम्परा का विनाश कैसे हुआ करता है ॥२।३॥ कर्मवश ही प्राणी को शरीर की प्राप्ति

हुआ करती है। इस शरीर को प्राप्त कर फिर प्राणी काम से बद्ध होजाया करता है। काम होने से लोभ आकर दबा लिया करता है। लोभ से क्रोध की उत्पत्ति होती है और बुद्धिहीन मनुष्य पाप कर्मों में प्रवृत्त होजाया करता है ॥५॥ अतएव यह शरीर ही पाप का मूल कारण होता है और यही पापकर्मों में परायण रहा करता है। इसलिये जिस रीति से इस शरीर का भ्रम छूट जाय और मोक्ष की प्राप्ति होजावे, वही उपाय कृपाकर आप मुझे बतलाइये ॥६॥ श्री सनकजी ने कहा—हे महान् बुद्धिमान नारद ! बहुत अच्छा प्रश्न किया है। आप की बुद्धि बहुत ही निर्मल है जोकि मुझसे सांसारिक पीड़ा से छुड़ाने के विषय में आप उपाय पूछने की इच्छा रखते हैं ॥७॥

यस्याज्ञया जगत्सर्वं ब्रह्मा सृजति सुव्रत ।
हरिश्च पालयते रुद्रो नाशयं स हि मोक्षदः ॥८
अहमादिविशेषान्ता जाता यस्य प्रभावतः ।
तं विद्धान्मोक्षदं विष्णुं नारायणमनामयम् ॥९
यस्याभिन्नमिदं सर्वं यच्चेंगद्यच्च नेंगति ।
तमुग्रमजरं देवं ध्यात्वा दुःखात्प्रमुच्यते ॥१०
अविकारमजं शुद्धं स्वप्रकाशं निरंजनम् ।
ज्ञानरूपं सदानंदं प्राहुर्वै मोक्षसाधनम् ॥११
यस्यावतररूपाणि ब्रह्माद्या देवतागणाः ।
समर्चयंति तं विद्धाच्छाश्वतस्थानदं हरिम् ॥१२
जितप्राणा जिताहारा सदा ध्यानपरायणाः ।
हृदि पश्यन्ति यं सत्यं तं जानीहि सुखावहम् ॥१३
निर्गुणोऽपि गुणाधारो लोकानुग्रहरूपधृक् ।
आकाशमध्यगं पूर्णस्तं प्राहुर्मोक्षदं नृणाम् ॥१४

हे सुव्रत ! जिसके आदेश और निर्देश से ब्रह्मा इस सम्पूर्ण विश्व की रचना किया करते हैं, विष्णु पालन करते हैं और रुद्र

इसका आमूल चूल संहार किया करते हैं वही परात्पर परमेश्वर मोक्ष के दाता हैं ॥८॥ जिनके प्रभाव से अहङ्कार से विशेष तक की रचना हुई है उन्हीं अनामय भगवान् नारायण को मोक्ष के प्रदान करने वाला समझ लेना चाहिए ॥९॥ चेष्टा सम्पन्न और चेष्टाहीन अर्थात् स्थावर और जङ्गम समस्त जगत् जिस प्रभु से अभिन्न है उन अच्युत, अजर देवेश्वर का ध्यान करने से सांसारिक दुःख से छुटकारा होजाया करता है ॥१०॥ उन्हीं विकार रहित, स्वप्रकाश, निर्मल, निरञ्जन, ज्ञानस्वरूप, जन्म रहित, सदानन्दमय भगवान को ही एक मात्र मोक्ष का साधन माना जाता है ॥११॥ जिनके अवतारस्वरूपों का ब्रह्मादिक सभी देवता लोग पूजन किया करते हैं उन्हीं श्री हरि को शाश्वत पद प्रदान करने वाला समझना चाहिये ॥१२॥ अपनी प्राण वायु पर नियन्त्रण रखने वाले योगी, आहार पर काबू पाने वाले चान्द्रायणादि व्रतोपवासों के कर्त्ता सदा ध्यान में मग्न रहने वाले अर्थात् भगवान् के सगुण स्वरूप में मग्न रहने वाले अर्थात् भगवान् के सगुणस्वरूप के उपासक जिन सत्यस्वरूप नारायण का अपने हृदय में दर्शन किया करते हैं उन्हीं को सच्चे सुख का प्रदान करने वाला समझो ॥१३॥ जो गुणों से शून्य होने पर सांसारिक प्राणियों पर अनुकम्पा करने के ही लिये गुणों के आधार ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि के स्वरूपों को धारण किया करते हैं और जो भक्तों के हृदयाकाश के मध्य में विराजमान रहा करते हैं उन्हीं भगवान को मोक्ष का दाता कहा जाता है ॥१४॥

अध्यक्षः सर्वकार्याणां देहिनो हृदये स्थितः ।
अनुपमोऽखिलाधारस्तं देवं शरणं व्रजेत् ॥१५
सर्वं संगृह्य कल्पान्ते शेते यस्तु जले स्वयम् ।
तं प्राहुर्मोक्षदं विष्णुं मुनयस्तत्त्वदर्शिनः ॥१६
वेदार्थविद्भिः कर्मज्ञैरिज्यते विविधैर्मखैः ।
स एव कर्मफलदो मोक्षदाऽत्राप्यकर्मणाम् ॥१७

हृव्यकव्यादिदानेषु देवतापितृरूपधृक् ।
भु क्त य ईश्वराऽव्यक्तस्त प्राहुर्मोक्षद प्रभुम् ॥१८
ध्यात प्रणमितो वापि पूजितो वापि भक्तित
ददाति शाश्वत स्थान त दयालु समर्चयेत् । १६
आधार सर्वभूतानामेको य पुरुष पर ।
जरामरणनिर्मुक्तो मोक्षद सोऽव्ययो हरि ॥२०
सपूज्य यस्य पादाब्ज देहिनोऽपि मुनीश्वर ।
अमृतत्व भजत्याशु त विदु पुरुषोत्तमम् ॥२१

जो समस्त धर्मों के अधिपति हैं और जो योगियो के हृदय म पर रहा करते है जिनकी उपमा खोजने पर भी कही प्राप्त नही आ करती है जो सम्पूर्ण विश्व के आधार हैं उन्ही भगवान श्री ारायणदेव की शरणागति मे जाना चाहिये ॥१५॥ जो कल्पान्त म व चराचर जगत् को अपने उदर मे लीन करके स्वय शरीर सम्पर के पि की शय्या पर शयन किया करते हैं तत्वदर्शी मुनिपण्डित उन्ही गवान को मोक्षदाता कहा करते हैं ॥१६॥ वेदार्थो के ज्ञाता कर्मण्डी विद्वान अनेक तरह के यज्ञो के द्वारा जिनका पूजन किया करते हैं वे कर्मों के फलो के देने वाले भगवान् विष्णु देव ही निष्काम भाव न काम करने वाले भक्तो को मोक्ष का दान दिया करते हैं ॥१७॥ जो पितरो और देवो के हव्य-कव्य को पितर रूप और देवस्वरूप धारण कर हव्य कव्य का भाग लगाया करते [illegible] उन्ही अव्यक्तस्वरूप वाले प्रभु को मोक्ष का प्रदान करने वाला कहा करते हैं ॥ १८ ॥ जो दयालु भगवान विष्णु प्रणाम करने पर अविनाशी पद प्रदान करते हैं उन्ही कारुणिक प्रभु का पूजन करना चाहिए ॥ १६ ॥ जो समस्त भूतो के एकमात्र आधार हैं और चौबीस तत्वो से पर पुरुष है । जो जरामरण म रहित हैं ऐसे भगवान अच्युत ही मोक्ष जैसे परम पुरुषार्थ के दाता है ॥२०॥ हे मुनिवर ! देहधारी मनुष्य जिनके चरण

कमलो का यजन करके अति शीघ्र ही मोक्ष जैसे परम दुलभ अमृत का पान करा दिया करते हैं उन्ही भगवान पुरुषोत्तम को सवशक्तिमान् एव मोक्ष दाता समझना चाहिए। बिना उनकी कृपावलम्ब के मोक्ष कभी भी प्राप्त नही होता है ॥२१॥

आनन्दमजर ब्रह्म पर ज्याति सनातनम् ।
परात्परतर यच्च तद्विष्णो परम पदम् ॥२२
अद्वय निगुण नित्यमतीयमनोपमम् ।
परिपूर्ण ज्ञानमय विदुर्मोक्षप्रसाधकम् ॥२३
एवभूत पर वस्तु योगमार्गविधानत ।
य उपास्ते सदा योगी स याति परम पदम् ॥२४
सवसगपरित्यागी शमादिगुणसयुत ।
कामाद्यैर्वर्जितो योगी लभते परम पदम् ॥२५
कमणा केन योगस्य सिद्धिर्भवति योगिनाम् ।
तदुपाय यथातत्व ब्रूहि मे वदता वर ॥२६
ज्ञानलभ्य पर मोक्ष प्राहुस्तत्वार्थचितका ।
यज्ज्ञान भक्तिमूल च भक्ति कमवता तथा ॥२७
दानानि यज्ञा विविधास्तीर्थयात्रादय कृता ।
येन जन्मसहस्र पु तस्य भक्तिर्भवद्धरी ॥२८

जो जरा (वृद्धता) स रहित आनन्द स्वरूप सनातन परम ज्योति ब्रह्म है और जो परात्पर है वही विष्णु का परमानन्द परम लक्षण है ॥२२॥ व प्रभु अद्वितीय निगुण नित्य अनुपम और पूर्ण ज्ञानम है। एसे ही भगवान विष्णु को ज्ञानीजन मोक्ष का सफल साधन मानते हैं ॥२३॥ जो योगी जिस योगशास्त्र म कथित रीति से भगवान विष्णु की सदा उपासना किया करते हैं वे परम पद को अवश्य ही प्राप्त होजाया करते हैं ॥ २४ ॥ सभी प्रकार के सगो का त्याग करने वाला शम-दमादि गुणो स युक्त व कामादि के विकारो से रहित होता है

वही योगी उस परमपद को प्राप्त किया करता है ॥२५॥ इस प्रकार से कहने पर देवर्षि नारदजी ने कहा—हे वक्ताओ म परम श्रेष्ठ ! योगियो का योग किस प्रकार से सिद्ध हुआ करता है ? उसी योग का विस्तृत वर्णन आप कृपा करके मेरे समक्षमे कीजिये ॥२६॥ श्री सनकदेवजी ने उत्तर दिया-तत्वों के अर्थो का चिन्तन करने वाला पुरुष ज्ञान के द्वारा मोक्ष की प्राप्ति बताया करते हैं और वह ज्ञान भक्ति के द्वारा प्राप्त हुआ करता है तथा भगवद्भक्ति सदा सत्कर्मों के करने वाले को ही प्राप्त हुआ करती है ॥२७॥ जिसने सहस्रो जन्मो मे दान, यज्ञ और तीर्थ यात्रायें की हैं उसी को भगवान भक्ति का दान किया करते हैं ॥२८॥

अक्षय परमो धर्मो भक्तिलेशेन जायते ।
श्रद्धया परया चैव सर्व पाप प्रणश्यति ॥२९
सर्वपापेषु नष्टेषु बुद्धिर्भवति निर्मला ।
सैव बुद्धि समाख्याता ज्ञानशब्देन सूरिभि ॥३०
ज्ञान च मोक्षद प्राहुस्तज्ज्ञान योगिना भवेत् ।
योगस्तु द्विविध प्रोक्त कर्मज्ञानप्रभेदत ॥३१
क्रियायोग विना नृणा ज्ञानयोगो न सिध्यति ।
क्रियायोगरतस्तस्माच्छ्रद्धया हरिमर्चयेत् ॥३२
द्विजभूम्यग्निसूर्याम्बुधातुहृच्चित्रसज्ञिता ।
प्रतिमा केशवस्यैता पूज्य एतासु भक्तित ॥३३
कर्मणा मनसा वाचा परपीडापराड्मुख ।
तस्मात्सर्वगत विष्णु पूजयेद्भक्तिसयुत ॥३४
अहिंसा सत्यमक्रोधो ब्रह्मचर्यापरिग्रहौ ।
अनीर्ष्या च दया चैव योगयोरुभयो समा ॥३५

श्रीभगवद्भक्ति का लवमात्र भी अश हो तो परम धर्म अक्षय होजाया करता है और परमाधिक श्रद्धा से समस्त पाप नष्ट होजाया

करते हैं ॥२६॥ सब पापों के विनाश होने पर बुद्धि में निर्मलता आ जाया करती है। बुद्धिमान् लोग ऐसी बुद्धि का नाम ज्ञान कहा करते हैं ॥३०॥ ज्ञान ही मोक्ष का प्रदान करने वाला होता है। वह ज्ञान योगीजनों में हुआ करता है। वह योग ज्ञानयोग और कर्मयोग से दो प्रकार का होता है ॥३१॥ इन दोनों में कर्मयोग प्रधान होता है क्योंकि इसके बिना ज्ञानयोग की सिद्धि नहीं हुआ करती है। अतएव इसकी आवश्यकता है कि प्रथम मनुष्य को कर्मयोग से पूर्ण परायणता प्राप्त करे और श्रद्धा के साथ श्री हरि भगवान् का अर्चन करना चाहिए ॥३२॥ हे विप्र ! भगवान् की प्रतिमायें कई रूपों में हुआ करती हैं—पृथ्वी, अग्नि, सूर्य, जल, धातु, हृदय और चित्र के स्वरूप में भगवत्प्रतिमायें हुआ करती हैं। इनमें ही भक्तिभाव के साथ श्री हरि का यजन करना चाहिए ॥३३॥ मन-वचन और कर्म के द्वारा किसी भी प्राणी को किसी भी प्रकार की पीड़ा न देकर सर्वव्यापक भगवान् विष्णुदेव का अर्चन भक्तिभाव समन्वित होकर करे ॥ ३४ ॥ चाहे कर्मयोग हो अथवा ज्ञानयोग हो, दोनों ही प्रकार के योग के भेदों में अहिंसा, सत्य, क्रोधाभाव, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह (वस्तु का संग्रह न करना) और द्वाह नहीं रखना परमावश्यक है। सदा दयाभाव रखना भी नितान्त आवश्यक है ॥३५॥

चराचरात्मकं विश्वं विष्णुरेव सनातनः ।
इति निश्चित्य मनसा योगद्वितयमभ्यसेत् ॥३६
आत्मवत्सर्वभूतानि ये मन्यते मनीषिणः ।
ते जानन्ति परं भावं देवदेवस्य चक्रिणः ॥३७
यदि क्रोधादिदुष्टात्मा पूजाध्यानपरो भवेत् ।
न तस्य तुष्यते विष्णुर्यतो धर्मपतिः स्मृतः ॥३८
यदि कामादिदुष्टात्मा देवपूजापरो भवेत् ।
दम्भाचारः स विज्ञेयः सर्वपातकिभिः समः ॥३९

तप पूजाध्यानपरो यस्त्वसूयारतो भवेत् ।
तत्तप सा च पूजा च तद्धयान हि निरथकम् ॥४०
तस्मात्सर्वात्मक विष्णु शमादिगुणतत्पर ।
मुक्त्यथमचयेत्सम्यक क्रियायोगपरो नर ॥४१
कमणा मनसा वाचा सवलोकहिते रत ।
समचयति देवेश क्रियायोग स उच्यते ॥४२

सनातन प्रभु विष्णुदेव सम्पूण इस चराचर विश्व म व्याप्त रहते हैं । इस स य सिद्धा त का अपने मनमे सुदृढ निश्चय करके ही योगी को अनुष्ठान करना चाहिये ॥३६। जो बुद्धिशाली मनुष्य अपने ही समान समस्त भूतो को समझा करते हैं वे ही देवाधिदेव भगवान् चक्री [redacted] परम भाव को जानते हैं ।३७। यदि कोई क्रोधादि के द्वारा दूषित हुये अ त करण से युक्त व्यक्ति भगवान् का ध्यान या यजन किया करता है तो उस अचन एव ध्यानमें भगवान् कभीभी प्रस न नही हुआ करते हैं क्योकि भगवान् तो धम की रक्षा करने वाले कहे जात हैं ।३८। यदि कामादि दोष से दुष्टचित्त वाला पुरुष देवेश्वर की पूजा किया करता है तो वह दम्भ से पूण हुआ करता है और वह पातकी के ही तुल्य होता है । भगव पूजन मे विशुद्ध अ त करण के होने की नितान्त आवश्यकता होती है ॥३६॥ जो व्यक्ति मनमे असूया की भावना रख कर देवाचन तपश्चर्या अथवा भगवद् ध्यान किया करता है तो उसका वह करना धरना सभी कुछ निरथक हुआ करता है ॥४०॥ अतएव कमयोग मे [redacted] परता रखने वाला ही मनुष्य मुक्ति की प्राप्ति के लिए शम दम आदि का पूण परिपालन करता हुआ सवव्यापक भगवान् विष्णु का अचन किया करे ॥४०॥ मन वचन और कम से सभी प्राणियो के हित म युक्त होकर देवेश्वर का जो यजन किया जाता है यही कमयोग कहलाता है ॥४२॥

नारायण जगद्योनि सर्वान्तर्यामिण हरिम् ।

स्तोत्राद्यैं स्तौति यो विष्णु कर्मयोगी स उच्यते ॥४३
उपवासादिभिश्चैव पुराणश्रवणादिभि ।
पुष्पाद्यैश्चार्चन विष्णो क्रियायोग उदाहृत ॥४४
एव भक्तिमता विष्णौ क्रियायोगरतात्मनाम् ।
सर्वपापानि नश्यति पूर्वजन्मार्जितानि च ॥४५
पापक्षयाच्छुद्धमतिर्वाञ्छति ज्ञानमुत्तमम् ।
ज्ञान हि मोक्षद नय तदुपाय वदामि ते ॥४६
चराचरात्मके लोके नित्य चानित्यमेव च ।
सम्यग् वचारयद्धीमान्सद्भि शास्त्रार्थकोविदै ॥४७
अनित्यास्तु पदार्था व नित्यमेको हरि स्मृत ।
अनित्यानि परित्यज्य नित्यमेव समाश्रयत् ॥४८
इहामुत्र च भोगेषु विरक्तश्च तथा भवेत् ।
अविरक्तो भवेद्यस्तु स ससारे प्रवर्तते ॥४९

जो सर्वान्तर्यामी विश्व के परम कारण भगवान् विष्णु का स्तोत्रादि के द्वारा स्तवन किया करता है उसको ही कर्मयोगी कहा जाता है ॥४३॥ व्रत और उत्सव आदि का यथाविधि करना पुराण और धर्म-ग्रन्थों का श्रवण करना पुष्पादि भगवत्प्रिय पदार्थों के द्वारा भगवान् का यजन करना यह सब कर्मयोग के नाम स ही कहा जाया करता है ॥४४॥ कर्मयोग में पूर्णतया तत्परता रखकर इस भाँति से भगवान विष्णु की भक्ति करने वाले लोगों के पूर्वजन्मार्जित सञ्चित सम्पूर्ण पापों का विनाश होजाता है ॥४५॥ जब पापों का पूर्ण क्षय होजाता है तो विशुद्ध बुद्धि एवं शुद्धान्तःकरण होकर उत्तम ज्ञान की प्राप्ति हुआ करती है। यहाँ से न मोक्षप्रदाता होता है। इसका उपाय हम इसी समय में आपको बतलाते हैं ॥४६॥ परम बुद्धिमान मनुष्य का कर्त्तव्य है कि शास्त्रों के यथार्थ अर्थ को हृदयङ्गम करने में निपुण सत्पुरुषों की सङ्गति करके यह विचार करे कि इस चराचर विश्व

कौन २ सी चीज नित्य है और क्या क्या अनित्य एवं विनाशशील है ॥४७॥ उसे गहराई से विचार करने पर यह स्पष्टतया प्रतीत हो जायगा कि इस संसार के सभी पदार्थ अनित्य है और केवल एक भगवान् श्रीहरि ही अविनाशी एवं नित्य हैं। इसलिये इन सबके लिये विनाश को प्राप्त होने वाला जानकर सबका त्याग करे अर्थात् इन क्षणभंगुर सांसारिक पदार्थों में मनको न फँसाकर नित्य श्री हरि का ही सर्वतोभाव से समाश्रय लेना चाहिये ॥४०॥ ऐहलौकिक और स्वर्गादि पारलौकिक भोगों से विरक्त रहना चाहिये। यदि इन पदार्थों से विरक्ति न कर अनुरक्त रहने पर पुनः इस संसार में अवश्य ही आना पड़ेगा ॥४६॥

अनित्येषु पदार्थेषु यस्तु रागी भवेन्नरः ।
तस्य संसारविच्छित्तिः कदाचित् नैव जायते ॥५०
शमादिगुणसम्पन्नो मुमुक्षुर्ज्ञानमभ्यसेत् ।
शमादिगुणहीनस्य ज्ञानं नैव च सिध्यति ॥५१
रागद्वेषविहीनो यः शमादिगुणसंयुतः ।
हरिध्यानपरो नित्यं मुमुक्षुरभिधीयते ॥५२
चतुर्भिः साधनैरेभिर्विशुद्धमतिरुच्यते ।
सर्वगं भावयेद्विष्णुं सर्वभूतदयापरः ॥५३
क्षराक्षरात्मकं विश्वं व्याप्य नारायणः स्थितः ।
इति जानाति यो विप्र तज्ज्ञानं योगजं विदुः ॥५४
योगोपायमतो वक्ष्ये संसारविनिवर्त्तकम् ।
यागो ज्ञानं विशुद्धं स्यात्तज्ज्ञानं मोक्षदं विदुः ॥५५
आत्मानं द्विविधं प्राहुः परापरविभेदतः ।
द्वे ब्रह्मणी वेदितव्ये इति चाथर्वणी श्रुतिः ॥५६

जो पुरुष इन सांसारिक अनित्य पदार्थों में अनुराग रखता है उसे अवश्य ही इस संसार में आना होगा और उसकी संसार के पाश

से मुक्ति कभी भी नहीं हो सकती है ॥५०॥ मुमुक्षु पुरुष का तो यही परम कर्त्तव्य होना चाहिये कि वह शम-दम आदि उत्तम गुणों को ग्रहण कर मोक्षाशा हृदय मे रखकर उत्तम ज्ञान के प्राप्त करने का सदाभ्यास करे क्योंकि जिसमे शमादि गुणो की हीनता होती है वह कभी भी ज्ञान की सिद्धि प्राप्त नहीं कर सकता है ॥५१॥ जो सदा सांसारिक राग-द्वेष से रहित होकर शम-दम आदि गुणो से सुसम्पन्न होता हुआ सदा श्री हरि के ही ध्यान स्मरण मे निरत रहा करता है वही मोक्ष की प्राप्ति का सच्चा इच्छुक होता है और मोक्ष पाने का उचित पात्र भी हुआ करता है ॥५२॥ इस तरह से इन चारो साधनो से सम्पन्न रहने वाला जीवात्मा ही विशुद्ध मति वाला होता है और उसका यही परम कर्त्तव्य है कि समस्त प्राणियो पर दया भाव रखकर सर्वव्यापी भगवान् विष्णु का ध्यान स्मरण करता रहे ॥५३॥ भगवान नारायण क्षर और अक्षर सम्पूर्ण विश्व मे व्याप्त होकर स्थित रहा करते हैं। हे विप्रवर! जो इस रीति से ज्ञान रखते हैं उनके इसी ज्ञान को योगजन्य ज्ञान कहा जाया करता है ॥५४॥ अब हम ससार से निवृत्ति करा देने वाले योग का उपाय आपको बतलाते हैं। विशुद्ध ज्ञान को ही योग कहते हैं और यही ज्ञान मोक्ष का प्रदाता होता है। यह सत्य सिद्धान्त है जिसका विद्वद्जन कहा करते हैं ॥ ५५ ॥ यह आत्मा पर और अपर भेदा से दो तरह का है। जो पर आत्मा है वही परमात्मा है और जो अपर आत्मा है उसी को जीवात्मा कहा जाता है। अथर्व वेद की एक श्रुति मे बताया गया है कि यह ब्रह्म पर और अपर भेद से दो प्रकार का हुआ करता है ॥५६॥

परस्तु निर्गुण प्रोक्तो ह्यहङ्कारयुतोऽपर ।
तयोरभेदविज्ञान योग इत्यभिधीयते ॥५७
पञ्चभूतात्मके देहे य साक्षी हृदये स्थित ।
अपर प्रोच्यते सद्भि परमात्मा पर स्मृत ॥५८

शरीर क्षेत्रमित्याहुस्तत्स्थ क्षेत्रज्ञ उच्यते ।
अव्यक्त परम शुद्ध. परिपूर्ण उदाहृत ॥५६
यदा त्वभेदविज्ञान जीवात्मपरमात्मनोः ।
भवे तदा मुनिश्रेष्ठ पाशच्छेदोऽपरात्मन. ॥६०
एक शुद्धोऽक्षरो नित्य परमात्मा जगन्मय ।
नृणा विज्ञानभेदेन भेदवानिव लक्ष्यते ॥६१
एकमेवाद्वितीय यत्पर ब्रह्म सनातनम् ।
गीयमान च वेदातैस्तस्मान्नास्ति पर द्विज ॥६२
न तस्य कर्म कार्य वा रूप वर्णमथापि वा ।
कर्त्तृत्व वापि भोक्तृत्व निर्गुणस्य परात्मन ॥६३

पर आत्मा अर्थात् परमात्मा गुणो से रहित है और अपर आत्मा अर्थात् जीवात्मा अहङ्कार से युक्त हुआ करता है । इन दोनों में वस्तुत कोई भेद नही होता है और इनमे अभेद होता है क्योकि एक ही तत्व है । इस पारमार्थिक अभेद ज्ञान का ही नाम योग होता है ॥१७॥ यह शरीर क्षेत्र है अर्थात् आश्रय का स्थल है और जो इसमे स्थित रहा करता है वह क्षेत्रज्ञ कहा जाता है वह क्षेत्रज्ञ परम शुद्ध और परिपूर्ण होता है ॥५८॥ इस पञ्चभूतो वाले शरीर मे जो हृदय मे स्थित साक्षी है उसी को सत्पुरुष अपर कहा करते है और जो परमात्मा के अभेद का ज्ञान पूर्ण रूप से होजाया करता है तभी इस अपरात्मा जीव का ससार का पाश उच्छिन्न हो जाया करता है ।६०। जगत् मे व्याप्त वह परमात्मा एक शुद्ध-अक्षर और नित्य है किन्तु मनुष्यो के भेद के ज्ञान से ही वह भेद वाले के समान दिखलाई दिया करता है ॥६१॥ वेदान्त शास्त्र यही तो बताता है कि वह परमात्मा या जो पर ब्रह्म है वह सनातन, एक और अद्वितीय है । हे द्विजवर ! इससे पर अन्य कुछ भी नही है ॥६२॥ वह परमात्मा निर्गुण है, उसका कुछ भी कर्म एव कार्य तथा रूप नही है । उसका कोई वर्ण भी

नहीं है। ऐसे निर्गुण परमात्मा में कर्तृत्व एवं भोक्तृत्व कुछ भी नहीं होता है। वह तो सर्वदा एक रस रहा करता है ॥६३॥

निदान सर्वहेतूना तेजो यत्तेजसा परम् ।
किमप्यन्यद्यतो नास्ति तज्ज्ञेय मुक्तिहेतवे ॥६४
शब्दब्रह्ममय यत्तन्महावाक्यादिक द्विज ।
तद्विचारोद्भव ज्ञान पर मोक्षस्य साधनम् ॥६५
सम्यग्ज्ञानविहीनाना दृश्यते विविधजगत् ।
परमज्ञानिनामेतत्परब्रह्मात्मक द्विज ॥६६
एक एव परानन्दो निर्गुण परत पर. ।
भाति विज्ञानभेदेन बहुरूपधरोऽव्यय ॥६७
मायिनो मायया भेद पश्यन्ति परमात्मनि ।
तस्मान्माया त्यजेद्योगान्मुमुक्षुर्द्विजसत्तम ॥६८
नासद्रूपा न सद्रूपा माया नैवोभयात्मिका ।
अनिर्वाच्या ततो ज्ञेया भेदबुद्धिप्रदायिनी ॥६९
मायैवाज्ञानशब्देन बुद्ध्यते मुनिसत्तम ।
तस्मादज्ञानविच्छेदो भवेद्वै जितमायिनाम् ॥७०

यही परमात्मा परब्रह्म समस्त कारण कलापों का मूल कारण होता है। सब तेजों का भी परम श्रेष्ठ तेज है और वह ऐसा ही है कि जिसमें भिन्न कुछ भी है ही नहीं। मनुष्य को अपनी मुक्ति की प्राप्ति के लिये उसका ही ज्ञान प्राप्त करना चाहिये ॥ ६४ ॥ जो 'शब्द ब्रह्ममय' आदि महावाक्य हैं और वेदों में कथित 'तत्त्वमसि' आदि महावाक्य हैं इनके गहन विवेचन करने से उत्पन्न होने वाला ज्ञान ही मोक्ष का परम साधन होता है ॥६५॥ जो लोग ज्ञानहीन होते हैं उनको ही यह जगत् भिन्न २ प्रकार का दिखलाई दिया करता है। हे द्विजवर! जो लोग परम ज्ञानी होते हैं उनको ही यह समस्त जगत परब्रह्मात्मक ही दिखाई दिया करता है ॥६६॥ पर से भी पर और

निर्गुण ब्रह्म एक ही है किन्तु भेद ज्ञान से वही अनेक प्रकार से भासित हुआ करता है और उस अच्युत भगवान के ही अनेक रूप दिखाई दिया करते हैं ।।६७।। जिनके ऊपर माया के परदे का आवरण होता है वे उसी माया के कारण से ही उस परमात्मा में भेद देखा करते हैं । इसलिये हे द्विजवर ! मुमुक्षु पुरुष का कर्त्तव्य यही है कि इस माया को युक्ति के साथ परित्यक्त कर देवे ।।६८।। इस माया का न तो सद्रूप है और न इसका असद्रूप ही होता है और न यह दोनो प्रकार की ही होती है । अतएव इसको भेद बुद्धि उत्पन्न कर देने वाली ही समझना चाहिए और इसी के कारण भेद की बुद्धि हुआ भी करती है ।।६९।। हे परमश्रेष्ठ मुने ! अज्ञान शब्द से माया का ही ग्रहण किया जाया करता है । इसलिये आ सत्पुरुष इस माया पर विजय प्राप्त कर लिया करते हैं । उनका सम्पूर्ण अज्ञान विनष्ट होजाया करता है ।।७०।।

सनातन पर ब्रह्म ज्ञानशब्देन कथ्यते ।
ज्ञानिना परमात्मा वै हृदि भाति निरन्तरम् ।।७१
अज्ञान नाशयेद्योगी योगेन मुनिसत्तम ।
अष्टागं सिद्धये योगस्तानि वक्ष्यामि तत्त्वत ।।७२
यमाश्च नियमाश्चैव आसनानि च सत्तम ।
प्राणायाम प्रत्याहारो धारणा ध्यानमेव च ।।७३
समाधिश्च मुनिश्रेष्ठ योगाङ्गानि यथाक्रमम् ।
एषा सक्षेपतो वक्ष्ये लक्षणानि मुनीश्वर ।।७४
अहिंसा सत्यमस्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रहौ ।
अक्रोधश्चानसूया च प्रोक्ता सक्षेपतो यमा ।।७५
सर्वेषामेव भूतानामक्लेशजनन हि यत् ।
अहिंसा कथिता सद्भिर्योगसिद्धिप्रदायिनी ।।७६
यथार्थकथन यच्च धर्माधर्मविवेकत ।
सत्य प्राहुर्मुनिश्रेष्ठ अस्तेय शृणु साम्प्रतम् ।।७७

ज्ञान शब्द से सनातन परम ब्रह्म का ही बोध होता है और जो ज्ञानी होते हैं उनके हृदयाकाश में निरन्तर परमात्मा भासित होता रहा करता है ।।७१।। अतएव हे मुनिसत्तम ! योगी पुरुष को योग के द्वारा ही इस अज्ञान का विनाश करना चाहिये । इसका पूरा तत्व मैं आपको श्रवण कराता हूँ ।।७२।। हे मुनिवर ! वे इस योग के आठ अङ्ग ये होते हैं—यम, नियम, आसन, प्राणायाम प्रत्याहार, ध्यान, धारणा और समाधि । हे मुनीश्वर ! अब मैं इन सबके लक्षण भी अति संक्षेप में बतलाता हूँ ।।७३।७४।। यम जो एक योग का अङ्ग होता है उसके भी कई एक भेद हुआ करते हैं : अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य, अक्रोध और अनसूया ये यम के ही परम संक्षिप्त भेद होते हैं ।।७५।। किसी भी प्राणी को किसी भी प्रकार का कष्ट न पहुँचाने का नाम अहिंसा है । इसी अहिंसा को विद्वज्जन सत्पुरुष योग परम सिद्धि प्रदान करने वाली कहा करते हैं ।।७६।। हे मुनिवर ! धर्माधर्म का पूर्ण विचार करते हुये जो यथार्थ कथन होता है उसी को सत्य कहते हैं । इसके अनन्तर तीसरे अंग अस्तेय का अर्थ भी श्रवण करिये ।।७७।।

चौर्येण वा वलेनापि परस्वहरणं हि यत् ।
स्तेयमित्यच्युते सद्भिरस्तेयं तद्विपर्ययम् ।।७८
सर्वत्र मैथुनत्यागो ब्रह्मचर्यं प्रकीर्त्तितम् ।
ब्रह्मचर्यपरित्यागाज्ज्ञानवानपि पातकी ।।७९
सर्वसंगपरित्यागी मैथुने यस्तु वर्त्तते ।
स चण्डालसमो ज्ञेयः सर्ववर्णवहिष्कृतः ।।८०
यस्तु योगरतो विप्र विषयेषु स्पृहान्वितः ।
तत्सभाषणमात्रेण ब्रह्महत्या भवेन्नृणाम् ।।८१
सर्वसंगपरित्यागी पुनः संगी भवेद्यदि ।
तत्संगसंगिना संगान्महापातकदोषभाक् ।।८२

नादानं हि द्रव्याणामापद्यपि मुनीश्वर ।
नपरिग्रह इत्युक्तो योगससिद्धिकारक ॥८३
नात्मनस्तु समुत्कर्षादतिनिष्ठुरभाषणम् ।
क्रोधमाहुर्धर्मविदो ह्यक्रोधस्तद्विपर्यय ॥८४

बुरा करने का या बलपूर्वक दूसरे के पदार्थों का अपहरण करने का नाम स्तेय कहा जाता है। इसके विपरीत जो व्यवहार होता है उसी को 'अस्तेय' कहा जाता है ॥७८॥ सर्वत्र आठों प्रकार के मैथुन के त्याग को ब्रह्मचर्य कहते हैं इस ब्रह्मचर्य की बड़ी महिमा है। इसके त्याग करने से त्यागी पुरुष भी महान पातकी होजाया करते हैं। अतएव इसका पूर्णतया परिपालन करना परमावश्यक है ॥ ७६ ॥ जो पुरुष समस्त सङ्गों का त्याग करता हुआ मैथुन किया करता है उसको चाण्डाल के ही तुल्य समस्त वर्णों से बहिष्कृत समझना चाहिये। मैथुन में आध्यात्मिक मार्ग के गामी पुरुष का बड़ा भारी अहित हुआ करता है। हे विप्र ! जो इस योग के मार्ग में गमन करता है उसकी यदि विषयों में स्पृहा बनी रहती है तो ऐसे पुरुष से वार्तालाप भी नहीं करना चाहिये क्योंकि उसके साथ भाषण करने से वेदहत्या हो जाया करती है क्योंकि वह वैदिक मार्ग का त्याग करने वाला पतित प्राणी होता है ॥८०।८१। एक बार समस्त सङ्गों का त्याग कर योगमार्ग में चलने वाला पुनः सङ्ग करने लग जाता है तो उसके संसर्ग मात्र से ही महान पातक का दोष लग जाया करता है ।।८२।। हे मुनिवर ! महान से भी महान आपत्ति के समय के उपस्थित होने पर भी किसी के द्रव्य को झपट कर ग्रहण न करने से ही अपरिग्रह कहा जाता है। इस अपरिग्रह को योग मार्ग या सिद्धि प्रदान करने वाला बताया गया है। योग सिद्धि में इसका भी अत्यधिक महत्व होता है ।८२।८३। धर्म के ज्ञाता, सज्जन अपने समुत्कर्ष के लिये निष्ठुर भाषण करने को क्रोध कहा करते हैं। इसके विपरीत व्यवहार का नाम अक्रोध है। तात्पर्य

यह है कि सदा योगाभ्यासी को परम मृदु एवं मधुर श्रुतिप्रिय भाषण ही करना चाहिये ।८४।

धनाद्यं रधिकं दृष्ट्वा भृशं मनसि तापनाम् ।
असूया कीर्तिता सद्भिस्तत्त्यागो ह्यनसूयता ॥८५
एवं संक्षेपतः प्रोक्ता यमा विबुधसत्तम ।
नियमानपि वक्ष्यामि तुभ्यं ताञ्छृणु नारद ॥८६
तपः स्वाध्यायसंतोषा शौचं च हरिपूजनम् ।
सन्ध्योपासनमुख्याश्च नियमाः परिकीर्तिताः ॥८७
चान्द्रायणादिभिर्यत्र शरीरस्य विशोषणम् ।
तपो निगदितं सद्भिर्योगसाधनमुत्तमम् ॥८८
प्रणवस्योपनिषदां द्वादशार्णस्य च द्विज ।
अष्टाक्षरस्य मंत्रस्य महावाक्यचयस्य च ॥८९
जपः स्वाध्याय उदितो योगसाधनमुत्तमम् ।
स्वाध्यायं यस्त्यजेन्मूढस्तस्य योगो न सिध्यति ॥९०
योगं विनापि स्वाध्यायात्पापनाशो भवेन्नृणाम् ।
स्वाध्यायैस्तोष्यमाणाश्च प्रसीदन्ति हि देवताः ॥९१

दूसरेके ऐश्वर्य को देख कर अपने मन के अन्दर एक प्रकार की कुढ़न रखना ही असूया कही जाती है । सत्पुरुष इस तरह की जलन कुढ़न के अभाव को ही अनसूया कहा करते हैं ॥ ८५ ॥ हे देववर्य ! इस रीति से योग के आठ अंगों में से प्रथम जो यम एक अङ्ग है उसके समस्त भेदों का वर्णन करके सुना दिया है । अब हम नियमों का वर्णन करते हैं । हे नारद ! आप उनका समाहित होकर श्रवण कीजिये ॥८६॥ नियम के भी कई भेद होते हैं—तपश्चर्या स्वाध्याय (वेदाध्ययन) सन्तोष पवित्रता श्रीहरि पूजन और सन्ध्योपासना जिन नियमों में परम प्रमुख होते हैं ऐसे नियम योग मार्ग में गमन करने के लिये बताये गये हैं ॥८७॥ चान्द्रायण आदि व्रत शास्त्रोक्त

महाव्रतो के द्वारा जिसमे शरीर के मलो का शोषण किया जाता है विद्वान लोग इसी को तपस्या कहा करते है। यह तप योग मार्ग का एक परमोत्तम साधन बताया गया है ॥८८॥ प्रणव अर्थात् ॐकार का, उपनिषद ग्रन्थो का 'नमो भागवते वासुदेवाय' इस द्वादशाक्षर मन्त्र का 'ओ नमो नारायणाय'—इस अष्टाक्षरी मन्त्र का और तत्वमसि आदि महा वाक्यो का जाप स्वाध्याय कहा जाया करता है। इस स्वाध्याय भी योग का एक अत्युत्तम साधन बताया गया है। जो स्वाध्याय का त्याग कर दिया करता है वह महान् मूढ मानव है। ऐसे मनुष्य का योग कभी भी सिद्ध एव सफल नही हुआ करता है ॥ ८६।६० ॥ योग के अन्य मार्गों के बिना भी केवल स्वाध्याय के द्वारा ही मनुष्यो के पापो का क्षय होजाया करता है क्योंकि स्वाध्याय के द्वारा सस्तुत हुए देवगण परम प्रसन्नता प्राप्त किया करते हैं ॥६१॥

जपस्तु त्रिविध प्रोक्तो वाचिकोपाशुमानस.।
त्रिविधेऽपि च विप्रेन्द्र पूर्वात्पूर्वात्परो वर ॥६२
मन्त्रस्योच्चारण सम्यक्स्फुटाक्षरपद यथा।
जपस्तु वाचिक प्रोक्त सर्वयज्ञफलप्रद ॥६३
मन्त्रस्योच्चारणे किंचित्पदात्पदविवेचनम्।
स तूपांशुजप प्रोक्त पूर्वस्माद् द्विगुणोऽधिक ॥६४
विधाय ह्यक्षरश्रेण्या तत्तदर्थविचारणम्।
स जपो मानस प्रोक्तो योगसिद्धिप्रदायक ॥६५
जपेन देवता नित्य स्तुवत सम्प्रसीदति।
तस्मात्स्वाध्यायसम्पन्नो लभेत्सर्वान्मनोरथान् ॥६६
यदृच्छालाभसतुष्टि सतोष इति गीयते।
सतोषहीन पुरुषो न लभेच्छर्म कुत्रचित् ॥६७
न जातु काम कामानामुपभोगेन शाम्यति।
इतोऽधिक कदा लप्स्य इति कामान् वर्द्धन ॥६८

यह जाप भी वाचिक, उपांशु और मानस भेदों से तीन तरह का हुआ करता है। हे विप्रप्रवर! यह जाप पहिले की अपेक्षा दूसरा और दूसरे की अपेक्षा तृतीय उत्तम एवं श्रेष्ठ माना गया है ॥ ९२ ॥ सुस्पष्ट रूप से अक्षरों और पदों का उच्चारण करके जो मन्त्र को सभी को साफ २ सुनाई देने वाला पढ़ा जाता है उसी को वाचिक जाप कहते हैं। यह मन्त्र जाप सभी यज्ञों का फल प्रदान करने वाला होता है ॥९३॥ मन्त्र के उच्चारण से प्रत्येक अक्षर और पद का शुद्धाशुद्ध होने के विवेक के साथ जो मन्द ध्वनि से उच्चारण किया जाता है उसको उपांशु जाप कहते हैं। यह वाचिक जाप से दुगुना अधिक फल देने वाला होता है ॥९४॥ मनमें ही मन्त्राक्षरों की श्रेणी क्रमश बद्ध करके साथ ही उन पदों के अर्थ का विचार रखते हुए जो जाप किया जाता है वही मानस जाप कहा जाता है इससे शीघ्र ही योग की सिद्धि होती है। मानस जाप को अन्य जापों से विशेष माना गया है।९५। जाप से नित्य ही स्तवन प्राप्त करने वाले देवगण परम प्रसन्न होजाया करते हैं। इसीलिये स्वाध्याय करने वाले पुरुष के समस्त मनोरथ निश्चय ही पूर्ण हो जाया करते हैं, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है ॥ ९६ ॥ सत् मार्ग के द्वारा किये गए उचित उद्योग से अपने प्रारब्ध के अनुसार जितना भी जो कुछ प्राप्त होजावे उतने ही में सन्तोष करके परम सन्तुष्ट अपने मनमें रहने को ही सन्तोष कहा कहा करते हैं। जो सन्तोष से हीन रहकर व्यर्थ की दुराशा की भावनायें मनमें भरे रहता है ऐसा असन्तुष्ट पुरुष कहीं भी सुख की प्राप्ति नहीं किया करता है ॥९७॥ काम उस इच्छा का नाम है जो अपने अभीष्ट मनोरथों की पूर्त्ति हो जाने पर भी अपने मनमें शान्ति धारण न कर इससे भी अधिकाधिक कामनायें किया करते हैं अर्थात् जिसके हृदय में अनेकानेक कामनाओं का जाल बढ़ता ही रहा करता है ॥९८

तस्मात्काम परित्यज्य देहसशोषकारणम् ।
यदृच्छालाभसन्तुष्टो भवेद्धर्मपरायण ॥६६
बाह्याभ्यन्तरभेदेन शौच तु द्विविध स्मृतम् ।
मृज्जलाभ्या बहि शुद्धिर्भावशुद्धिस्तथान्तरम् ॥१००
अन्त शुद्धिविहीनैस्तु यज्ञ्वरा विविधा कृता ।
न फलति मुनिश्रेष्ठ भस्मनि न्यस्तहव्यवत् ॥१०१
भावशुद्धिविहीनाना समस्त कर्म निष्फलम् ।
तस्माद्रागादिक सर्व परित्यज्य सुखी भवेत् ॥१०२
मृदा भारसहस्रैस्तु कुम्भकोटिजलैस्तथा ।
कृतशौचोऽपि दुष्टात्मा चडालसदृश स्मृत ॥१०३
अन्त शुद्धिविहीनस्तु देवपूजापरो यदि ।
तमेव दयत हति नरक च प्रपद्यते ॥१०४
अन्तर्शुद्धिविहीनश्च बहि शुद्धि करोति य ।
अलकृत सुराभाण्ड इव शांति न गच्छति ॥१०५

यह हृदय म घरावर स्थित कामनाओं का आस शरीर का शोषण किया करता है इसका त्याग करके यदृच्छा लाभ स स तोष करके तथा धम मे परायण रहना चाहिये ॥६६॥ पवित्रता भी बाहरी और भीतरी भेदा से दो प्रकार की मानी गयी है। मृत्तिका और जल स बाह्य शुद्धि हुआ करती है और दुष्प्रवृत्तियों का त्याग कर भाव शुद्धि रखने स आ तरिक विशुद्धि हाती है ॥१००॥ इन दोनो प्रकार की पवित्रताओ म आ तरिक शुद्धि का बडा महत्व है और इसी स वास्तविक कल्याण होता है। यदि कोई आ तरिक शुद्धि स रहित मनुष्य अनेक यज्ञो को भी करते हैं तो उनका कुछ भी फल उनका दूषितान्त करण होने के कारण नहीं मिला करता है और इनके द्वारा की हुई आहुतियाँ राख म डालने के ही तुल्य व्यर्थ हुआ करती हैं ॥१०१॥ भाव शुद्धि की बडी महिमा होती है। भाव शुद्धि स रहित

मानवों के सभी कर्म निष्फल हुआ करते हैं। इसीलिये हृदय में राग द्वेषादि सबका परित्याग करके गुण सम्पन्न होना चाहिये।१०२। सहस्रों भार मिट्टी से और लाखों घड़ों के जल से बाहिरी शुद्धि कर लेने पर भी यदि अन्तःकरण दूषित है और शुद्ध नहीं होता है तो वह पुरुष एक चाण्डाल के ही समान हुआ करता है ॥१०३॥ जिसका अन्तःकरण शुद्ध नहीं होता है और ऊपर से ही वह देवों का यजन किया करता है तो देवगण उसका संहार करके उसको नरकों में ही डाल दिया करते हैं।१०४। जिसका अन्तःकरण तो विशुद्ध होता नहीं है और उसमें अनेक बुरी २ भावनायें भरी रहा करती हैं। वह पुरुष ऊपरी शुद्धि करके दिखाया करता है उसकी शुद्धता ऊपर से सुसज्जित ढोल के समान ही है जिसके अन्दर मदिरा रहा करती है। ऐसे पाखण्डी पुरुष को कभी भी शान्ति नहीं मिला करती है।१०५।

मनश्शुद्धिविहीना ये तीर्थयात्रा प्रकुर्वते ।
न तान्पुनन्ति तीर्थानि सुराभाण्डमिवापगा ॥१०६
वाचा धर्मान्प्रवदति मनसा पापमिच्छति ।
जानीयात्तं मुनिश्रेष्ठ महापातकिनां वरम् ॥१०७
विशुद्धमानसा ये तु धर्ममात्रमनुत्तमम् ।
कुर्वन्ति तत्फलं विद्यादक्षयं सुखदायकम् ॥१०८
कर्मणा मनसा वाचा स्तुतिश्रवणपूजनैः ।
हरिभक्तिर्दृढा यस्य हरिपूजेति गीयते ॥१०९
यमाश्च नियमाश्चैव सक्षेपेण प्रबोधिता ।
एभिर्विशुद्धमनसा मोक्षं हस्तगतं विदुः ॥११०
यमैश्च नियमैश्चैव स्थिरबुद्धिर्जितेन्द्रियः ।
अभ्यसेदासनं सम्यग्योगसाधनमुत्तमम् ॥१११

जिस तरह से मदिरा जिसमें भरी हो उस ढोल को पवित्र नदियाँ भी शुद्ध नहीं कर सकती हैं ठीक उसी भाँति जिनका मन निर्मल

और पवित्र नहीं होता है वे तीर्थाटन करके भी कभी पवित्र नहीं हो सकते हैं ।१०६। जो मानव अपनी वाणी के द्वारा तो धर्म का पालन किया करता है परन्तु उसके मन मे पाप कर्म तथा परस्त्री एव पराये धनादि का चिन्तन बना रहा करता है । वह मनमे विषयो के रस का आस्वादन किया करता है । ऐसे पुरुष को महा पातकियो मे परम प्रमुख ही समझना चाहिए ॥१०७॥ जिनका अन्तःकरण पवित्र होता है वे चाहे ऊपर से साधारण से साधारण ही धर्म का समाचरण किया करते हैं तो भी उनको उसका कभी न क्षय होने वाला सुख प्राप्त हुआ करता है जो कि परमोत्तम बताया गया है ॥१०८॥ जो पुरुष वचन मन और कर्म से स्तवन एव श्रवण के द्वारा श्री हरि की भक्ति मे दृढ रहा करता है उसकी वही पूजा श्री हरि की पूजा ही कही जाया करती है ।१०९॥ हे नारद ! अब तक यम नियमादि का परम सक्षिप्त वर्णन कर दिया है । अब उनके द्वारा जिन पुरुषो का चित्त शुद्ध होजाता है उस बतलाते हैं । यह मोक्ष तो उनके हाथो मे ही आजाया करता है ॥११०॥ पहिले यम और नियमो के द्वारा जिनकी बुद्धि स्थिरता प्राप्त कर लेवे उनको अपनी इन्द्रियो पर पूर्ण नियन्त्रण रखकर योग के परम श्रेष्ठ साधन आसन का अभ्यास करना चाहिये ॥१११॥

पद्मक स्वस्तिक पीठ सैह कौक्कुटकौंजरे ।
कौर्म वज्रासन चैव वाराह मृगचैलिकम् ॥११२
क्रौञ्च च नालिक चैव सवतोभद्रमेव च ।
आर्षभ नागमात्स्ये च वैयाघ्र चार्द्धचन्द्रकम् ॥११३
दण्डवातासन शैल स्वभ्र मौद्गरमेव च ।
माकर त्रैपथ काष्ठ स्थाणु वैकर्णिक तथा ॥११४
भौम वीरासन चैव योगसाधनकारणम् ।
त्रिंशत्सङ्ख्यान्यासनानि मुनीन्द्रैः कथितानि वै ॥११५

एषामेकतम बद्ध्वा गुरुभक्तिपरायण
उपासको जयेत्प्राणान्द्वन्द्वातीतो विमत्सर ॥११६
प्राङ्मुखोदङ्मुखो वापि तथा प्रत्यङ्मुखोऽपि वा ।
अभ्यासेन जयेत्प्राणान्नि शब्दे जनवर्जिते ॥११७
प्राणो वायु शरीरस्थ आयामस्तस्य निग्रह ।
प्राणायाम इति प्रोक्तो द्विविध स प्रकीर्तित ॥११८
अगर्भश्च सगर्भश्च द्वितीयस्तु तयोर्वर ।
जपध्यान विनागर्भं सगर्भस्तत्समन्वित ॥११६

मुनिगणो ने योग सिद्धि के लिये तीस आसनो की चर्चा की है उनके नाम निम्न है—पद्म, स्वस्तिक, पीठ सिंह कुक्कुट कुञ्जर, कूर्म, वज्र, वराह मृग चैलिक, क्रौंच, नालिक, वृषभ, नाग, मत्स्य, सर्वतोभद्र, व्याघ्र अर्ध चन्द्र, दण्डवात शैल, स्वभ्र मुद्गर मकर त्रैपथ, काष्ठ वैकणिक स्थाणु भीम और वीरासन ये सख्या मे तीस है। ये योग की सिद्धि के कारण स्वरूप तीस आसनो का मुनियो ने बतलाया है।११२—११५। योगाभ्यास के द्वारा उपासना करने वाले पुरुष को अपने गुरुदेव के चरणो म भक्ति का भाव रखते हुए मात्सर्य और द्वन्द्वो से विमुक्त रहकर ही इन उपर्युक्त तीस आसनो म से स्वेच्छया किसी भी एक आसन को सविधि बाँधकर प्राणवायु पर विजय प्राप्त करे अर्थात् प्राणायाम का अभ्यास किया करे।११६। जन कोलाहल से दूर नितान्त एकान्त स्थान म ही अभ्यास करना चाहिए। पूर्व पश्चिम या उत्तर दिशा की ओर मुख करके प्राणायाम का अभ्यास करते प्राणायामो की वृद्धि करे॥११७॥ प्राण शरीर मे स्थित उस वायु का नाम है जिससे यह शरीर सशक्त एव सदर्थ तथा जा ग्रत रहा करता है। आयाम उस वायु के निग्रह को ही कहा जाता है। प्राण याम शब्द का सक्षिप्त अर्थ प्राणा को वश मे करना होता है वह प्राणायाम दो प्रकार का हुआ करता है ॥ ११८ ॥

अगर्भ और सगर्भ भेदो से इसके ये ही दो नाम होते है । इन दोनो मे सगर्भ प्राणायाम श्रेष्ठ माना गया है । जिसमे कोई भी ध्यान व जाप नही होता है वही प्राणायाम अगर्भ कहा गया है। जो सगर्भ प्राणायाम होता है उसमे ध्यान और जाप दोनो ही हुआ करते हैं ।।११६।।

रेचक पूरकश्चैव कुम्भक शून्यकस्तथा ।
एष चतुर्विध प्रोक्त प्राणायामो मनीषिभि ।।१२०
जमुना दक्षिणा नाडी पिंगला परिकीर्तिता ।
सूर्यदैवतका चैव पितृयोनिरिति श्रता ।।१२१
देवयोनिरिति ख्याता इडा नाडी त्वदक्षिणा ।
तत्राधिदैवत चन्द्र जानीहि मुनिसत्तम ।।१२२
एतयोरुभयोर्मध्ये सुषुम्ना नाडिका स्मृता
अतिसूक्ष्मा गुह्यतमा ज्ञ`या सा ब्रह्मदैवता ।।१२३
वामेन रेचयेद्वायु रेचनाद्र`चक स्मृत ।
पूरयेद्दक्षिणेनैव पूरणात्पूरक स्मृत ।।१२४
स्वदेहपूरित वायु निगृह्य न विमुञ्चति ।
सम्पूर्णकुम्भवत्तिष्ठेत्कुम्भक स हि विश्रुत ।।१२५
न गृह्णाति न त्यजति वायुमतर्बहि स्थितम् ।
विद्धि तच्छून्यक नाम प्राणायाम यथास्थितम् ।।१२६

योगीजनो ने इस प्राणायाम को पूरक, रेचक तथा कुम्भक तथा शून्यक मे भेदो से चार प्रकार का माना है ।१२०। प्राणियो के शरीर में जो दाहिनी नाडी होती है उसका नाम पिंगला होता है। इस नाडी का देवता सूय है। इसलिए इसकी प्रसिद्धि पितृयोनि नाम से होती है ।१२१। शरीर के वाम भाग मे जो नाडी है उसका नाम इडा है। यह देवयोनि नाम से कही जाती है। हे मुने ! इसका देवता चन्द्रमा है ऐसा तुमको ध्यान रखना चाहिए ।१२२। इन दोनो

पिंगला और इडा के मध्य में जो एक नाडी है उसका नाम सुषुम्ना है। यह परम सूक्ष्म और परम गुह्य नाडी होती है। इसका देवता ब्रह्मा होता है ॥१२३॥ वाम नथुने से चढाई हुई प्राण वायु का रेचन (निकालना) करना चाहिए। इस रेचन की क्रिया के करने ही से इस प्राणायाम का नाम रेचक प्राणायाम कहा जाता है। नासिका के दक्षिण नथुने (नासिका छिद्र) से इस वायु को भरकर ऊपर चढ़ाना चाहिए। इस वायु के पूरण करने के कारण से इसका नाम पूरक प्राणायाम होता है।१२४। अपने अन्दर चढ़ा कर भरी हुई वायु को वश में कर रोके रहना चाहिए अर्थात् भरे हुए कलश के समान वायु का भरकर स्थित रहना चाहिए। इस तरह से वायु को रोके रखने का नाम कुम्भक प्राणायाम कहा जाता है।१२५। न तो बाहिर की वायु का ग्रहण करे और न अन्दर की वायु को छोड़े और न भीतर रोके। वैसा ही बैठा रहे। इस प्राणायाम की अवस्था का नाम शून्यक प्राणायाम कहा जाता है ॥१२६॥

शनैः शनैर्विजेतव्य प्राणो मत्तगजेन्द्रवत् ।
अन्यथा खलु जायन्ते महारोगा भयकरा ॥१२७
क्रमेण योजयेद्वायु योगी विगतकल्मष ।
॥ सर्वपापनिर्मुक्तो ब्रह्मण पदमाप्नुयात् ॥१२८
विषयेषु प्रसक्तानि चेन्द्रियाणि मुनीश्वर ।
समाहृत्य निगृह्णाति प्रत्याहारस्तु स स्मृत ॥१२९
जितेन्द्रिया महात्मानो ध्यानशून्या अपि द्विज ।
प्रयान्ति परम ब्रह्म पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥१३०
अनिर्जितेन्द्रियग्राम यस्तु ध्यानपरो भवेत् ।
मूढात्मान च त विद्याद्ध्यान चास्य न सिध्यति ॥१३१
यद्यत्पश्यति तत्सर्व पश्येदात्मवदात्मनि ।
प्रत्याहृतानीन्द्रियाणि धारयत्सा तु धारणा ॥१३२

यह प्राणवायु एकत्र होना हस्ती के तुल्य हुआ करता है। इसको शनै शनै ही अपने वश मे करके इस पर विजय प्राप्त करना चाहिए। नही तो ऊटपटाग ढङ्ग से प्राणायाम करने पर भी महान् भयानक व्याधियां उत्पन्न होने का भय रहा करता है ॥ १२७ ॥ योग की साधना करने वाले लोग क्रमश वायु के वेग को रोककर योगाभ्यास करते हुए वे निष्पाप होजाया करते हैं और सभी क्रूर कल्मषो से मुक्त हो जाया करते हैं तथा अन्त समय मे परम ब्रह्म के पद की प्राप्ति किया करते हैं ॥१२८॥ हे मुनिवर ! विभिन्न विषयो मे समासक्त इन्द्रियो को वहाँ से हटाकर टिकाये रखने को ही प्रत्याहार कहते हैं ॥१२९॥ हे द्विज ! इन्द्रियो पर पूर्ण नियन्त्रण रख कर अपने वश म रखने वाले जितेन्द्रिय महात्मा सदा ध्यान मे शून्य रहने पर भी वे उस परब्रह्म स्थान को प्राप्त किया करते हैं जहाँ से पुन लौट कर वापिस इस ससार में नहीं आया करते हैं। इन्द्रियो को वश मे रखने की बडी भारी महिमा है ॥ १३० ॥ बिना ही इन्द्रियो के ऊपर विजय प्राप्त करके जो ध्यान मे मलग्न रहने की चेष्टा किया करते हैं उनको महा मोह म पडे हुये चिरा काल ही समझ लेना चाहिये क्योकि इन्द्रयजित हुये बिना ध्यान की सिद्धि कभी हो ही नही सकती है ॥१३१॥ जिस जिसको देखे उस उसको सबको अपने चित्त मे अपने ही समान देखता हुआ विषयो से प्रत्याहृत की हुई इन्द्रियों को धारण किये रहे इसी धारण करने के कारण इस योग के अङ्ग का नाम धारण होता है ॥१३२॥

योगाज्जितेन्द्रियग्रामस्तानि हृत्वा दृढ हृदि।
आत्मानं परमं ध्यायेत्सर्वधातारमच्युतम् ॥१३३
सर्वविश्वात्मकं विष्णु सर्वलोकैककारणम्।
विकसत्पद्मपत्राक्ष चारुकुण्डलभूषितम् ॥१३४
दीर्घबाहुमुदाराङ्ग सर्वालङ्कारभूषितम्।

पीताम्बरधरं देव हेमयज्ञोपवीतिनम् ॥१३५
बिभ्रन तुलसीमाला कौस्तुभेन विराजितम् ।
श्रीवत्सवक्षस देव सुरासुरनमस्कृतम् ॥१३६
अष्टारे हृत्सरोजे तु द्वादशागुलविस्तृते ।
ध्यायेदात्मानमव्यक्त परात्परतर विभुम् ॥१३७
ध्यान सद्भिर्निगदित प्रत्ययस्यैकतानता ।
ध्यान कृत्वा मुहूर्त्त वा पर मोक्ष लभेन्नरः ॥१३८
ध्यानात्पापानि नश्यन्ति ध्यानान्मोक्ष च विन्दति ।
ध्यानात्प्रसीदति हरिर्ध्यानात्सर्वार्थसाधनम् ॥१३९
यद्यद्रूप महाविष्णोस्तत्तद्ध्यायेत्समाहितम् ।
तेन ध्यानेन तुष्टात्मा हरिर्मोक्ष ददाति वै ॥१४०

योगाभ्यास के द्वारा अपनी सब इन्द्रियों को भीतर विषयों से उनका प्रत्याहार करके हृदय में दृढ़ता के साथ धारण कर अर्थात् इन्द्रियों की जो विषयों की ओर बहिर्मुखी वृत्ति थी उसको अन्तर्मुखी करके एक मोड़ देने पर सबके धाता—सर्व विश्व स्वरूप भगवान् अच्युत, जो परमात्मा समस्त लोकों की रचनादि के एक मात्र कारण हैं, विकसित पद्म दल के सदृश परम सुन्दर नेत्रों वाले—महा मनोरम कनक कुण्डलों से सुविभूषित—लम्बी भुजाओं वाले, परम विशाल अङ्गों से सम्पन्न, सभी, भाँति रमणीय आभरणों से शोभित,पीत रेशमी वस्त्र के धारण करने वाले, सुवर्ण के यज्ञोपवीत को पहिने हुए, तुलसी की माला से युत, कौस्तुभ मणि को धारण करने वाले, वक्षःस्थल में श्रीवत्स का चिह्न धारण किये हुए, समस्त देवासुरों के द्वारा वन्दित चरणों वाले, अव्यक्त, पर से पर, विभु भगवान् विष्णु देवेश्वर का ध्यान अष्टदलों वाले बारह अंगुल विस्तृत हृदय कमल में करना चाहिए ॥ १३३-१३७ ॥ इस उपर्युक्त प्रकार से भगवान् को स्मरण करके चित्त की जो चिन्तन में स्थिरता और एकाग्रता होती है उसी को

ध्यान कहा जाया करता है। केवल दो घड़ी तक भी पूर्ण एकाग्रता से किये गये ध्यान से भी प्राणी की मुक्ति हो जाया करती है ॥ १३८ ॥ मुक्ति को परम दुर्लभ इसीलिये कहा जाता है कि इस परमाधिक चञ्चल एवं प्रमादशील बलवान् चित्त को एकाग्र कर ध्यान में स्थिर रखना ही महान् कठिन हैं। ध्यान करने से पापों का नाश हो जाया करता है और ध्यान के द्वारा मानव मोक्ष प्राप्त कर लिया करता है। ध्यान में अवस्थित रहने वाले पर भगवान् विष्णु परम प्रसन्न हुआ करते है। ध्यान की महिमा के विषय में अधिक कहाँ तक वर्णन किया जावे। इस ध्यान से सभी कुछ सिद्ध हो जाया करता है और फिर कुछ भी शेष प्राप्त करना नहीं रहता है ॥ १३९ ॥ महाविष्णु के अनेक स्वरूप हैं उनमें जो भी अपने मन को परम रुचिकर लगे उसी को चित्त में अङ्कित करके ध्यान करना चाहिए। भगवान् विष्णु उसी के ध्यान से प्रसन्न होकर मोक्ष तक प्रदान कर दिया करते हैं ॥ १४० ॥

अचञ्चलं मनः कुर्याद् ध्येयवस्तुनि सत्तम ।
ध्यानं ध्येयं ध्यातृभावं यथा नश्यति निर्भरम् ॥१४१
ततोऽमृतत्वं भवति ज्ञानामृतनिषेवणात् ।
भवेन्निरंतरं ध्यानादभेदप्रतिपादनम् ॥१४२
सुषुप्तिवत्परानन्दयुक्तश्चोपरतेन्द्रियः ।
निर्वातदीपवत्संस्थः समाधिरभिधीयते ॥१४३
योगीसमाधययस्थाया न शृणोति न पश्यति ।
न जिघ्रति न स्पृशति न किञ्चिद्वक्ति सत्तम ॥१४४
आत्मा तु निर्मलः शुद्धः सच्चिदानन्दविग्रहः ।
सर्वोपाधिविनिर्मुक्तो योगिना भात्यचञ्चलः ॥१४५
निर्गुणोऽपि परो देवो ह्यज्ञानाद् गुणवानिव ।
विभात्यज्ञाननाशे तु यथापूर्वं व्यवस्थितम् ॥१४६

पर ज्योतिरमेयात्मा मायावानिव मायिनाम् ।
तन्नाशे निर्मल ब्रह्म प्रकाशयति पण्डित ॥१४७

हे मुनिश्रेष्ठ ! ध्येय स्वरूप मे अपने चित्त को इस तरह से स्थिर करना चाहिए कि ध्येय—ध्यान और ध्याता ये तीनो त्रिपुटी एक रूप हो जावे और अन्यानुसन्धान कुछ भी न रहे ।। १४१ ।। इस विधि से ज्ञानामृत का पान करने से निश्चित रूप म अमृतत्व की प्राप्ति हो जाया करती है । निरन्तर ध्यान के करते रहने मे अभेद का पूर्णतया प्रतिपादन हो जाया करता है ॥ १४२ ॥ इस प्रकार स सुषुप्ति के सदृश परमानन्दा मन्दकी प्राप्ति करने समस्त इन्द्रियो को उपराम देकर वायु वर्जित स्थान मे दीपक की लौ की स्थिति के ही समान जो स्थिति हो जाया करती है उसी को समाधि कहा करते हैं ।। १४३ ॥ हे मुने ! योगी की उस समाधि की दशा मे ऐसी गति हो जाया करती है कि न तो वह कुछ सुनता है—न देखता ही है—न छूता है—न सूंघता है और न कुछ बोलता है ।। १४४ ॥ योगियो को उस समाधि की दशा मे परम शुद्ध–निर्मल–सर्वोपाधियो से युक्त स्थिर परमात्मा का भान होने लगता है ॥ १४५ ॥ निर्गुण होने पर भी परमात्मा अज्ञान का विनाश हो जाने पर वह पूर्ववत् भासने लगा करता है ॥ १४६ ॥ हे विद्वन् ! यह आत्मा परम ज्योतिर्मय स्वरूप वाला है। जो माया के जाल मे फँसे हुए हैं उनको यह मायाजाल जैसा भासित हुआ करता है । जब इस माया का संहार हो जाता है तो यह फिर परम निर्मल विशुद्ध ब्रह्म के रूप म प्रकाशमान दिखाई दिया करता है । ॥ १४७ ॥

एकमेवाद्वितीय च पर ज्योतिर्निरञ्जनम् ।
सर्वषामेव भूतानामन्तर्यामितया स्थितम् ॥१४८
अणोरणीयान्महतो महीयान्सनातनात्मा खिलविश्वहेतु ।
पश्यन्ति यज्ज्ञानविदा वरिष्ठा परात्परस्मात्परमपवित्रम् ॥१४९

अकारादिहकारांतवर्णभेदव्यवस्थितः ।
पुराणपुरुषोऽनादि शब्दब्रह्मे ति गीयते ॥१५०
विशुद्धमक्षरं नित्यं पूर्णमाकाशमध्यगम् ।
आनन्दं निर्मलं शांतं परं ब्रह्मेति गीयते ॥१५१
योगिनो हृदि पश्यन्ति परात्मानं सनातनम् ।
अविकारमजं शुद्धं परं ब्रह्मेति गीयते ॥१५२
ध्यानमन्यत्प्रवक्ष्यामि शृणुध्वं मुनिसत्तम ।
संसारतापतप्तानां सुधावृष्टिसमं नृणाम् ॥१५३
नारायणं परानन्दं स्मरेत्प्रणवसंस्थितम् ।
नादरूपमनौपम्यमर्द्धमात्रोपरि स्थितम् ॥१५४

परम ज्योतिर्मय-निर्मल और अद्वितीय ब्रह्म ही समस्त प्राणियों के अन्दर अन्तर्यामी के स्वरूप में अवस्थित है।१४८। वह परमात्मा अणु से भी अणु है और विशाल से भी विशाल है। वह समान ही इस सम्पूर्ण विश्व का कारण है, ज्ञानियों में परम श्रेष्ठ पुरुष ही उसके परम पवित्र परात्पर परात्मा के स्वरूप का दर्शन प्राप्त किया करते हैं ॥ १४९ ॥ जो अकार से आरम्भ करके हकार तक के वर्णों के रूप में स्थित रहता है वही अनादि पुराण पुरुष शब्द ब्रह्म कहा जाया करता है ॥ १५० ॥ जो विशुद्ध–अक्षर–नित्य–पूर्ण और हृदयाकाश के मध्य में विराजमान है उस आनन्दमय–निर्मल–परमशान्त परमात्मा का परब्रह्म के स्वरूप में सर्वत्र गान किया जाया करता है ॥१५१॥ जो सनातन परमात्मा *अजन्मा—विशुद्ध—निर्विकार और परब्रह्म के स्वरूप में* गाया जाता है उसी का योगी लोग अपने हृदय में दर्शन प्राप्त किया करते हैं ॥१५२॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! अब मैं इस संसार के महान् ताप से सन्तप्त पुरुषों के लिये सुधा की वर्षा के समान आनन्द प्रदान करने वाले भगवान् का एक और ध्यान का वर्णन कर रहा हूँ। उसको आप श्रवण करिये ॥१५३॥ प्रणव में विराजमान नाद स्वरूप–अनुपम–अर्धमात्रा के ऊपर

संहित—परमानन्द स्वरूप भगवान् श्री नारायण का ध्यान करना चाहिए ॥१५४॥

अकारं ब्रह्मणो रूपमुकारं विष्णुरूपवत् ।
मकारं रुद्ररूपं स्यादर्द्धं मात्रं परात्मकम् ॥१५५
मात्रास्तिस्र समाख्याता ब्रह्मविष्णुशिवाधिपा ।
तेषां समुच्चयं विप्र परब्रह्मप्रबोधकम् ॥१५६
वाच्यं तु परमं ब्रह्म वाचकः प्रणवः स्मृतः ।
वाच्यवाचकसम्बन्धो ह्युपचारस्तयोर्द्विज ॥१५७
जपन्तः प्रणवं नित्यं मुच्यन्ते भवपातकैः ।
तदभ्यासेन संयुक्ताः परं मोक्षं लभन्ति च ॥१५८
जपंश्च प्रणवं मन्त्रं ब्रह्मविष्णुशिवात्मकम् ।
कोटिसूर्यसमं तेजो ध्यायेदात्मनि निर्मलम् ॥१५९
शालग्रामशिलारूपं प्रतिमारूपमेव वा ।
यद्यत्पापहरं वस्तु तत्तद्वा चिन्तयेद् हृदि ॥१६०
यदेतद् वैष्णवं ज्ञानं कथितं ते मुनीश्वर ।
एतद्विदित्वा योगीन्द्रो लभते मोक्षमुत्तमम् ॥१६१
यस्त्वेतच्छृणुयाद्वापि पठेद्वापि समाहितः ।
स सर्वपापनिर्मुक्तो हरिसालोक्यमाप्नुयात् ॥१६२

इस ओङ्कार में अकार ब्रह्मा का रूप होता है–उकार विष्णु के स्वरूप वाला है और मकार रुद्रस्वरूप होता है। तथा अर्ध मात्रा परात्मक है ॥ १५५ ॥ इन तीनों मात्राओं के ब्रह्मा, विष्णु और शिव ये स्वामी होते हैं अर्थात् देवता हैं। हे विप्रवर! इन तीनों देवों का समुच्चय ही ॐ परब्रह्म का ज्ञापक हुआ करता है। इसीलिये प्रणव का सर्वोपरि स्थान सबत्र सबों के द्वारा माना गया है ॥ १५६ ॥ परब्रह्म वाच्य है और प्रणव अर्थात् ॐ उसका वाचक है। हे द्विजवर! उपचार से इन दोनों परब्रह्म और ओङ्कार में वाच्य–वाचक सम्बन्ध है ॥१५७॥

जो सदा प्रणव का जाप किया करते हैं वे समस्त महापापों से मुक्त हो जाया करते हैं और जो इसके जाप का अभ्यास किया करते हैं वे श्रेष्ठ मुक्ति को प्राप्त किया करते हैं ॥ १५८ ॥ ब्रह्मा-विष्णु-शिवात्मक इस प्रणव (ॐ) का जाप करता हुआ हृदय में करोड़ों सूर्य के सदृश तेज का ध्यान करना चाहिए ॥१५६॥ उस परम दिव्य तेज का शालग्राम की शिला के स्वरूप में किम्वा भगवान् की अन्य किसी प्रतिमा के रूप में या पापःपहारी अन्य किसी वस्तु के स्वरूप में हृदय में ध्यान करना चाहिए ॥१६०॥ हे मुनीश्वर ! मैंने यह आपके सामने वैष्णव ज्ञान का वर्णन करके सुना दिया है। इसका ज्ञान प्राप्त करके योगीन्द्र पुरुष परम उत्तम मोक्ष को प्राप्त किया करते हैं ॥१६१॥ जो कोई पुरुष इस विधि-विधान को सावधान चित्त होकर श्रवण किया करता है अथवा पढ़ता है वह सभी पापों से छुटकारा पाकर के अन्त समय में श्री हरि के परम धाम को अवश्य ही प्राप्त किया करता है—इसमें लेश मात्र भी संशय नहीं है ॥१६२॥



हरिभक्ति से दोनों लोकों में सुख की प्राप्ति

समाख्यातानि सर्वाणि योगङ्गानि महामुने ।
इदानीमपि सर्वज्ञ सम्पृच्छामि तदुच्यताम् ॥१
योगो भक्तिमतामेव सिध्यतीति त्वयोदितम् ।
यस्य तुष्यति सर्वेशस्तस्य भक्तिश्च शाश्वतम् ॥२
यथा तुष्यति सर्वेशो देवदेवो जनार्दन ।
तन्ममाख्याहि सर्वज्ञ मुने कारुण्यवारिधे ॥३
नारायणं परं देवं सच्चिदानन्दविग्रहम् ।
भज सर्वात्मना विप्र यदि मुक्तिमभीप्ससि ॥
रिपवस्तं न हिंसन्ति न बाधन्ते ग्रहाश्चतम् ।
राक्षसाश्च न चेक्षन्ते नरं विष्णुपरायणम् ॥

भक्तिर्दृढा भवेद्यस्य देवदेवे जनार्दने ।
श्रेयांसि तस्य सिध्यन्ति भक्तिमन्तोऽधिकास्ततः ॥६
पादौ तौ सफलौ पुंसा यौ विष्णुगृहगामिनौ ।
तौ करौ सफलौ ज्ञेयौ विष्णुपूजापरौ तु यौ ॥७

देवर्षि श्री नारदजी ने कहा—हे महामुने ! आपने योग के सम्पूर्ण भागों का विस्तृत वर्णन करके श्रवण कराने की अनुकम्पा की है। अब हे सर्वज्ञ ! मैं जो भी कुछ पूछना चाहता हूँ उसका भी वर्णन करके सुनाने की कृपा कीजिए ॥१॥ आपने यह कहा था जिन पुरुषों में भगवद्भक्ति हुआ करती है उन्हीं पुरुषों को योग की सिद्धि हुआ करती है। उसी पर सर्वेश्वर भगवान् की प्रसन्नता हुआ करती है। उसको ही सर्वदा के लिये भक्ति भी प्राप्त हुआ करती है ॥ २ ॥ हे सबके ज्ञाता मुनिवर ! आप तो करुणा के सागर हैं। अब मुझे आप कृपा कर यही बतलाइये कि वे सर्वेश्वर देवों के भी देव जनार्दन भगवान् जिस रीति से परम सन्तुष्ट होते हैं उसी विधि की क्या रीति है ? ॥ ३ ॥ श्री सनकाचार्य ने इस प्रकार से नारदजी के द्वारा पूछने पर उत्तर दिया कि हे विप्रवर ! यदि मुक्ति की कामना हो तो सच्चिदानन्द श्रीनारायण देवेश्वर का अनन्य भाव से ही भजन करना चाहिए ॥ ४ ॥ जो मनुष्य भगवान् विष्णु का सच्चा भक्त होता है उसको कोई भी शत्रु पीड़ा नहीं दे सकते हैं—दुष्टग्रह मार नहीं सकते हैं और राक्षस उसको नेत्र उठाकर देखने की भी हिम्मत नहीं कर सकते हैं ॥ ५ ॥ जिस पुरुष की देवाधिदेव जनार्दन भगवान् में सुदृढ़ भक्ति होती है उसके समस्त श्रेय सिद्ध हो जाया करते हैं। यही कारण है कि भक्त सबसे अधिक माने जाया करते हैं ॥ ६ ॥ पुरुषों के चरण जो विष्णु भगवान् के मन्दिर की ओर जाया करते हैं—यही उनकी सफलता होती है और जो हाथ भगवान् विष्णु का अर्चन किया करते हैं यही उन करों के पाने की सार्थकता होती है ॥ ७ ॥

ते नेत्रे सुफले पुंसा पश्यतो ये जनार्दनम् ।
सा जिह्वा प्रोच्यते सद्भिर्हरिनामपरा तु या ॥८
सत्यं सत्यं पुनः सत्यमुद्धृत्य भुजमुच्यते ।
तत्त्वं गुरुसमं नास्ति न देवः केशवात्परः ॥९
सत्यं वच्मि हितं वच्मि सारं वच्मि पुनः पुनः ।
असारेऽस्मिंस्तु संसारे सत्यं हरिसमर्चनम् ॥१०
संसारपाशं सुदृढं महामोहप्रदायकम् ।
हरिभक्तिकुठारेण छित्त्वात्यंतसुखी भव ॥११
तन्मनः संयुतं विष्णौ सा वाणी यत्परायणा ।
ते श्रोत्रे तत्कथासारपूरिते लोकवंदिते ॥१२
आनन्दमक्षरं शून्यमवस्थात्रितयैरपि ।
आकाशमध्यगं देवं भज नारद सततम् ॥१३
स्थानं न शक्यते यस्य स्वरूपं वा कदाचन ।
निर्देष्टुं मुनिशार्दूल द्रष्टुं वाप्यकृतात्मभिः ॥१४

मनुष्य जिन नेत्रों से भगवद्विग्रह का दर्शन प्राप्त किया करते हैं उन नेत्रों की यह सफलता है अर्थात् नेत्र पाने का पूर्ण लाभ वे प्राप्त कर लिया करते हैं। श्रीहरि के परम पावन नामों का उच्चारण जो जिह्वा किया करती है उस जीभ के प्राप्त होने की यही परम सफलता होती है ॥ ॥ सत्य और परम सत्य और भुजा उठाकर यह सर्वथा सत्य बात पुनः कही जाती है कि गुरुदेव के समान कोई तत्त्व नहीं है और भगवान् केशव से पर कोई भी देवता नहीं है ॥ ९ ॥ मैं बिल्कुल सत्य बात कह रहा हूँ और परम हित की बात कहता हूँ और बारम्बार परम तत्त्व को खोज करके यह कह रहा हूँ कि असार संसार में केवल श्रीहरि भगवान् का अर्चन–स्मरण ही सत्य है अन्य सब मिथ्या है ॥१०॥ इस परम घोर संसार का पाश बहुत दृढ़ होता है और यह महामोह के जाल में डाल दिया करता है। इसको छेदन श्रीहरि भगवान् की भक्ति-

भाव रूपी कुठार से ही किया जा सकता है। अतएव उसी का यथाशय ग्रहण करके सुखी होना चाहिए ॥११॥ उसी मन की सार्थकता है जो भगवान् विष्णु के चरणों की भक्ति में लगा करता है—जो भगवान् के ही गुणानुवाद कीर्तन के रस का समास्वादन किया करती है वही वाणी सफल होती है। वे ही कान सफल हैं जिनमें भगवत्कथा का स्वर भरता रहा करता है और वे ही कान प्रशंसा करने के योग्य हुआ करते हैं ॥१२॥ हे नारद ! जो देवाधिदेव आनन्द स्वरूप हैं—जो जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति इन तीनों अवस्थाओं से शून्य हैं अर्थात् ये तीनों ही दशाऐं उनका स्वरूप नहीं हैं उन्हीं भगवान को अपने हृदयाकाश के मध्य में विराजमान समझकर सवदा उनका ध्यान, स्मरण और यजन करना चाहिए ॥१३॥ हे मुनिशार्दूल ! अकृतात्मा पुरुष कभी भी उन भगवान् के स्वरूप तथा स्थान का ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकते हैं और न उनका दिव्य दर्शन ही उनको मिल सकता है ॥१४॥

समस्तैः करणैर्मुक्तो वर्ततेऽसौ यदा यदा ।
जाग्रदित्युच्यते ह्यद्भिरन्तर्यामी सनातन ॥१५
तदान्त करणैर्मुक्त स्वेच्छया विचरत्यसौ ।
स्वप्नमित्युच्यते ह्यात्मा यदा स्वापविवर्जित ॥१६
न वाह्यकरणैर्मुक्तो न चान्त करणैस्तथा ।
अस्वरूपो यदाऽस्मासौ पुण्यापुण्यविवर्जित ॥१७
सर्वोपाधिविनिर्मुक्तो ह्यानन्दो निर्गुणो विभु ।
परब्रह्ममयो देव सुषुप्त इति गीयते ॥१८
भावनामयमेतद्धि जगत्स्थावरजङ्गमम् ।
विद्युद्विलोल विप्रेन्द्र भज तस्माज्जनार्दनम् ॥१९
अहिंसा सत्यमस्तेय ब्रह्मचर्यापरिग्रहौ ।
चरन्ति यत्र तस्यैव तुष्यत्यभगवान्हरि ॥२०
सर्वभूतदयायुक्तो विप्रपूजापरायण ।

तस्य तुष्टो जगन्नाथो मधुकैटभमर्द्दनः ॥२१

जिस समय में यह सनातन अन्तर्यामी प्रभु समस्त करणों से युक्त होते हुए भी बरताव किया करता है तभी सत्पुरुष इनको जाग्रत कहा करते हैं ॥१५॥ जिस समय में वह आत्मा अन्तःकरण से युक्त होकर अपनी इच्छा के अनुसार विचरण किया करते हैं उस समय में इनको सुषुप्ति में रहने वाले कहा जाया करता है। जिस समय में स्वापरहित होकर न तो वाह्यकरणों से युक्त होते हैं और न अन्तःकरणों से युक्त होते हैं तथा स्वरूप से रहित और पुण्यापुण्य से भी रहित होते हैं तब यह समस्त उपाधियों से शून्य आनन्दमय-निर्गुण प्रभु परब्रह्ममय, देव सुषुप्त हैं—ऐसा इनको कहा जाया करता है ॥१८॥ हे विप्रवर! यह सम्पूर्ण जगम और स्थावर (चराचर) भावनामय है तथा विद्युत वत् परमार्थिक अस्थायी एवम् चञ्चल है अतएव इसमें समुत्पन्न होकर भगवान् जनार्दन का ही भजन करना चाहिए।१६। जिस मनुष्य में सत्य अहिंसा अस्तेय ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये सद्गुण विद्यमान हुआ करते हैं उसी पर जगन्नाथ प्रभु पूर्ण रूप से प्रसन्न हुआ करते हैं ॥२०॥ जो प्राणीमात्र पर दया पूर्ण व्यवहार किया करता है और विप्रों का अर्चन करने में सदा प्रस्तुत रहा करता है उसी पर मधुकैटभ दैत्यों के मर्दन करने वाले जगत् के पति प्रसन्न हुआ करते हैं ॥२१॥

सत्कथायां च रमते सत्कथां च करोति यः ।
सत्सङ्गो निरहङ्कारस्तस्य प्रीतो रमापतिः ॥२२
नामसङ्कीर्त्तनं विष्णोः क्षुत्तृट्प्रस्खलितादिषु ।
करोति सततं यस्तु तस्य प्रीतो ह्यधोक्षजः ॥२३
या तु नारी पतिप्राणा पतिपूजापरायणा ।
तस्यास्तुष्टो जगन्नाथो ददाति स्वपदं मुने ॥२४
असूयारहिता ये तु ह्यहङ्कारविवर्जिताः ।
देवपूजापराश्चैव तेषां तुष्यति केशवः ॥२५

तस्मात्त्वृणुष्व देवर्षे भजस्व सततं हरिम् ।
मा कुरुष्व ह्यहंकारं विद्युल्लोलश्रिया वृथा ॥२६
शरीरं मृत्युसंयुक्तं जीवितं चातिचञ्चलम् ।
राजादिभिर्धनं बाध्यं सम्पदः क्षणभङ्गुराः ॥२७
किं न पश्यसि देवर्षे ह्यायुषार्द्धं तु निद्रया ।
हृतं च भोजनाद्यैश्च कियदायुः समाहृतम् ॥२८

जो अनवरत सत्कथाओं का आनन्द लिया करता है तथा स्वयं भी अच्छी २ कथाओं का कथन किया करता है—सदा अहङ्कार से रहित होते हुए सत्पुरुषों को नमन किया करता है उसी जीवात्मा पर भगवान् को पूर्ण प्रसन्नता हुआ करती है ।२२। जो क्षुधा और पिपासा आदि भगवद्भजन में बाधक होते हैं उनके रहते हुए भी भगवान के परम पावन नामों का कीर्त्तन एवं स्मरण बराबर करता रहता है उसी पर भगवान् विष्णु परम प्रसन्न हुआ करते हैं ॥२३॥ हे मुनिवर ! जो स्त्री अपने पूज्य पति को प्राण के समान समझती हुई सदा पतिदेव की पूजा में तत्पर रहा करती है जगत् के स्वामी प्रभु उसी पर परम प्रसन्न होकर अपना पद अन्त में उसे देदिया करते हैं ॥२४॥ जिसमें दूसरों के ऐश्वर्य को देखकर जलन-कुढ़न नहीं होती है एवं अहंकार का लेश मात्र भी नहीं होता है तथा ऐसा अपना जीवन बनाकर जो सदा देवार्चन में निरत रहा करता है केशव प्रभु उसी पर परम सन्तुष्ट होते हैं ।२५। हे देवर्षे ! अतएव यह भली भाँति सुनकर समझलो यह लक्ष्मी का विलास बिजली के ही समान अत्यन्त चञ्चल एवं अस्थिर है—इस पर कभी भी व्यर्थ अभिमान नहीं करना चाहिए और सर्वदा श्रीहरि भगवान् की सेवा करनी चाहिए ।।२६।। यह शरीर मौत का शिकार ही अवश्य होता है अतः यह मानव जीवन स्वल्प समय तक रहने वाला और चपल होता है—न मालूम कब समाप्त हो जावे—इसका कुछ भी पता नहीं है—यह प्राप्त धन जो भी है उस पर राजा आदि जब चाहें बाधा डाल सकता है और

सम्पत्तियाँ क्षणभंगुर हुआ करती हैं इनकी स्थिरता पर कुछ भी विश्वास नहीं करना चाहिए ।।२७।। हे देवर्षे ! आप भी तो स्वयं देखा ही करते हैं—यह प्राप्त आयु का आधा भाग तो रात्रि में निद्रा करके ही नष्ट कर दिया जाया करता है। इसके अतिरिक्त आयु का कुछ भाग अपने भोजनादि के कार्यों में समाप्त हो जाया करता है ।।२८।।

कियदायुर्बालभावाद् वृद्धभावात्कियद्वृथा ।
कियद्विषयभोगैश्च यदा धर्मान्करिष्यति ।।२९
बालभावे च वार्द्धक्ये न घटेताच्युतार्चनम् ।
वयस्येव ततो धर्मान्कुरु त्वमनहङ्कृत ।।३०
मा विनाशं व्रज मुने मग्न संसारगह्वरे ।
वपुर्विनाशनिलयमापदां परमं पदम् ।।३१
शरीरं भोगनिलयं मलाद्यैः परिदूषितम् ।
किमर्थं शाश्वतधिया कुर्यात्पापं नरो वृथा ।।३२
असारभूते संसारे नानादुःखसमन्विते ।
विश्वासो नात्र कर्त्तव्यो निश्चितं मृत्युसंकुले ।।३३
तस्माच्छृणुष्व विप्रेन्द्र सत्यमेतद्ब्रवीम्यहम् ।
देहयोगनिवृत्त्यर्थं सद्य एव जनार्दनम् ।।३४
मानं त्यक्त्वा तथा लोभं कामक्रोधविवर्जित ।
भजस्व सततं विष्णुं मानुष्यमतिदुर्लभम् ।।३५

आयु का बहुत सा भाग बचपन की अज्ञानावस्था के कारण खेल कूद में तथा वृद्धता की अशक्तावस्था से अकर्मण्यता से व्यर्थ ही समाप्त हो जाया करता है। आयु का अत्यधिक हिस्सा सांसारिक विषयों के सुखोपभोगों में क्षीण होजाया करता है फिर धर्म कृत्यों का अनुष्ठान किया कब जाता है और कितना थोड़ा-सा समय उनके लिए बचता है ।।२९।। बचपन में और बुढ़ापे में तो भगवद्भजन का बनना ही अति कठिन होता है। अतएव आपको अहङ्कार का त्याग कर -

यौवन की अवस्था ही मे भगवान् का भजन करना चाहिए ॥३०॥ हे मुनिवर ! आप इस ससार के गर्त्त मे पडकर विनाश को प्राप्त मत होवें। यह मानव देह तो विनाश का ही घर बना हुआ है ॥३१॥ यह शरीर तो मलादि से महान् दूषित रहा करता है फिर भी विषयों के भोग से इसका विनाश अति शीघ्र हो जाया करता है। मनुष्य आप ही इसको निरन्तर बचा रहने वाला समझ कर पाप कर्मों मे क्यो रत रहा करता है ? ॥ ३२ ॥ यह ससार तो नाना भांति के घोरातिघोर दु खो से भरा रहा करता है और यह सार रहित है। इसका तनिक भी विश्वास नहीं करना चाहिए क्योकि इसमे मौत सदा सामने खड़ी रहा करती है ॥ ३३ ॥ अतएव हे विप्रवर ! आप सुनिये मैं बिल्कुल सत्य २ कह रहा हूँ— इस देह-प्राप्ति की निवृत्ति के लिये लोभ-मोह मान और काम क्रोध आदि का पूर्ण तथा परित्याग करके शीघ्रातिशीघ्र ही भगवान जनार्दन प्रभु का भजन करना चाहिए क्योंकि यह मानव जीवन का अत्युत्तम समय निकल जाने पर पुन मनुष्य जीवन प्राप्त करना महान दुर्लभ है ॥३४॥३५॥

कोटिजन्मसहस्रे पु स्थावरादिषु सत्तम ।
सम्भ्रातस्य तु मानुष्य कथञ्चित्परिलभ्यते ॥३६
तत्रापि देवतावुद्धिर्दानबुद्धिश्च सत्तम ।
भागबुद्धिस्तथा नृ णा जन्मान्तरतप फलम् ॥३७
मानुष्य दुर्लभ प्राप्य यो हरि नार्चयत्सकृत् ।
मूर्ख कोऽस्ति परस्तस्माज्जडबुद्धिरचेतन ॥३८
दुर्लभ प्राप्य मानुष्य नार्चयन्ति च ये हरिम् ।
त ।मतीव मूर्ख णा विवक कुत्र तिष्ठति ॥३६
आराधितो जगन्नाथो ददात्यभिमत फलम् ।
कस्त न पूजयेद्विप्र ससाराग्निप्रदीपित ॥४०
चण्डालोऽपि मुनिश्र ष्ठ विष्णुभक्तो द्विजाधिक ।

विष्णुभक्तिविहीनश्च द्विजोऽपि श्वपचाधमः ॥४१
तस्मात्कामादिकं त्यक्त्वा भजेत हरिमव्ययम् ।
यस्मिंस्तुष्टेऽखिलं तुष्येद्यतः सर्वगतो हरिः ॥४२

हे मुनिवर ! करोड़ो स्थावर आदि में जन्म पाते २ कहीं अत्यन्त ही कठिनाई से कभी २ यह मानव जन्म प्राप्त हुआ करता है ॥ ३६ ॥ हे परम श्रेष्ठ ! इसको पाकर भी देवों में बुद्धि का लगाना तथा दान देने में बुद्धि का होना और भोगों से दूर रहना दूसरे जन्मों के सञ्चित तप एवं पुण्य का ही फल हुआ करता है ॥ ३७ ॥ जो इस परम दुर्लभ मनुष्य का जीवन पाकर भी श्री हरि के पूजन में एक बार भी अपना योग नहीं दिया करता है वह महान् जड़ एवं अचेतन ही है । इससे अधिक कौन महामूढ़ होगा जो ऐसा स्वर्ण अवसर पाकर भी इस मानव जीवन जैसे उत्तम समय को निरर्थक ही खो दिया करता है ॥ ३८ ॥ जो पुरुष इस परम दुर्लभ मानव शरीर को पाकर भी श्री हरि का पूजन एवं भजन नहीं किया करते हैं उन वज्र मूर्खों का विवेक न मालूम कहाँ चला जाया करता है जो कि इसको यों ही गँवा दिया करते हैं ॥ ३९ ॥ जगत् के स्वामी प्रभु आराधना करने पर सभी मनोवाञ्छित पदार्थों का प्रदान किया करते हैं । हे विप्र ! फिर बताइये, इस संसाराग्नि से सन्तप्त होकर भी कौन पुरुष है जो उनका पूजन नहीं करेगा ? ॥ ४० ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! भगवान् की भक्ति का बड़ा अधिक महत्व है । जो विष्णु भक्त चाण्डाल भी है वह भक्तिशून्य द्विज से बड़ा उत्तम माना जाया करता है । जो विष्णु की भक्ति से शून्य द्विज भी है वह श्वपच से भी गया बीता प्राणी हुआ करता है ॥ ४१ ॥ अतएव मनुष्य का परम कर्त्तव्य यही है कि कामादि की दूषित वासनाओं का परित्याग कर अच्युत श्री हरि भगवान् का सर्वदा अर्चन भजन और स्मरण करना चाहिए । भगवान् प्रसन्न होने पर सभी सन्तुष्ट हो जाया करते हैं क्योंकि भगवान् सबमें व्यापक रहा करते हैं ॥४२॥

यथा हस्तिपदे सर्वं पदमात्रं प्रलीयते ।
तथा चराचरं विश्वं विष्णावेव प्रलीयते ॥४३
आकाशेन यथा व्याप्तं जगत्स्थावरजंगमम् ।
तथैव हरिणा व्याप्तं विश्वमेतच्चराचरम् ॥४४
जन्मनो मरणं नृणां जन्म वै मृत्युसाधनम् ।
उभे ते निकटे विद्धि तन्नाशो हरिसेवया ॥४५
ध्यातः स्मृतः पूजितो वा प्रणतो वा जनार्दनः ।
संसारपाशविच्छेदी कस्तं न प्रतिपूजयेत् ॥४६
यन्नामोच्चारणादेव महापातकनाशनम् ।
यं समभ्यर्च्य विप्रेंद्र मोक्षभागी भवेन्नरः ॥४७
अहो चित्रमहो चित्रमहो चित्रमिदं द्विज ।
हरिनाम्नि स्थिते लोकः संसारे परिवर्तते ॥४८
भूयोभूयोऽपि वक्ष्यामि सत्यमेतत्तपोधन ।
नीयमानो यमभटैरशक्तो धर्मसाधने. ॥४९

जिस तरह से हाथी के चरण का चिन्ह इतना विशाल होता है कि उस खोज में सभी जीवों और पशुओं के पद चिह्न समा जाया करते हैं उसी प्रकार से चराचर सम्पूर्ण विश्व एक विष्णु में ही आ जाया करता है ॥ ४३ ॥ जिस तरह यह जङ्गम स्थावर स्वरूप जगत् आकाश में व्याप्त रहा करता है उसी भाँति यह सम्पूर्ण चराचर विश्व श्री हरि में व्याप्त होता है ॥ ४४ ॥ मनुष्यों के जन्म धारण करने का कारण मृत्यु है और यह जन्म मृत्यु का साधक हुआ करता है क्योंकि जिसने जन्म प्राप्त किया है उसकी मृत्यु अवश्यम्भावी एवं निश्चित है। इन दोनों को समीप में ही समझना चाहिए। इस जन्म मरण में बड़े भारी झंझटों को सहना पड़ता है। इनका विनाश श्री हरि के सेवन से उनकी कृपा एवं प्रसन्नता होने पर ही सकता है और अन्य इनसे छुटकारा प्राप्त करने का कोई भी साधन इस जगत् में नहीं है ॥४५॥

भगवान् जनार्दन तो परम कारुणिक हैं। जीवात्मा का थोड़ा सा भी रुझान उस ओर सच्चे हृदय से होता है तो वे स्वल्प से ही ध्यान-स्मरण-पूजन और नमन करने पर ही प्रसन्न होकर इस संसार की फांसी का छेदन कर दिया करते हैं। ऐसे परम दयालु भगवान् का पूजन कौन नहीं करेगा ? ॥४६॥ भगवान् के परम पावन नामोच्चारण की बड़ी भारी महिमा है। भगवान् के नाम के केवल उच्चारण करने ही में मनुष्य मोक्ष जैसे उत्तम पदके प्राप्त करने का अधिकारी हो जाया करता है ॥ ४७ ॥ हे द्विजवर ! बड़े ही आश्चर्य की बात तो यह है कि ऐसे महिमामय श्री हरि के शुभ नाम के रहते हुए भी लोग इस संसार के चक्र में भ्रमण किया करते हैं ॥ ४८ ॥ हे तपोधन ! मैंने इसी बात को बारम्बार स्पष्ट रूप से कहा है और अब भी कह रहा हूँ और यह परम ध्रुव सत्य है कि यदि मनुष्य धर्म का साधन करेगा तो यम के दूत उसे ले जाने में असमर्थ ही रहेंगे ॥४९॥

यावन्नेन्द्रियवैकल्य या वद्व्याधिर्न बाधते ।
तावदेवार्चयेद्विष्णु यदि मुदितममीप्सति ॥५०
मातुर्गर्भाद्विनिष्क्रान्तो यदा जन्तुस्तदैव हि ।
मृत्यु सनिहितो भूयात्तस्माद्धर्मपरो भवेत् ॥५१
अहो कष्टमहो कष्टमहोकष्टमिद वपु ।
विनश्वर समाख्याय धर्म नैवाचरत्ययम् ॥५२
सत्य सत्य पुन सत्यमुद्धृत्य भुजमुच्यते ।
दम्भाचार परित्यज्य वासुदेव समर्चयेत् ॥५३
भूयो भूयो हित वच्मि भुजमुद्धृत्य नारद ।
विष्णु सर्वात्मना पूज्यस्त्याज्यासूया तथानृतम् ॥५४
क्रोधमूलो मनस्ताप क्रोधं ससारबन्धनम् ।
धर्मक्षयकर क्रोधस्तस्मात्त परिवर्जयेत् ॥५५
काममूलमिद जन्म काम पापस्य कारणम् ।

यश क्षयकर कामस्तस्मात्त परिवर्जयेत् ॥५६

यदि मनुष्य मुक्ति चाहता है तो इन्द्रियों में विवशता आने से पूर्व ही रोगों के जाल में फँसने से पूर्व ही भगवान विष्णु का पूजन कर लेना चाहिए ॥५०॥ जिस समय में यह प्राणी अपनी माता के गर्भोदर से बाहिर आता है उसी समय में यह मृत्यु उसके पीछे २ हो लिया करती है। अतएव धर्मों का समाचरण अवश्य ही मनुष्य को करना चाहिए ॥५१॥ ओहो ! बहुत ही कष्ट की बात तो यह है कि यह शरीर सर्वदा नहीं रहेगा और नाशवान् है तथा इसका नाश किस समय हो जायगा यह भी पता नहीं है क्योंकि यह क्षण में भंगुर हो जाने वाला है—यह सब कुछ जान कर भी प्राणी धर्मों का आचरण न करके विषयों में ही उलझा रहा करता है।५६। मैं अपनी भुजा उठा कर इस परम सत्य बात का उद्घोष करता हूँ कि प्राणियों का यही परम कर्तव्य है कि दम्भाचार का त्याग करके भगवान वासुदेव प्रभु का अर्चन करना चाहिए ।५३। हे नारद ! मैं अपनी भुजा उठा कर बारम्बार प्राणियों के परम हित की बात कह रहा हूँ कि अपने जीवन में मनुष्य को सभी तरह से भगवान् विष्णु का पूजन करना चाहिए और असूया तथा असत्य का सर्वथा परित्याग करना चाहिए ।५४। क्रोध बड़ी भारी बला है इसका त्याग करना परमावश्यक है। क्रोध करने से तन में सन्ताप हो जाया करता है। क्रोध से संसार के बन्धनों में बद्ध हो जाना पड़ता है। क्रोध धर्म का पूर्णतया क्षय कर दिया करता है अतएव इस क्रोध रूपी महान् दुर्गुण का त्याग अवश्य ही कर देना चाहिए ॥५५॥ यह देह काम (वासना) का मूल है और यह काम पापों का कारण होता है तथा सुयश का भी नाशक है अतएव इसका त्याग भी कर देना चाहिए ॥५६॥

समस्तदुःखजालानां मात्सर्यं कारणं स्मृतम् ।
नरकाणां साधनं च तस्मात्तदपि संत्यजेत् ॥५७

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः ।
तस्मात्तदभिसंयोज्य परात्मनि सुखी भवेत् ।।५८
अहो धैर्यमहो धैर्यमहो धैर्यमहो नृणाम् ।
विष्णौ स्थिते जगन्नाथे न भजति मनोद्धता ।।५६
अनाराध्य जगन्नाथं सर्वधातारमच्युतम् ।
संसारसागरे मग्नाः कथं पारं प्रयाति हि ।।६०
अच्युतानंतगोविन्दनामोच्चारणभेषजात् ।
नश्यन्ति सकला रोगा सत्यं सत्यं वदाम्यहम् ।।६१
नारायण जगन्नाथ वासुदेव जनार्दन ।
इतीरयन्ति ये नित्यं ते वै सर्वत्र वन्दिता ।।६२
अद्यापि च मुनिश्रेष्ठ ब्रह्माद्या अपि देवता ।
यत्प्रभावं न जानन्ति तं याहि शरणं मुने ।।६३

मात्सर्य सभी क्लेशों का कारण है, इसको नरकों का साधन बताया गया है। अतएव मत्सरता को जो त्याग देना चाहिये ।।५७।। यह मन ही एक ऐसा प्रबल है कि इसी में सब दुर्गुण आकर बैठ जाया करते हैं और यही एक मात्र बन्धन तथा मोक्ष का कारण होता है। अतएव इसको सब ओर से हटाकर भगवान के चरणों में लगा देना ही परम पुरुषार्थ है। तभी सुख की प्राप्ति होती है ।।५८।। मुझे इस महा मूढ मानव के धैर्य पर बड़ा भारी आश्चर्य होता रहता है कि यह ऐसा मदोद्धत बना रहा करता है कि परम दयालु प्रभु के होने पर भी उनके भजन करने का उसको कभी ध्यान ही नहीं होता है तथा अहर्निश इसी दुनियादारी में डूबा रहा करता है ।।५६।। सब जगत् के धाता भगवान अच्युत की आराधना किये बिना इस महा घोर संसार सागर से कैसे पार लग सकता है ।।६०।। मैं यह परम सत्य कहता हूँ कि अच्युत, अनन्त और गोविन्द इन भगवन्नामों की भक्ति पूर्वक उच्चारणरूपी औषध से सभी रोग और बाधायें विनष्ट हो जाया

करते हैं। ॥६१॥ जो प्राणी सर्वदा नारायण, जगन्नाथ, वासुदेव, जनार्दन, इस तरह से भगवान के नामों का उच्चारण किया करते हैं वे सर्वत्र प्रशंसा के पात्र हुआ करते हैं ॥६२॥ हे मुनिवर! ब्रह्मादिक देवगण भी अभी तक जिनके प्रभाव का पार नहीं प्राप्त कर सके हैं उनकी शरण ग्रहण करनी चाहिये ॥६३॥

अहो मौढ्यमहो मौढ्यमहो मौढ्यं दुरात्मनाम्।
हृत्पद्मसंस्थितं विष्णुं न विजानन्ति नारद ॥६४
शृणुष्व मुनिशार्दूल भूयो भूयो वदाम्यहम्।
हरिः श्रद्धावता तुष्येन्न धनैर्न च बान्धवैः ॥६५
बन्धुमत्त्वं धनाढ्यत्वं पुत्रवत्त्वं च सत्तम।
विष्णुभक्तिमतां नृणां भवेज्जन्मनि जन्मनि ॥६६
पापमूलमयं देहः पापकर्मरतस्तथा।
एतद्विदित्वा सततं पूजनीयो जनार्दनः ॥६७
पुत्रमित्रकलत्राद्या बहवः स्युश्च संपदः।
हरिपूजारतानां तु भवन्त्येव न संशयः ॥६८
इहामुत्र सुखप्रेप्सुः पूजयेत्सततं हरिम्।
इहामुत्रासुखप्रेप्सुः परनिन्दापरो भवेत् ॥६९
धिग्जन्म भक्तिहीनानां देवदेवे जनार्दने।
सत्पात्रदानशून्यं यत्तद्धनं धिक्पुनः पुनः ॥७०

हे नारद! इन दुष्ट जीवों की मूढ़ता पर विचार करो कि भगवान विष्णु अन्तर्यामी सदा सबके हृदय कमल में विराजमान रहा करते हैं तो भी यह दुर्भाग्यवश उनका ज्ञान नहीं किया करते हैं ॥६४॥ हे मुनि शार्दूल! आप कान खोल कर सुन लीजिए। मैं जोर देकर कहता हूँ कि भगवान सदा श्रद्धा रखने वालों से ही प्रसन्न रहा करते हैं। वे धन दौलत और बन्धु बांधवों को देख कर कभी प्रसन्न नहीं हुआ करते हैं ।६५। हे वद्य प्रवर जो भगवान के भक्त होते हैं वे सभी

जन्मों में पुत्रों और बन्धुओं से युक्त हुआ करते हैं तथा धनवान भी होते हैं ।। ६६ ।। यह देह पापों का मूल है क्योंकि इसकी उत्पत्ति ही पाप से होती है । यह सदा पाप कर्मों में ही परायण रहा करता है । इसका कारण यह है कि यही सब विचार कर उद्धार और सद्गति के लाभ के लिये भगवान का पूजन करना चाहिए ।।६७।। जो भगवान के पूजन में सबका त्याग कर निरत रहा करते हैं उनके पास तो पुत्र मित्रादि और विविध सम्पदायें स्वतः ही आकर एकत्रित हो जाया करती हैं ।।६८।। इसीलिए जो इस लोक और परलोक दोनों में सुख की चाह रखता है उसे सबका त्याग कर केवल श्री हरि का ही पूजन करना चाहिए । जो परब्रह्म प्रभु की निन्दा किया करता है उसको न तो यहां कोई सुख प्राप्त होता है और न तो परलोक में ही उसको सुख मिला करता है ।।६९।। जो मनुष्य देवाधिदेव जनार्दन प्रभु की भक्ति से हीन है उसके इस जीवन को ही धिक्कार है और जो विपुल वैभव प्राप्त करके भी किसी सुपात्र को दान के काम में उसका विनियोग नहीं किया करता है उस धन को भी धिक्कार ही है ।।७०।।

न नमेद्विष्णवे यस्य शरीरं कर्म भेदिने ।
पापानामाकरं तद्वै विज्ञेयमुनिसत्तम ।।७१
सत्पात्रदानरहितं यद्द्रव्यं येन रक्षितम् ।
चौर्येण रक्षितमिव विद्धि लोकेषु निश्चितम् ।।७२
तडिल्लोलश्रिया मत्ता क्षणभंगुरशालिनः ।
नाराधयन्ति विश्वेशं पशुपाशविमोचकम् ।।७३
सृष्टिस्तु द्विविधा प्रोक्ता दैवासुरविभेदतः ।
हरिभक्तियुता दैवी तद्धीना ह्यासुरो मता ।।७४
तस्माच्छृणुष्व विप्रेन्द्र हरिभक्तिपरायणाः ।
श्रेष्ठाः सर्वत्र विख्याता यतो भक्तिः सुदुर्लभा ।।७५
असूयारहिता ये च विप्रत्राणपरायणाः ।

कामादिरहिता ये च तेषां तुष्यति केशव ॥७६
समार्जनादिना ये तु विष्णुशुश्रूषणे रता ।
सत्पात्रदानमिरता प्रयाति परमं पदम् ॥७७

हे मुनिश्रेष्ठ ! जिसका शरीर कर्मभेद करने वाले भगवान विष्णु के लिये नहीं झुकता है उसको पापो की ही खान समझना चाहिये ॥७१॥ जो किसी सत्पात्र को दान न देकर उस धन की रक्षा किया करते हैं उस धन को चोर चुराकर ले जाया करते हैं ॥७२॥ जो क्षण-भंगुर मानव विद्युत् की दमक के समान स्वल्प काल तक रहने वाली लक्ष्मी के मद में उन्मत्त होकर अज्ञता के पाश को काटने वाले भगवान की समाराधना नहीं किया करते हैं वे महान् मूर्ख होते हैं। दैवी और आसुरी के भेदों से यह सृष्टि दो तरह की हुआ करती है। जो श्रीहरि भगवान की भक्ति किया करते हैं उनकी सृष्टि दैवी कही जाया करती है। जो हरि की भक्ति से हीनों की सृष्टि होती है वह आसुरी सृष्टि कही जाती है॥७४॥ हे विप्रेन्द्र ! जो श्री हरि भगवान की भक्ति में परायण होते हैं वे ही श्रेष्ठ जन सर्वत्र प्रसिद्धि प्राप्त किया करते हैं क्योंकि यह भगवद्भक्ति परम दुर्लभ वस्तु होती है ॥ ७५ ॥ जिन मानवों में कामादि दोषों का अभाव होता है और असूया नहीं रहा करती है तथा जो विप्रो के पालन तथा अर्चन में तत्पर रहा करते हैं उन्हीं पर भगवान परम प्रसन्न होजाया करते हैं ॥७६॥ जो भगवान् के मन्दिर में सम्मार्जन करने की सेवा करते हैं और भगवान् विष्णु की सेवा में तत्पर रहा करते हैं वे निश्चित रूप से परम पद का प्राप्त किया करते हैं॥७७॥

॥ वेदमालिका उपाख्यान ॥

पुनर्वक्ष्यामि माहात्म्य देवदेवस्य चक्रिणः ।
पठतां शृण्वतां सद्य पापराशि प्रणश्यति ॥०
शान्ता जितारिषड्वर्गा योगेना ।

यजन्ति ज्ञानयोगेन ज्ञानरूपिणमव्ययम् ।।२
तीर्थस्नानैर्विशुद्धा ये व्रतदानतपोमखैः ।
यजन्ति कर्मयोगेन सर्वधातारमच्युतम् ।।३
लुब्धा व्यसनिनोऽज्ञाश्च न यजन्ति जगत्पतिम् ।
अजरामरवन्मूढास्तिष्ठन्ति नरकीटकाः ।।४
तडिल्लेखाश्रिया मत्ता वृथाहङ्कारदूषिताः ।
न यजन्ति जगन्नाथं सर्वश्रेयोविधायकम् ।।५
हरिधर्मरताः शान्ता हरिपादाब्जसेवकाः ।
दैवात्केऽपीह जीयन्ते लोकानुग्रहतत्पराः ।।६
कर्मणा मनसा वाचा यो यजेद्भक्तितो हरिम् ।
स याति परमं स्थानं सर्वलोकोत्तमोत्तमम् ।।७

श्री सनकाचार्यजी ने कहा—हे नारद ! अब मैं देवाधिदेव सुदर्शन चक्र के धारण करने वाले भगवान के माहात्म्य का पुनः वर्णन करता हूँ। जो पुरुष इसका श्रवण किया करते हैं और पठन किया करते हैं उनके सब पापों का समुदाय समस्त नष्ट होजाया करता है ।।१।। शम-दम से युक्त जो मनुष्य काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य इन छै दोषों को अपने अंकुश में रखने वाले और भोग की सिद्धि का अहङ्कार न करने वाले साधक पुरुष ज्ञानयोग के द्वारा ज्ञानस्वरूप वाले भगवान अच्युत का आराधन किया करते हैं ।। २ ।। जो तीर्थस्नान, व्रतोपवास, दान, तप और यज्ञों के यजन के द्वारा अपने पापों का क्षय कर दिया करते हैं । उनकी ही रुचि सर्वपोषक अच्युत की पूजा में हुआ करती है ।।३।। जो लोभी, व्यसनी और अज्ञ पुरुष हुआ करते हैं वे ही जगत के स्वामी भगवान का पूजन नहीं किया करते हैं। ऐसे लोग मूढ़तावश अपने आपको ऐसा मानते हैं कि सदा ही वे अजर-अमर बने रहेंगे। ऐसे मनुष्य कीड़ों के ही समान संसार में पड़े रहा करते हैं ।।४।। इस सम्पत्ति के मद में जो बिजली

की चमक-दमक के समान ही परम चचल एवं अस्थिर है, उन्मत हो कर व्यर्थ ही घमण्ड करके दूषित होजाया करते हैं। इसीलिये वे सभी नरह के कल्याणों को करने वाले प्रभु का भजन नहीं किया करते हैं ॥५॥ जो प्राणी श्री हरि भगवान के धर्म मे तत्परता रखते हैं और श्री हरि भगवान के चरण कमलों की सेवा किया करते हैं ऐसे महापुरुष दैव के योग से विरले ही इस मृत्युलोक मे पुन समागत हुआ करते हैं और वे इस ससार मे प्राणियों पर अनुग्रह करने के लिये ही ससार में आया करते हैं ॥६॥ जो मन-वचन और कर्म से भक्ति भाव से समन्वित होकर श्री हरि भगवान का अर्चन किया करता है वह समस्त दिव्य लोकों मे परम श्रेष्ठ पद की प्राप्ति किया करता है ॥७॥

अत्रैवोदाहरतीममितिहास पुरातनम् ।
पठता शृण्वता चैव सर्वपापप्रणाशनम् ॥८
तत्प्रवक्ष्यामि चरित यज्ञमालिसुमालिनो ।
यस्य श्रवणमात्रेण वाजिमेधफल लभेत् ॥९
कश्चिदासीत्पुरा विप्र ब्राह्मणो रैवतेऽन्तरे ।
वेदमालिरिति ख्यातो वेदवेदाङ्गपारग ॥१०
सर्वभूतदयायुक्तो हरिपूजापरायण ।
पुत्रमित्रकलत्रार्थं धनार्जनपरोऽभवत् ॥११
अपण्यविक्रय चक्रे तथा च रसविक्रयम् ।
चडालाद्यैरपि तथा सभाषो तत्प्रतिग्रही ॥१२
तपसा विक्रय चक्रे व्रताना विक्रय तथा ।
परार्थं तीर्थगमन कलत्रार्थमकारयत् ॥१३
कालेन गच्छता विप्र जातौ तस्य सुतावुभौ ।
यज्ञमाली सुमाली च यमलावतिशोभनौ ॥१४

इस विषय की पुष्टि के लिये यहाँ पर एक ऐतिहासिक उदाहरण

दिया जाता है। यह इतिहास बांचने वाले और श्रवण करने वाले दोनों के ही समस्त पापों को दूर भगा दिया करता है ॥ ८ ॥ इस विषय में मैं अब यज्ञ माली और सुमाली के चरित का वर्णन करता हूँ। यह ऐसा महत्वपूर्ण चरित्र है कि इसके श्रवण करने ही से एक अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त हो जाया करता है ॥ ९ ॥ हे विप्रवर ! रैवत नामक मन्वन्तर में एक वेदमाली नाम वाला ब्राह्मण हुआ था। वह समस्त वेदों और वेदों के अङ्ग शास्त्रों में पारगामी विद्वान् था ॥ १० ॥ वह ब्राह्मण बड़ा ही दयालु था और समस्त प्राणियों पर पूर्णतया दया का भाव रक्खा करता था। वह सर्वदा श्री हरि के पूजन में निरत रहा करता था। एक बार वह अपने पुत्र—कलत्र और मित्र के लिये धन सग्रह करने में मग्न हो गया था ॥ ११ ॥ वह इस धन के सञ्चय करने के लालच में जिन वस्तुओं को बेचने का शास्त्र में निषेध है वह लोभ के वशीभूत होने के कारण उन्हें भी बेचने लग गया था। रस का भी विक्रय करता हुआ चाण्डाल आदि से भी लेन-देन की बातचीत करना उसने आरम्भ कर दिया था और उनका दान भी ग्रहण करने लग गया था ॥ १२ ॥ वह अपने लिये हुए तप और व्रत का विक्रय करने तथा लोगों से दान ग्रहण करने लगा। वह दूसरे लोगों के लिये धन के लोभ से तीर्थाटन करने लग गया था। यह सभी कुछ वह अपनी स्त्री आदि कुटुम्ब के भरण पोषण के लिये ही किया करता था ॥ १३ ॥ हे विप्रवर ! इसी प्रकार से कुछ समय व्यतीत हो जाने पर उसके यज्ञ माली और सुमाली नामों वाले दो जुड़वाँ पुत्र समुत्पन्न हुए थे। ये दोनों पुत्र बहुत ही सुन्दर थे ॥१४॥

तत. पिता कुमारौ तावतिस्नेहसमन्वित ।
पोषयामास वात्सल्याद्वहुभि. साधनैस्तदा ॥१५
वेदमालिर्वहूपायैर्धन सपाद्य यत्नत ।
स्वधन गणयामास क्रियत्स्यादिति वेदितुम् ॥१६
निधिकोटिसहस्राणा कोटिकोटिगुणान्वितम् ।

करती है वह चाहे बड़ा भारी विद्वान् हो या परम शान्त तथा महा-पण्डित हो तो भी उसे क्रोध आ जाया करता है। वह चाहे कितना ही बुद्धिमान् क्यों न हो तथापि वह अत्यन्त मूढ़ बुद्धि वाले के समान काम कर बैठा करता है ॥ २३ ॥ यह आशा पिशाचिनी है और मनुष्यों को न जीतने योग्य शत्रु के समान ही हुआ करती है। यह मानवों की प्रतिष्ठा को भङ्ग करने वाली होती है। अतएव बुद्धिमान् पुरुष को यदि परम शाश्वत सुख प्राप्त करने की इच्छा हो तो इस आशा का सर्वथा त्याग कर देना चाहिए ॥२४॥ इस एक मात्र आशा के होने से मनुष्य की मान प्रतिष्ठा का नाश हो जाया करता है। यह मनुष्य के तेज, यश, बल, विद्या, मान, कृतज्ञता और सत्कुलीनता आदि सबको बड़े ही वेग के साथ धूलि में मिला दिया करती है ॥ २५ ॥ जो मनुष्य आशा से दबा हुआ होता है वह कुछ देने वाले चाण्डाल को भी अपने से बड़ा एवं अधिक समझा करता है—यह कितने 'आश्चर्य' की बात है ॥२६॥ आशा से दबा हुआ मानव महा मोह से उद्धत सा हो जाया करता है। अपमान से होने वाली आत्म ग्लानि उसको लेश-मात्र भी नहीं हुआ करती है और उन्हें इस अपमान का कुछ भी दुःख नहीं होता है ॥ २७ ॥ मैंने भी इसी तरह मानापमान और कर्त्तव्या-कर्त्तव्य कुछ भी विचार न कर अनेक क्लेशों को सहन करते हुए यह धन इकट्ठा किया है। अब तो मेरा शरीर जीर्ण होगया है और वृद्धता से मेरे बल, पराक्रम का भी हरण होगया है ॥२८॥

इत पर यतिष्यामि परलोकार्थमादरात् ।
एव निश्चित्य विप्रेन्द्र धर्ममार्गरतोऽभवत् ॥२९
तदैव तद्धन सर्वं चतुर्द्धा व्यभजत्तथा ।
स्वय तु भागद्वितय स्वार्जितार्थादपाहरत् ॥३०
शेष च भागद्वितय पुत्रयोरुभयोर्ददौ ।
स्वार्जितानां पापानां नाशं कर्तुं मनास्तदा ॥३१

प्रपा–तडागारामाश्च तथा देवगृहान्वहून् ।
अन्नादीना च दानानि गंगातीरे चकार ह ॥३२
एव धनमशेष च विश्राण्य हरिभक्तिमान् ।
नरनारायणस्थान जगाम तपसे वनम् ॥३३
तत्रापश्यन्महारम्यमाश्रम मुनिसेवितम् ।
फलितै पुष्पितैश्चैव शोभित वृक्षसचयै ॥३४
गुणद्भि परम ब्रह्म शास्त्रचिंतापरैस्तथा ।
परिचर्यापरैर्वृद्धैर्मुनिभि परिशोभितम् ॥३५

अब मेरा परलोक के लिये भी कुछ कर्त्तव्य है और मुझे चाहिए कि आगे सद्‌गति प्राप्त करने के लिये मैं कुछ समादर के साथ कुछ करूँ—यही उचित है। हे विप्रवर ! यह मन मे विचार करके वह धर्म के कार्यों मे सलग्न हो गया था ॥२६॥ उसी क्षण मे उसने विचार करके अपने सम्पूर्ण धन के चार भाग करके उसमें से दो भाग अपने लिये रक्खे और शेष दो भागो को दोनो पुत्रो को दे दिया था। उसने अवसञ्चित किये हुए पापो का विनाश कर डालने का मनमे निश्चय किया था ॥ ३० ३१ ॥ उस धन से तालाब, उद्यान, मन्दिर और भागीरथी के तट पर बहुत से अन्न क्षेत्र उसने खोल दिये थे ॥ ३२ ॥ उसने अपना बड़े क्लेश से सचित किया हुआ सम्पूर्ण धन इस रीति से विष्णु-भक्ति के कारण विभक्त कर दिया था और फिर वह तपश्चर्या करने के लिये नरनारायण के आश्रम की ओर वन मे चला गया था। ॥३३॥ वन मे उसने जाकर मुनि मण्डल से सेव्यमान अत्यन्त रमणीय आश्रम का दर्शन किया था जिसमे फलो और पुष्पो से लदे हुए वृक्ष परम शोभायमान हो रहे थे ॥ ३४ ॥ वहाँ उस वन म परम वृद्ध मुनि-गण भगवान् की सेवा मे तत्पर होरहे थ किसी जगह पर कुछ मुनिलोग शास्त्रार्थों का चिन्तन मनन कर रहे थे और कहीं पर परब्रह्म वद का विचार किया जा रहा था ॥३५॥

शिष्यै परिवृत तत्र मुनि जानतिसज्ञकम् ।
गृणत परम ब्रह्म तेजोराशि ददर्श ह ॥३६
शमादिगुणसयुक्त रागादिरहित मुनिम् ।
शीर्णपर्णाशिन दृष्ट्वा वेदमालिर्ननाम तम् ॥३७
तस्य जानन्तिरागतो कल्पयामास चार्हणम् ।
कदमूलफलाद्यैस्तु नारायणधिया मुने ॥३८
कृतातिथ्यक्रियस्तेन वेदमाली कृताजलि ।
विनयावनतो भूत्वा प्रोवाच वदता वरम् ॥३९
भगवन्कृतकृत्योऽस्मि विगत कल्मष मम ।
मामुद्धर महाभाग ज्ञानदानेन पडित ॥४०
एवमुक्तस्ततस्तेन जानतिर्मुनिसत्तम ।
प्रोवाच प्रहसन्वाग्मी वेदमालि गुणान्वितम् ॥४१
शृणष्व विप्रशार्दूल ससारच्छेदकारणम् ।
प्रवक्ष्यामि समासेन दुर्लभ स्वकृतात्मनाम् ॥४२

उस तपोवन वनमे वेदमाली ने तेज के राशि स्वरूप महामुनि का दर्शन किया था जिनको चारो ओर से शिष्यो ने घेर रक्खा था और सब परमब्रह्म का वर्णन कर रहे थे ॥ ३६ ॥ वेदमाली ने शम—दमादि सद्गुण गण से सयुत—राग, द्वेषादि दोषो से रहित—भूमि पर सड़ कर गिरे हुये शुष्क पत्तो का आहार करने वाले महामुनि का दर्शन प्राप्त कर उनको अत्यन्त समादर पूर्वक प्रणाम किया था ॥ ३७ ॥ हे मुने ! उस जानन्ति मुनि ने उस अभ्यागत अतिथि मे साक्षात् भगवान् नारायण की बुद्धि करते हुए उसका कन्द, मूल, फलादि के द्वारा आतिथ्य-सत्कार किया था ॥ ३८ ॥ उस अतिथि सत्कार को स्वीकार करके वेदमाली ने हाथ जोड़कर परम विनम्रता के साथ नम्र होकर वक्ताओ मे परम श्रेष्ठ मुनि से प्रार्थना की थी ॥३९॥ वेदमाली ने कहा—हे भगवन् ! आज आपके दर्शन प्राप्त करके मैं परम कृतकृत्य

हो गया हूँ। मेरे समस्त पापों का समुदाय नष्ट हो गया है। अब आप हे महाभाग ! हे पण्डित प्रवर ! मुझे ज्ञान का दान देकर मेरा उद्धार करिये ॥ ४० ॥ जब वेदमाली ने इस रीति से प्रार्थना की तो मुनि शिरोमणि जानन्ति ने हँसकर उस परम गुणशाली वेदमाली से कहा— ॥ ४१ ॥ हे विप्र शार्दूल ! मैं आपसे अब संसार के विनाश करने वाले कारण को बतलाता हूँ। आप उसका श्रवण परम सावधान होकर करिए। इसका साधन जो पुण्यहीन होते हैं उनमें होना महान् दुर्लभ होता है ॥४२॥

भज विष्णुं परं नित्यं स्मर नारायणं प्रभुम् ।
परापवादं पैशुन्यं कदाचिदपि मा कृथाः ॥४३
परोपकारनिरतः सदा भव महामते ।
हरिपूजापरश्चैव त्यज मूर्खसमागमम् ॥४४
कामं क्रोधं च लोभं च मोहं च मदमत्सरौ ।
परित्यज्यात्मवल्लोकं दृष्ट्वा शांतिं गमिष्यसि ॥४५
असूयां परनिंदां च कदाचिदपि मा कुरु ।
दंभाचारमहंकारं नैष्ठुर्यं च परित्यज ॥४६
दयां कुरुष्व भूतेषु शुश्रूषां च तथा सताम् ।
त्वया कृतांश्च धर्मांश्च मा प्रकाशय पृच्छताम् ॥४७
अनाचारपरान्दृष्ट्वा नोपेक्षां कुरु शक्तितः ।
पूजयस्वातिथिं नित्यं स्वकुटुम्बाविरोधतः ॥४८
पत्रैः पुष्पैः फलैर्वापि दूर्वाभिः पल्लवैरथ ।
पूजयस्व जगन्नाथं नारायणमकामतः ॥४९

संसार से छुटकारा पाने के लिये परात्पर एवं नित्य भगवान् विष्णु को स्मरण करना चाहिए और सदा विभु नारायण का ध्यान करना चाहिए। दूसरों की निन्दा और चुगली कभी नहीं करनी चाहिए ॥४३॥ हे महान् मति वाले ! आपका यही परम श्रेयस्कर कर्त्तव्य है

कि सर्वदा दूसरों की भलाई करने में आपको संलग्न रहना चाहिये। नित्य श्री हरि का अर्चन किया करो तथा जो मूर्ख पुरुष हैं उनका सङ्ग कभी नहीं किया करो ॥ ४४ ॥ काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य इन छः विनाशकारी शत्रुओं का परित्याग करके समस्त संसार को अपने ही सदृश समझ कर रहने पर परम शान्ति का लाभ होगा। ॥४५॥ असूया और दूसरों की निन्दा कभी भी नहीं करनी चाहिये। केवल दम्भ (दिखावा) के लिये धर्म्म का समाचरण—अहङ्कार और निष्ठुरता का पूर्णत त्याग कर देना चाहिये ॥ ४६ ॥ संसार के समस्त प्राणियों पर दयाभाव रक्खो—सत्पुरुषों की सेवा करो और यदि धर्म्म कृत्यों के विषय में कोई भी पूछे कि आपने क्या क्या धर्म कृत्य किये हैं या इस समय में कर रहे हैं ? तो उनको कभी भी प्रकाशित मत करो ॥४७॥ यदि कोई दूसरा अनाचार कर रहा हो तो यदि अपने में शक्ति हो तो कभी लापरवाही मत करो उसे दूर करदो । अपने सुनने में कोई विरोध न होवे—इस रीति से अपनी शक्ति के अनुसार समागत अतिथियों का सत्कार नित्य अवश्य ही करना चाहिए ॥ ४८ ॥ सर्वदा निष्काम भाव से पत्र, पुष्प, फल और दुग्धादि उपचारों के द्वारा जगत् के स्वामी भगवान नारायण का पूजन करना चाहिये ॥४६॥

देवानृषीन्पितॄंश्चापि तर्पयस्व यथाविधि ।
अग्नेश्च विधिवद्विप्र परिचर्यापरो भव ॥५०
देवतायतने नित्यं संमार्जनपरो भव ।
तथोपलेपनं चैव कुरुष्व सुसमाहित ॥५१
शीर्णस्फटितसंधानं कुरु देव गृहे सदा ।
मार्गशोभां च दीपं च विष्णोरायतने कुरु ॥५२
कन्दमूलफलैर्वापि सदा पूजय माधवम् ।
प्रदक्षिणनमस्कारं स्तोत्राणां पठनैस्तथा ॥५३
पुराणश्रवणं चैव पुराणपठनं तथा ।

वेदान्तपठनं चैव प्रत्यहं कुरु शक्तितः ॥५४
एवं स्थिते तव ज्ञानं भविष्यत्युत्तमोत्तमम् ।
ज्ञानात्समस्तपापानां मोक्षो भवति निश्चितम् ॥५५
एवं प्रबोधितस्तेन वेदमालिर्महामतिः ।
तथा ज्ञानरतो नित्यं ज्ञानलेशमवाप्तवान् ॥५६

शास्त्र में विहित विधि विधान के अनुसार देव तर्पण ऋषि तर्पण और पितृ तर्पण अवश्य करना चाहिए। हे विप्रवर! अग्नि की भी विधि के अनुसार सेवा अर्थात् हवनादि करना चाहिए ॥५०॥ आपका यही परम कर्त्तव्य है कि देवता के निवास स्थल की स्वच्छता सम्पादन करते हुए बहुत ही सावधानी से भगवान् की प्रीति प्राप्त करने के उद्देश्य से उनका लेपन भी करते रहना चाहिए ॥५१॥ यदि क्षीणता के कारण या अन्य किसी कारण के होने से देव मन्दिर टूट फूट या फट जावे तो उसकी जहाँ की तहाँ मरम्मत कराओ तथा भगवान् विष्णु के मन्दिर में मार्ग शोभा के समुत्पन्न करने के लिये दीपक आदि को प्रज्वलित करते रहना चाहिए ॥ ५२ ॥ संसार के बन्धन से मुक्त होने की इच्छा वाले परम विष्णु भक्त का यही कर्त्तव्य है कि भगवान् माधव प्रभु का कन्द मूल फल प्रदक्षिणा प्रणाम और स्तवन आदि के द्वारा नित्य अर्चन करते रहना चाहिए ॥५३॥ अपनी शक्ति के अनुसार प्रतिदिन पुराणों का श्रवण पठन एवं मनन करते हुए वेदान्त शास्त्र के ग्रन्थों को भी पढ़ते रहना चाहिए ॥५४॥ इस विधि से नित्य ही नियम पूर्वक करने से आपको परमोत्तम ज्ञान की प्राप्ति हो जायगी। जब ज्ञान हो जायगा तो सभी पापों का समुदाय नष्ट हो जायगा—इसमें लेश मात्र भी संशय नहीं है ॥५५॥ जिस समय में महर्षि जानन्ति ने उस वेदमालि को इस रीति से उत्तम उपदेश प्रदान किया तो वह वेदमालि भी उसी के अनुसार सब कुछ करने में तत्पर होगया था और फिर उसे कुछ ज्ञान भी प्राप्त हो गया था ॥५६॥

वेदमालि कदाचित्तु ज्ञानलेशप्रचोदित ।
कोऽहं मम क्रिया वेति स्वयमेव व्यचिन्तयत् ॥५७
मम जन्म कथ जात रूप कीदृग्विध मम ।
एव विचारणपरो दिवानिशमतद्रित ॥५८
अनिश्चितमतिर्भूत्वा वेदमालिर्द्विजोत्तम ।
पुनर्जानन्तिमागम्य प्रणम्येदमुवाच ह ॥५९
मम चित्तमतिभ्रान्त गुरो ब्रह्मविदा वर ।
कोऽहं मम क्रिया का च मम जन्म कथ वद ॥६०
सत्य सत्य महाभाग चित्त भ्रांत सुनिश्चितम् ।
अविद्यानिलय चित्त कथ सद्भावमेष्यति ॥६१
ममेति गदित यत्तु तदपि भ्रान्तिरिष्यते ।
अहकारो मनोधम आत्मनो न हि पण्डित ॥६२
पुनश्च कोऽहमित्युक्त वेदमाल त्वया तु यत् ।
मम जात्यादिशून्यस्य कथ नाम करोम्यहम् ॥६३

एक दिन इसी ज्ञान के लेश के उत्पन्न हो जाने पर उसी से प्रेरित होकर वह अपने मन में विचार करने लगा—मैं कौन हूँ और मेरा कर्त्तव्य कर्म क्या है ? ॥५७॥ मेरे संसार में जन्म प्राप्त होने का क्या कारण है और मेरा यह स्वरूप किस प्रकार से होगया है । इन सभी बातों पर वह निरालस्य होकर अहर्निश गहन विचार करने लग गया था ॥५८॥ किन्तु वह द्विज वेदमाली कुछ भी निश्चय का प्राप्त न हो सका था । इसलिये वह फिर महामहर्षि प्रवर जानन्ति के समीप में उपस्थित होकर उनको प्रणाम करके निवेदन करने लगा था ॥ ५९ ॥ वेदमाली ने जानन्ति से प्रार्थना की थी—हे ब्रह्म के ज्ञान रखने वालो में परम श्रेष्ठ गुरुवर ! मेरा मन अत्यधिक भ्रम में पड़ा हुआ है—कि मैं कौन हूँ—मेरा कर्म क्या है और मेरा जन्म कैसे हुआ है ? ॥ ६० ॥ महर्षि जानन्ति ने उसको इसका उत्तर इस प्रकार दिया था—हे महा-

श्रवण किया करता है वह प्राणी निश्चय ही कर्मों के पाश से विमुक्त होकर परम सुख की प्राप्ति किया करता है ॥७३॥

॥ यज्ञमालि सुमालि चरित्र ॥

वेदमाले सुतौ प्रोक्तौ यावुभौ मुनिसत्तम
यज्ञमाली सुमाली च तयोः कर्मानुगोच्यते ॥१
तयोराद्यो यज्ञमाली विभेद पितृसंचितम् ।
धन द्विधा कनिष्ठस्य भागमेक ददौ तदा ॥२
सुमाली च धन सर्व व्यसनाभिरत सदा ।
अपादानादिभिश्चैव नाशयामास भो द्विज ॥३
गीतवाद्यरतो नित्य मद्यपानरतोऽभवत् ।
वेश्याविभ्रमलुब्धोऽसौ परदाररतोऽभवत् ॥४
सर्वस्मिन्नाशमायाते हिरण्ये पितृसंचिते ।
अपहृत्य पर द्रव्य चारस्त्रीनिरतोऽभवत् ॥५
दृष्ट्वा सुमालिन शील यज्ञमाली महामति ।
बभूव दुःखितोऽत्यर्थं भ्रातर चेदमब्रवीत् ॥६
अलमयतवृत्तेन वृत्तेनास्मत्कुलेऽनुज ।

नही है ॥६७॥ "तत्त्वमसि" आदि जो महावाक्य है उनसे प्राप्त होने वाला ज्ञान ही मोक्ष की प्राप्ति का साधन होता है। जिस समय मे यह बाधारहित ज्ञान सिद्ध हो जाया करता है तभी यह सब ब्रह्ममय भासित हुआ करता है ॥६८॥

एव प्रबोधितस्तेन वेदमालिर्मुनीश्वर ।
मुमोद पश्यन्नात्मानमात्मन्येवाच्युत प्रभुम् ॥६६
उपाधिरहित ब्रह्म स्वप्रकाश निरञ्जनम् ।
अहमेवेति निश्चित्य परा शांतिमवाप्तवान् ॥७०
ततश्च व्यवहारार्थं वेदमालिर्मुनीश्वरम् ।
गुरु प्रणम्य जानन्ति सदा ध्यानपरोऽभवत् ॥७१
गते बहुतिथे काले वेदमालिर्मुनीश्वर ।
वाराणसीपुर प्राप्य पर मोक्षमवाप्तवान् ॥७२
य इम पठतेऽध्याय शृणुयाद्वा समाहित ।
स कर्मपाशविच्छेद प्राप्य सौख्यमवाप्नुयात् ॥७३

हे मुनीश्वर । जिस समय मे जानन्ति महर्षि ने इस रीति से वेद माली को ज्ञान का उपदेश दिया था तो उस समय में वह अपने आप मे अविनाशी प्रभु परमात्मा का दर्शन प्राप्त करके परम प्रसन्न हुआ था ॥६६॥ उस समय मे उसको ऐसा ज्ञान उत्पन्न हो गया था कि उपाधियो रहित—निरञ्जन—स्वप्रकाश ब्रह्म मैं ही हूं। ऐसा जब उसको निश्चय होगया तो उसे परमाधिक शांति प्राप्त होगई थी ।७०। इसके उपरान्त वह वेदमाली व्यवहार की पूर्त्ति के लिये उस जानन्ति महर्षि के चरणो मे प्रणाम करके सर्वदा आत्म चिन्तन [redacted] ध्यान मे परायण रहने लग गया था ॥७१॥ हे मुनिवर । इस विधि से जब बहुत सा समय व्यतीत हो गया था तो वह वेदमाली अन्त मे रावण की पुरी मे पहुँच कर मोक्ष को प्राप्त हो गया था। हे मुनिवर ! जो पुरुष इस वेदमाली के ज्ञान एव मोक्ष प्राप्त होने वाले अध्याय का पठन एव

श्रवण किया करता है वह प्राणी निश्चय ही कर्मों के पाश से विमुक्त होकर परम सुख की प्राप्ति किया करता है ॥७३॥

॥ यज्ञमालि सुमालि चरित्र ॥

वेदमाले सुतौ प्रोक्तौ यावुभौ मुनिसत्तम
यज्ञमालो सुमालो च तयोः कर्माधुनोच्यते ॥१
तयोराद्यो यज्ञमाली विभेद पितृसंचितम् ।
धनं द्विधा कनिष्ठस्य भागमेकं ददौ तदा ॥२
सुमाली च धनं सर्वं व्यसनाभिरतः सदा ।
अपादानादिभिश्चैव नाशयामास भो द्विज ॥३
गीतवाद्यरतो नित्यं मद्यपानरतोऽभवत् ।
वेश्याविभ्रमलुब्धोऽसौ परदाररतोऽभवत् ॥४
सर्वस्मिन्नाशमायाते हिरण्ये पितृसंचिते ।
अपहृत्य परं द्रव्यं वारस्त्रीमितोऽभवत् ॥५
दृष्ट्वा सुमालिनं शीलं यज्ञमाली महामतिः ।
बभूव दुःखितोऽत्यर्थं भ्रातरं चेदमब्रवीत् ॥६
अलममतकष्टेन वृत्तेनास्मत्कुलेऽनुज ।
त्वमेक एव दुष्टात्मा महापापरतोऽभव ॥७

श्रीसनक देवजी ने कहा—हे मुनिश्रेष्ठ ! मैंने जो आपको वेदमाली के दो पुत्र यज्ञमाली और सुमाली नाम से बतलाये थे अब मैं उनके कर्मों का वर्णन करता हूँ ॥ १ ॥ दोनो भाइयो मे से जो यज्ञमाली नाम वाला था उसने अपने पिता के एकत्रित किये हुए धन को दो भागो मे विभक्त किया था और एक भाग अपने छोटे भाई को दे दिया था ॥२॥ हे द्विज ! यह सुमाली नामक जो वेदमाली का पुत्र था उसने अपने आपको अनेक व्यसनो मे फँसा लिया था और

पित्रा कृतानि सर्वाणि तडागादीनि सत्तम ।
अपालयत्प्रयत्नेन सदा धर्मपरायण ॥१७
विश्राणित धन सर्वं यज्ञमालेर्महात्मन ।
सत्पात्रदाननिष्ठस्य धर्ममार्गप्रवर्त्तिन ॥१८
अहो सदुपभोगाय सज्जनाना विभूतय. ।
कल्पवृक्षफल सर्वममरैरेव भुज्यते ॥१६
धन विश्राण्य धर्मार्थं यज्ञमाली महामति ।
नित्य विष्णुगृहे सम्यक्परिचर्यापरोऽभवत् ॥२०
कालेन गच्छता तौ तु वृद्धभावमुपागतौ ।
यज्ञमाली सुमाली च ह्येककाले मृतावुभौ ॥२१

ऐसी दशा सुमाली की देखकर सब बन्धुजनो ने उसका परित्याग कर दिया था। राजाने भी उसको उचित दण्ड दिया था। हे विप्र ! उस समय मे वह चाण्डाल स्त्रियो का लेकर निर्जन वन मे जाकर पड गया था ॥ १५ ॥ हे विप्रवर ! यज्ञमाली की बुद्धि अच्छी थी। वह सर्वदा धार्मिक कर्मों मे ही तत्पर रहा करता था। सदा सत्सङ्गति करते रहने के कारण से इसके समस्त पाप धुल गये थे और उसने बेरोक टोक अन्न का दान देना भी आरम्भ कर दिया था ॥१६॥ हे श्रेष्ठ प्रवर ! यज्ञमाली सर्वदा धर्म कार्यों मे सलग्न रहकर अपने पूज्य पिता के समारोपित उद्यान तथा तालाब आदि सबका परिपालन किया करता था। महान् आत्मा वाले यज्ञमाली का सब धन सत्पात्रो के दान आदि धर्म मार्ग मे ही व्यय किया जा रहा था ॥ १८ ॥ अहो ! सत्पुरुषो की विभूति सर्वदा सदुपयोग के ही लिये हुआ करती है क्योकि कल्पवृक्ष के फलो का आस्वादन सदा देवगण ही किया करते हैं अन्यो को उनकी प्राप्ति कभी हुआ ही नहीं करती है ॥ १६ ॥ महान् मतिमान् यज्ञमाली धर्म के कार्यों मे अपने धन को खर्च करके भगवान् विष्णु के मन्दिर मे सदा जाकर धर्म का ही निरन्तर सेवन

किया करता था ॥२०॥ धीरे धीरे समय व्यतीत हो जाने पर वे दोना भाई यज्ञमाली और सुमाली वृद्ध होकर एक ही काल मे मृत्यु के ग्रास होगये थे ॥२१॥

हरिपूजारतस्यास्य यज्ञमालिमहात्मन ।
हरि सप्रेषयामास विमान पार्षदावृतम् ॥२२
दिव्य विमानमारुह्य यज्ञमाली महामति ।
पूज्यमान सुरगणं स्तूयमानो मुनीश्वरं ॥२३
गधर्वेर्गीयमानश्च सेवितश्चाप्सरोगणं ।
कोमलैस्तुलसीमाल्यैर्भूषितस्तेजसा निधि ॥२४
कोमलैस्तुलसीमाल्यैर्भूषितस्तेजसा निधि ।
गच्छन्विष्णुपद दिव्य मनुज पथि दृष्टवान् ॥२५
ताड्यमान यमभटं क्षुत्तृड्भ्या परिपीडितम् ।
प्रेतभूत विवस्त्र च दु खित पाशवेष्टितम् ।
इतस्तत प्रधावन्त विलपतमनाथवत् ॥२६
क्रोशन्त च रुदत च दृष्ट्वा मनसि विव्यथे ॥२७
यज्ञमाली दयायुक्तो विष्णुदूतान्समीपगान् ।
कोऽय भटंर्वाध्यमान इत्यपृच्छत्कृताजलि ॥२८

उस समय मे भगवान् विष्णु ने अपने भक्त परम धार्मिक यज्ञ माली को लाने के लिये अपने पार्षदो को विमान लेकर भेजा था ।२२। उस समय म महामतिमान् यज्ञमाली दिव्य विमान पर समारूढ होकर विष्णुलोक को चल दिया था । मार्ग म देवगण उसकी पूजा करने लगे थे ॥२३॥ गन्धर्व गण उसके सामने गान कर रहे थे तथा दिव्य अप्सराऐ उसकी सेवा मे तत्पर हो गयी थी । वह कामधेनु की कृपा से परिपुष्ट होकर विविध आभूषणो से विभूषित हो गया था ॥ २४ ॥ परम कोमल तुलसी के दलों की माला से उसका शरीर शोभित होरहा था । उस तेजस्वी महापुरुष न विष्णुलोक का जाते हुए मार्ग मे अपन

विष्णु दूतों ने कहा—श्री नारायण परायण ! हे महाभाग यज्ञमालिन् ! इस सुमाली का छुटकारा और प्रसन्नता प्रदान करने वाला उपाय हम आपको बतलाते हैं—आपने जो पूर्वजन्म में महाकर्म किया था अब हम उसी का संक्षेप में वर्णन करते हैं—आप परम समाहित होकर उसको सुनिये ॥ ३६, ३७ ॥ आप अपने पूर्व जन्म में एक विश्वम्भर नामधारी वैश्य थे और उस समय में आपने अगणित बहुत से महान् पाप किये थे ॥ ३८ ॥ किसी सत्कर्म के करने की तो उस समय में आपके अन्दर वासना नाम मात्र को भी नहीं थी । आप सदा अपने माता-पिता से घोर विरोध रक्खा करते थे । उस समय में आपके बन्धु बान्धवों ने भी आपका परित्याग कर दिया था और आप शोक तथा सन्ताप से अत्यन्त पीडित हो गये थे ॥ ३९ ॥ आपको भूख की अग्नि ने अत्यन्त उत्पीड़ित कर दिया था । उस समय में आप एक विष्णु भगवान् के मन्दिर में पहुँच गये थे जहाँ पर वर्षा होने के कारण से कीच हो गई थी ॥४०॥ आपने अपने ठहरने [illegible] उद्देश्य से उस कीचड़ को वहाँ से हटाकर साफ किया था । उस कीचड़ के हटाने से वह मन्दिर लिप सा गया था ॥ ४१ ॥ हे द्विजवर ! उस देव मन्दिर में आपने रात का निवास किया था । वहाँ पर एक विषधर सर्प था । उसने आपका दशन किया था जिससे आपकी मृत्यु होगई थी ॥४२॥

तेन पुण्यप्रभावेन उपलेपकृतेन च ।
विप्रजन्म त्वया प्राप्त हरिभक्तिस्तथाचला ॥
कल्पकोटिशत साग्र सप्राप्य हरिसन्निधिम् ।
वगाद्य ज्ञानमासाद्य पर मोक्ष गमिष्यसि ॥४३
अग्रज पातकिश्रेष्ठ त्व समुद्धर्तु मिच्छसि ।
उपाय तव वक्ष्यामस्त निबोध महामते ॥४४
गोचर्ममात्रभूमेस्तु उपलेपनज फलम् ।
दत्त्वोद्धर महाभाग भ्रातर कृपयान्वित ॥४५

एवमुक्तो विष्णुदूतैर्यज्ञमाली महामतिः ।
तत्फलं प्रददौ तस्मै भ्राते पापविमुक्तये ॥४६
सुमाली भ्रातृदत्तेन पुण्येन गतकल्मषः ।
बभूव यमदूतास्तु तं त्यक्त्वा प्रपलायिता ॥४७
विमान चागत सद्य सर्वभोगसमन्वितम् ।
तदा सुमाली स्वर्यानमारुह्य मुमुदे मुने ॥४८
तावुभौ भ्रातरौ विप्र सुरवृन्दनमस्कृतौ ।
अवापतुर्भृश प्रीति समालिग्य परस्परम् ॥४९

उसी कीचड़ को हटाकर देवालय के लीपन के प्रभाव से यह जन्म का जन्म और अचल श्री भगवान की भक्ति प्राप्त हुई है ॥४३॥ यदि आप परम शिरोमणि पातकी अपने भाई का उद्धार करने की इच्छा करते हैं तो हम उसका भी उपाय आपको बतलाते हैं आप तो बड़े महान बुद्धि वाले हैं। अब आप उस उपाय का भी श्रवण कर लीजिए ॥४४॥ हे महान भाग्य वाले ! यदि आप अपने भाई सुमाली का वास्तव में उद्धार करना ही चाहते हैं तो उसको आप गोचर्म मात्र भूमि का अर्थात् देवालय की भूमि का पुण्यफल दे दीजिए। इससे उसी से उद्धार होजायगा ॥४५॥ विष्णु भगवान के दूतों के द्वारा इस तरह से कहने पर महान बुद्धिमान यज्ञमाली ने अपने भाई की पापों से मुक्ति प्राप्त करने के लिये गोचर्ममात्र भूमि के लीपने का पुण्यफल दे दिया था। गोचर्म—यह महाभारत के अनुशासन पर्व में बताया हुआ भूमि का माप ही है ॥४६॥ भाई के द्वारा किये हुये उस पुण्य के प्रभाव से सुमाली तुरन्त ही पापों से रहित होकर विशुद्ध हो गया था और फिर यमदूत उसे छोड़कर भाग खड़े हुये थे ॥४७॥ इसी बीच में सम्पूर्ण भोग सामग्रियों से भरा हुआ दिव्य विमान वहाँ तत्काल ही प्राप्त हो गया था। हे मुनिवर ! उस समय में वह सुमाली भी उस विमान पर बैठकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ था ॥४८॥ उस समय में उन

दोनो भाइयों को देवगणो ने बहुत ही आदरपूर्वक प्रणाम किया था । वे दोनो भाई भी परस्पर मे एक दूसरे मे आलिङ्गन करके परमाधिक प्रसन्न हुए थे ।४६।

यज्ञमाली सुमाली च स्तूयमानौ महर्षिभि ।
गीयमानौ च गधर्वैर्विष्णुलोक प्रजग्मतु ।।५०
अवाप्य हरिसालोक्य सुमाली मुनिसत्तम ।
यज्ञमाली चोपतुम्तौ कल्पमेक मुदान्वितौ ।।५१
भुक्त्वा भोगान्बहूस्तत्र यज्ञमाली महामति ।
तत्रैव ज्ञानसपन्न पर मोक्षमुपागत ।।५२
सुमाली तु महाभागो विष्णुलोके मुदान्वित ।
स्थित्वा भूमि पुन प्राप्य विप्रत्व समुपागत ।।५३
अतिशुद्धे कुले जातो गुणवान्वेदपारग ।
सर्वसपत्समापेतो हरिभक्तिपरायण ।।५४
दशाहरन्हरिनामानि प्रपेदे जाह्नवीतटम् ।
तत्र स्नातश्च गगाया दृष्ट्वा विश्वम्भर प्रभुम् ।।५५
अवाप परम स्थान योगिनामपि दुर्लभम् ।
उपलेपनमहात्म्य कथित ते मुनीश्वर ।।५६

उस समय मे यज्ञमाली तथा सुमाली दोनो भाई महर्षिगण के द्वारा स्तुत होकर गन्धर्वों के द्वारा गान किये गए थे । इस प्रकार से फिर वे दोनो ही श्री विष्णुलोक की ओर प्रस्थान कर गए थे ।५०। हे परम श्रेष्ठ मुनिवर ! सुमाली और यज्ञमाली दोनो भाई विष्णुलोक मे प्राप्त हो गये थे और एक कल्प पर्यन्त बहुत ही आनन्द के साथ वहा पर इन्होने निवास किया था ।५१। महामति यज्ञमाली तो वहा पर अनेक भोगो का उपभोग करके ज्ञान सम्पन्न होकर वहा पर ही मुक्त हो गया था ।५२। महान् भाग्य वाला सुमाली विष्णु लोक मे प्रसन्नता पूर्वक निवास करके पुन इस भूलोक मे विप्र का जन्म धारण कर

समुत्पन्न हुआ था ॥५३॥ इस जन्म मे परम विशुद्ध कुल मे उत्पन्न हुआ था तथा अत्यन्त गुणगणो से युक्त और वेदो का पारगामी विद्वान् हुआ था। इसके समीप मे सभी सम्पदाऐं थी और यह श्री हरि भगवान् की भक्ति मे भी परायण हुआ था ॥५४॥ यह उस जन्म मे श्री हरि के शुभ पावन नामो का उच्चारण करता हुआ गङ्गा के तीर पर पहुँच गया था। वहा पर इसने भागीरथी गङ्गा के जल मे अवगाहन किया था और श्री विश्वेश्वर प्रभु का दर्शन भी प्राप्त किया था ॥५५॥ अन्त मे यह यातियो से भी परम दुर्लभ परम पद को प्राप्त हो गया था। हे मुनिवर! देव मन्दिर के लेपन करने के माहात्म्य का वर्णन करके आपको सुना दिया है ॥५६॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सपूज्यो जगता पति ।
अकामादपि ये विष्णो सकृत्पूजा प्रकुर्वते ॥५७
न तेषा भवबन्धस्तु कदाचिदपि जायते ।
हरिभक्तिरतान्यस्तु हरिबुद्धया समर्चयेत् ॥५८
तस्य तुष्यन्ति विप्रेन्द्र ब्रह्मविष्णुमहेश्वरा ।
हरिभक्तिपराणा तु सगिना सगमात्रत ॥५९
मुच्यते सर्वपापेभ्यो महापातकवानपि ।
हरिपूजापराणा च हरिनामरतात्मनाम् ॥६०
शुश्रूषानिरता याति पापिनोऽपि परा गतिम् ॥६१

अतएव निष्कर्षार्थ यह हुआ है कि सर्वतोभाव से पूर्ण प्रयत्न करके जगदीश्वर भगवान का अर्चन अवश्य ही करना चाहिए। जो कोई पुरुष हृदय मे कुछ भी कामनायें न रखकर भी भगवान विष्णु का एक बार भी पूजन कर लिया करता है उनका उद्धार हो जाया करता है ॥५७॥ विष्णु पूजक को फिर कभी भी इस ससार के बन्धन मे नही पड़ना पड़ता है। जो कोई भी श्री हरि की भक्ति मे निरतर मग्न रहने वाले हरि भक्त का श्री हरि की बुद्धि से पूजन किया करता है,

हे विप्रवर ! उन पर ब्रह्मा विष्णु और महेश सभी परम प्रसन्न हो जाया करते हैं। श्री हरि के भक्तों के साथ सङ्गति करने वाले के सङ्गम मात्र से पापियों के महान पातक भी छूट जाया करते हैं और मुक्त हो जाया करता है। श्री हरि भगवान का पूजन और श्री हरि के परम पावन शुभ नामों का कीर्त्तन करने में निमग्न रहने वाले भक्तों की सेवा करने से भी महान पापी परम शुद्ध गति को पा लिया करते हैं।६०—६१।



।। गुलिक और उत्तंक की कथा ।।

भूप शृणष्व विप्रेन्द्र माहात्म्यं कमलापते ।
यस्य नो जायते प्रीतिः श्रोतुं हरिकथामृतम् ।।१
नराणां विषयान्धानां ममताकुलचेतसाम् ।
एकमेव हरेर्नाम सर्वपापप्रणाशनम् ।।२
सद्बुद्धा न नमेद्यस्तु विष्णुं पापहरं नृणाम् ।
श्वपचं तं विजानीयात्स्वदाचिन्नालपेच्च तम् ।।३
हरिपूजाविहीनं तु यस्य वेश्म द्विजोत्तम ।
श्मशानसदृशं तद्धि कदाचिदपि नो विशेत् ।।४
हरिपूजाविहीनाश्च वेदविद्वेषिणस्तथा ।
गोद्विजद्वेषनिरता राक्षसाः परिकीर्त्तिताः ।।५
यो वा को वापि विप्रेंद्र विप्रद्वेषपरायणः ।
समर्चयति गोविन्दं तत्पूजा विफला भवेत् ।।६
अन्यश्च मोविनाशाय यज्जयन्ति जनार्दनम् ।
सा पूजैव महाभाग पूजकानाशु हन्ति वै ।।७

श्री सनकाचार्य ने कहा—हे विप्रेन्द्रवर ! अब आप भगवान श्री कमलापति के महा महिमामय माहात्म्य का पुनः श्रवण करिये ।

श्री हरि भगवान के कथामृत का पान करने से कौन प्रसन्नता प्राप्त नहीं किया करता है अर्थात् सभी परम प्रसन्न हुआ करते हैं ॥ १ ॥ सांसारिक ममता से परम व्याकुल चित्त वाले, विषयों में एवं मद अन्धे होजाने वाले मनुष्यों के समस्त पापों का विनाश केवल एक श्री हरि का नाम ही कर दिया करता है ॥२॥ मानव मात्र के पापों को हरण करने वाले भगवान् विष्णु को जो जीवन में एक बार भी प्रणाम नहीं किया करता है उससे एक श्वपच के समान ही कभी भाषण नहीं करना चाहिये ॥३॥ हे द्विजो में परम श्रेष्ठ ! जो घर ऐसा है जिसमें कभी श्री हरि भगवान का अर्चन नहीं हुआ हो उस घर को श्मशान के समान ही परम अपवित्र समझ कर उसमें कभी भी प्रवेश नहीं करना चाहिये ॥४॥ जो मानव श्री हरि का कभी भी यजन नहीं किया करते हैं देवों से जो द्वेष भाव रखते हैं और गो तथा विप्रों से जो द्वेष भाव रखा करते हैं उनको शास्त्रोंमें साक्षात् राक्षस बताया गया है ॥५॥ हे विप्रवर ! जो ब्राह्मणों में द्वेष भाव रखते हुये श्री हरि का अर्चन भी करता है तो उसकी वह हरि पूजा व्यर्थ ही हो जाया करती है ।६। हे महाभाग ! जो किसी दूसरे के श्रेय का विनाश करने के उद्देश्य को लेकर भगवान जनार्दन प्रभु का पूजन किया करते हैं उनकी वह की हुई पूजा उनका ही संहार कर डाला करती है ।७।

हरिपूजाकरो यस्तु यदि पाप समाचरेत् ।
तमेव विष्णुद्वेष्टार प्राहुस्तत्वार्थकोविदा ॥८
ये विष्णु निरता सति लोकानुग्रहतत्परा ।
धर्मकार्यरता शश्वद्विष्णुरूपास्तु ते मता ॥९
कोटिजन्मार्जितै पुण्यैर्विष्णुभक्ति प्रजायते ।
दृढभक्तिमना विष्णो पापबुद्धि कथ भवेत् ॥१०
जन्मकोटयर्जित पाप विष्णुपूजारतात्मनाम् ।
क्षय याति क्षणादेव तेषा स्यात्पापधी कथम् ॥११

हरिपादोदक यस्तु कणमात्र पिबेदपि ।
स स्नात सर्वतीर्थेषु विष्णो प्रियतरो भवेत् ॥१५
अकालमृत्युशमन सर्वव्याधिविनाशनम् ।
सर्वदु खोपशमन हरिपादोदक स्मृतम् ॥१६
नारायण पर धाम ज्योतिषा ज्योतिरुत्तमम् ।
ये प्रपन्ना महात्मानस्तेषा मुक्तिर्हि शाश्वती ॥१७
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहास पुरातनम् ।
पठता शृण्वता चैव सर्वपापप्रणाशनम् ॥१८
आसीत्पुरा कृतयुगे गुलिको नाम लुब्धक ।
परदारपरद्रव्यहरण सततोद्यत ॥१६
परनिंदापरो नित्य जन्तूपद्रवकृत्तथा ।
हतवान्ब्राह्मणान् गाश्च शतशोऽथ सहस्रश ॥२०
देवस्वहरणे नित्य परस्वहरणे तथा ।
उद्युक्त सर्वदा विप्र कीनाशानामधीश्वर ॥२१

जो एक कणमात्र भी भगवान विष्णु का चरणामृत का पान करता है उसको समझ लेना ही चाहिए कि समस्त उत्तमोत्तम तीर्थों मे स्नान कर लिया है । चरणोदक का पान करने वाला प्राणी भगवान का परम प्रिय होजाया करता है । भगवान के चरणो से स्पर्श किया हुआ उदक अर्थात चरणामृत अकाल मे होने वाली मृत्यु को हटा दिया करता है । समस्त व्याधियो को दूर कर दिया करता है और सभी प्रकार के प्राणी को होने वाले कष्टों का विनाश करने वाला इसको बतलाया गया है ।१६। जो महान आत्मा वाले पुरुष ज्योतियो मे उत्तम ज्योति परम धाम नारायण को प्राप्त हुआ करते है उनकी निश्चय ही शाश्वत मुक्ति प्राप्त हुई है ।१७ इस विषय की पुष्टि के लिए भी एक ऐतिहासिक घटना का आख्यान श्रवण कराया जाता है । इसके पठन एव श्रवण करने से प्राणियो के सब पाप निश्चित रूप से

मष्ट हो जाया करते हैं यदि वे सन्मार्ग का समाश्रय ग्रहण करते हैं तो पापों का नाश अवश्य हो जाता है ।१८। पहिले सत्ययुग मे एक बहेलिया था जिसका नाम गुलिक था। वह पराई स्त्रियों को तथा पराये धन को झपटने को तैयार रहा करता था ।१६। उसका स्वभाव ही ऐसा था कि हमेशा दूसरों की बुराई करके वह महान उपद्रव मचाता रहा करता था। उसने अपने जीवन काल मे सहस्रों ही गौ और ब्राह्मणों को मारकर महान पाप किये थे ॥२०॥ वह जीवों का सरदार था। वह सदा ही देव द्रव्य तथा दूसरों के धन को सर्वदा छीन लिया करता था ॥२१॥

तेन पापान्यनेकानि कृतानि सुमहान्ति च ।
न तेषां शक्यते वक्तु संख्या वत्सरकोटिभि ॥२२
स कदाचिन्महापापो जन्तूनामन्तकोपम ।
सौवीरराज्ञो नगर सर्वैश्वर्यसमन्वितम् ॥२३
योषिद्भिर्भूषिताभिश्च सरोभिर्निर्मलोदकै ।
अलकृत विपणिभिर्ययौ देवपुरोपमम् ॥२४
तस्योपवनमध्यस्थ रम्य केशवमन्दिरम् ।
छादित हेमकलशैर्दृष्ट्वा व्याधो मुद ययौ ॥२५
हराम्यत्र सुवर्णानि बहूनीति विनिश्चितम् ।
जगामाभ्यतर तस्य कीनाशश्चौर्यलोलुप ॥२६
तत्रापश्यद् द्विजवर शात तत्त्वार्थकोविदम् ।
परिचर्यापर विष्णोरुत्तक तपसा निधिम् ॥२७
एकाकिन दयालु च निस्पृह ध्यानलोलुपम् ।
चौर्यान्तरायकर्तार त दृष्ट्वा लुब्धकोमुने ॥२८

उस बहेलिय ने अनेक साधारण और महान् पातक किये थे जिनकी पूरी संख्या का गिनाना या बताना करोड़ों वर्षों मे भी कठिन है ॥२२॥ वह तो सभी प्राणियों के लिये साक्षात यमराज के ही

समान महान् भीषण था। उस महापातकी ने एक समय मे सौवीर राज के दिव्य नगर मे प्रवेश किया था जो सम्पूर्ण प्रकार के ऐश्वर्यों से भरा पूरा था। जिसमे दिव्याभरणो से विभूषित स्त्रियां थी और जो निर्मल जल से परिपूर्ण सरोवरो से समन्वित था तथा भरीपूरी अनेक दूकानो से देव नगर के समान समलकृत उत्तम नगर था ॥ २३।२४ ॥ उस नगर मे एक उद्यान था जिसके मध्य मे एक विष्णु का मन्दिर था उस मन्दिर की शिखर पर सुवर्ण के कलश चढे हुए थे। उन कलशो को देखकर उस बहेलिये के मनमे बडी प्रसन्नता हुई थी ।२५। वह उन कलशो को चोरी करने के लिए अत्यन्त लालच से भरा हुआ डाकू उस मन्दिर मे अन्दर घुस गया था। उसने अपने मनमे यह विचार किया था कि यहाँ पर मुझे बहुत सा सुवर्ण प्राप्त हो जायगा ॥२६॥ वहा पर उस बहेलिये ने भगवान् विष्णु की सेवा म परायण, तत्व को समझने मे कुशल शम दम आदि से सुसम्पन्न तप की खान परम श्रेष्ठ द्विज उत्तङ्क को देखा था ॥२७॥ हे मुनिवर ! उस बहेलिये ने उस परम दयालु स्पृहा से शून्य और ध्यान म मग्न अकेले द्विज को देखकर चोरी करन क कार्य म विघ्न के समान समझा था ॥२८॥

द्रव्यजात तु देवस्य हर्तुकामोऽतिसाहसी ।
उत्तंक हतुमारेभे विधृतासिर्मदोद्धत ॥२६
पादेनाक्रम्य तद्वक्षो जटा सगृह्य पाणिना ।
हतु कृतमतिं व्याधमुत्तक प्रेक्ष्य चाब्रवीत् ॥३०
भो भो साधो वृथा मा त्व हनिष्यसि निरागसम् ।
मया किमपराद्ध ते तद्वदस्व महामते ॥३१
कृतापराधिना लोके शक्ता शिक्षा प्रकुर्वते ।
नहि सौम्य वृथा घ्नन्ति सज्जना अपि पापिन ॥३२
विरोधिष्वपि मूर्खेषु निरीक्ष्यावस्थितान् गुणान् ।

विरोधं नहि कुर्वंति सज्जना शान्तचेतस ॥३३
बहुधा बाध्यमानोऽपि यो नर क्षमयान्वित ।
समुत्तम नर प्राहुर्विष्णो प्रियतर सदा ॥३४
सुजनो न याति वैर परहितबुद्धिर्विनाशकालेऽपि ।
छेदेऽपि चन्दनतरु सुरभयति मुख कुठारस्य ॥३५

अतएव परम साहसी मदोद्धत बहेलिये ने उस देवद्रव्य का हरण करने की इच्छा से अपनी तलवार उठाकर विघ्न स्वरूप उस उत्तङ्क द्विज को मार डालने की इच्छा की थी ॥ २६ ॥ वह उस उत्तङ्क के वक्ष स्थल पर अपने पैर रखकर उसकी चोटी पकड़ कर मारने के लिये समुद्यत व्याध को देखकर कहने लगा ॥३०॥ उत्तङ्क ने उस बहेलिये से कहा—हे साधो ! आप मुझे निरर्थक ही मारना चाहते हैं। मैंने तो आपका कुछ भी अपराध नहीं किया है। हे महा मतिमान् ! यदि मुझसे आपका कोई अपराध बन गया होता आप बताइये ॥३१॥ इस संसार में अपराध करने वालों को ही समर्थ पुरुष दण्ड दिया करते हैं। हे सौम्य ! जो सज्जन पुरुष होते हैं वे पापियों को भी व्यर्थ नहीं मारा करते हैं ॥ ३२ ॥ परम शान्त चित्त वाले सज्जन विरोध करने वाले मूर्खों से भी उनके केवल गुण गण पर ध्यान देकर उनसे भी विरोध नहीं किया करते हैं ॥३३॥ जो बहुत बार समझाने पर भी क्षमा कर दिया करते हैं उसको उत्तम श्रेणी का मनुष्य कहा जाया करता है और वह भगवान् विष्णु का भी परम प्रिय होता है ॥३४॥ दूसरों के हित सम्पादन करने की इच्छा वाला सुजन पुरुष विनाश के समय में भी वैर नहीं निकाला करता है। चन्दन का वृक्ष काटने के लिये कुठार अपने ऊपर पड़ने पर भी उसकी धार को सुगन्धित कर दिया करता है ॥३५॥

अहो विधि सुबलवान्बाध्यते बहुधा जनान् ।
सर्वसङ्गविहीनोऽपि बाध्यते हि दुरा मना ॥३६

अहो निष्कारण लोके बाधन्ते बहुधा जनान् ।
सवसर्गविहीनोऽपि बाध्य ते पिशुनैर्जनैं ।
तथापि साध्वूबाधन्ते न समानान्कदाचन ॥३७
मृगमीनसज्जनाना तृणजलसतोषविहितवृत्तीनाम् ।
लुब्धकधीवरपिशुना निष्कारणवैरिणो जगति ॥३८
अहो बलवती माया मोहयत्यखिल जगत ।
पुत्रमित्रकलत्रार्थ सर्व दु खेन योजयेत् ॥३९
परद्रव्यापहारेण कलत्र पोषित त्वया ।
अन्ते तत्सर्वमुत्सृज्य एक एव प्रयाति वै ॥४०
मम माता मम पिता मम भार्या ममात्मजा ।
ममेदमिति जतूना ममता बाधते वृथा ॥४१
यावदर्जयति द्रव्य बाधवास्तावदेव हि ।
धर्माधर्मौ सहैवास्तामिहामुत्र न चापर ॥४२

अहो ! यह प्रारब्ध बहुत ही अधिक बलवान् होता है। यही प्राणियो को सदा पीडा दिया करता है। उसी के कारण से सब प्रकार के सङ्गो से रहित भी प्राणी दुरात्माओ स कष्ट भोगा करता है ॥३६॥ अहो ! ससार म यह मनुष्य निष्कारण ही जीवो को पीडा पहुँचाया करता है। जो किसी से भी कुछ प्रयोजन नही रक्खा करत हैं उसको भी चुगल खोर लोग कष्ट एव पीडा पहुँचाया करत हैं। ये लाग अपनी बराबरी रखन वाला को कुछ नही किया करत है और जो साधु पुरुष होते हैं उन्ही को सताया करते हैं ॥३७॥ विचार करक देखने की बात है कि मृग–मीन और सत्पुरुष तृण जल और स तोष वृत्ति स ही अपनी आजीविका चलाया करत हैं तो भी वहेलिये लाेग–धीवर और पिशुन (बदमाश) लोग बिना ही किसी कारण के इन से ही अपना वैर बाँधकर उन्हे सताया करते हैं ॥३८॥ अहो ! यह माया बहुत ही अधिक प्रबल है। यह अपनी अद्भुत शक्ति के द्वारा सम्पूर्ण जगत् को मोह म

डाल दिया करती है। पुत्र-मित्र और स्त्री के बढ़ाने से यह सभी को कष्ट में डाल दिया करती है ॥३९॥ अरे ? मूढ़ ! तू दूसरों का धन छीनकर और सताकर अपने पुत्रादि कुटुम्ब का पोषण किया करता है किन्तु जब अन्त समय आता है तब इन सबको यहीं पर छोड़कर अकेला ही यहाँ से कूँच कर दिया करता है। उस समय में कोई भी साथ नहीं दिया करता है ॥४०॥ यह मेरे माता-पिता-पुत्र और भार्या हैं—इस तरह की ममता प्राणियों को निरर्थक ही कष्ट में डाले रहा करती है ॥४१॥ यह मनुष्य जब तक धन कमाता है तभी तक ये सब उसका साथ दिया करते हैं। असमर्थ होने पर कोई भी किसी का साथ नहीं दिया करता है किन्तु धर्माधर्म दोनों ही लोकों में साथ रहते हैं और कभी भी साथ नहीं छोड़ा करते हैं। ४२॥

धर्माधर्मार्जितैर्द्रव्यैः पोषिता येन ये नराः ।
मृतमग्निमुखे हुत्वा घृतान्नं भुञ्जते हिते ॥४३
गच्छन्तं परलोकं च नरं तु ह्यनुतिष्ठतः ।
धर्माधर्मौ न च धनं न पुत्रा न च बान्धवाः ॥४४
कामं समृद्धिमायाति नराणां पापकर्मिणाम् ।
कामं सक्षयमायाति नराणां पुण्यकर्मणाम् ॥४५
वृथैव व्याकुला लोका धनादीनां सदार्जने ॥४६
यद्भावि तद्भवत्येव यदभाव्यं न तद्भवेत् ।
इति निश्चितबुद्धीनां न चिन्ता बाधते क्वचित् ॥४७
दैवाधीनमिदं सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् ।
तस्माज्जन्म च मृत्युं च दैवं जानाति नापरः ॥४८
यत्र कुत्र स्थितस्यापि यद्भाव्यं तद्भवेद् ध्रुवम् ।
लोकस्तु तत्र विज्ञाय वृथायासं करोति हि ॥४९

धर्म या अधर्म से सञ्चित किये हुए धन से जिनका भरण-पोषण किया है वे ही पुरुष उसके मर जाने पर उसको अग्नि में झोंककर जला

खाते हैं और घृत मिश्रित अन्न को उड़ाया करते हैं ॥४३॥ परलोक में गमन करने वाले पुरुष के पीछे या साथ केवल अपने जीवन काल में किए हुए धर्म तथा अधर्म ही जाया करते हैं शेष अतुल वैभव घर महल और परमप्रिय बन्धुगण सभी यहीं पर ही रह जाया करते हैं। जिनके कल्याण के लिए प्राणी समस्त जीवन का समय भुला दिया करता है ॥४४॥ जो पाप कर्मों के करने वाले प्राणी होते हैं उनकी कामनायें दिन दूनी बढ़ती ही जाया करती हैं किन्तु इसके विपरीत पुण्यात्मा पुरुषों की कामनाएं कम हो जाया करती हैं ॥४५॥ मनुष्य इस संसार में धन का संचय करने के लिए व्यर्थ ही में बेचैन रहा करते हैं ॥४६॥ जो भी कुछ होने वाला है वही हुआ करता है और जो नहीं होने वाली है वह कभी भी हो ही नहीं सकती है—इस ज्ञान से जिनकी बुद्धि परिपक्व होती है उन्हें चिंता कभी भी नहीं सताया करती है ॥४७॥ यह चराचर सम्पूर्ण जगत् दैव के ही अधीन है। अतः जन्म और मृत्यु का भी ज्ञान है दैव को ही हुआ करता है अन्य कोई भी नहीं जान सकता है॥४८॥ यह मनुष्य चाहे जहाँ पर भी हो जाए उसकी होनहार होती है वह वहीं पर किसी न किसी रीति से अवश्य ही होकर रहेगी मिट नहीं सकती है। लोग इस बात का ज्ञान रखकर भी वृथा ही परिश्रम किया करते हैं और मरते मिटते रहा करते हैं ॥४९॥

अहो दुःखं मनुष्याणां ममतातुलनेतमाम् ।
महापापानि कृत्वापि परान्पुष्यन्ति यत्नतः ॥५०
अर्जित [illegible] धनं सर्वं भुञ्जते बांधवाः सदा ।
स्वयमेकतमो मूढस्तत्पापफलमश्नुते ॥५१
इति सञ्चिन्त्य तमृषि विमुच्य भयविह्वलः ।
गुणिनः प्रोजनि प्राह क्षमस्वेति पुनः पुनः ॥५२
सत्सङ्गस्य प्रभावेण हरिसन्निधिमात्रतः ।
गतपापो मुधकश्च ह्यनुतापोदमब्रवीत् ॥५३

के चरणामृत का स्पर्श होते ही वह लुब्धक पाप रहित होगया था। फिर दिव्य विमान पर समारूढ होकर उत्तङ्क महा मुनि से कहने लगा था—गुलिक ने कहा—हे मुनि शार्दूल! आप मेरे गुरु हैं। हे सुव्रत! आपकी ही कृपा से मैं महापातकों के कञ्चुक से मुक्त होगया हूँ ॥६२॥ हे मुनिश्रेष्ठ! आपके इस उपदेश से ही मेरा सब सन्ताप दूर हो गया है। और मेरे समस्त पापों का समुदाय भी बड़े ही वेग के साथ नष्ट हो गया है ॥६३॥

हरिपादोदकं यस्मान्मयि त्वं सिक्तवान्मुने।
प्रापितोऽस्मि त्वया तस्मात्तद्विष्णोः परमं पदम् ॥६४
त्वयाहं तारितो विप्र पापादस्माच्छरीरतः।
तस्मान्नतोऽस्मि ते विद्वन्मत्कृतं तत्क्षमस्व च ॥६५
इत्युक्त्वा देवपुष्पैस्तं मुनिवर्यं समाकिरन्।
प्रदक्षिणात्रयं कृत्वा नमस्कारं चकार सः ॥६६
ततो विमानमारुह्य सर्वकामसमन्वितम्।
अप्सरोगणसंकीर्णं प्रपेदे हरिमन्दिरम् ॥६७
एतद् दृष्ट्वा विस्मितोऽसौ ह्युत्तङ्कस्तपसां निधिः।
शिरस्यञ्जलिमाधाय तुष्टाव कमलापतिम् ॥६८
तेन स्तुतो महाविष्णुर्दत्तवान्वरमुत्तमम्।
वरेण तेनोत्तङ्कोऽपि प्रपेदे परमं पदम् ॥६९

हे मुनिवर! आपने मेरे पापकी शरीर पर भगवान् का चरणामृत छिड़का था। इसी से आप मुझे भगवान् विष्णु के परम धाम में पहुँचा रहे हैं ॥६४॥ हे विप्रवर! आपने ही मेरे इस पापपूर्ण शरीर से मेरा उद्धार कर दिया है। अतएव मैं आपकी सेवा में सादर प्रणाम समर्पित करता हूँ। हे विद्वन्! मैंने जो कुछ भी दुर्व्यवहार आपके साथ किया है उसे आप क्षमा कर दीजिए ॥६५॥ इस तरह से प्रार्थना करके उसने मुनिवर पर देव कुसुमों की वृष्टि की थी और फिर तीन परिक्रमा

रके उनके चरणों मे प्रणाम किया था ॥६६॥ इसके अनन्तर वह
मस्त कामनाओं से भरे-पूरे उस परम दिव्य विमान पर चढ़कर अप्स-
राओं के झुण्ड के मध्य में स्थित होकर विष्णुलोक में पहुँच गया था।
स अद्भुत घटना को देखकर उत्तङ्क मुनि को बहुत विस्मय हो गया
॥ और फिर वह तपोनिधि महामुनि हाथ जोड़कर कमलापति भगवान्
ी स्तुति करने लग गये थे ॥६८॥ उनके स्तवन करने पर भगवान् ने
उनको उत्तम वरदान दिया था। उस वरदान के प्रभाव से उत्तङ्क मुनि
भी परमपद को प्राप्त होगये थे ॥६९॥



॥ उत्तंक को विष्णुपद मिलना ॥

किं तत्स्तोत्रं महाभाग कथं तुष्टो जनार्दनः ।
उत्तङ्कः पुण्यपुरुषः कीदृशं लब्धवान्वरम् ॥१
उत्तङ्कस्तु तदा विप्रो हरिध्यानपरायणः ।
पादोदकस्य माहात्म्यं दृष्ट्वा तुष्टाव भक्तितः ॥२
नतोऽस्मि नारायणमादिदेवं जगन्निवासं जगदेकबन्धुम् ।
चक्राब्जशार्ङ्गासिधरं महान्तं स्मृतार्तिनिघ्नं शरणं प्रपद्ये ॥३
यन्नाभिजाब्जप्रभवो विधाता सृजत्यमुं लोकसमुच्चयं च ।
यत्क्रोधजो हन्ति जगच्च रुद्रस्तमादिदेवं प्रणतोऽस्मि विष्णुम् ॥४
पद्मापतिं पद्मदलायताक्षं विचित्रवीर्यं निखिलैकहेतुम् ।
वेदान्तवेद्यं पुरुषं पुराणं तेजोनिधिं विष्णुमहं प्रपन्नः ॥५
आत्माक्षरः सर्वगतोऽच्युताख्यो ज्ञानात्मको ज्ञानविदां शरण्यः ।
ज्ञानैकवेद्यो भगवाननादिः प्रसीदतां व्यष्टिसमष्टिरूपः ॥६
अनन्तवीर्यो गुणजातिहीनो गुणात्मको ज्ञानविदां वरिष्ठः ।
नित्यः प्रपन्नार्तिहरः परात्मा दयाम्बुधिर्मे वरदस्तु भूयात् ॥७
देवर्षि श्री नारदजी ने कहा—हे महाभाग ! वह स्तव कौन-

सा है जिसका श्रवण कर भगवान जनार्दन प्रभु प्रसन्न होगये थे और महान् पुण्यात्मा उत्तङ्क ने कौनसा वरदान प्राप्त किया था ? ॥१॥ श्री सनकाचार्य ने कहा—ब्राह्मण उत्तङ्क तो सर्वदा श्री हरि के ध्यान मे ही मग्न रहा करते थे। उन्होने श्री हरि के चरणामृत का महा माहात्म्य को जब देखा था तो वे भक्तिभाव से समन्वित होकर भगवान का स्तवन करने लग गये थे ॥२॥ उत्तङ्क मुनि ने कहा था—मैं आदि देव-पुराण पुरुष-जगत् के आधार-जगत् में एक मात्र बन्धु भगवान् नारायण को सादर प्रणाम करता हूँ। शङ्ख चक्र गदा-पद्म शार्ङ्ग धनुष और खड्ग को धारण करने वाले तथा भक्ति के सहित स्मरण करने वालो की पीडा को नष्ट करने वाले महा विष्णुदेव के चरण कमलो की मैं शरण लेता हूँ ॥३॥ जिनकी नाभि मे समुत्पन्न कमल से उद्भूत हुए ब्रह्माजी इन समस्त लोको की रचना किया करते हैं और जिनके क्रोध से समुत्पन्न हुए रुद्रदेव इस सम्पूर्ण विश्व का सहार किया करते हैं उन्ही आदि देवेश्वर भगवान विष्णु की सेवा मे मेरा सादर प्रणाम समर्पित है ॥४॥ लक्ष्मी के स्वामी कमल दल के समान परम सुन्दर एव विशाल नेत्रो वाले, अत्यद्भुत बल पराक्रम से समन्वित, सबके एक मात्र कारण, वेदान्त के ग्रन्थो के द्वारा जानने मे आने वाले परम पुराण पुरुष, तेज की खान भगवान विष्णु की मैं शरण ग्रहण करता हूँ ॥५॥ आत्मा, अक्षर,सबमे व्यापक, अच्युत नाम-धारी भगवान ज्ञानस्वरूप हैं। ज्ञानवान पुरुष ही उनकी शरण ग्रहण किया करते हैं। वे एक मात्र ज्ञान के द्वारा ही जाने जा सकते हैं। ऐसे व्यष्टि, समष्टि स्वरूप अनादि भगवान मुझ पर प्रसन्न होवें।६। अनन्त वीर्य वाले, निर्गुण, अजन्मा तथा ब्रह्मा, विष्णु रुद्र आदि के अवतार स्वरूपो मे गुणवान, ज्ञान के दाताओ मे परम श्रेष्ठ, शरण करने वालों को पीडा को सदा दूर करने वाले कृपा के सागर परमात्मा मुझे वरदान प्रदान करें ।७।

य. स्थूलसूक्ष्मादिविशेषभेदैर्जगद्यथावत्स्वकृतं प्रविष्टः ।
त्वमेव तत्सर्वमनन्तसार त्वत्तः परं नास्ति यतः परात्मन् ॥८
अगोचरं यत्तव शुद्धरूपं मायाविहीनं गुणजातिहीनम् ।
निरञ्जनं निर्मलमप्रमेयं पश्यन्तिसन्तः परमार्थसज्ञम् ॥६
एकेन हेम्नैव विभूषणानि यातानि भेदत्वमुपाधिभेदात् ।
तथैव सर्वेश्वर एक एव प्रदृश्यते भिन्न इवाखिलात्मा ॥१०
यन्मायया मोहितचेतसस्तं पश्यन्ति नात्मानमपि प्रसिद्धम् ।
त एव मायारहितास्तदेव पश्यन्ति सर्वात्मकमात्मरूपम् ॥११
विभुं ज्योतिरनौपम्यं विष्णुसंज्ञं नमाम्यहम् ।
समस्तमेतदुद्भूतं यतो यत्र प्रतिष्ठितम् ॥१२
यतश्चैतन्यमायातं यद्रूपं तस्य वै नमः ।
अप्रमेयमनाधारमाधाराधेयरूपकम् ॥१३
परमानन्दचिन्मात्रं वासुदेवं नतोऽस्म्यहम् ।
हृदयगुहानिलयं देवं योगिभिः परिसेवितम् ॥१४

जो इस स्थूल-सूक्ष्म आदि अनेक भेदों से युक्त जगत की रचना करके अपने द्वारा रचित किये गये इस जगत् में अपने आप ही प्रविष्ट रहा करते हैं। हे परमात्मन्! आप ही वह अनन्तसार सब कुछ हैं क्योंकि आपसे पर अन्य कुछ भी नहीं है ॥८॥ आपका माया, गुण और जन्म से रहित शुद्ध स्वरूप है वह नितान्त निर्मल, निरञ्जन और अप्रमेय है उस परमार्थस्वरूप आपका दर्शन सत्पुरुष ही किया करते हैं या कर सकते हैं ॥६॥ समस्त आभूषण एक ही सुवर्ण के हुआ करते हैं किन्तु विभिन्न उपाधियों से उनके अनेक भेद हो जाया करते हैं इस प्रकार से वह सर्वेश्वर प्रभु अखिलात्मा एक ही हैं किन्तु ब्रह्मा, विष्णु आदि के अनेक भेदों वाले दिखलाई दिया करते हैं ।१०। उनकी माया बहुत ही प्रबल है। उस माया से जिन पुरुषों का चित्त मोहित होजाया करता है वे उन परम प्रसिद्ध आनन्द स्वरूप का भी

दर्शन नहीं कर पाते हैं और जब वे माया रहित होजाया करते हैं तभी उनको वे आत्म स्वरूप से दिखाई देते हैं ।११। जो भगवान सब में व्यापक हैं और ज्योति स्वरूप हैं जो अनुपम हैं, जिन प्रभु से इस सम्पूर्ण जगत की उत्पत्ति हुई है और जिसके ही स्वरूप में यह सम्पूर्ण जगत प्रतिष्ठित है उन्हीं श्री महा विष्णु देवेश्वर को मैं प्रणाम करता हूँ ।१२। जिन प्रभु चैतन्य का समाराधन होता है और जिनका स्वरूप ही चैतन्य है उनकी सेवा में मेरा प्रणाम है। जिनका वर्णन प्रमाणों के द्वारा नहीं किया जा सकता है और जिनका कोई भी आधार नहीं है तथा जो आधार और आधेय दोनों ही हैं उन परमानन्दस्वरूप चिन्मय भगवान् वासुदेव को मैं प्रणाम करता हूँ। जो हृदयरूपी गुफा में शयन करने वाले और योगिजनों के द्वारा सव्यमान हैं ।१३-१४।

योगानामादिभूत त नमामि प्रणवस्थितम् ।
नादात्मक नादबीज प्रणवात्मकमव्ययम् ॥१५
सद्भाव सच्चिदानन्द त वन्दे तिग्मचक्रिणम् ।
अजर साक्षिण त्वस्य ह्यवाङ्मनसगोचरम् ॥१६
निरञ्जनमनताख्य विष्णुरूप नतोऽस्म्यहम् ।
इन्द्रियाणि मनो वुद्धि सत्त्व तेजो बल धृति ॥१
वासुदेवात्मकान्याहु क्षेत्र क्षेत्रज्ञमेव च ।
विद्याविद्यात्मक प्राहु परात्परतर तथा ॥१८
अनादिनिधन शान्त सर्वधातारमच्युतम् ।
ये प्रपन्ना महात्मानस्तेषा मुक्तिर्हि शाश्वती ॥१
वर वरेण्य वरद पुराण सनातन सर्वगत समस्त
नतोऽस्मि भूयोऽपि नतोऽस्मिभूयो नतोऽस्मि
भूयोऽपि नतोऽस्मि भूय ॥२०
यत्पादतोय भवरोगवैद्यो यत्पादपांशुर्विमलत्वसिः
यन्नाम दुष्कर्मनिवारणाय तमप्रमेय पुरुष भजामि ॥२१

जो प्रभु योगों के आदिभूत हैं और प्रणव के रूप में विराजमान हैं उन देवेश्वर भगवान को मैं प्रणाम करता हूँ। जो नादस्वरूप, नाद के बीज, प्रणवात्मक एवं अच्युत हैं। जो सद्भावनात्मक और परम सच्चिदानन्दस्वरूप, सुदर्शन चक्र के धारण करने वाले देव हैं उनकी सेवा में मेरा प्रणाम है। जो अजर, अमर, साक्षी, मन वाणी के अगोचर हैं, जो अनन्त नामधारी, निरञ्जनस्वरूप उन विष्णु भगवान को मैं समादर पूर्वक प्रणाम करता हूँ। इन्द्रिया, मन, बुद्धि, सत्व, तेज, बल, धृति, क्षेत्र और क्षेत्रज्ञ इन सबमें भगवान वासुदेव का ही अंश विद्यमान होता है। भगवान वासुदेव ही विद्या और अविद्या तथा श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठतम है ॥१५—१८॥ जो महान आत्मा वाले, जन्म-मरण से रहित और सनन्दनादि गुणों से सम्पन्न एवं सबका पोषण करने वाले भगवान अच्युत की शरणागति ग्रहण किया करते हैं उनके तो बायें हाथ में मुक्ति रहा करती है ॥१६॥ सर्वश्रेष्ठ शिरोमणि, वरण करने के योग्य वरदानदाता सनातन, पुराण पुरुष, सब में व्याप्त भगवान की सेवा में मेरा प्रणाम अर्पित है। तथा मैं उन प्रभु को बारम्बार एवं पुनः पुनः प्रणाम करता हूँ ॥२०॥ जिनका चरणामृत इस संसाररूपी रोग का महान श्रेष्ठ चिकित्सक है और जिनके चरण के स्पर्श की हुई रज निर्मल कर दिया करती है। जिन प्रभु का परम पावन नाम दुष्कर्मों को दूर भगा दिया करता है उन्हीं अप्रमेय पुरुष श्री भगवान् को मैं प्रणाम करता हूँ ॥२१॥

सद्रूपं तमसद्रूपं सदसद्रूपमव्ययम् ।
तत्तद्विलक्षणं श्रेष्ठं श्रेष्ठात् श्रेष्ठतरं भजे ॥२२
निरञ्जनं निराकारं पूर्णमाकाशमध्यगम् ।
परं च विद्याविद्याभ्यां हृदम्बुजनिवासिनम् ॥२३
स्वप्रकाशमनिर्देश्यं महतां च महत्तरम् ।
अणोरणीयासमजं सर्वोपाधिविवर्जितम् ॥२४

यन्नित्य परमान द पर ब्रह्म सनातनम् ।
विष्णुसज्ञ जगद्धाम तमस्मि शरण गत ॥२५
य भजन्ति क्रियानिष्ठा य पश्यन्ति च योगिन ।
पूज्यात्पूज्यतर शान्त गतोऽस्मि शरण प्रभुम् ॥२६
य न पश्यन्ति विद्वासो य एतद्व्याप्य तिष्ठति ।
सर्वस्मादधिक नि य नतोऽस्मि विभुमव्ययम् ॥२७
अन्त करणसयोगाज्जीव इत्युच्यते च य ।
अविद्याकार्यरहित परमात्मेति गीयते ॥२८
सर्वात्मक सर्वहेतु सर्वकर्मफलप्रदम् ।
वर वरेण्यमजन प्रणतोऽस्मि परात् परम् ॥२६

जिनका स्वरूप सत् और असत् दोनो ही प्रकार का है अर्थात् जो चेतन और जड दोनो ही रूपो वाले है। जो इन दोनो रूपो से भी विलक्षण है उन श्रेष्ठ से भी उपश्रेष्ठ प्रभु को मेरा प्रणाम है ।२२। जो सदा निरञ्जन निराकार परिपूर्ण और हृदयाकाश के मध्य मे विराजमान है जो इस विद्या और अविद्या से पर है हृदय कमल में निवास करने वाले स्वप्रकाश अनिर्देश्य महान् से महान् तथा सूक्ष्माति सूक्ष्म है। जो जन्मरहित एव समस्त उपाधियों से शून्य नित्य परमानन्दमय, सनातन परब्रह्म है उन्ही इस सम्पूर्ण जगत के आश्रय भगवान विष्णु की मैं शरण ग्रहण करता हूँ ॥ २३।२४।२५ ॥ कर्मो मे निष्ठा रखने वाले पुरुष जिनका भजन किया करते हैं और योगीजन योगाभ्यास के द्वारा जिनका दर्शन प्राप्त किया करते है उन्ही पूज्य प्रवरो के भी परम पूजनीय शम दमादि गुणो से विभूषित भगवान की मैं शरण ग्रहण करता हूँ ।२६।। जो परम दयालु प्रभु इस सम्पूर्ण दृश्य प्रपञ्च को व्याप्त करके विराजमान है उनका विद्वज्जन अज्ञभाव मे दर्शन प्राप्त नही कर पाते है उन सर्वाधिक विभु नित्य भगवान अच्युत को मैं प्रणाम करता हूँ ॥२७। जो अन्त करण के सयोग होने से जीवात्मा

न्हे जाया करते है और अविद्या के कार्य से रहित अवस्था से पर-
ात्मा कहे जाया करते है और अविद्या के कार्य से रहित अवस्था मे
रमात्मा कहे जाया करते हैं उन्ही सर्वात्मक, सबका हेतु तथा समस्त
र्मों का फल प्रदान करने वाले, परम श्रेष्ठ, वरण करने के योग्य पर
। भी पर प्रभु को मैं प्रणाम करता हूँ ॥२६॥

सर्वज्ञ सर्वगं शान्त सर्वान्तर्यामिण हरिम् ।
ज्ञानात्मक ज्ञाननिधि ज्ञानसस्थ विभु भजे ॥३०
नमाम्यहं वेदनिधिं मुरारिं वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थम् ।
सूर्येन्दुवत् प्रोज्ज्वलनेत्रमिन्द्र खगस्वरूप च पतिस्वरूपम् ॥३१
सर्वेश्वर सर्वगत महान्त वेदात्मक वेदविदा वरिष्ठम् ।
वा वाड्मनोऽचिन्त्यमनन्तशक्ति ज्ञानैकवेद्य पुरुष भजामि॥३
इन्द्राग्निकालासुरपाशिवायुसोमेशमार्तण्डपुरन्दराद्यैः ।
य पाति लोकान् परिपूर्णभावस्तमप्रमेय शरण प्रपद्ये ॥३३
सहस्रशीर्ष च सहस्रपाद सहस्रबाहु च सहस्रनेत्रम् ।
समस्तयज्ञे परिजुष्टमाद्य नतोऽस्मि तुष्टिप्रदमुग्रवीर्यम् ॥३४
कालात्मक कालविभागहेतु गुणत्रयातीतमह गुणज्ञम् ।
गुणप्रिय कामदमसङ्गमतीन्द्रिय विश्वभुज वितृष्णम् ॥३५
निरीहमग्र्य मनसाप्यगम्य मनोमय नान्नमय निरूढम् ।
विज्ञानभेद प्रतिपन्नकल्प न वाड्मय प्राणमय भजामि ॥३६

सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, परम शान्त, ज्ञानात्मक, ज्ञान के निधि ज्ञान मे सस्थित और विभु का भगवान महाविष्णु देव की मैं सेवा करता हूँ ॥ ३० ॥ जिनका एक निश्चित स्वरूप मे प्रकाशन, वेदान्त का विज्ञान ही किया करता है उन्हीं वेद की निधि भगवान मुरारि को मैं प्रणाम किया करता हूँ । चन्द्र और सूर्य के स्वरूप मे उज्ज्वल नेत्रो वाले, गरुड पक्षी जिनका आत्मीय स्वरूप है तात्पर्य यह है कि जो उसके पति के स्वरूप मे विराजमान है उस सर्वेश्वर, सर्वगत, वेदात्मक, वेदो के ज्ञाताओ मे महान श्रेष्ठ, मन, वाणी

के द्वारा अचिन्तनीय, अनन्त शक्ति, एकमात्र ज्ञान के द्वारा ही जाने जा सकने वाले परम पुरुष प्रभु की मैं उपासना करता हूँ ।।३१।।३२।। जो प्रभु इन्द्र, अग्नि, काल, निऋ ति, वरुण, वायु, सोम शिव, सूर्य, चन्द्र प्रभृत्ति अनेक मूर्तियों के द्वारा समस्त लोकों का परिपालन किया करते है उन्ही परिपूर्ण भाव वाले अप्रमेय भगवान विष्णु की शरणागति में मैं प्राप्त होता हूँ ।। ३३ ।। सवव्यापकता के कारण जो सहस्रों ही शिर, कर, चरण और नेत्रो वाले है । सभी प्रकार के यज्ञ जिनकी सेवा और प्रसन्नता करने ही के लिए किये जाया करते हैं उन परमोग्र, पराक्रम से सम्पन्न तथा अपने परम प्रिय भक्तों को सन्तोष प्रदान करने वाले भगवान को मैं प्रणाम करता हूँ ।।३४।। तीनों (सत्त्व, रज, तम) गुणो से पर, काल के स्वरूपधारी, काल के विभाजन के कारण, गुणो के ज्ञाता, गुणो पर प्यार करने वाले, प्राणियों की कामनाओ को पूर्ण करने वाले, सङ्ग शून्य, अतीन्द्रिय तृष्णा से रहित, विश्व के भोक्ता, निरीह, अगम, मन के द्वारा अगम्य, मनोमय, अन्नमय आदि कोशों मे व्यापक, विज्ञानादि भेदो से सम्पन्न, समर्थ, जो न वाङ्मय है और न प्राणमय ही है ऐसे भगवान् का मैं समाश्रय ग्रहण करता हूँ ।।३५।३६।।

न यस्य रूप न वलप्रभावो न यस्य कर्माणि न यत्प्रमाणम् ।
जानन्ति देवा कमलोद्भवाद्या
स्तोष्याम्यह त कथमात्मरूपम् ।।३७
ससारसिंधौ पतित कदर्यं मोहाकुल कामशतेन वद्धम् ।
अकीर्तिभाज पिशुन कृतघ्न सदाशुचि पापरत प्रमुन्युम् ।
दयाम्बुधे पाहि भयाकुल मा पुन पुनस्त्वा शरणंप्रपद्य ।।३८
इति प्रसादितस्तेन दयालु कमलापति ।
प्रत्यक्षतामगात्तस्य भगवास्तेजसा निधि ।।३९
अतसीपुष्पसकाश फुल्लपङ्कजलोचनम् ।

किरीटिनं कुण्डलिनं हारकेयूरभूषितम् ॥४०
श्रीवत्सकौस्तुभधरं हेमयज्ञोपवीतिनम् ।
नासाविन्यस्तमुक्ताभवर्धमानतनुच्छविम् ॥४१
पीताम्बरधरं देवं वनमालाविभूषितम् ।
तुलसीकोमलदलैरर्चिताङ्घ्रिं महाद्युतिम् ॥४२
किङ्किणीनूपुराद्यैश्च शोभितं गरुडध्वजम् ।
दृष्ट्वा ननाम विप्रेन्द्रो दण्डवत् क्षितिमण्डले ॥४३

ब्रह्मादि देवगण भी जिनके स्वरूप, बल, प्रभाव, कर्म और प्रमाण को नहीं जान पाते हैं उन आत्मरूप प्रभु की मैं किस प्रकार से स्तुति करूँ ।३७। हे भगवन् ! मैं तो इस संसाररूपी महान् सागर मे गोते खा रहा हूँ—मोह से महान् मुग्ध, कदर्य, सहस्रों मनोरथों से बँधा हुआ, अकीर्ति का पात्र, पिशुन, कृतघ्न, सर्वदा अशुचि, पाप परायण, परमाधिक क्रोध वाला एवं भयभीत मेरी हे दया के सागर ! आप रक्षा कीजिए । मैं बारम्बार आपकी शरण ग्रहण करता हूँ । ॥३८॥ जिस समय मे महामुनि उत्तङ्क ने कमलापति भगवान् की इस तरह से स्तुति की थी उस समय मे भगवान् को दया आ गयी थी और तेज के निधि भगवान् उस मुनि के समक्ष में प्रत्यक्ष हो गये थे । ॥३९॥ अलसी के पुष्प के समान वर्ण वाले, विकसित कमल के सदृश नेत्रों से युक्त, मुकुट, कुण्डल, हार और बाजूबन्दों से विभूषित, श्रीवत्स और कौस्तुभ मणि को धारण करने वाले, सुवर्ण का यज्ञोपवीत पहिने हुए, और अपनी सुन्दर नासिका में धारण किये हुए मुक्ता की दमक से बढ़ने वाली शरीर की कान्ति से युक्त, पीताम्बर धारी, वनमाला पहिनने वाले, परमाधिक तेजस्वी कटि किङ्किणी और नूपुरों से शोभित, गरुडध्वज परम देवेश्वर भगवान् का दर्शन प्राप्त कर उस विप्रवर उत्तङ्क ने भूमि पर उनके समक्ष चरणों में दण्ड के समान पड़ कर साष्टाङ्ग प्रणाम किया था ॥४०–४३॥

अभ्यषिचद्धरे पादावुत्त को हर्षवारिभि ।
मुरारे रक्ष रक्षेति व्याहरन्नान्यधीस्तदा ॥४४
तमुत्थाप्य महाविष्णुरालिलिंग दयापर ।
वर वृणुष्व वत्सेति प्रोवाच मुनिपुङ्गवम् ॥४५
असाध्य नास्ति किंचित्ते प्रसन्ने मयि सत्तम ।
इतीरित समाकर्ण्य ह्यु त्त कश्चक्रपाणिना ।
पुन प्रणम्य त प्राह देवदेव जनार्द्दनम् ॥४६
कि मा मोहयसीश त्व किमन्यैर्देव मे वरै ।
त्वयि भक्तिर्दृढा मेऽस्तु जन्मजन्मान्तरेष्वपि ॥४७
कीटेषु पक्षिषु मृगेषु सरीसृपेषु रक्ष पिशाचमनुजेष्वपि यत्र तत्र ।
जातस्य मे भवतु केशव ते प्रसादात्त्वय्येव
भक्तिरचलाव्यभिचारिणी च ॥४८
एवमस्त्विति लोकेश शङ्खप्रान्तेन सस्पृशन् ।
दिव्यज्ञान ददौ तस्मै योगिनामपिदुर्लभम् ॥४९

अन य चित्त वाले उत्तङ्क मुनि ने प्रार्थना की थी—हे मुरारे ! रक्षा करो— रक्षा करो । इस प्रकार से विनय करते हुए उसने अपने हर्ष के आँसुओ से श्री हरि के चरणो को भिगो दिया था ।४४। उसी समय महाविष्णु भगवान् ने दया करके उसको उठाकर आलिङ्गन किया था और उस मुनि श्रेष्ठ से कहा—हे वत्स ! तुम अपना अभीष्ट वर माँगलो ॥४५॥ भगवान् ने कहा—हे श्रेष्ठतम ! मैं तुझ पर परम प्रसन्न हूँ । अब तू अपने लिये किसी भी बात को असाध्य मत समझे । भगवान् चक्रपाणि के इस भाषण का श्रवण कर उत्तक देवाधिदेव प्रभु को पुन प्रणाम करके बोले ।४६। हे ईश ! क्या आप मुझे फिर मोह मे डालना चाहते हैं । हे देवेश्वर ! मुझे अब अन्य वरदानो से क्या करना है ! मैं तो यही चाहता हूँ कि जन्म जन्मान्तरो में मेरी भक्ति आपके श्रीचरणो मे सुदृढ बनी रहे ।४७। मैं कर्मानुसार पक्षी, कीट, मृग, सर्प राक्षस,

पिशाच और मनुष्य जिस किसी भी योनि मे रहूँ आपकी परम कृपा से उसी योनि मे मेरी आपके चरणो मे अविचल अनन्य भक्ति बनी रहे ।४८। इस तरह से उतङ्क मुनि के द्वारा प्रार्थना करने पर भगवान् ने 'तथास्तु'—यह कहकर अपने शङ्ख के कोने से उसका स्पर्श कराके उसको उसी समय मे योगियो को भी दुर्लभ ज्ञान प्रदान कर दिया था ।४९।

पुनः स्तुवन्तं विप्रेन्द्र देवदेवो जनार्दनः ।
इवमाह स्मितमुखो हस्तं तच्छिरसि न्यसन् ॥५०
आराधय क्रियायोगैर्मां सदा द्विजसत्तम ।
नरनारायणस्थानं व्रज मोक्षं गमिष्यसि ॥५१
त्वया कृतमिदं स्तोत्रं यः पठेत्सततं नरः ।
सर्वान्कामानवाप्यान्ते मोक्षभागी भवेत्ततः ॥५२
इत्युक्त्वा माधवो विप्र तत्रैवान्तर्दधे मुने ।
नरनारायणस्थानमुत्तङ्कोऽपि ततो ययौ ॥५३
तस्माद्भक्तिः सदा कार्या देवदेवस्य चक्रिणः ।
हरिभक्तिः परा प्रोक्ता सर्वकामफलप्रदा ॥५४
उत्तङ्को भक्तिभावेन क्रियायोगपरो मुने ।
पूजयन्माधवं नित्यं नरनारायणाश्रमे ॥५५
ज्ञानविज्ञानसम्पन्नः सञ्छिन्नद्वैतसंशयः ।
अवाप दुरवापं वै तद्विष्णोः परमं पदम् ॥५६

जिस समय वह विप्र उत्तङ्क पुनः भगवान् का स्तवन करने लगे तो तब देवदेव जनार्दन प्रभु ने उसके मस्तक पर अपना हाथ रख कर मुस्कराते हुए श्री भगवान् ने कहा—हे द्विजश्रेष्ठ ! अब तुम सर्वदा क्रिया योग के द्वारा मेरी आराधना करने के लिये नारायण के आश्रम (बदरिकाश्रम) मे चले जाओ। तुम्हारी निश्चय ही मुक्ति हो जायगी ॥ ५० । ५१ ॥ जो भी कोई मनुष्य आपके द्वारा किये गये इस स्तोत्र

का सर्वदा पाठ करेगा वह इसके प्रभाव से समस्त मनोरथो को भोग कर अन्त मे मोक्ष की प्राप्ति करेगा ॥ ५२ ॥ हे मुनिवर ! भगवान् माधव उस विप्र से इतना कहकर वही पर अन्तर्हित होगये थे। उसी समय मे वह उत्तक भी नर–नारायण के आश्रम मे चले गये थे ।५३। इसीलिये देवो के देव भगवान् सुदर्शन धारण करने वाले की भक्ति सम्पूर्ण मनोरथो को पूर्ण करने वाली होती है ।५४। हे मुनिवर ! वह उत्तक मुनि फिर नर–नारायण के आश्रम मे क्रिया योग से भक्ति-भाव के साथ नित्य ही नारायण प्रभु का पूजन किया करते थे। ऐसा करते हुए वे विज्ञान के बड़े विद्वान् हो गये थे। फिर उनका द्वैतरूपी संशय कट गया था। इसीलिये अत्यन्त कठिनाई से प्राप्त होने वाला विष्णु भगवान् का परम पद उनको प्राप्त हो गया था ॥५५, ५६ ॥

पूजितो नमितो वापि सस्मृतो वापि मोक्षद. ।
नारायणो जगन्नाथो भक्ताना मानवर्द्धन ॥५७
तस्मान्नारायण देवमनतमपराजितम् ।
इहामुत्र सुखप्रेप्सु पूजयेद्भक्तिसयुत ॥५८
य· पठेदिदमाख्यान शृणुयाद्वा समाहित ।
सोऽपि सर्वाघनिर्मुक्त प्रयाति भवन हरे ॥५९

जगत् के स्वामी भगवान् सदा ही अपने भक्तो के मान की वृद्धि करने वाले होते हैं। भगवान् ऐसे महान् दयालु हैं कि वे अर्चन—अभिवादन और स्मरण मात्र से ही मोक्ष प्रदान कर दिया करते हैं। ॥५७॥ अतएव जिस मनुष्य को इस लोक मे और परलोक मे निरतिशय सुख प्राप्त करने की कामना हो उसे परम भक्ति की भावना से अनन्त—अपराजित भगवान् नारायण का पूजन करना चाहिए ॥५८॥ जो कोई परम समाहित होकर इस उत्तम उत्तक मुनि के आख्यान का श्रवण किया करता है अथवा श्रवण करता है वह अपने कृत सम्पूर्ण

पापों से मुक्त हो जाया करता है और अन्त में श्रीहरि के ही परम धाम को प्राप्त हो जाता है।५६।



।। जयध्वज चरित्र ।।

भूय शृणुष्व विप्रेन्द्र माहात्म्य परमेष्ठिन ।
सर्वपापहर पुण्य भुक्तिमुक्तिप्रद नृणाम् ॥१
अहो हरिकथा लोके पापघ्नी पुण्यदायिनी ।
शृण्वता वदना चैव तद्भक्ताना विशेषत ॥२
हरिभक्तिरसास्वादमुदिता ये नरोत्तमा ।
नमस्करोम्यह तेभ्यो यत्सङ्गान्मुक्तिभाङ् नर ॥३
हरिभक्तिपरा ये तु हरिनामपरायणा ।
दुर्वृत्ता वो सुवृत्ता वा तेभ्यो नित्य नमो नम ॥४
ससारसागर तर्तु य इच्छेन्मुनिपु गव ।
स भजेद्धरिभक्ताना भक्तान् वै पापहारिण ॥५
दृष्ट स्मृत पूजितो वा ध्यात प्रणमितोऽपि वा ।
समुद्धरति गोविंदो दुस्तराद् भवसागराद् ॥६
स्वपन् भुञ्जन् व्रजस्तिष्ठन्नतिष्ठश्च वदस्तथा ।
चिन्तयेद् यो हरेर्नाम तस्मै नित्य नमो नम ॥७

श्री सनत्कुमार महर्षि ने कहा—हे विप्रेन्द्र ! परमोत्तम स्थान में विराजमान भगवान् के माहात्म्य का आप श्रवण करिये। भगवान् का परमपावन सब अतीत शुभ चरित्र समस्त पापों का विनाश करने वाला है तथा पुण्य स्वरूप और मनुष्यों को भोग और मोक्ष दोनों के प्रदान करने वाला होता है ॥ १ ॥ अहो ! यह श्री हरि भगवान् की कथा इस संसार में पापों का विनाश करने वाली और पुण्य प्रदायिनी होती है। यह विष्णु के भक्त श्रोता और वक्ता दोनों ही का विशेष

उपकार किया करती है ।। २ ।। वे परमोत्तम मानव हैं जो श्री हरि के चरणारविन्द की भक्ति के रस का समास्वादन करके परम प्रसन्नता प्राप्त किया करते हैं उनको मैं प्रणाम करता हूँ। क्योंकि उनके सङ्ग करने का ही अतुल प्रभाव होता है कि मनुष्य इतने मात्र से ही मुक्ति के प्राप्त करने का अधिकारी हो जाया करता है ।। ३ ।। श्री हरि की भक्ति और हरिनाम स्मरण में परायणता रखने वाले पुरुष पहिले चाहे सच्चरित्र या दुश्चरित्र कैसे भी रहे हो उनकी सेवा में मैं बारम्बार प्रणाम करता हूँ ।।४।। हे मुनिश्रेष्ठ ! जो भी कोई इस महान् घोर संसार रूपी महा सागर से पार होने की इच्छा रखता हो उसको चाहिए कि वह श्रीहरि के भक्तों की सर्वदा सेवा किया करे क्योंकि सब पापों के हरण करने वाले होते हैं ।। ५ ।। गोविन्द ऐसे महा कृपालु हैं कि वे अत्यन्त कठिनाई से तरने के योग्य इस भव सागर से दर्शन-स्मरण-अर्चन-अभिवादन और ध्यान करने ही से उद्धार कर दिया करते हैं ।।६।। जो कोई खाता-पीता, चलता-फिरता, उठता-बैठता और बोलता-सोता हुआ भी श्री हरि के शुभ नामों का कीर्तन एवं स्मरण किया करता है उसको बारम्बार प्रणाम है ।।७।।

अहो भाग्यमहो भाग्यं विष्णुभक्तिरतात्मनाम् ।
येषा मुक्ति करस्थैव योगिनामपि दुर्लभा ।।८
अत्राप्युदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् ।
वदतां शृण्वतां चैव सर्वपापप्रणाशनम् ।।९
आसीत् पुरा महीपालः सोमवंशसमुद्भवः ।
जयध्वज इति ख्यातो नारायणपरायणः ।।१०
विष्णोर्देवालये नित्यं सम्मार्जनपरायणः ।
दीपदानरतश्चैव सर्वभूत दयापरः ।।११
स कदाचिन्महीपालो रेवातीरे मनोरमे ।
विचित्रकुसुमोपेतं कृतवान्विष्णुमन्दिरम् ।।१२

स तत्र नृपशार्दूल सदा रामार्जने रत ।
दीपदानपरश्चैव विशेषेण हरिप्रिय ॥१३
हरिनामपरो नित्य हरिससक्तमानस. ।
हरिप्रणामनिरतो हरिभक्तजनप्रिय ॥१४

श्री भगवान् की भक्ति मे प्रेम रखने वाले महानुभाव हैं उनका भाग्य परम धन्य है और महान् धन्य है क्योंकि योगिजनों को भी परम दुर्लभ भगवद्भक्ति से प्राप्त मुक्ति उनकी मुट्ठी मे ही सदा रहा करती है ॥८॥ इस विषय की पुष्टि करने वाला और श्रोता तथा वक्ता दोनो के पापो को दूर भगा देने वाला एक परम प्राचीन ऐतिहासिक आख्यान उदाहरण के स्वरूप मे आपको बतलाते हैं ॥९॥ बहुत ही पुराने समय मे चन्द्र वंश मे एक जयध्वज नाम वाले परम प्रसिद्ध राजा हुए थे जो भगवान् नारायण के परम भक्त थे ॥१०॥ वह राजा भगवान् विष्णु के मन्दिर को सदा अत्यन्त स्वच्छ रक्खा करते थे और वहां पर दीपक का भी समुचित प्रबन्ध उनने कर रक्खा था। वह राजा महा कारुणिक स्वभाव का था और समस्त प्राणियो के साथ दया पूर्ण व्यवहार सवदा किया करते थे ॥११॥ एक बार उस राजा ने रेवा नदी के तीर पर एक अतीव रमणीय चित्र-विचित्र पुष्प वाटिकाओ से युक्त भगवान् विष्णु के मन्दिर का निर्माण कराया था ॥१२॥ वह राजा सर्वदा स्वय उस में बुहारी लगाकर उसे साफ़ रखा करता था क्योंकि उस राजा के हृदय मे भगवान् विष्णु मे बहुत अधिक प्रेम भाव रहा करता था ।१३। वह राजा सदा ही भगवान् विष्णु के शुभ नामो का कीर्त्तन किया करता था और उसका हृदय सर्वदा ही भगवान् विष्णु के प्रेम में मग्न रहा करता था। वह सदा ही विष्णु के चरणो म प्रणाम किया करता था तथा जो विष्णु के परम भक्त थे उन स भी अत्यधिक प्रेम रखता था ॥१४॥

पौरिहोत्र् दरि ग्रामो ह्यामोरात्म्य पुरोहित ।

जयध्वजस्य चरितं दृष्ट्वा विस्मयमागत ॥१५
यदाचिदुपविष्ट त राजानं विष्णुतत्परम् ।
अपृच्छद्वीतिहोत्रस्तु वदवेदांगपारग ॥१६
राजन्परमधर्मज्ञ हरिभक्तिपरायण ।
विष्णुभक्तिमता पुंसा श्रेष्ठोऽसि भरतर्षभ ॥१७
समाजनपरो नित्य दीपदानरयस्तथा ।
तन्मे वद महाभाग किं त्वया विदितं फलम् ॥१८
सपादनेन वर्त्तीना तैल सपादनेन च ।
प्रयुक्तोऽसि सदा भद्र यद्विष्णोर्गृहमार्जने ॥१९
कर्माण्यन्यानि सन्त्येव विष्णो प्रीतिकराणि च ।
तथापि किं महाभाग एतयों सततोद्यत ॥२०
सर्वात्मना महापुण्य नरेश विदितं च यत् ।
तद् ब्रूहि मे गुह्यतमं प्रीतिमयि तवास्ति चेत् ॥२१

उस राजा के पुरोहित वीतिहोत्र नाम वाले थे जो राजा जय ध्वज के इस उत्तम चरित्र को देखकर अत्यन्त विस्मित हागये थे ॥१५॥ प्रसिद्ध पुरोहित वीतिहोत्र ने उस राजा से कहा था जबकि राजा विष्णु की उपासना करने ध्यान मग्न बैठा था। यह वीतिहोत्र स्वयं वेद वेदाङ्ग के पारगामी विद्वान् थ। वीतिहोत्र ने कहा—हे परम धर्मज्ञ ! आप तो विष्णु भक्ति में सदा परायण रहा करते हैं। हे भरतर्षभ राजन् ! मैं समझता हूँ कि आप भगवान् विष्णुदेव की भक्ति करने वालो में परम श्रेष्ठ महा पुरुष हैं ॥१६॥१७॥ मैं देखता हूँ कि सदा ही विष्णु मन्दिर मे पूर्ण स्वच्छता रक्खा करते हैं और नित्य प्रति दीपदान भी किया करते हैं। अतएव मैं आपसे यही पूछना चाहता हूँ कि आपने इन कर्मों का क्या सुफल समझ रक्खा है ?॥१८॥ आप सदा ही विष्णु मन्दिर के लिये तेल बत्ती का पूरा प्रबन्ध करते रहा करते हैं और सदा बहुत ही अधिक स्वच्छता का ध्यान रखते हैं ? ॥१९॥ भगवान विष्णु की

निशि रामोपभोगार्थं शयित तत्र कामिना ॥३३
ब्रह्मान्स्ववस्त्रप्रातेन कियद्देशः प्रमार्जितः ।
यावन्त्य पांशुकणिकास्तत्र समार्जिता द्विज ॥३४
तावज्जन्मकृत पापं तदैव क्षयमागतम् ।
प्रदीप स्थापितस्तत्र सुरतार्थं द्विजोत्तम ॥३५

उस वसुमती के उदर से मैं दण्ड के सुनाम वाला प्रसिद्ध चाण्डाल समुत्पन्न हुआ था। मैंने भी भरपेट बड़े से बड़े घोर महा पाप कर्म किये थे। मैं सर्वदा ब्राह्मणों से द्वेष किया करता था। मेरा यही कर्त्तव्य बन गया था कि मैं सदा पराई स्त्री और दूसरों का धन ताका करता था। मैंने अनगिनती ब्राह्मणों और गौओं का वध कर डाला था। पशु-पक्षियों का तो कहना ही क्या है उनको मार गिराना मेरा अत्यन्त साधारण काम था ॥२०॥३०॥ मैंने दूसरों के घरों से बहुत सा सुवर्ण चुराया था। मैं अहर्निश मदिरा का पान किया करता था और लोगों के मार्ग को रोक लिया करता था ॥३१॥ मैं पशु-पक्षी तथा मृगों के लिये तो साक्षात् यमराज के ही समान बन गया था। एक समय की बात है कि मैं कामदेव की पीड़ा से अत्यन्त सन्तप्त होकर स्त्री के साथ रमण करने की मेरी इच्छा हुई थी एकान्त स्थल की चिन्ता में मैं एक स्त्री को साथ में लेकर एक शून्य विष्णु मन्दिर में प्रविष्ट हो गया था। रात्रि के समय में तो मैं उस स्त्री के साथ विषय भोग करने के लिये कामावेश में था ॥३२॥३३॥ हे ब्रह्मन्! वहाँ पर मैंने अपने एक वस्त्र के छोर में थोड़ी सी भूमि को झाड़-पटकार कर साफ किया था क्योंकि वहाँ मुझे रमण करना था। वहाँ पर मैंने जितने भी धूलि के कणों को बुहार कर हटाया था उतने ही जन्मों का किया हुआ सञ्चित पाप उसी क्षण में मेरा नष्ट हो गया था। हे द्विजवर! फिर मैंने उस अन्धकार में रति क्रीड़ा करने के लिए एक दीपक प्रज्वलित किया था ॥३४॥३५॥

म वन्तर के सत्य युग में रैवन नाम वाला एक वेद वेदाङ्ग म पारङ्गत पण्डित हुआ था ॥२४॥ वह उन लोगो को भी यज्ञो का यजन करा दिया करता था जो शास्त्र के विधान के अनुसार यज्ञों के करने का अधिकार नहीं रखा करते थे और साथ ही वह ग्राम याजक भी था। दूसरो की चुगली करने मे भी उसे बड़ा आनन्द आया करता था। वह अत्यन्त निष्ठुर स्वभाव का व्यक्ति था और शास्त्र म जिन पदार्थों के बेचने का निषेध किया गया है उन रसादि पदार्थों का भी विक्रय किया करता था ॥२५॥ इस प्रकार के बहुत से निषिद्ध कर्म करने के कारण उसके बन्धु बान्धवो ने उसका बहिष्कार कर छोड दिया था। इसी कारण से शनैः २ वह दरिद्र दु खित और दुबल अङ्गो वाला होकर रोगग्रस्त होगया था ॥२६॥ एक समय की बात है कि वह धन की प्राप्ति के लिये ऐसे ही इधर-उधर मारा मारा भटका करता था कि इसी मे घूमता हुआ वह जब कि खाँसी और दमा से अत्यन्त पीड़ित हो रहा था नर्मदा नदी के तट पर पहुँच कर वही पर मृत्यु को प्राप्त हो गया था ॥२७॥ हे मुनिवर। उसके मृत्युगत हो जाने पर उसकी भार्या बन्धुमती स्वेच्छाचार का व्यवहार करने लग गयी थी। अतएव बान्धवो ने उसका भी परित्याग कर दिया था ॥२८॥

तस्या जातोऽस्मि चाण्डालो दण्डकेतुरिति श्रुत ।
महापापरतो नित्य ब्रह्मद्वेषपरायण ॥२६
परदारपरद्रव्यलोलुपो जन्तुहिंसक ।
गावश्च विप्रा वहवो निहता मृगपक्षिण ॥३०
मैरन्युत्यसुवर्णानि वहून्यपहृतानि च ।
मद्यपानरता नित्य बहुशो मार्गरोधकृत् ॥३१
पशुपक्षिमृगादीना जन्तूनाम-तकोपम ।
कदाचित्कामसतप्तो गतुकामा रति स्त्रिय ॥३२
शून्य विष्णुगृह दृष्ट्वा प्रविष्टश्च स्त्रिया सह ।

निशि गमोपभोगार्थं शयित तत्र कामिना ॥३३
प्रह्लास्त्ववस्त्रप्रान्तेन वियद्देश प्रमार्जित ।
यावन्त्य पांसुकणिकास्तत्र समार्जिता द्विज ॥३४
तावज्जन्मकृत पाप सदैव क्षयमागतम् ।
प्रदीप स्थापितस्तत्र सुरतार्थं द्विजोत्तम ॥३५

उस वसुमती के उदर से मैं दण्ड के सुनाम वाला प्रसिद्ध नामवाला समुत्पन्न हुआ था। मैंने भी अत्यंत बड़े से बड़े घोर महा पाप कर्म किये थे। मैं सर्वदा ब्राह्मणों से द्वेष किया करता था। मेरा यही कर्त्तव्य बन गया था कि मैं सदा पराई स्त्री और दूसरों का धन हरण करता था। मैंने अनगिनती ब्राह्मणों और गौओं का वध कर डाला था। पशु-पक्षियों का तो कहना ही क्या है उनका मार गिराना मेरा अत्यन्त साधारण काम था ॥२०॥३०॥ मैंने दूसरों के घरों से बहुत सा सुवर्ण चुराया था। मैं अत्यधिक मदिरा का पान किया करता था और लोगों के मार्ग को रोक लिया करता था ॥३१॥ मैं पशु-पक्षी तथा मृगों के लिए तो साक्षात् यमराज के ही समान बन गया था। एक समय की बात है कि मैं कामदेव की पीड़ा से अत्यन्त सन्तप्त होकर स्त्री के साथ रमण करने की मेरी इच्छा हुई थी एकान्त स्थान की चिन्ता में मैं एक स्त्री को साथ में लेकर एक शून्य विष्णु मन्दिर में प्रविष्ट हो गया था। रात्रि के समय में तो मैं उस स्त्री के साथ विषय भोग करने के लिए कामावेश में था ॥३२॥३३॥ हे ब्रह्मन्! वहीं पर मैंने अपने एक वस्त्र के छोर से वहाँ की भूमि को झाड़ बुहार कर साफ किया था क्योंकि वहाँ मुझे रमण करना था। वहाँ पर मैंने जितने भी धूलि के कणों को बुहार कर हटाया था उतने ही जन्मों का किया हुआ संचित पाप उसी क्षण में सदा नष्ट हो गया था। हे द्विजवर! फिर मैंने उस अन्धकार में रति क्रीडा करने के लिए एक दीपक प्रज्वलित किया था ॥३४॥३५॥

तेनापि मम दुष्कर्म निःशेषं क्षयमागतम् ।
एवं स्थिते विष्णुगृहे ह्यागता पुरपालका, ॥३६
जारोऽयमिति मा ता च हतवंत प्रसह्य वै ।
आवां निहत्य ते सर्वे निवृत्ता पुररक्षका ॥३७
यदा तदैव सम्प्राप्ता विष्णुदूताश्चतुर्भुजा ।
किरीटकुण्डलधरा वनमालाविभूषिता ॥३८
तैस्तु सञ्चेरितावावां विष्णुदूतैरकल्मषैः ।
दिव्यं विमानमारुह्य सर्वभोगसमन्वितम् ॥३९
दिव्यदेहधरो भूत्वा विष्णुलोकमुपागतौ ।
तत्र स्थित्वा ब्रह्मकल्पशतं साग्रं द्विजोत्तम ॥४०
दिव्यभोगसमायुक्तौ तावत्कालं दिवि स्थितौ ।
ततश्च भूमिभागेषु देवयोगेषु वै क्रमात् ॥४१
तेन पुण्यप्रभावेण यदूनां वंशसंभव ।
तेनैव मज्ज्वता मयत्तथा राज्यमकंटकम् ॥४२

उस दीपक को जलाने में क्योंकि वह विष्णु मन्दिर में जलाया गया था चाहे मेरा उद्देश्य मीनाकेतन ही बनाने रहा था मेरे सम्पूर्ण दुष्कर्मों के पाप नष्ट हो गये थे। उसी बीच में उस विष्णु भगवान् के मन्दिर में चौकीदार आकर प्रविष्ट हो गये थे। उन्होंने मुझको स्त्री के साथ दुष्कर्म करने वाला छिनरा समझकर बाँध दिया था और मुझे वे बुरी तरह से पीटने लग गये थे। जिस समय वे पीटते २ उन चौकीदारों ने हम दोनों के दम निकाल दिये थे उसी समय में तुरन्त ही चार भुजाओं के धारण करने वाले भगवान् विष्णु के दूत वहाँ आकर उपस्थित हो गये थे। वे विष्णु भगवान् के ही समान मुकुट-कुण्डल-वनमाला आदि से परम विभूषित थे ॥३६॥३७॥३८॥ उन पाप रहित विष्णु दूतों की प्रेरणा प्राप्त करके हम समस्त भोगों से परिपूर्ण उस दिव्य विमान में समारूढ़ हो गये थे ॥ ३६ ॥ फिर हम परम दिव्य देह

धारण करके विष्णु लोक में पहुँच गये थे। हे महान् वहाँ पर हम ब्रह्माजी के डेढ़ सौ कल्पों तक आनन्दपूर्वक निवास करते रहे थे। इसके पश्चात् परम दिव्य भोगों का उपभोग करके इतने ही समय पर्यन्त स्वर्ग का निवास किया था वहाँ पर भी स्वर्गीय सुखों का उपभोग करने के पश्चात् अब दैवयोग से इस भूमण्डल में मेरा जन्म हुआ है ॥ ४० ॥ ॥४१॥ उसी पुण्य के प्रभाव से मेरा इस यदुवंश में जन्म हुआ है और उसी महापुण्य के प्रभाव से मुझे यह कण्टक विहीन राज्य और अतुल सम्पदा प्राप्त हुई है ॥४२॥

ब्रह्मन्नुत्सवोपभोगार्थमेव येषां ह्यवासनात् ।
अवशया कुर्वन्ति ये सततस्तेषां पुण्यं न वेद्म्यहम् ॥४३
तस्मात्सम्मार्जने नित्यं दीपदाने च सत्तम ।
यतिष्ये परया भक्त्या ह्यहं जातिस्मरो मम ॥४४
यः पूजयेज्जगन्नाथमकामो विगतस्पृहः ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः प्रयाति परमं पदम् ॥४५
अवशेनापि यत्कर्म कृत्वेमां श्रियमाप्तवान् ।
भक्तिमद्भिः प्रशान्तैश्च किं पुनः सम्यगर्चनात् ॥४६
इति भूपस्य श्रुत्वा वीतिहोत्रो द्विजोत्तम ।
अनन्तपुष्टिमापन्नो हरिपूजापरोऽभवत् ॥४७
तस्माच्छृणुध्वं विप्रेन्द्र देवो नारायणोऽव्ययः ।
मानसोऽप्यालयो चापि पूजकानां त्रिभुविन्द ॥४८
अनित्या बान्धवाः सर्वे विभवो नैव शाश्वतः ।
नित्यं सन्निहितो मृत्युः कर्तव्यो धर्मसंग्रहः ॥४९

हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! दैव उत्साह से बिना ऐसा करके ही यह धन प्राप्त किया है। जो मानव ऐसा ही करते हैं उनके महान् पुण्य के विषय में मुझे कुछ भी ज्ञान नहीं है ॥४३॥ हे साधो! इसी कारण से भगवान् के मन्दिर में बुहारी देने के सत्कार्य में मैं संलग्न रहा करता हूँ

और सदा ही दीपक को प्रज्वलित किया करता हूँ क्यो कि इसक महत्त्व का पूर्व जन्म का अनुभव है और मुझे सब स्मरण भी है ।।४४।। इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है कि जो कुछ भी स्पृहा न रखकर भगवान् जगदीश्वर का सर्वदा अर्चन किया करता है और एकान्त में उनका स्मरण तथा ध्यान करता रहता है वह सब किये हुये पापो से छुटकारा पाकर परम पद को अन्त में प्राप्त किया करता है ।।४५।। मुझे देखो, मेरी अन्दर से मदिच्छा न होने पर भी जिस कर्म के वश पडने से ही ऐसे ऐश्वर्य का प्राप्त होगया हूँ तो फिर जो शम दमादि गुणों से सुसम्पन्न पुरुष भक्ति श्रद्धा के साथ भली भाँति अर्चन किया करते हैं उनके महान पुण्य के विषय में क्या वर्णन किया जा सकता है ।।४६।। वह श्रेष्ठ द्विज नीतिहोत्र राजा के द्वारा कथित इन वचनो का श्रवण कर परम प्रसन्न हुये और फिर वे सभी से भक्ति भाव पूर्वक भगवान विष्णु का पूजन करने में तत्पर हो गये थे ।४७। इसलिये हे विप्रवर ! यह कान खोलकर सुन लो । भगवान नारायण अच्युत प्रभु बडे दयालु हैं । चाहे जानबूझ कर करे या अनजाने में ही उससे बन पडे तो अपने पूजन करने वाले व्यक्ति को वे अवश्य ही मोक्ष दे दिया करते है ।४८। यह ससार के बन्धु-बान्धव और पुत्र कलत्र सभी अनित्य हैं और थोडे से समय का इनका मेला है। धन तो ऐसा चञ्चल और अस्थिर पदार्थ है कि यह किसी के पास सदा टिकता ही नहीं है । ससार मे मौत मुँह बाये सामने खडी रहा करती है न मालूम वह कब आकर पकड ले क्योंकि यह शरीर तो नाशवान और क्षणभगुर है । अतएव मनुष्य का यही परम कर्त्तव्य है कि धर्म का सग्रह सवदा करता रहे क्योंकि धर्म ही परलोक और परजन्म में सवदा साथ रहा करता है ।।४६।।

अज्ञो लोको वृथा गर्व करिष्यति महोद्धत ।
कार्य सर्तिहितापायो धनादाना किमुच्यते ।।५०

जन्मकोटिसहस्रेषु पुण्यं यैः समुपार्जितम् ।
तेषां भवतिर्भवेच्छुद्धा देवदेवे जनार्दने ॥५१
सुलभं जाह्नवीस्नानं तथवातिथिपूजनम् ।
सुलभाः सर्वयज्ञाश्च विष्णुभक्तिः सुदुर्लभा ॥५२
दुर्लभा तुलसीसेवा दुर्लभः सगमः सताम् ।
सर्वभूतदया वापि सुलभा यस्य कस्यचित् ॥५३
सत्सगस्तुलसीसेवा हरिभक्तिश्च दुर्लभा ॥५४
दुर्लभं प्राप्य मानुष्यं न तथा गमयेद् बुधः ।
अर्चयेद्धि जगन्नाथं सारमेतद् द्विजोत्तम ॥५५
तत्तु यदीच्छति जनो दुस्तरं भवसागरम् ।
हरिभक्तिपरो भूयादेयदेव रसायनम् ॥५६

अज्ञानी मनुष्य निरर्थक ही उद्धत स्वभाववश धन, जन, रूप, यौवन आदि पर गर्व किया करते है । जब यह नाशवान् और अस्थिर है तो इसी से सम्बन्धित अन्य धनादि की बात ही क्या है ॥५०॥ यह भगवद्भक्ति आसान नही है । जिन्होने लाखो करोडो जन्मो मे अतुल पुण्य का सञ्चय किया है उनकी देवेश्वर भगवान मे विशुद्ध भक्ति हुआ करती है ॥५१॥ यह गङ्गा स्नान सुलभ है । अतिथि पूजन भी आसान है । सब यज्ञो का यजन करना भी सहज है,परन्तु विष्णुभक्ति का होना परम दुर्लभ है और महान कठिन है ॥५२॥ इस ससार मे ये दो ही पदार्थ परम दुर्लभ हुआ करते है । एक तो तुलसी सेवा और दूसरा सन्तो का समागम । समस्त प्राणियो मे यह दया का होना भी किसी २ के लिये सुलभ होता है । ५३ । सत्पुरुषो की सगति, तुलसी सेवा और श्री हरि के चरण-कमल की भक्ति ये परम दुर्लभ हैं ॥५४॥ इस परम दुर्लभ मनुष्य का शरीर पाकर भी जो इस जीवन के समय को यो ही सासारिक माया मोह के जाल मे फँस कर व्यर्थ दुनियादारी के कामो मे ही नही गँवाते हैं वही वास्तव मे बुद्धिमान

और विद्वान हैं। इसलिये हे द्विजवर ! सार की बात यही है कि मनुष्य को अनन्यिमना भगवान श्री हरि का सदा भक्ति पूर्वक अर्चन, स्मरण और कीर्त्तन करना चाहिये ॥५५॥ यदि मनुष्य इस दुस्तर महान घोर संसाररूपी सागर से पार होकर वास्तविक आत्म कल्याण की कामना रखता है तो उसे श्री हरि की भक्ति सब कुछ त्याग करके करनी चाहिये। भगवान विशुद्ध भावना के भूखे हैं और हार्दिक भक्ति ही से वे प्रसन्न हुआ करते हैं। इस मानव जीवन में यही एक रसायन है ॥५६॥

प्रातराश्रय गोविंद मा विलंब कुरु प्रिय ।
आसन्नमेव नगरं कृतांतस्य हि दृश्यते ॥५७
नारायणं जगद्योनिं सर्वकारणकारणम् ।
समर्चयस्व विप्रेंद्र यदि मुक्तिमभीप्ससि ॥५८
सर्वाधारं सर्वयोनिं सर्वांतर्यामिणं विभुम् ।
ये प्रपन्ना महात्मानस्ते कृतार्था न संशयः ॥५६
ते वंद्यास्ते प्रपूज्याश्च नमस्कार्या विशेषतः ।
येऽर्चयंति महाविष्णुं प्रणतार्तिप्रणाशनम् ॥६०
ये विष्णुभक्ता निष्कामा यजंति परमेश्वरम् ।
ते सप्तकुलसंयुक्तास्ते यांति हरिमन्दिरम् ॥६१
विष्णुभक्ताय यो दद्यान्निष्कामाय महात्मने ।
पानीयं वा फलं वापि स एव भगवत्प्रियः ॥६२
विष्णुभक्तिपराणां तु शुश्रूषां कुर्वते तु ये ।
ते यान्ति विष्णुभुवनं यावदाभूतसंप्लवम् ॥६३

हे भाई ! परम कृपालु भक्त वत्सल भगवान गोविन्द का समाश्रय ग्रहण करो। हे द्विजवर ! इसके करने में क्षणमात्र का भी विलम्ब नहीं करना चाहिए। क्योंकि यमराज का बुलावा चाहे जिस क्षण में आ सकता है और उसकी पुरी निकट ही वर्त्तमान है ऐसा समझ

लो ॥५७॥ हे विप्रवर ! यदि इस संसार से छुटकारा पाकर मुक्त होने की इच्छा हो तो सम्पूर्ण करणों के भी कारण जगत की योनि भगवान नारायण का पूजन करना चाहिये ॥५८॥ इस सम्पूर्ण विश्व के आधार चराचर जगत के सबके कारण सभी के अन्तर्यामी प्रभु की जो शरणागति में चले जाया करते हैं वे महात्मा अपने मानव जीवन में सफल एवं कृतकृत्य होजाया करते हैं इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है ॥५९॥ जो अपने चरणों में प्रणत पुरुषों की पीड़ाओं को दूर भगा दिया करते हैं ऐसे महा विष्णु भगवान की जो अर्चना किया करते हैं वे भक्तगण भी पूजन वन्दन और अभिवादन करने के पात्र बन जाया करते हैं ।६०॥ जो विष्णु भगवान के भक्त कामना से रहित होकर भगवान का अर्चन किया करते हैं उनके पूजन की बड़ी महिमा है। वे स्वयं ही नहीं अपितु अपनी इक्कीस पीढियों के सहित श्रीहरि के धाम में इस पुण्य के प्रभाव से प्रवेश प्राप्त किया करते हैं ।६१। जो महापुरुष निष्काम भाव से भागवद्भक्तों को अन्न एवं फल आदि अर्पित करके उनका सादर सत्कार किया करते हैं वे ही भगवान को प्रिय हुआ करते हैं ॥६२॥ जो भगवान की भक्ति में निमग्न महात्माओं की सेवा किया करते हैं वे भी महा प्रलय काल तक विष्णु लोक में निवास प्राप्त किया करते हैं ॥६३॥

ये यजंति स्पृहाशून्या हरिभक्तान् हरिं तथा ।
त एव भुवनं सर्वं पुनंति स्वाङ्घ्रिपांशुना ॥६४
देवपूजापरो यस्य गृहे वसति सर्वदा ।
तत्रैव सर्वदेवाश्च तिष्ठंति श्रीहरिस्तथा ॥६५
पूज्यमाना च तुलसी यस्य तिष्ठन्ति वेश्मनि ।
तत्र सर्वाणि श्रेयांसि वर्द्धन्त्यहरहर्द्विज ॥६६
शालग्रामशिलारूपी यत्र तिष्ठति केशव ।
न बाधंते ग्रहास्तत्र भूतवेतालकादय ॥६७

शालग्रामशिला यत्र तत्तीर्थं तत्तपोवनम् ।
यत सन्निहितस्तत्र भगवान्मधुसूदन ॥६८
यद् गृहे नास्ति देवर्षे शालग्रामशिलार्चनम् ।
श्मशानसदृश विद्यात्तद् गृह शुभवर्जितम् ॥६९
पुराणन्यायमीमासा धर्मशास्त्राणि च द्विज ।
साङ्गा वेदास्तथा सर्वे विष्णो रूप प्रकीर्तितम् ॥७०
भक्त्या कुर्वन्ति ये विष्णो प्रदक्षिणचतुष्टयम् ।
तेऽपि यान्ति पर स्थान सर्वकर्मनिवर्हणम् ॥७१

जो भक्त स्वय कुछ भी हृदय मे कामना न रखते हुये श्री हरि की और हरि के भक्तजनो की पूजा किया करते हैं उनका भी इतना पुण्य प्रभाव होता है कि वे अपने चरणो की स्पर्श की हुई रज से समस्त भुवन को पवित्र कर सकते हैं ॥६४॥ भगवान शङ्कर अथवा भगवान नारायण का पूजन करने वाला मनुष्य जिसके घर में निवास किया करता है उसके घर मे समस्त देवगण के सहित लक्ष्मी और नारायण को स्वय आना पडता है ॥६५॥ हे द्विजवर ! जिसके घर मे तुलसी की पूजा हुआ करती है उस पुरुष के सभी श्रेय प्रति दिन वृद्धि को प्राप्त हुआ करते हैं ॥६६॥ शालग्राम शिला के स्वरूप भगवान केशव जिस घर मे विराजमान रहा करते हैं वहाँ पर बुरे ग्रह भूत, वेतालादि का कुछ भी वारा नहीं चला करता है ॥६७॥ जहाँ पर भगवान शालग्राम की शिला विराजमान हो वह स्थान महान तीर्थ और तपोवन के ही समान हुआ करता है क्योंकि उसमे साक्षात् भगवान मधुसूदन पदार्पण किया करते हैं ॥६८॥ हे देवर्षे ! जिस घर मे शालग्राम की शिला का अर्चन नहीं हुआ करता है वह घर तो श्मशान के ही सम न होता है और किसी भी शुभ कार्य के करने के योग्य नहीं होता है ॥६९॥ हे द्विजवर ! पुराण, न्याय, मीमांसा धर्म शास्त्र, वेद और वेदो के अङ्ग शास्त्र ये सब भगवान विष्णु का ही स्वरूप हैं ।७०।

जो मनुष्य श्रद्धा भक्ति के साथ भगवान विष्णु की जो चार परिक्रमा भी कर लेते हैं उनके सम्पूर्ण दुष्कर्मों का विनाश होजाया करता है और अन्त में वे परम धाम में प्रवेश प्राप्त किया करते हैं ।७१।



।। सुधर्मा का भाषण ।।

अतः परं प्रवक्ष्यामि विभूतिं वैष्णवीं मुने ।
या शृण्वतां कीर्तयतां सद्यः पापक्षयो भवेत् ।।१
वैवस्वतेऽन्तरे पूर्वं शक्रस्य च बृहस्पतेः ।
संवादः सुमहानासीत वदयामि निशामय ।।२
एकदा सर्वभागाढ्यो विबुधैः परिवारितः ।
अप्सरोगणसंकीर्णो बृहस्पतिमभाषत ।।३
बृहस्पते महाभाग सर्वतत्त्वार्थकोविद ।
अतीतब्रह्मणः कल्पे सृष्टिः कीदृग्विधा प्रभो ।।४
इन्द्रस्तु कीदृशः प्रोक्ता विबुधाः कीदृशाः स्मृताः ।
तेषां च कीदृशं कर्म यथावद् वक्तुमर्हसि ।।५
न ज्ञायते मया शक्र पूर्वेद्युश्चरितं विधेः ।
वर्तमानदिनस्यापि दुर्ज्ञयं प्रतिभाति मे ।।६
मनवः समतीताश्च तान् वक्तुमपि न क्षमः ।
यो विजानाति तं तेऽद्य कथयामि निशामय ।।७

श्री सनकाचार्यजी ने कहा—हे मुने ! अब मैं आपके समक्ष में वैष्णवी विभूति का वर्णन करता हूँ । इस वैष्णवी विभूति का श्रवण और कीर्तन करने वाले पुरुषों के पाप तुरन्त ही विनष्ट होजाया करते हैं ।।१।। प्राचीन काल में वैवस्वत मन्वन्तर में इन्द्र और बृहस्पति का इस विषय में बहुत कुछ वार्तालाप हुआ था । उसी को मैं अब आपको

श्रवण कराता हूं। उसे सुनिये ॥२॥ एक समय की बात है कि समस्त स्वर्गीय सुखोपभोगों के धनी देवराज महेन्द्र को देवगण और अप्सरायें घेरे हुए बैठे थे। उस समय में इन्द्र ने सुरगुरु बृहस्पतिजी से कहा था ॥३॥ इन्द्रदेव ने कहा—हे प्रभो! आप तो सभी तत्वों के गूढ़ार्थ को समझने में परम कुशल हैं। हे महाभाग! हे बृहस्पतिजी! आप यह कृपा कर बताइये कि ब्रह्माजी के कल्प में यह सृष्टि किस प्रकार की थी? ॥४॥ उस समय में इन्द्र कौन था, देवता कौन २ थे और उनका कर्म किस प्रकार का था। इसका उचित रीति से वर्णन कीजियेगा ॥५॥ सुरगुरु बृहस्पतिजी ने महेन्द्र के द्वारा निवेदन की हुई इन सब बातों को सुनकर उत्तर दिया था—हे इन्द्र! मैं ब्रह्माजी के प्रथम दिन के भी समाचार को नहीं जानता हूं और वर्त्तमान दिन के भी सबके वृत्तान्त का ज्ञान प्राप्त करना भी मेरी शक्ति, सामर्थ्य की सीमा के बाहिर की बात है। मैं उनको भी नहीं जानता हूं ॥६॥ जो-जो अब तक मन्वन्तर समाप्त हो चुके हैं मैं उनके विषय में भी कुछ भी वर्णन नहीं कर सकता हूं। किन्तु जो इन सबका वृत्तान्त ठीक तरह से जानते हैं और इन सबका पूर्ण ज्ञान रखते हैं उनका पूरा पता मैं आपको बतलाता हूं ॥७॥

सुधर्म इति विख्यात कश्चिदास्ते पुरे तव।
भुञ्जानो दिव्यभोगांश्च ब्रह्मलोकादिहागत ॥८
स वा एतद्विजानाति कथयामि निशामय।
एवमुक्तस्तु गुरुणा शक्रस्तेन समन्वित ॥९
देवतागणसङ्कीर्णं सुधर्मनिलय ययौ ॥१०
समागत देवपतिं बृहस्पतिसमन्वितम्।
दृष्ट्वा यथार्हं देवर्षे पूजयामास सादरम् ॥११
सुधर्मणार्चित शक्रो दृष्ट्वा तच्छ्रियमुत्तमाम्।
मनसा विस्मयाविष्ट प्रोवाच विनयान्वित ॥१२

अतीतब्रह्मकल्पस्य वृत्तान्तं वेत्ति चेद् बुध ।
तद् ब्रूहि समायात एतत् प्रष्टुं मयाजरः ॥१३
गतनिद्राश्च देवाश्च येन जानामि सुव्रत ।
तद्वदस्वाधिनः यस्मादस्मद्गमनोऽपि क्षिति स्थितः ॥१४

बृहस्पतिजी ने कहा—एक सुधर्मा नाम वाले व्यक्ति इस भारत की पुरी में निवास किया करते हैं जो अभी २ ब्रह्माजी के लोक से वे परम दिव्य वहाँ के भोगों का उपभोग करके यहाँ पर समागत हुये हैं ॥८॥ वे इस सब बातों के विषय में अवश्य ही ज्ञान रखते हैं। मेरे इस निवेदित किये हुये वचन पर आप अच्छा ध्यान देकर इसका श्रवण कर लीजियेगा। इन्द्रदेव अपने गुरु के द्वारा कहे जाने पर उनके साथ ही उठकर सब देवताओं को साथ में लेकर तुरन्त ही उस सुधर्मा-

लोगो को भी अधिक समय तक उस ब्रह्मलोक मे विराजमान रहे हैं ? ॥१४॥

तेजसा यशसा कीर्त्या ज्ञानेन च परन्तप ।
दानेन वा तपोभिर्वा कथमेतादृश प्रभो ॥१५
इत्युक्तो देवराजेन सुधर्मा प्रहसस्तदा ।
प्रोवाच विनयाविष्ट पूर्ववृत्त यथाविधि ॥१६
चतुर्युगसहस्राणि ब्रह्मणो दिनमुच्यते ।
एकस्मिन् दिवसे शक्र मनवश्च चतुर्दश ॥१७
इन्द्राश्चतुर्दश प्रोक्ता देवाश्च विविधा पृथक् ।
इन्द्राणा चैव सर्वेषा मन्वादीना च वासव ॥१८
तुल्यता तेजसा लक्ष्म्या प्रभावेण बलेन च ।
तेषा नामानि वक्ष्यामि शृणुष्व सुसमाहित ॥१९
स्वायम्भुवो मनु पूर्वं तत स्वारोचिपस्तथा ।
उत्तमस्तामसश्चैव रैवतश्चाक्षुपस्तथा ॥२०
वैवस्वतो मनुश्चैव सूर्यसावर्णिरष्टत ।
नवमो दक्षसावर्णि सर्वदेवहिते रत

इन्द्र भी हुआ करते हैं क्योंकि प्रत्येक मनु का इन्द्र पृथक् होता है। इन्द्र के साथ ही म प अनेक प्रकार के देवता भी अलग २ चौदह ही हुआ करते हैं। हे इन्द्र देव! सब इन्द्रों का और मनुओं का तेज, लक्ष्मी, धन और प्रभाव एक समान ही हुआ करता है और उनमें कुछ भी अन्तर नहीं होता है। अब मैं उन सबके नामों का भी उल्लेख कर वर्णन करता हूँ। आप परमाधिक समाहित होकर उनका श्रवण कीजिए ॥१८॥१९॥ सबसे प्रथम होने वाले मनु का नाम स्वायम्भुव मनु है। इसके पश्चात् क्रम से स्वारोचिष—उत्तम—तामस—रैवत—चाक्षुष—वैवस्वत और आठवें मनु सूर्य सावर्णि हुए हैं तथा नवम मनु का नाम दक्ष सावर्णि था। ये सभी मनु देवगण के हितप्रद कार्यों में निरत रहा करते हैं ॥२०॥२१॥

दशमो ब्रह्मसावर्णिर्धर्मसावर्णियस्तत ।
ततस्तु रुद्रसावर्णी रोचमानस्तत स्मृत ॥२२
भौत्यश्चतुर्दश प्रोक्त एते हि मनव स्मृता ।
देवानिन्द्रांश्च वक्ष्यामि शृणुष्व विबुधर्षभ ॥२३
यामा इति समाख्याता देवा स्वायम्भुवेऽन्तरे ।
शचीपति समाख्यातस्तेषामिन्द्रो महामति ॥२४
पारावताश्च तुषिता देवा स्वारोचिषेऽन्तरे ।
विपश्चिन्नाम देवेन्द्र सर्वसम्पत्समन्वित ॥२५
सुधामानस्तथा सत्या शिवाश्चाथ प्रतर्दना ।
तेषामिन्द्र सुशान्तिश्च तृतीये परिकीर्तित ॥२६
सुरा पारावताश्चैव सत्याश्चासुधियस्तथा ।
तेषामिन्द्र शिव प्रोक्त शकस्तामसकेऽन्तरे ।
विभुर्नाम्ना देवपति पञ्चम परिकीर्तित ॥२७
अमिताभादयो देवा षष्ठेऽपि च तथा शृणु ।
आर्याद्या विबुधा प्रोक्तास्तेषामिन्द्रो मनोजव ॥२८

इन सबके बाद दशम मनु हुए हैं उनका नाम ब्रह्म सावर्णि मनु था। इसके पश्चात् धर्म सावर्णि—शुद्ध सावर्णि और रोचमान मनु हुए हैं जिनका वर्णन स्मृतियों में भली भाँति से हुआ है ॥२२॥ भौत्य नाम वाले मनु चौदहवें मनु कहे जाते हैं। इस तरह से मैंने आपके सामने इन चौदह मनुओं का वर्णन करके सुना दिया है। हे देव शिरोमणे! अब मैं चौदह इन्द्रों और उनके समय में होने वाले देवगणों का वर्णन करता हूँ। आप सुनिये ॥ २३ ॥ सर्व प्रथम जो स्वायम्भुव नाम वाले मनु हुए थे उस मन्वन्तर के देवता 'याम' इस नाम से प्रसिद्ध हुए थे। और याम नामक देवगण का इन्द्र महान मति वाले शचीपति हुए थे ॥२४॥ इसके पश्चात् जब स्वारोचिष मन्वन्तर आया तो उस मन्वन्तर में पारावत और तुषित नामधारी देवता हुए थे और उस समय में होने वाले इन्द्र का नाम विपश्चित था। उसके समीप में सम्पूर्ण सम्पदायें विद्यमान रहा करती हैं ॥२५॥ तीसरे मन्वन्तर में सुधामा, सत्य, शिव और प्रतर्दन नाम वाले देवगण हुये थे। इन देवों के इन्द्र का नाम सुशान्ति था ॥२६॥ इसके पश्चात् तामस मन्वन्तर चौथा होता है। इस मन्वन्तर के देवगण सुप, पाराहर, सुत्य और असुधी नामक हुये हैं। इन सब देवताओं के इन्द्र का नाम शिव था। शिव नाम वाले पाँचवें इन्द्र हैं ॥२७॥ उसके देवगण अमिताभ प्रभृति हुए हैं। इसके पश्चात् षष्ठ मन्वन्तर होता है। उसका भी आप श्रवण करिये। इस मन्वन्तर में आर्य आदि देवगण हुए हैं और इन देवताओं के इन्द्र का नाम मनोजव था ॥२८॥

आदित्यवसुरुद्राद्या देवा वैवस्वतेऽन्तरे।
इन्द्रः पुरन्दरः प्रोक्तः सर्वकामसमन्वितः ॥२९
अप्रमेयाश्च विबुधाः सुतपाद्याः प्रकीर्तिताः।
विष्णुपूजाप्रभावेण तेषामिन्द्रो बलिः स्मृतः ॥३०
पाराद्या नवमे देवा इन्द्रश्चाद्भुत उच्यते।

सुधासनाद्या विबुधा दशमे परिकीर्तिता ॥३१
शान्तिर्नाम च तत्रेन्द्र सर्वभोगसमन्वित ।
विहङ्गमाद्या देवाश्च तेषामिन्द्रो वृष स्मृत ॥३२
एकादशे द्वादशे तु निबोध कथयामि ते ।
ऋभुर्नाम च देवेन्द्रो हरिनाभास्तथा सुरा ॥३३
सुत्रामाद्या तथा देवास्त्रयोदशतमेन्तरे ।
दिवस्पतिर्महावीर्यस्तेषामिन्द्र प्रकीर्तित ॥३४
चतुर्दशे चाक्षुषाद्या देवा इन्द्र शुचि स्मृत ।
एव ते मनव प्रोक्ता इन्द्रा देवाश्च तत्त्वत ॥३५

इसके पश्चात् सप्तम मनु वैवस्वत हुए थे । इस मन्वन्तर मे आदित्य वसु और रुद्र प्रभृति देवता थे और इन देवगणो के सब मनोरथों से परिपूर्ण इन्द्र का नाम पुरन्दर है ॥२६॥ आठवें म व तर मे जिसका नाम सूर्य सावर्णि है अप्रमेय सुतपा आदि देवगण हुए हैं और भगवान विष्णु की पूजा के प्रभाव से इनके इन्द्र का नाम बलि है ॥३०॥ नवम मन्वन्तर मे पाराध प्रभृति देवगण और अद्भुत नाम वाला होता है तथा दसम मन्वन्तर म सुधासन आदि देवता होते हैं तथा इस मन्वन्तर म जो सम्पूण भोग के योग्य पदार्थों से सुसम्पन्न शान्ति नामधारी इन्द्र हुआ करता है । ग्यारहवें मन्वन्तर म विहङ्गम प्रभृति नाम वाले देवगण होते हैं । और वृष नाम वाला उन देवगणो का राजा इन्द्र होता है ॥३१।३२॥ अब आपके समक्ष मैं बारहवें मन्वन्तर का वणन करता हूँ इसका भी आप श्रवण कीजिए । इस बारहवे म वन्तर क देवता हरिनाभ है और इसके इन्द्र का नाम ऋभु होता है ॥३३॥ तरहवे मन्वन्तर के देवगण को सुत्राम आदि कहा जाता है तथा इनके इन्द्र का नाम दिवस्पति होता है जो कि महान वीर्यवान् होता है ॥३४॥ चौदहवें मन्वन्तर क देवता चाक्षुष आदि हुआ करते हैं तथा इन्द्र का नाम शुचि होता है । इस तरह स

मैंने चौदह मन्वन्तरों मे होने वाले देवता और इन्द्रों के नाम आदि का वर्णन करके भली भाति आपको सुना दिया है ।।३५।।

एकस्मिन्ब्रह्मदिवसे स्वाधिकार प्रभु जते ।।३६
लोकेषु सर्वसर्गेषु सृष्टिरेकविधा स्मृता ।
कर्त्तारो वहव सति तत्सख्या वेत्ति कोविद ।।३७
मयि स्थिते ब्रह्मलोके ब्रह्माणो बहवो गता ।
तेषा सख्या न सख्यातु शक्तोऽस्म्यद्य सुरोत्तम ।।३८
स्वर्गलोकमपि प्राप्य यावत्कान शृणुध्व मे ।
चत्वारो मनवोऽतीता मम श्रोश्चातिविस्तरा ।।३९
स्थातव्य च मयात्रैव युगकोटिशत प्रभो ।
तत परं गमिष्यामि कर्मभूमि शृणुध्व मे ।।४०
मया कृत पुरा कर्म वक्ष्यामि तव सुव्रत ।
वदता शृण्वता चैव सर्वपापप्रणाशनम् ।।४१
अहमास पुरा शक्र गृध्र पापो विशेषत ।
स्थितश्च भूमिभागे वै अगोध्यामिषभोजन ।।४२

ये चौदह मन्वन्तर ब्रह्माजी के एक ही दिन में अपना । समाप्त कर लिया करते है ।।३६।। समस्त सर्गों मे सृष्टि तो एक ही प्रकार की हुआ करती है किन्तु उस सृष्टि के करने वाले अनेक हुआ करते हैं उनकी सख्या को शास्त्रो म परम कुशल पुरुष ही जाना करते है ।।३७।। मैं जिस समय मे ब्रह्म लोक मे निवास करता था । उस समय मे बहुत से ब्रह्मा व्यतीत हो चुके थे । हे सुर श्रेष्ठ ! वे सख्या मे इतने अधिक थे कि उनकी गिनती मैं भी आपको बताने मे असमर्थ हूँ ।।३८।। अब इस स्वर्ग लोक मे आये हुए मुझको जितना समय व्यतीत हुआ है उसका भी समाचार आप सुन लीजिये । मेरे यहाँ रहते हुये भी मेरे सामने चार मन्वन्तर हो चुके हैं । मेरी सम्पत्ति अनाय विस्तृत है ।।३९।। हे प्रभो ! मैं यहाँ पर अभी एक सव युगो

तक निवास करूँगा। इसके पश्चात इतने लम्बे समय तक स्वर्गीय सुख भोग करके कर्म भूमि पर जाऊँगा ।४०। हे सुव्रत ! मैंने अपने जो भी कर्म किये थे उनका अब मैं वर्णन करके आपको सुनाता हूँ। इस आख्यान का जो कोई भी मनुष्य श्रवण करता है अथवा कथन किया करता है उसके सम्पूर्ण पापों का विनाश होजाया करता है।४१। हे महेन्द्र ! प्रथम जीवन में मैं एक गिद्ध पक्षी था जो सदा ही माँस का भक्षण किया करता था ।।४२।।

एकदाहं विष्णुगृहे प्राकारे संस्थित प्रभो ।
पतितो व्याधस्याऽस्त्रेण साय विष्णोर्गृहाग्रके ।४३
मयि कण्ठगतप्राणे भपणो मांसलोलुप ।
जग्राह मां स्ववक्त्रेण श्वभिरन्यैश्चरन्द्रुत ।।४४
वह्न्मा स्वमुखेनैव भीतोऽन्यैर्भषणैस्तथा ।
गत प्रदक्षिणाकारं विष्णोस्तन्मंदिरं प्रभो ।।४५
तेनैव तुष्टिमापन्नो ह्यन्तरात्मा जगन्मय ।
मम चापि शुनश्चापि दत्तावन्परमं पदम् ।।४६
प्रदक्षिणाकारतया गतस्यापीदृश फलम् ।
सम्प्राप्तं विरुधश्रेष्ठ किं पुन सम्यगर्चनात् ।।४७
इत्युक्तो देवराजस्तु सुधर्मेण महात्मना ।
मनसा प्रीतिमापन्नो हरिपूजारतोऽभवत् ।।४८
तथापि निर्जरा सर्वे भारते जन्मलिप्सव ।
समर्चयति देवेश नारायणमनामयम् ।
तानर्चयन्ति सतत ब्रह्माद्या देवतागणा ।।४९

हे प्रभो ! एक समय की घटना ऐसी हुई थी कि मैं एक भगवान विष्णुदेव के मन्दिर की जो चारों ओर से बनी हुई भीत थी उस पर जाकर बैठा हुआ था। उसी समय में एक व्याध ने चुपचाप आकर मुझे बाण से मार कर गिरा दिया था। मेरा शरीर मृत होकर विष्णु

भगवान के मन्दिर के आगन मे आकर गिर गया था ।४३।। मेरे प्राण उस समय तक कण्ठगत हो रहे थे और मरने ही वाला हो रहा था कि एक मेरे मांस के लालची श्वान ने आकर मुझे दबोच डाला था । इसी बीच मे अन्य कुत्ते भी वहा पर मुझे देखकर एकत्रित हो गये थे । जब बहुत से कुत्ते आकर उसके पीछे झपटे तो वह उनके डर से भय भीत होकर मुझको अपने हाथ मे दबाये हुए ही विष्णु भगवान की परिक्रमा करता हुआ उस मन्दिर मे दौडा था ।।४४।४५।। जग मय परमात्मा जो सभी का अन्तरात्मा है इसी मत्क्रम से परम प्रसन्न होकर मुझको और उस श्वान को दोनो को परम पद प्रदान कर दिया था ।।४६।। विवश और भयभीत होकर प्रदक्षिणा के आकार मे घूमने ही मे ऐसा उत्तम फल जब प्रभु ने दे दिया था तो वे देवो मे परम श्रेष्ठ । विधिवत् ज्ञानपूर्वक भगवान का भलीभाँति पूजन करने का जो फल होता है उसके विषय मे तो कहा ही क्या जा सकता है ।।४७।। महानुभाव सुधर्म के द्वारा इस भांति से कहे जाने पर देवराज इन्द्र अपने मनमे अत्यधिक प्रसन्न होकर श्री हरि की पूजा करने मे निरत हो गये थे ।।४८।। इसी रीति से अन्य देवगण भी इस कर्म भूमि भारत वर्ष मे जन्म ग्रहण करने की इच्छा से अनामय भगवान नारायण का भजन करने लग गये थे ।।४९।।

नारायणानुस्मरणोद्यताना महात्मना त्यक्तपरिग्रहाण'म् ।
क्व भवत्युप्रभवस्य बधस्तत्सङ्कलुब्धा यदि मुक्तिभाज ।।५०
ये मानवा प्रति दिन परियुक्तसङ्गा
नारायण गरुडवाहनमर्चयति ।
ते सर्वपापनिकरं परितो विमुक्ता
विष्णो पद शुभतर प्रतियाति हृष्टा ।।५१
य मानवा विगतरागपरावरज्ञा नारायण
सुरगुरु सतत स्मरति ।

ध्यानेन तेन हतकिल्विषचेतनास्ते
मातु पयोधररस न पुन पिवति ॥५२
ये मानवा हरिकथाश्रवणास्तदोषा
कृष्णाङ्घ्रिपद्मभजने रतचेतनाश्च ।
ते वै पुनति च जगति शरीरसगात्
सभाषणादपि ततो हरिरेव पूज्य ॥५३
हरिपूजापरा यत्र महात शुद्धबुद्धय ।
तत्रव सकल भद्र यथा निम्ने जल द्विज ॥५४
हरिरेव परो बन्धुहरिरेव परा गति ।
हरिरेव तत पूज्या यतश्चैतन्यकारणम् ॥५५
स्वर्गापवर्गफलद सदानद निरामयम् ।
पूजयस्व मुनिश्रेष्ठ पर श्रेयो भविष्यति ॥५६

जब इस प्रकार म सत्सङ्ग होने पर महालोलुप जीव भी मुक्ति के अधिकारी हो जाया करते हैं तो महात्मा लोग जो नित्य नारायण का स्मरण करते है और परिवार के लोगो से भी मोह नही किया करते हैं उनको यह ससार का उग्र बन्धन कैसे हो सकता है ? ।।५०।। जो मनुष्य नि सकोच होकर गरुड के वाहन वाले नारायण देव का पूजन किया करते है वे सब पापो से छुटकारा पाकर विष्णु के परम शुभ धाम म प्रवेश करते हैं ।।५१।। जो पर और अपर का ज्ञान रखने वाले राग से रहित होकर सदा गुरुगुरु भगवान नारायण का स्मरण श्रवन और ध्यान किया करते हैं वे इससे ही निष्पाप होजाया करते हैं और फिर जन्म धारण कर अपनी माता के स्तन का पान नही किया करते हैं ।।५२।। श्रीकृष्णचन्द्र क चरणारविन्द म अपना मन रमाने वाले और उनका भजन करने वाले जो मनुष्य होते हैं उनको हरिकथा के श्रवण करने से सभी प्रकार के पाप निरस्त होजाया करते हैं। उनके परम पुण्य का इतना प्रभाव हुआ करता है कि वे

अपने सङ्ग एवं सम्भाषण के द्वारा ही जगत् के जीवों को पवित्र कर दिया करते हैं। अतएव निष्कर्ष यही निकलता है कि श्री हरि के चरणों का अर्चन अवश्य ही करना चाहिए। ५३। जिस स्थान में श्री हरि के भजन करने में तत्पर प्राणी शुद्धि बुद्धि वाले उदार चित्त मनुष्य निवास किया करते हैं वहाँ पर सभी सद्गुण ढालू भूमि में पानी के समान ही एकत्रित हो जाया करते हैं ॥५४॥ इस जगत् में केवल श्री हरि भगवान् ही परम बन्धु हैं, श्री हरि भगवान ही परम गति हैं और श्री हरि भगवान ही चैतन्य के कारण हैं अतएव श्री हरि भगवान ही परम पूज्य हैं ॥५५॥ हे मुनियो में श्रेष्ठतम ! स्वर्गीय सुखों के उपभोगों को तथा मोक्ष का प्रदान करने वाले सर्वदा आनन्दमय, निरामय भगवान का सदा पूजन करना चाहिये। इसी से परमाधिक श्रेय प्राप्ति होगी ॥५६॥

पूजयति हरिं ये तु निष्कामा. शुद्धमानसा ।
तेषा विष्णु प्रसन्नात्मा सर्वान्कामान् प्रयच्छति ॥५७
यस्त्वेतच्छृणुयाद्वापि पठेद्वा सुसमाहित. ।
स प्राप्नोत्यश्वमेधस्य फल मुनिवरोत्तम ॥५८
इत्येतत्ते समाख्यात हरिपूजाफल द्विज ।
सकोवविस्तराभ्या तु किमन्यत्कथयामि ते ॥५६

जो मनुष्य सदा बिना ही किसी कामना के विशुद्ध मन के द्वारा श्री हरि का भजन किया करते हैं भगवान विष्णु उन पर अपने चित्त में परम प्रसन्न होकर उन मनुष्यों के सभी मनोरथों को पूर्ण कर दिया करते हैं ॥ ५७ ॥ हे मुनिवरों में उत्तम ! जो मनुष्य समाहित चित्त वाला होकर इस परम पावन कथा का श्रवण किया करते हैं अथवा इसका अध्ययन किया करते हैं वे निश्चित रूप से अश्वमेध यज्ञों के यजन करने का पुण्यफल प्राप्त करते हैं ॥ ५८ ॥ हे द्विजवर ! इस तरह से मैंने यह श्री हरि भगवान् के अर्चन का फल सक्षेप एव

विस्तार से वह।र सुना दिया है। अब आप अन्य क्या सुनना चाहते हैं? ॥५६॥



॥ भगवन्नाम स्मरण से मुक्ति ॥

आख्यात भवता सर्वं मुने तत्त्वार्थकोविद ।
इदानीं श्रोतुमिच्छामि युगानां स्थितिलक्षणम् ॥१
साधु साधु महाप्राज्ञ मुने लोकोपकारक ।
युगधर्मान्प्रवक्ष्यामि सर्वलोकोपकारकान् ॥२
धर्मो विवृद्धिमायाति नान्ते यस्मिन्द्विजोत्तम ।
तथा जिनाशमायाति धर्म एव महीतले ॥३
कृत त्रेता द्वापर च कलिश्चेति चतुर्युगम् ।
दिव्यैर्द्वादशभिर्ज्ञेयं वत्सरैस्तत्र सत्तम ॥४
सध्यासन्ध्यांशयुक्तानि युगानि सदृशानि वै ।
कालतो वेदितव्यानि इत्युक्त तत्त्वदर्शिभि ॥५
आद्यं कृतयुग प्राहुस्ततस्त्रेताविधानकम् ।
ततश्च द्वापर प्राहु कलिमन्त्य विदु क्रमात् ॥६
देवदानवगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगा ।
नासन्कृतयुगे विप्र सर्वे देवसमा स्मृता ॥७

देवर्षि भगवान श्री नारदजी ने कहा—हे मुनिवर ! आप तो तत्त्वार्थों के ज्ञाता महान् मनीषी हैं। आपने मेरे ऊपर परम अनुग्रह करके सभी कुछ वर्णन करके सुना दिया है। अब मैं इन युगों की स्थिति और उनके लक्षणों के विषय में पूछने की अभिलाषा रखता हूँ ॥१॥ श्री सनकाचार्य जी ने इस कथन का उत्तर देते हुए कहा था—हे लोकों के उपकार करने वाले परम मनिशालिन् ! हे मुनिवर ! बहुत ही अच्छा और उत्तम प्रश्न आपने किया है, अब मैं समस्त लोकों की भलाई करने

वाले युगो के धर्मों का वर्णन करता हूँ ॥२॥ हे उत्तम प्रवर ! समय सदा समान गति से नही चला करता है। इस भूमण्डल पर एक समय तो ऐसा आता है कि धर्म की वृद्धि हुआ करती है और एक ऐसा भी समय आता है कि धर्म क्षीण होने लगता है। ३॥ युग चार हुआ करते हैं—सत्ययुग—त्रेता—द्वापर और कलियुग ये इन चारो के नाम हैं। इन का एक चतुर्युग कहा जाया करता है। ये चारो युग देवगणो के दिव्य बारह वर्षों के ही हुआ करते हैं ॥४॥ तत्वदर्शी महापुरुषो ने यह बताया है कि सभी युगो मे सन्ध्या और सन्ध्यांश हुआ करते हैं अतएव इनसे युक्त ही सब युगो के यथोचित काल के द्वारा समझ लेना चाहिए ॥५॥ सबसे प्रथम कृतयुग होता है। उसके पीछे त्रेता—द्वापर और सबके अन्त मे कलियुग आया करता है। इसी क्रम को शास्त्रो मे बताया गया है ॥६॥ हे विप्रवर ! शास्त्रो मे स्पष्टतया ऐसा बताया गया है कि जब सब से पूर्व आरम्भ मे कृतयुग आता है तो उस समय मे देव दानव-गन्धर्व यक्ष राक्षस और पन्नग आदि भेद कुछ भी नही थे। सभी देवा के ही समान शुद्ध शरीर और विशुद्ध भावनाओ वाले थे ॥७॥

सर्वे हृष्टाश्च धर्मिष्ठा न तत्र क्रयविक्रयौ ।
वेदाना च विभागश्च न युगे कृतसंज्ञके ॥८
ब्राह्मणा क्षत्रिया वैश्या शूद्रा स्वाचारतत्परा ।
सदा नारायणपरास्तपोध्यानपरायणा ॥९
कामादिदोषनिर्मुक्ता शमादिगुणतत्परा ।
धर्मसाधनचित्ताश्च गतासूया अदाम्भिका ॥१०
सत्यवाक्यरता सर्वे चतुराश्रमधर्मिण ।
वेदाध्ययनसम्पन्ना सर्वशास्त्रविचक्षणा ॥११
चतुराश्रमयुक्तेन कर्मणा कालयोनिना ।
अकामफलसयोगा प्रयान्ति परमा गतिम् ॥१२
नारायण कृतयुगे शुक्लवर्ण मुनिभिन ।

त्रेताधर्मान्प्रवक्ष्यामि शृणुध्व सुसमाहित ॥१३
धर्म. पादुरता याति त्रेताया मुनिसत्तम ।
हरिस्नु रक्तता याति किंचित्क्लेशान्विता जनाः ॥१४

यह कृतयुग का काल कुछ ऐसा ही था कि उस समय में सभी हृष्ट-पुष्ट और धर्म में पर यणता रखने वाले प्राणी थे। उस समय में किसी भी पदार्थ का क्रय-विक्रय नहीं हुआ करता था तथा कृतयुग में वेदों के ऋक् यजु-साम और अथर्व ये चार विभाग भी नहीं हुये थे चारों वर्ण ब्राह्मण-क्षत्रिय—वैश्य और शूद्र सदा अपने ही धर्म पर समारूढ रहा करते थे। सभी लोग सर्वदा भगवान् नारायण की भक्ति भाव तथा तप करने में संलग्न रहा करते थे ॥ ९ ॥ उस समय में कामादि दोषों का विकार किसी के भी मन में नहीं रहा करता था और सभी लोग शम-दम आदि सद्गुणों से समन्वित रहा करते थे। सब लोगो के हृदय में सर्वदा धार्मिक कर्मों के सम्पन्न करने की लगन रहा करती थी। दूसरों के गुणों में भी दोषों का उद्भावन करना तथा दम्भमय व्यवहार करना नाम मात्र को भी कृतयुग में नहीं था ॥१०॥ सभी लोग सामान्यतया सत्य भाषण ही किया करते थे—वेदों का अध्ययनाध्यापन-तथा चारों आश्रमों का यथावत् परिपालन किया करते थे। सब लोग शास्त्रों के ज्ञान में महान् कुशल थे ॥ ११ ॥ जब भी समय प्राप्त हुआ करता था उसी के अनुसार चारों ही ब्रह्मचर्य-गार्हस्थ्य-वानप्रस्थ और संन्यास इन आश्रमों का परिपालन सर्वथा निष्काम भाव से अपना परम कर्तव्य समझ कर ही किया करते थे और सभी लोग अन्त में परमोत्तम सद्गति को प्राप्त किया करते थे ॥१२॥ सत्ययुग में भगवान् नारायण निर्मल शुक्ल वर्ण से विभूषित रहा करते थे। यही कृतयुग का धर्म तथा स्वरूप का वर्णन है। अब त्रेता युग इसके पीछे आया करता है। उसका वर्णन मैं करता हूँ आप परमाधिक समाहित चित्त वाले होकर उसके धर्मों और स्वरूप का वर्णन श्रवण कीजिए

॥१३॥ हे परमश्रेष्ठ मुनिवर ! त्रेतायुग मे धर्म का वर्ण पाण्डुर होजाया करता है। भगवान् विष्णु का वर्ण भी रक्त हो जाया करता है। इस युग मे मनुष्यो को कुछ २ क्लेशो की प्राप्ति होने लगती है ॥१४॥

क्रियायोगरता सर्वे यज्ञकर्मसु निष्ठिता ।
सत्यव्रता ध्यानपरा सदाध्यानपरायणा ॥१५
द्विपादो वर्तते धर्मो द्वापरे च मुनीश्वर ।
हरि पीतत्वमायाति वेदश्चापि विभज्यते ॥१६
असत्यनिरताश्चापि केचित्तत्र द्विजोत्तमा ।
ब्राह्मणाद्याश्च वर्णा स्यु केचिद्रागादिदुर्गु णा ॥१७
केचित्स्वर्गापवर्गार्थं विप्र यज्ञान्प्रकुर्वते
केचिद्धनादिकामाश्च केचित्कल्मषचेतस ॥१८
धर्माधर्मौ समौ स्याता द्वापरे विप्रसत्तम ।
अधर्मस्य प्रभावेण क्षीयते च प्रजास्तथा ॥१९
अल्पायुषो भविष्यति केचिच्चापि मुनीश्वर ।
केचित्पुण्यरतान् दृष्ट्वा असूया विप्रकुर्वते ॥२०
कलिस्थिर्ति प्रवक्ष्यामि तच्छृणुष्व समाहित ।
धर्म कलियुगे प्राप्ते पादेनैकेन वर्तते ॥२१

प्राय त्रेता मे सभी लोग कर्मकाण्डो मे निरत रहा करते हैं और अधिकाशत यज्ञ कर्म किया करते हैं। सत्य का स्वाभाविकतया पालन न करके त्रेता मे सत्य का व्रत लोग धारण किया करते हैं—भगवान् का ध्यान भी किया करते हैं और ध्यान मग्न रहा करते हैं ॥१५॥ हे मुनिवर ! द्वापर मे वही धर्म जो कृतयुग मे पूर्ण—त्रेता में तीन पाद और अब त्रेता के पीछे आने वाले द्वापर युग मे दो ही पाद रहजाया करता है। भगवान् विष्णु का वर्ण पीत हो जाया करता है और चार भागो मे वेदो का भी विभाजन हो जाया करता है ॥१६॥ हे द्विजोत्तम ! द्वापर मे लोग मिथ्याभाषण भी कुछ लोग करने लग जाया करते हैं

तथा ब्राह्मणादि परमोत्तम वर्णों में भी रागादि दुर्गुणों का प्रवेश होता हुआ दिखलाई दिया करता है।।१६।। हे विप्र ! सभी धर्म द्वापर में सश्रम किया करते हैं—कोई स्वर्ग प्राप्ति के लिये तो कोई पापों से छुटकारा पाने के लिये यज्ञादि कर्मों को किया करते हैं। कुछ दूषितान्तःकरण वाले धन की कामना के निमित्त ही कर्मों में प्रवृत्त हुआ करते हैं ।।१८।। हे विप्रवर ! द्वापर ऐसा युग है जिसमें धर्म और अधर्म समता का-सा स्वरूप धारण कर लिया करते हैं। अधर्म का ऐसा कुछ प्रभाव भी इस युग में हुआ करता है कि माता-पिता के सामने ही उनकी सन्तति यमपुरी चली जाया करती है।। १६ ।। इस युग में कुछ दोषों के होने के कारण ही कुछ लोगों की आयु अल्प हो जाया करती है। प्रायः प्राणियों का ऐसा स्वभाव हो जाया करता है कि कोई पुण्य कर्म करता है तो उसमें दोष निकालने लग जाया करते हैं ।।२०।। यहाँ तक तीसरे द्वापर युग का वर्णन करके अब मैं चतुर्थ युग कलियुग के धर्म-स्वरूप और लक्षणों का वर्णन करता हूँ इसको आप परम सावधान होकर सुनें। कलियुग के आने पर धर्म एक पाद अर्थात् चतुर्थ भाग ही शेष रह जाया करता है ।।२१।।

तामस युगमासाद्य हरिं कृष्णत्वमेति च।
य कश्चिदपि धर्मात्मा यज्ञाचारान्करोति च ।।२२
य कश्चिदपि पुण्यात्मा क्रियायोगरतो भवेत्।
नर धर्मरतं दृष्ट्वा सर्वेऽसूया प्रकुर्वते ।।२३
व्रताचारा प्रणश्यंति ज्ञानयज्ञादयस्तथा।
उपद्रवा भविष्यंति ह्यधर्मस्य प्रवर्त्तनात् ।।२४
असूयानिरता सर्वे दम्भाचारपरायणा.।
प्रजाश्चाल्पायुष सर्वा भविष्यंति कलौ युगे ।।२५
युगधर्मा समाख्यातास्त्वया संक्षेपतो मुने।
कलिं विस्तरतो ब्रूहि त्वं हि धर्मविदां वर ।।२६

ब्राह्मणा क्षत्रिया वैश्या शूद्राश्च मुनिसत्तम।
किमाहारा किमाचारा भविष्यंति कलौयुगे ॥२७
शृणुष्व मुनिशार्दूल सर्वलोकोपकारक।
कलिधर्मान्प्रवक्ष्यामि विस्तरेण यथातथम् ॥२८

यह युग तामस है। इसमें श्री हरि का वर्ण भी कृष्ण हो जाया करता है। यह ऐसा समय है कि इसमें कोई धर्मात्मा प्राणी यज्ञादि करेगा या कोई पुण्यशील प्राणी कर्म काण्ड का परिपालन करेगा तो उन धर्म परायण प्राणियों के गुणों में दोषों के ढूंढने का प्रयत्न किया करते हैं ॥२२।२३॥ कलियुग में बहुधा अधर्म का प्रचार बढ़ जाने से व्रत-ज्ञान—यज्ञ आदि सबका लोप सा हो जाया करता है और चारों ओर उपद्रव ही उपद्रव होने लगते हैं ॥२४॥ इस युग में समस्त धर्म के कार्यों में जो भी थोड़े बहुत कहीं पर होते हुए दिखलाई भी देते हैं तो उन सभी में गुणों में दोषों का निकालना स्वाभाविक सा होगया है। लोग केवल दिखावा और दम्भ के ही लिये धर्मों का आचरण किया करते हैं। सबके ही अन्तःकरण दूषित होते हैं तथा प्रजा भी अल्प आयु वाली हो जाया करती है॥ २५ ॥ देवर्षि श्री नारदजी ने कहा—हे मुनिवर! आपने बहुत ही संक्षेप में सभी युगों का वर्णन करके सुना दिया है। मेरी इस समय में यह प्रार्थना है कि अब आप बस महाघोर कलियुग के धर्मों का कुछ विस्तार से वर्णन करिये। आप तो धर्मों के ज्ञाताओं में परम श्रेष्ठ हैं ॥२६॥ हे मुनि श्रेष्ठ! इस कलियुग में ब्राह्मण-क्षत्रिय वैश्य और शूद्र कैसा आहार किया करते हैं और कैसा आचरण करने लगते हैं ॥२७॥ सनत्कुमार जी ने उत्तर दिया—हे मुनिशार्दूल! आप तो समस्त लोगों के उपकार करने में संलग्न रहा करते हैं। सुनिये मैं अब इस कलियुग के धर्मों का वर्णन विस्तृत रूप में करता हूँ और जो भी यथार्थ स्वरूप इसका है वही आपके सामने बतलाता हूँ ॥२८॥

सर्वे धर्मा विनश्यंति कृष्णे कृष्णत्वमागते।

तस्मात्कलिर्महाघोर. सर्वपातकसकर: ॥२६
ब्राह्मणा. क्षत्रिया वैश्या. शूद्रा धर्मपराङ्मुखा ।
घोरे कलियुगे प्राप्ते द्विजा वेदपराङ्मुखा.॥३०
व्याजधर्मरता. सर्वे असूयानिरतास्तथ.।
वृथाहङ्कारदुष्टाश्च सत्यहीनाश्च पण्डिता ॥३१
अहमेवाधिक इति सर्वेऽपि विवदति च ।
अधर्मलोलुपा सर्वे तथा वैतडिका नरा ॥३२
अत स्वल्पायुष सर्वे भविष्यति कलौ युगे।
अल्पायुष्ट्वान्मनुष्याणा न विद्याग्रहण द्विज ॥३३
विद्याग्रहणशून्यत्वादधर्मो वर्तते पुन ।
व्युत्क्रमेण प्रजा सर्वा म्रियते पापतत्परा ॥३४
ब्राह्मणाद्यास्तथा वर्णा सक्तीर्यंते परस्परम् ।
कामक्रोधपरा मूढा वृथासतापपीडिता ॥३५

भगवान् विष्णु का रव कृष्ण हो जाने पर जबकि महाघोर कलियुग आयगा तो सभी धर्म नष्ट होने लग जायगे यह महान् घोर कलियुग समस्त पापो का भी सकर कर देने वाला होता है ॥२६॥ इस महान् घोर कलियुग के आजाने पर ब्राह्मण—क्षत्रिय—वैश्य और शूद्र सभी वर्णो के लोग अपने २ धर्म-कर्मो से मुख मोडने लग जायगे । निरर्थक वर्णो का घमण्ड करके द्विजगण वेदो का अध्ययन—अध्यापन एकदम छोड देगे । सबके हृदय मे कपट का प्रादुर्भाव होगा धर्म का आचरण जो कुछ भी करेंगे वह दिखाने मात्र का ही होगा वास्तविकता लेश मात्र भी उनमे नही होगी । लोग असूया से युक्त होकर दूसरो के गुणो मे भी दोष निकाला करेंगे । जो पण्डित और विद्वान् जन होगे वे भी सत्य से हीन हो जावेगे ।।३०॥३१॥ इस कलियुग मे अपने आप को ही श्रेष्ठ बतारर लोग परस्पर मे गम्भीर विवाद और कलह किया करेंगे । सभी वर्णो के मनुष्य धर्म का त्यागकर अधर्म मे तत्पर होते हुए

वितण्डावाद करने में ही अपनी कर्त्तव्य परायणता समझते हैं ॥३२॥ यही कारण है कि इस कलियुग में सभी लोग अत्यल्प आयु वाले हो जायगे। हे द्विजवर! आयु के कम होने के कारण पूर्ण विद्या नहीं पढ़ सकेंगे। जब पूरी विद्या ही न होगी तो विद्या (ज्ञान,के अभाव होने पर अधर्म की वृद्धि हो जाना एक स्वाभाविक बात है। सब लोगों की प्रवृत्ति पाप कर्मों की ओर ही हो जायगी। पाप परायणता होने से किसी भी कर्म का क्रम नहीं रहेगा और सभी प्रजा मरने लगेगी। ॥३३॥३४॥ वर्णों में विशुद्धता का अभाव हो जायगा ब्राह्मण आदि सभी वर्णों के लोग परस्पर में संकर हो जायगे। सम्पूर्ण प्रजा में मूढ़ता का साम्राज्य छा जायगा सभी लोग काम-क्रोध आदि में फँस कर निष्प्रयोजन से तृप्त होकर स्वयं उत्पीडित हुआ करेंगे ॥३५॥

शूद्रतुल्या भविष्यति सर्वे वर्णा कलौयुगे।
उत्तमा नीचतां याति नीचाश्चोत्तमता तथा ॥३६
राजानो द्रव्यनिरतास्तथा ह्यन्यायवर्त्तिन ।
पीडयति प्रजाश्चैव करैरत्यर्थयोजितै ॥३७
शववाहा भविष्यति शूद्राणां च द्विजातय ।
धर्मस्त्रीष्वपि गच्छति पतयो जारधर्मिण ॥३८
द्विषन्ति पितरं पुत्रा भर्तारं च स्त्रियोऽखिला ।
परस्त्रीनिरता सर्वे परद्रव्यपरायणा ॥३९
मत्स्यामिषेण जीवन्ति दुहन्तश्चाप्यजीविकाम् ।
घोरे कलियुगे विप्र सर्वे पापरता जना ॥४०
सनामसूयानिरता उपहास प्रकुर्वते।
सरित्तीरेषु कुद्दालैर्वापयिष्यन्ति चौषधी ॥४१
पृथ्वी निष्फलतां याति बीज पुष्प विनश्यति।
वेश्यालावण्यशीलेषु स्पृहा कुर्वन्ति योषित ॥४२

इस महान् घोर कलियुग में सभी वर्णों के मनुष्यों के आचरण

शूद्रों के ही समान हो जाँयगे। जो अत्युत्तम वर्णों के लोग हैं उनका इतना अधिक पतन हो जायगा कि वे महान् नीच जैसे प्रत्युत नीचों से भी गये-बीते कर्मों वाले हो जाँयगे और नीच वर्णों के लोग उत्तम बन कर समाज में आगे बढ़ने को प्रयत्नशील हुआ करेंगे ॥ ३६ ॥ शासक वर्ग राजा आदि अन्याय करके करों के द्वारा प्रजा के द्रव्य को खसोटने लगेंगे और सब प्रकार से अपनी प्रजा के मनुष्यों को सताया करेंगे ॥ ३७ ॥ द्विजलोग शूद्रवर्ण के मृतकों का उठाकर ले जायेंगे तथा अपनी पाणि परिणीता पत्नी के होने पर भी जार कर्म (पराई स्त्रियों से भोग) करने में तत्पर हो जायगे ॥३८॥ यह कलियुग ऐसा है कि इसमें पुत्र अपना कर्त्तव्य का पालन न करते हुए पिता से द्वेष किया करेंगे और नारियाँ अपने ही पति के साथ दुर्भाव रक्खा करेंगी। समस्त प्राणी सदा दूसरों की स्त्रियों का और धन को अपहृत करने की प्रवृत्ति रक्खा करेंगे ॥३६॥ हे विप्र ! जब यह महान् घोर कलियुग का समय आ जायगा तो उस समय में मनुष्यों की जीविका मछलियों के मांस से ही हुआ करेगी सभी मनुष्य ऐसे पाप कर्मों में तत्पर हो जायगे कि उन्हें अपने कर्मों से दुर्भाव हो जायगा अर्थात् उचित कर्म अच्छा ही नहीं लगेगा ॥४०॥ जो भी कोई अपने धर्म का पालन किया करेंगे उनके गुणों में भी दोष खोजकर उनको अभाव बताया करेंगे। घोर कलियुग जब आ जायगा तो दिव्य औषधियाँ स्वयं उत्पन्न नहीं हुआ करेंगी और लोग कुदालों से नदियों के तीर पर खुदाई करके औषधियों को वपन किया करेंगे ॥ ४१ ॥ भूमि में ऊपरता हो जायगी जिसके कारण सब पदार्थों के बीज तथा पुष्प समाप्त हो जाया करेंगे। गृहस्थाश्रम में रहने वाली स्त्रियाँ भी वेश्याओं के समान रूप लावण्य तथा शीलस्वभाव की इच्छाएं किया करेंगी अर्थात् वेश्याओं जैसा अपना रहन सहन और वेष भूषा पसन्द किया करेंगी ॥४२॥

धर्मविक्रयिणो विप्राः स्त्रियश्च भगविक्रया ।

वेदविक्रयवाश्चान्ये शूद्राचाररता द्विजा ॥४३
साधूना विधवाना च वित्तान्यपहरन्ति च ।
न यजानि चरिष्यन्ति ब्राह्मणा द्रव्यलोलुपा ॥४४
धर्माचार परित्यज्य वृथावादैर्विपज्जिता ।
द्विजा कुर्वन्ति दम्भार्थं पितृश्राद्धादिका क्रिया ॥४५
अपात्रेष्वेव दानानि प्रयच्छन्ति नराधमा ।
दुग्धलोभनिमित्तेन गोषु प्रीतिं च कुर्वते ॥४६
न कुर्वन्ति तथा विप्रा स्नानशौचादिका क्रिया ।
अकाले कर्मनिरता भविष्यन्ति द्विजाधमा ॥४७
साधुनिन्दापराश्चैव विप्रनिन्दापरास्तथा ।
न कस्यापि मनो विप्र विष्णुभक्तिपर भवेत् ॥४८
यज्विनश्च द्विजा नैव धनार्थं राजकिङ्कर ।
ताडयन्ति द्विजान्दुष्टा कृष्णे कृष्णत्वमागते ॥४९

ब्राह्मण लोग अपने धर्म को बचकर पैसा कमाया करेगे और नारियाँ अपनी योनि के द्वारा धनोपार्जन किया करेगी । द्विज शूद्रो के समान धर्माचरण करने वाले हो जायेगे तथा वेदो के ज्ञान का विक्रय किया करेगे ॥ ४३ ॥ ब्राह्मणो मे धन प्राप्त करने का बडा भारी लालच उत्पन्न हो जायगा । ये लोग कोई भी व्रत-उपवास न कर साधु पुरुषो के और विधवा स्त्रियो के धन का अपहरण करने लग जायगे ॥४४॥ शास्त्रोक्त धर्म के समस्त आचरणो का परित्याग करके द्विजगण विवाद ग्रस्त होते हुए केवल दम्भ के लिये ही पितृ-श्राद्ध आदि कर्मों को किया करेगे ॥४५॥ इस कलियुग में ऐसे अधम मनुष्यो की अधिकता हो जायगी कि वे जो दान के पात्र नहीं होते उन्ही लोगो को दान किया और धर्म भाव मान रख कर केवल दूध के प्राप्त होने के ही लालच से गो-सेवा किया करेगे । जब दूध न रहेगा तो गौओ को घर मे बाहिर निकाल दिया करेगे । कोई भी गो सेवा करने को धर्म

नहीं समझेगा ॥ ४६ ॥ ब्राह्मण लोग नित्य स्नान—शौच आदि अपनी परमावश्यक क्रियाओं का त्याग करके असमय में कर्म करने के कारण अधम हो जायेंगे ॥ ४७ ॥ कलियुग में लोग साधु एवं सत्पुरुषों की निन्दा किया करेंगे और हे विप्रवर ! भगवान् विष्णु की भक्ति में किसी का भी मन नहीं लगा करेगा ॥ ४८ ॥ भगवान् कृष्ण के कृष्णवर्ण हो जाने पर दुष्ट राजाओं के परमदुष्ट सेवक यज्ञों के यजन करने वाले लोगों को तथा ब्राह्मणों को कष्ट दिया करेंगे ॥४९॥

दानहीना नराः सर्वे घोरे कलियुगे मुने ।
प्रतिग्रहं प्रकुर्वंति पतितानामपि द्विजाः ॥५०
कले प्रथमपादेऽपि विनिंदन्ति हरिं नराः ।
युगान्ते च हरेर्नामा नव कश्चिद्वदिष्यति ॥५१
शूद्रस्त्रीसंगनिरता विधवासंगलोलुपाः ।
शूद्रान्नभोगनिरता भविष्यन्ति कलौ द्विजाः ॥५२
विहाय वेदसन्मार्गं कुपथाचारसंगताः ।
पाषण्डाश्च भविष्यन्ति चतुराश्रमनिंदकाः ॥५३
न च द्विजातिशुश्रूषां कुर्वंति चरणोद्भवाः ।
द्विजातिधर्मान्गृह्णन्ति पाखण्डलिंगिनोऽधमाः ॥५४
काषायपरवीताश्च जटिला भस्मधूलिताः ।
शूद्रा धर्मान्प्रवक्ष्यन्ति कूटयुक्तिपरायणाः ॥५५
द्विजाः स्वाचारमुत्सृज्य परपाकान्नभोजिनः ।
भविष्यन्ति दुरात्मानः शूद्राः प्रव्रजितास्तथा ॥५६

हे मुनिवर ! जब अधिक घोर कलियुग का समय उपस्थित हो जायगा तो कोई भी दान नहीं किया करेगा और द्विजगण महान् पतितों से भी दान लिया करेंगे ॥ ५० ॥ इस कलियुग के प्रथम चरण के आने पर ही मनुष्य विष्णु भगवान् की निन्दा करने में प्रवृत्त हो जाया करते हैं । जब इस युग का अंतिम समय आता है तब तो कोई भी विष्णु

का नाम भी नहीं लिया करेंगे ॥ ५१ ॥ कलियुग में द्विजगण शूद्रों की स्त्रियों के साथ अपना सम्बन्ध स्थापित कर लिया करेंगे और प्रायः मनुष्य विधवाओं के साथ व्यभिचार करने के लिये बहुत लालायित रहा करेंगे। द्विजगण शूद्रों का अन्न-सेवन बड़ी खुशी के साथ किया करेंगे ॥ ५२ ॥ वेद मार्ग जो परम श्रेष्ठ है उसको बहुधा सभी छोड़कर दूषित एवं बुरे-बुरे मार्गों को अपनाया करेंगे। सभी लोग पाखण्डी हो जायँगे और चारों आश्रमों का पालन करना तो दूर की बात है इनकी उलटी बुराई किया करेंगे ॥ ५३ ॥ कलियुग में शूद्र तथा नीच वर्ण के लोग ही धर्म के उपदेश देने वाले बन जाया करेंगे। ये लोग कूट युक्ति से सम्पन्न होकर गेरुआ वस्त्र धारण कर जटा जूट बढ़ाकर भस्म शरीर पर रमा कर महात्मा बन जाया करेंगे। शूद्र लोग द्विजों की सेवा करना त्याग देंगे और स्वयं द्विजों जैसा धर्म पालन किया करेंगे तथा महान् पाखण्डी बन जाया करेंगे। प्रायः पापण्डलिङ्गी और बौद्ध जैसे हो जावेंगे ॥५४॥५५॥ द्विजगण अपने धर्म का त्यागकर दूसरों की बनाई हुई रसोई खायेंगे और दुष्ट एवम् सन्यासी बनकर भूमि पर पूजा के पात्र बन जावेंगे ॥५६॥

उत्कोचजीविनस्तत्र भविष्यन्ति कलौ मुने।
धर्महीनास्तु पाषण्डा कापाला भिक्षवोऽधमाः ॥५७
धर्मविध्वंसशीलानां द्विजानां द्विजसत्तम।
शूद्रा धर्मान्प्रवक्ष्यन्ति ह्यधिरुह्योत्तमासनम् ॥५८
एते चान्ये च बहवो नग्नरक्तपटादिकाः।
पाषण्डाः प्रचरिष्यन्ति प्रायो वेदविदूषकाः ॥५९
गीतवाद्यकुशला क्षुद्रधर्मसमाश्रयाः।
भविष्यन्ति कलौ प्रायो धर्मविध्वंसका नराः ॥६०
अल्पद्रव्या वृथालिङ्गा वृथाहङ्कारदूषिताः।
हर्तारः परवित्तानां भवितारो नराधमाः ॥६१

प्रतिग्रहपरा नित्य जगदुन्मार्गशालिन ।
आत्मस्तुतिपरा सर्वे परनिंदापरास्तथा ॥६२
विश्वस्तघातिन क्रूरा दयाधर्मविवर्जिता ।
भविष्यन्ति नरा विप्र कलौ चाधर्मबांधवा ॥६३

हे मुनिवर ! इस कलियुग में प्रायः मनुष्य घूँस–रिश्वत खाने में परायण हो जायेंगे और धर्म विहीन पाखंडी लोग तथा अधम पुरुष कापालिक और भिक्षु बन जायेंगे ॥ ५७ ॥ हे द्विज श्रेष्ठ ! शूद्र लोग उच्च आसन पर विराजमान होकर धर्म को नष्ट करने के शौकीन द्विजगणों को उपदेश दिया करेंगे ॥५८॥ ऐसे ही लोग नग्न रहकर तथा रंगे हुए वस्त्र धारण कर बहुत सा पाखंड किए हुए वेदों की और वैदिक धर्म की बुराई करते हुए पृथ्वी पर भ्रमण किया करेंगे ॥५९॥ गान विद्या में कुशलता प्राप्त कर अनेक क्षुद्र पंथों का समाश्रय ग्रहण कर चारों ओर घूमते हुए दिखाई देंगे कि इस कलियुग में मनुष्य धर्म का विध्वंस करने वाले हो जायेंगे ॥ ६० ॥ ऐसे नराधमों के पास द्रव्य बहुत थोड़ा होगा और वे धर्म का पालन तो बिल्कुल नहीं किया करेंगे किन्तु धर्म के ऊपरी चिह्न धारण कर व्यर्थ ही धार्मिक बनने का कोरा अभिमान रखा करेंगे और सर्वदा दूसरों के धन का अपहरण करने की ताक में ही रहा करेंगे ।६१। सभी लोग दान ग्रहण करने की इच्छा किया करेंगे और संसार में दीन स्वभाव का समाप्त करने में ही प्रसन्न हुआ करें । इन लोगों का यही कर्त्तव्य होगा कि हमेशा दूसरों की निन्दा किया करें तथा अपनी प्रशंसा की डींग हाँकते रहें । ॥६२॥ हे विप्रवर ! इस कलियुग में प्रायः प्राणी क्रूरता से भरे वाले— विश्वासघाती—दया और धर्म से शून्य और केवल अधर्म का प्रचार करने वाले ही बना करेंगे ॥६३॥

परमायुश्च भविता तदा वर्षाणि षोडश ।
घोरे कलियुगे विप्र पंचवर्षा प्रसूयते ॥६४

सप्रवर्षाष्टवर्षाश्च युवानोऽत्र परे जरा ।
स्वकर्मत्यागिनः सर्वे कृतघ्ना भिन्नवृत्तयः ॥६५
याचकाश्च द्विजा नित्यं भविष्यति कलौ युगे ।
परावमाननिरता प्रहृष्टाः परवेश्मनि ॥६६
तत्रत्र निंदानिरता वृथाविश्रम्भिणो जनाः ।
निंदा कुर्वंति सततं पितृमातृसुतेषु च ॥६७
वदंत वाचा धर्मांश्च चेतसा पापलालुपा ।
धनविद्यावयोमत्ता सर्वदुःखपरायणाः ॥६८
व्याधितस्करदुर्भिक्ष पीडिता अतिमायिनः ।
प्रवदयंति वृथवाभी न विचाय च दुष्कृतम् ।६९
धर्ममार्गप्रणेतार तिरस्कुर्वति पापिनः ।
धर्मकार्ये रत चैव वृथाविश्रम्भिणो जनाः ॥७०

इस महान् घोर कलियुग का काल जब आकर उपस्थित हो जायगा तो मनुष्यों की सोलह वर्ष की ही रह जायगी । घोर कलियुग में पाँच वर्ष की आयु वाली स्त्रियों के स तति होने लग जायगी ।६४। सात–आठ वर्ष का मनुष्य जवान समझा जाया करेगा और इसके पश्चात् बुढ़ापा आकर उनको घेर लिया करेगा । उस समय में सभी लोग अपने कर्म धर्मों का त्याग कर दिया करेंगे । प्राय सब कृतघ्न हो जाँयगे और अपनी आजीविका को नष्ट कर दिया करेंगे ॥ ६५ ॥ इस घोर कलियुग में नित्य प्रति ब्राह्मण कहे जाने वाले लोग याचना किया करेंगे । सभी ही दूसरों के घर में पहुँच कर अपमानित होंगे और फिर भी प्रसन्न रहा करेंगे ॥ ६६ ॥ मनुष्य व्यर्थ ही विश्वास रखकर जब अनपत्नता प्राप्त करेंगे निन्दा किया करेंगे और सर्वदा सभी लोग अपने माता पिता तथा पुत्रों की निन्दा किया करेंगे ॥ ६७ ॥ मनुष्य इस घोर कलियुग में केवल वचनों ही से धर्म–धर्म पुकारा करेंगे पर तु अपने हृदय में पापों की कुवासनाऐं भरे रहा करेंगे । प्राय मनुष्य धन

यौवन और ज्ञान के घमण्ड मे मत्त होकर सभी प्रकार के कष्टो को भोगा करे गे ॥६८॥ इस महामाया के पाश मे मजबूती से जकडे हुए मनुष्य अहर्निश अपने दूषित वृत्तिपूर्ण पापकर्मों के कारण से रोग-चोर और दुर्भिक्ष से पीडित हुआ करेगे। किसी भी दूसरे के पाप का विचार किये बिना ही चाहे जो कुछ मुँह मे कह दिया करे गे ॥६६॥ पापात्मा प्राणी इस कलियुग मे जो भी कोई धर्म के मार्ग का नायक होगा उसका तिरस्कार कर दिया करेगे। जो भी कोई धार्मिक कर्मों मे प्रीति एव श्रद्धा रक्खेगा उसको मिथ्या विश्वास रखने वाला कहा करे गे।७०।

भविष्यति कलौ प्राप्ते राजानो म्लेच्छजातय ।
शूद्रा भैक्ष्यरताश्चैव तेषा शुश्रूषजे द्विजा ॥७१
न शिष्यो न गुरु कश्चिन्न पुत्रो न पिता तथा ।
न भार्या न पतिश्चैव भवितारोऽत्र सकरे ॥७२
कलौ गते भविष्यति धनाढ्या अपि याचका ।
रसविक्रयिणश्चापि भविष्यति द्विजातय ॥७३
धर्मकचुकसवीता मुनिवेषधरा द्विजा ।
अपण्यविक्रयरता अगम्यागामिनस्तथा ॥७४
वेदनिदापराश्चैव धर्मशास्त्रविनिंदका ।
शूद्रवृत्त्यैव जीवति नरकार्हा द्विजा मुने ॥७५
अनावृष्टिभय प्राप्ता गगनासक्तदृष्टय ।
भविष्यति कलौ मर्त्या सर्वे क्षुद्भयकातरा ॥७६
कदपर्णफलाहारास्तापसा इव मानवा ।
आत्मान तारयिष्यति अनावृष्ट्यातिदुखिता ॥७७

जब कलियुग का प्रभाव जम जायगा तो उस समय मे राजा म्लेच्छ ही हुआ करे गे, शूद्र जन भिक्षा-याचना किया करे गे और द्विज-गण उनकी सेवा मे रत रहेंगे ॥ ७१ ॥ कलियुग मे एक ऐसी घोर

मङ्कटता का समय आ जावेगा कि समस्त शिष्य–गुरु पिता–पुत्र और भार्या तथा पति का कुछ भी पता ही नहीं चला करेगा क्योंकि सभी सत्त्व विमुखता के शिकार हो जायग ।। ७२ ।। कलियुग की ऐसी महिमा है कि जब यह अपना आधिपत्य जमा लेगा तो धनी कहे जान वाले लोग भी याचना वृत्ति करने लग गे और जो द्विज होंग व भी रस–विक्रय का महान् दूषित कम बडी प्रसन्नता स किया करेंग ।७३। द्विजगण धम का जामा पहिन कर महामुनियों जैसा वेश धारण करके जिन वस्तुओं का वेचना शास्त्र में निषिद्ध बताया गया है उनको भी बेचने का काय करने लग जायेंग तथा जो नारियाँ गमन करने के अयोग्य हैं उनके साथ भी गमन किया करेंग ।। ७४ ।। हे मुनिवर ! द्विजगण स्वय ही वेदों की और धर्म शास्त्रों की निन्दा किया करेंग द्विज स्वयं शूद्रों की वृत्ति से अपनी आजीविका करके नरक में पात बनने चल जाय । ।।७५।। इस कलियुग में अनावृष्टि होने के कारण सभी वर्णों के मनुष्य भूख–प्यास से अत्यन्त कातर होकर आकाश आर ताका कर । ।।७६।। उस समय में जब अनावृष्टि होगी तो पर दुःखित हुए मनुष्य तपस्वियों के ही समान विवश होकर फल कन्द और पत्रों का आहार करके अपने उदर का भरण किया करेंगे परमाधिक कष्ट से समय बिताया करेंगे ।७७।

कामार्ता ह्रस्वदेहाश्च लुब्धाश्चाधर्मतत्परा ।
मर्त्या सर्व भविष्यन्ति स्वल्पभाग्या बहुप्रजा ।।७८
स्त्रियः स्वपोषणपरा वेश्यालावण्यशीलिका ।
पतिवाक्यमनादृत्य सदान्यगृहत परा ।।७६
दु शीला दुष्टशीलेषु करिष्यन्ति सदा स्पृहाम् ।
असद्वृत्ता भविष्यन्ति पुरुषेषु कुलाङ्गना ।।८०
चौरादिभयभीताश्च काष्ठयन्त्राणि कुर्वते ।
दुर्भिक्षकरपीडाभिरतीवोपद्रुता जना ।।८१

गाधूमान्नयवान्नाढ्ये देशे यास्यति दुःखिता ।
निधाय हृद्यकर्माणि प्रेरय त वच शुभम् ॥८२
स्वरायसिद्धिपर्यंन वधुता नुवतेजना ।
भिक्षवश्चापि मित्रादिस्नेहसंबधयन्त्रिता ॥८३
अन्नापाधि निमित्तेन शिष्यान्गृह्णति भिक्षव ॥८४

इस महान् घोर कलियुग म प्राय सब ही काम वासना म दुःखित —पद म ठिान—लोभी और अधम परायण हो जीवन । इसी लिय म द भाग्य दान तथा अधिक म तति वाल मा हुआ करे ग ।७८। इस कलियुग मे नारियां वेश्याओ के तुल्य रूप-शील रखकर अपने शरीर का मरण पालण किया करे गी और अपने पतिदेव क वचनो को न मानती हुई सदा ही दूसरो क घरों मे पडी रहना अच्छा समझ गी ॥७६॥ स्त्रियों म दुःशीलता अधिक हुआ करती और जो दुःशील लोग होगे उनके साथ ही स्पृहा किया करे गी । जो स्त्रियाँ कुलीन होगी वे भी अन्य पुरुषो के साथ असत् आचरण करने लग गी ॥८०॥ बहुधा मनुष्यो को चोर—डाकू आदि क भय स भयभीत होकर घरो मे रिव ड लगाकर ही रहना होगा । प्राय कलियुग म दुर्भिक्ष का भय होना ही रहेगा लोग इधर उधर घर छोड भागत रहा करेंगे।८१। जो देश गेहूँ—जौ आदि धान्यों से परिपूर्ण होगा वही पर परम दुःखित होते हुए पहुँच जाया करे ग । वहाँ कोई सुन्दर काय बताकर शुभ मन्त्रों का उच्चारण करते हुए अपने काय की सिद्धि जब तक होगी भिन्नता रक्खा करे ग । मैत्री सम्ब ध दिखाकर स्नेह के साथ भिक्षा की साधना किया करे ग ॥ ८२।८३ ॥ य भिक्षावृत्ति करके भरण पोषण करने वाले भिक्षु लोग अन्न की प्राप्ति के मनोरथ म साधा का अपना शिष्य बनाव ग ॥८४॥

उभाभ्यामथ पाणिभ्या शिर कडूयन स्त्रिय ।
गुर्वीया गुरुभर्तृणामाज्ञामुल्लघयन्ति च ॥८५

पापडालापनिरता पापडजनसंगिन ।
यदा द्विजा भविष्यति तदा वृद्धि कलिर्व्रजत् ॥८६
यदा प्रजा न यक्ष्यति न होष्यति द्विजानय ।
तदैव तु कलेवृ द्धिरनुमेया विचक्षणै ॥८७
अधमवृद्धिभविता बालमृत्युरपि द्विज ।
सवधर्मेषु नष्टेषु याति नि श्रीकता जगत् ॥८८
एव कले स्वरूप ते कथित विप्रसत्तम ।
हरिभक्तिपरानेषु न कलिर्बाधते क्वचित् ॥८९
तप पर कृतयुगे त्रेताया ध्यानमेव च ।
द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेव कलौ युग ॥९०
यत्कृते दशभिर्वर्षैस्त्रेताया शरदा च यत् ।
द्वापरे यच्च मासेन ह्यहोरात्रेण तत्कलौ ॥९१

स्त्रिया अपने दोनो हाथो से शिर खुजा कर अर्थात् दोनो करो से शिर खुजाने के अप लक्षण को करती हुई अपने से बडो की ओर पति की आज्ञा को नही माना करेंगी ॥८५॥ जिस समय मे द्विजगण पाख ण्डियो से बातें किया करेंगे तथा दासियो की सङ्गति किया करेगे तभी समझ लेना कि कलियुग की वृद्धि हो गई है ॥८६॥ जिस समय मे प्रजा के मनुष्य देवो का यजन करना त्याग दें। उसी समय मे कलियुग की वृद्धि हो जाने का विचक्षण पुरुषो को अनुमान कर लेना चाहिए ॥८७॥ हे द्विजवर ! जिस समय मे सभी प्रकार से धर्म का विनाश होने लग जायगा तब अधम की अत्यधिक वृद्धि होगी—छोटे २ बालको की मृत्यु होने लग जायगी और समस्त जगत् श्रीहृत एव निर्धन होकर दरिद्री हो जावेगा ॥८८॥ हे परम श्रेष्ठ द्विज ! आपके सामने इस प्रकार से इस कलियुग का स्वरूप और प्रभ व का वर्णन कर दिया है। इसका प्रभाव समस्त मनुष्यो पर हुआ करता है किन्तु जो मनुष्य भग वान् की भक्ति किया करते हैं उन पर कलियुग की कुछ भी बाधाए नही

हुआ करती है ।।८६।। कृतयुग मे तपस्या की ही श्रेष्ठता हुआ करती है–त्रेतायुग म ध्यान को ही सवश्रेष्ठ माना गया है । द्वापर युग म यज्ञादि को ही मवश्रेष्ठ म ना गया है । इस कलियुग मे दान का विशेष महत्त्व होता है ।६०। जो धम कम स ययुग मे दश वष म फल प्रदान किया करता है–जो त्रेता युग मे एक वष तक करने स पुण्य फल दिया करता है–द्वापर म जो धम-कम एक माम में फल देता है वही धम का कम इस कलियुग मे एक अहर्निश मे फल दे दिया करता है और चौबीस घण्टो मे ही धम व कम की सिद्धि हो जाया करती है ।।६१।।

ध्यायन्कृते यजन्यज्ञैस्त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन् ।
यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ सकीर्त्य केशवम् ।।६२
अहोरात्र हरेर्नाम कीतयन्ति च ये नरा ।
कुर्वन्ति हरिपूजा वा न कलिर्बाधते च तान् ।।६३
नमो नारायणायेति कीतर्यन्ति च ये नरा ।
निष्कामा वा सकामा वा न कलिर्बाधते च तान् ।।६४
हरिनामपरा ये तु घोरे कलियुगे द्विज ।
त एव कृतकृत्याश्च न कलिर्बाधते हि तान् ।।६५
हरिपूजापरा ये च हरिनामपरायणा ।
त एव शिवतुल्याश्च नात्र काया विचारणा ।।६६
समस्तजगदाधारं परमार्थस्वरूपिणम् ।
घोरे कलियुगे प्राप्ते विष्णुं ध्यायन्न सीदति ।।६७
अहो अति सुभाग्यास्ते सकृद्वै केशवार्चका ।
घोरे कलियुगे प्राप्ते सवधर्मविवर्जिते ।।६८

सत्ययुग म ध्यान करने पर जो फल प्राप्त हुआ करता है–त्रेता म यज्ञादि के करने पर जिस पुण्य की फल प्राप्ति हुआ करती है और जो द्वापर म भगवान् का अचन करने से फल प्राप्त होता है वही फल

इस कलियुग में केवल श्री हरि भगवान् के कीर्तन करने से ही मिल जाया करता है ॥९२॥ जो मनुष्य रात दिन श्री हरि भगवान् के नाम का स्मरण किया करते हैं अथवा भगवान् विष्णु का अर्चन किया करते हैं यह घोर कलियुग भी उनको कभी बाधा नहीं दिया करता है। भगवान् के चरणों के आश्रय की इस कलियुग में अत्यधिक महिमा है ॥९३॥ जो भी कोई मानव निष्काम भाव से या सकाम भावना से 'नमो नारायणाय'—इस मन्त्र का जाप किया करते हैं वह घोरातिघोर कलियुग भी उनको बाधा नहीं दिया करता है॥९४॥हे द्विजवर! जो इस महान् घोर कलियुग में भगवान् श्री हरि के नाम में परायण रहा करते हैं वे ही कृतकृत्य एवं सफल जीवन वाले हैं। श्रीहरि नाम से भी मानवों को यह कलियुग बाधा तथा पीड़ा नहीं दिया करता ॥९५॥ जो जन श्रीहरि की पूजा में तत्पर रह कर सर्वदा भगवन्नाम का कीर्तन एवं स्मरण किया करते हैं वे साक्षात् भगवान् शिव के ही तुल्य होते हैं। इसमें थोड़ा सा भी संशय करने की आवश्यकता नहीं है ॥९६॥ कलियुग के प्रभाव से बचने के लिये श्री विष्णु का समाश्रय ही एकमात्र उपाय है जो इस सम्पूर्ण विश्व के आधार स्वरूप परमात्मा भगवान् विष्णु का इस घोर कलियुग में ध्यान स्मरण किया करते हैं वे कभी भी कष्ट नहीं उठाया करते हैं ॥९७॥ समस्त प्रकार के धर्म कर्मों से रहित इस महान घोर कलियुग के समय में किसी भी तरह से एक बार भी भगवान् श्री केशव का अर्चन कर लिया करता है उसको पारमार्थिक सौभाग्यशाली ही समझ लेना चाहिए ॥९८॥

न्यूनातिरिक्तदोषाणां कलौ वेदोक्तकर्मणाम् ।
हरिस्मरणमेवात्र सम्पूर्णत्वविधायकम् ॥९९
हरे केशव गोविन्द वासुदेव जगन्मय ।
इतीरयन्ति ये नित्यं नहि तान्बाधते कलि ॥१००
शिव शङ्कर रुद्रेश नीलकण्ठ त्रिलोचन ।

इति जल्पन्ति ये वापि कलिस्तान्नापि बाधते ॥१०१
महादेव विरूपाक्ष गंगाधर मृडाव्यय ।
इत्थं वदति ये विप्र ते कृतार्था न संशय ॥१०२
जनार्दन जगन्नाथ पीतांबरधराच्युत ।
इति वाप्युच्चरतीह न च तेषां कलेर्भयम् ॥१०३
संसारे सुलभा पुंसां पुत्रदारधनादय ।
घोरे कलियुगे विप्र हरिभक्तिस्तु दुर्लभ ॥१०४
कर्मश्रद्धाविहीना ये पापडा वेदनिंदका ।
अधर्मनिरता नैव नरकार्हा हरिस्मृते ॥१०५

वेदों में जो कर्म बतलाये गये हैं उनमें जो कुछ भी कभी रह जाया करती है उसको तथा जो अतिरिक्तता हुआ करती है उसको और इनके कारण होने वाले दोषों में जो अवणता रहा करती है इसकी पूर्णता इस कलियुग में एकमात्र श्रीहरि के लीला गुण और नामों के स्मरण के द्वारा ही होती है ।८८। जो पुरुष नित्य ही नियम से श्रद्धा भक्ति पूर्वक हे हरे । हे केशव । हे गोविन्द । हे वासुदेव । हे जगन्मय । —इस रीति से कीर्तन किया करते हैं उनको यह कुत्सित कलियुग कोई भी बाधा नहीं पहुँचाया करता है ॥१००॥ अथवा जो पुरुष हे शिव । हे शङ्कर । हे रुद्र । हे ईश । हे नीलकण्ठ । हे त्रिलोचन । इस प्रकार से भगवान शङ्कर के नामों का कीर्तन किया करते हैं उनको भी कलियुग की बाधायें नहीं हुआ करती हैं ॥१०१। हे विप्र जो मनुष्य हे महादेव । हे विरूपाक्ष । हे गङ्गाधर । हे मृड । हे अव्यय । —इस तरह से भगवान शिव के परम पावन नामों का कीर्त्तन किया करते हैं वे इस संसार में परम धन्य हैं इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है ॥१०२॥ जिन्का जो हे जनार्दन । हे जगन्नाथ । हे पीताम्बर धारिन् । हे अच्युत ।—इस तरह से भगवन्नामों का उच्चारण किया करते हैं उनको भी इस महान

दोषपूर्ण कलियुग का कुछ भी भय नहीं रहा करता है ॥१०३॥ इस संसार में जन्म ग्रहण करके मनुष्यों को पुत्र-कलत्र और धन वैभव आदि का प्राप्त होजाना तो सुलभ होता है किन्तु हे विप्रवर ! इस घोर कलियुग में बिना भगवान की कृपा के हुये श्रीहरि की भक्ति का प्राप्त होना महान दुर्लभ है ॥१०४॥ जिन मनुष्यों को कर्मकाण्ड में बिल्कुल श्रद्धा नहीं हुआ करती है तथा महान् पाखण्ड करने वाले, वेदों की निन्दा करने वाले और सदा अधर्म में ही परायण रहा करते हैं वे पुरुष भी यदि श्री हरि भगवान के शुभ नामों का स्मरण किया करते हैं तो कभी भी वे नरक की यातनाओं के भोगने के पात्र नहीं हुआ क` हैं ॥१०५॥

वेदमार्गबहिष्ठाना जनाना पापकर्मणाम् ।
मन. शुद्धिविहीनाना हरिनाम्नैव निष्कृति ॥१०६
दैवाधीन जगत्सर्वमिद स्थावरजगमम् ।
यथाप्रेरितमेतेन तथैव कुरुते द्विज ॥१०७
शक्तित सर्वकर्माणि वेदोक्तानि विधाय च ।
समर्पयेन्महाविष्णौ नारायणपरायण ॥१०८
समर्पितानि कर्माणि महाविष्णौ परात्मनि ।
सपूर्णता प्रयात्येव हरिस्मरणमात्रतः ॥१०९
हरिभक्तिरताना च पापबधो न जायते ।
अतोऽतिदुर्लभा लोके हरिभक्तिर्दुरात्मनाम् ॥११०
अहो हरिपरा ये तु कलौ घोरे भयकरे ।
ते सुभाग्या महात्मान सत्सगरहिता अपि ॥१११
हरिस्मरणनिष्ठाना शिवनामरतात्मनाम् ।
सत्य समस्तकर्माणि यान्ति सपूर्णता द्विज ॥११२

जो चित्त म मलिनता रक्खा करते हैं अर्थात् जिनका चित्त शुद्ध एव निष्कपट नहीं होता है जो वेद विहित मार्ग से बहिष्कृत होते

हैं ऐसे महा पापात्मा पुरुष का भी श्री हरि के नामों का स्मरण एवं कीर्त्तन करने से उद्धार होजाया करता है ॥१०६॥ हे द्विज ! यह सम्पूर्ण जगत् दैव के ही अधीन रहा करते हैं। दैव के द्वारा जैसी भी प्रेरणा प्राप्त होती है इस संसार के सभी प्राणी वैसी ही चेष्टा किया करते हैं। यह एक परम सिद्धान्त की बात है कि दैवेच्छा के बिना वे एक क्षण भी टस से मस नहीं हुआ करता है ॥१०७॥ भगवान के परम एवं अनन्य भक्त का यही कर्त्तव्य है कि अपनी शक्ति के अनुसार सम्पूर्ण वेद विहित कर्मानुष्ठानों को करके उन सबको भगवान महा विष्णु की ही सेवा में समर्पित कर देना चाहिये ॥१०८॥ परात्पर भगवान की सेवा में समर्पित किये हुये सब कर्म श्री हरि के स्मरण मात्र से ही परिपूर्णता को प्राप्त हो जाया करते हैं ॥ १०६ ॥ जो मनुष्य श्री हरि भगवान की भक्ति में परायण रहा करते हैं उनको कभी पापों का बन्धन नहीं हुआ करता है। अतएव यह श्रीहरि भगवान की श्रद्धा भक्ति दुष्ट-दुरात्माओं में होना बहुत ही कठिन हुआ करता है ॥११०॥ इस घोर कलियुग में एक बहुत ही आश्चर्य की बात यह है कि इसमें जो श्री हरिभक्ति तत्पर रहा करते हैं ॥१११॥ हे द्विजवर ! जो मनुष्य श्री हरि भगवान के स्मरण में अथवा शिव भगवान के नाम में निष्ठा रखकर निरन्तर परायण रहा करते हैं उनके समस्त कर्म परिपूर्ण हो जाया करते हैं ।११२।

अहो भाग्यमहो भाग्य हरिनामरतात्मनाम् ।
त्रिदशैरपि ते पूज्या किन्यैर्बहुभाषितै ॥११३
तस्मात्समस्तलोकाना हितमेव मयोच्यते ।
हरिनामपरान्मर्त्यान्न कलिर्बाधते क्वचित् ॥११४
हरेर्नामैव नामैव नामैव मम जीवनम् ।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा ॥११५
एवं च नारदो विप्रा सनकेन प्रबोधित ।
परां निर्वृत्तिमापन्न पुनरेतदुवाच ह ॥११६

भगवन्सर्वशास्त्रज्ञ त्वयातिकरुणात्मना ।
प्रकाशितं जगज्ज्योतिः परं ब्रह्म सनातनम् ॥११७

एतदेव परं पुण्यमेतदेव परं तपः ।
पुण्डरीकाक्षस्य स्मरणं सर्वपाप विनाशनम् ॥११८

भगवान श्री हरि के नाम में जिन मनुष्यों का मन रमण किया करता है उनका भाग्य परम धन्य है । उनके सौभाग्य की क्या सराहना की जावे ? अधिक कहाँ तक कहा जावे देवगण भी उन भक्तों का समादर-सत्कार करने की उत्कट अभिलाषा किया करते हैं ।११३। अतएव इस समय में मैं सभी प्राणियों के परम हित की बात बतलाता हूँ कि श्री हरि भगवान के नाम स्मरण में तत्परता रखने वाले मनुष्यों को यह कलियुग कैसा ही घोर क्यों न हो, कष्ट में नहीं डाल सकता है ।।११४। ।हे द्विजवर ! इस महान घोर कलियुग में श्री हरि का नाम विष्णु का नाम ही मेरा जीवनाधार है । इस कलियुग में अन्य किसी भी प्रकार से गति है ही नहीं । कोई उद्धार का मार्ग नहीं है और अन्य कोई भी ऐसा अमोघ साधन भी नहीं है ।।११५।। महा महर्षि सूतजी ने कहा—हे विप्रो ! श्री सनकादिकों के द्वारा इस रीति से उपदेश देने पर देवर्षि श्रीनारदजी परम प्रसन्न एवं सुखी होकर इस तरह से प्रार्थना करने लगे थे ।११६। श्री नारदजी ने कहा—हे भगवान आप तो सभी शास्त्रों के तत्वों के ज्ञाता हैं । आपके हृदय में बहुत अधिक करुणा भरी हुई है । यही कारण है कि आपने इस समय में जगज्ज्योति सनातन परब्रह्म परमात्मा के सत्स्वरूप का वर्णन करके मेरे सामने प्रकट किया है ।११७। भगवान पुण्डरीकाक्ष प्रभु का स्मरण समस्त पापों को दूर कर देने वाला है । भगवान नाम का ध्यान एवं कीर्त्तन परम पुण्य है और यही परमोत्कृष्ट तपश्चर्या है ।११८।

******

।। शिक्षा-निरूपण ।।

श्रुत्वा सनदन स्येत्थ वचन नारदो मुनि ।
असतुष्ट इव प्राह भ्रातर त सनदनम् ॥१
भगवन्सर्वमाख्यात यत्पृष्ट भवतो मया ।
तथापि नात्मा प्रीयेत शृणवन्हरिकथा मुहु ॥२
श्रूयते व्यासपुत्रस्तु शुक परमधर्मवित् ।
सिद्धि सुमहती प्राप्तो निर्विण्णोवातर वहि ॥३
ब्रह्मन् पु सस्तु विज्ञात महता सेवन विना ।
न जायते कथ प्राप्तो ज्ञान व्यासात्मज शिशु ॥४
तस्य जन्म रहस्य मे कर्म चाप्यस्य शृण्वते ।
समाख्याहि महाभाग मोक्ष शास्त्रार्थ विद्मवान् ॥५
शृणु विप्र प्रवक्ष्यामि शुकोत्पत्ति समासत ।
या श्रुत्वा ब्रह्मतत्त्वज्ञो जायते मानवो मुने ॥६
न हायनैर्न पलितैर्न वित्तेन न बधुभि ।
ऋषयश्चक्रिरे धर्मं योनूचान स नो महान् ॥७

देवर्षि श्री नारदजी सनन्दनजी के इस प्रकार के वचन का श्रवण करके अपने भाई सनन्दनजी से असन्तुष्ट से होते हुए यह बोले ॥ १ ॥ हे भगवन् ! मैंने आपसे जो कुछ भी पूछा था वह आपने सभी मेरे सामने वर्णन करके सुना दिया तो भी बारम्बार श्रीहरि भगवान् की कथा को सुनते हुए मेरी आत्मा मे सन्तृप्ति नही हो रही है ॥ २ ॥ ऐसा सुना जाता है कि श्रीकृष्ण द्वैपायन व्यासजी के पुत्र श्री शुकदेव जी परमार्थिक धर्म के ज्ञाता विद्वान् हैं और बाहर-भीतर सभी ओर से निर्वेद को प्राप्त होकर महती सिद्धि को प्राप्त हो गये हैं ।३। हे ब्रह्मन् ! बिना महान् पुरुषो की सेवा-सङ्गति के पुरुष का ज्ञान की प्राप्ति नही हुआ करती है फिर श्री वेदव्यासजी के पुत्र श्री शुकदेवजी के जन्म ग्रहण

करने का तथा कर्म का रहस्य श्रवण करने का परम इच्छुक हूँ अतएव मेरे समक्ष में उसे ही आप बतलाने की कृपा कीजिये ॥५॥ श्री सनन्दन जी ने कहा—हे विप्र ! मैं अब परम संक्षेप में श्री शुकदेव जी की उत्पत्ति का वर्णन करूँगा उसको आप सुनिये । हे मुने ! यह श्री शुकदेवजी की उत्पत्ति की कथा ऐसी अद्भुत महिमा से परिपूर्ण है कि जिसका श्रवण करके मानव ब्रह्म के तत्त्व का ज्ञाता हो जाया करता है ॥६॥ बहुत से वर्षों के लगा देने पर और वृद्धता प्राप्त करके धन और बन्धुओं के द्वारा ऋषि गणों ने धर्म का समाचरण किया था किन्तु फिर भी कोई महत्त्व प्राप्त न कर सके । हम लोगों में तो जो अनूचान होता है वही महान् माना जाया करता है ।७।

अनूचानः कथं ब्रह्मन्पुमान्भवति मानद ।
तस्य कर्म समाचक्ष्व श्रोतुं कौतूहलं मम ॥८
शृणु नारद वक्ष्यामि ह्यनूचानस्य लक्षणम् ।
यज्ज्ञात्वा सांगवेदानामभिज्ञो जायते नरः ॥९
शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं ज्योतिषं तथा ।
छन्दःशास्त्रं षडेतानि वेदांगानि विदुर्बुधाः ॥१०
ऋग्वेदोऽथ यजुर्वेदः सामवेदो ह्यथर्वणः ।
वेदाश्चत्वार एवैते प्रोक्ता धर्मनिरूपणे ॥११
सांगान्वेदान्गुरोर्यस्तु समधीते द्विजोत्तमः ।
सोऽनूचानः प्रभवति नान्यथा ग्रन्थकोटिभिः ॥१२
अंगानां लक्षणं वक्ष्ये वेदानां चापि विस्तरात् ।
स्वस्थमास्तु महाविज्ञ सावधानो भव नारद ॥१३
प्रश्नभारमतुलम्यदा मम कृता द्विज ।
संतुष्टात् वर्णयिष्यामि सावधाना मुनिसत्तम् ॥१४

देवर्षि श्री नारदजी ने कहा —हे मान के प्रदान करने वाले ! हे ब्रह्मन् ! अब आप मुझे यही बतलाने की कृपा कीजिए कि पुरुष

अनूचान किस प्रकार से हुआ करता है ? उस अनूचान का क्या कर्म होता है ? मेरे हृदय में इसके ही श्रवण करने का महान कौतूहल उत्पन्न हो रहा है ॥ ८ ॥ श्री सनन्दनजी ने कहा—हे नारद ! अब आप समाहित होकर सुनिये ! मैं अनूचान का ही लक्षण आपको बतलाता हूँ जिसके मनुष्य जान करके अङ्गों के सहित समस्त वेदों का पूर्णज्ञाता हो जाया करता है ॥ ९ ॥ बुधजनों के द्वारा यह बतलाया गया है कि वेदों के छैः अङ्ग शास्त्र हुआ करते हैं उनके नाम ये होते हैं—प्रथम शिक्षा वेदाङ्ग शास्त्र है—फिर कल्प है, व्याकरण, निरुक्त, ज्योतिष और छठवां छन्दः शास्त्र होता है ॥१०॥ धर्म के निरूपण करने के लिये ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्वण वेद—ये चार ही वेद बताये गये हैं ॥११॥ जो पुरुष उपर्युक्त छैः अङ्ग शास्त्रों के सहित इन सम्पूर्ण चारों वेदों का अध्ययन किया करता है और विधिपूर्वक गुरु की सेवा में उपस्थित होकर पढ़ता है वही श्रेष्ठ द्विज अनूचान हो सकता है अन्यथा भले ही करोड़ों ही ग्रन्थों का अध्ययन किया कर अनूचान नहीं हो सकता है ॥ १२ ॥ श्री नारदजी ने कहा—हे सानन्द ! आप तो अङ्ग शास्त्रों के सहित इन समस्त चारों वेदों के महान् विद्वान हो और हम लोगों में आप ही परमार्थिक अभिज्ञ हैं सो अब आप इपया इन चारों वेदों का तथा छैओं उक्त अङ्गों का विस्तारपूर्वक लक्षण बतलाइये ।१३। श्री सनन्दनजी ने कहा—हे द्विज ! आपने तो यह बड़ा भारी प्रश्न का भार मेरे ऊपर डाल दिया है क्योंकि यह तो महान् अनुलिन है कि विस्तार सहित इनका वर्णन किया जावे किन्तु जब आपकी ऐसी ही उत्कट अभिलाषा श्रवण करने की है तो मैं इन सबका सार परम मरोद में सुनिश्चित रूप में आपको समय मैं कहूँगा ।१४।

स्वर प्रधान शिक्षायां कीर्तिता मुनिसिद्धिजैः ।
वेदानां वेदविद्भिस्तु तदुद्भूत्य वदामि ते ॥१५
आर्चिक गाथिकं चैव सामिकं च स्वरान्तरम् ।

वृतान्ते स्वर शास्त्राणा प्रयोक्तव्य विशेषत ॥१६
एकातर स्वरो ह्यप्सु गाथा शुद्धयतर स्वर ।
सामसुभ्यतर विद्यादेतावत् स्वरतोन्तरम् ॥१७
ऋक्सामयजुरगानि ये यज्ञषु प्रयुञ्जते ।
अविज्ञानाद्धिशिक्षायास्तेषा भवति विस्वर ॥१८
मन्त्रो हीन स्वरतो वर्णतो वा मिथ्या प्रयुक्तो न तमथमाह ।
स एव वज्रो यजमान हिनस्ति यथेन्द्रशत्रु स्वरतोपराधात् ॥१९
उर कठ शिरश्चैव स्थानानि त्रीणि वाङ्मये ।
सवनान्याहुरेतानि सामवाप्यर्द्धतोन्तरम् ॥२०
उर सप्त विचार स्यास्तथा कठस्तथा शिर ।
नवशक्तोसि व्यक्तासु तथा प्रावचनो विधि ॥२१

(सर्व प्रथम शिक्षा शास्त्र उन छै पूर्व वर्णित अङ्गो मे आता है। द्विजगणो ने और मुनियो ने शिक्षा में स्वर की प्रधानता वर्णित की है तथा वदो के वेत्ताओ ने भी ऐसा ही बतलाया है। अब आप उसका ही श्रवण कीजिये। मैं आपको बतलाता हूँ ॥ १५ ॥ आर्चिक—गाथिक और सामिक स्वरान्तर होता है। स्वर शास्त्रो का कृतान्त मे विशेष रूप से प्रयोग करना चाहिए ।१६। अप्पों मे एकान्तर स्वर होता है और गाथा शुद्धयन्तर स्वर होता है तथा सामो म भ्यन्तर स्वर ही जान लेना चाहिए—इतना ही स्वरान्तर होता है ॥ १७ ॥ जो लोग यज्ञो म ऋक् साम यजु के अङ्गो का प्रयोग किया करते हैं विशिक्षा के अभिज्ञान से उनका विस्वर हो जाया करता है ॥ १८ ॥ स्वर स और वर्ण से विहीन मन्त्र का प्रयोग करना व्यर्थ ही होता है और उसमे कुछ भी प्रयोजन सिद्ध नहीं हुआ करता है अपितु स्वर के अपराध स वह मन्त्र का प्रयोग करने वाला अपने शत्रु का वज्र के द्वारा इन्द्र के ही समान यजमान का हनन किया करता है ॥ १९ ॥ उरस्थल कण्ठ और शिर इन तीन स्थानो को वाङ्मय म सवन कहा गया है अथवा साम नो

भी अर्द्धनोऽन्तर कहा गया है ।२०। उर स्थल सप्त विचार होता है तथा कण्ठ और शिर भी होता है। व्यक्ताओ ववशक्त है उसी भाँति शेवचन विधि है ।२१।

कठकालाप वृत्तेषु तैत्तिराट् करकेषु च ।
ऋग्वेदे सामवेदे च वक्तव्य प्रथम स्वर ॥२२
ऋग्वेदस्तु द्वितीयेन तृतीयेन च वर्तते ।
उच्च मध्यम सघात स्वरो भवति पार्थिव ॥२३
तृतीय प्रथम क्रुष्टा कुर्वत्याड्डुरकान् स्वरान् ।
द्वितीयाद्यास्तु मद्रातास्तैत्तिरीयाश्चतु स्वरान् ॥२४
प्रथमश्च द्वितीयश्च तृतीयोथ चतुर्थक ।
मद्रा क्रुष्टो मुनीश्वरारागान् कुर्वति सामगा ॥२५
द्वितीय प्रथमावेतो नाडिभाल्लविनो स्वरो ।
तथा शातपथा वेतो स्वरो वाजसनेयिनाम् ॥२६
एते विशेषत प्रोक्ता स्वरार्वे सार्ववैदिका ।
इत्येतच्चरित सर्वं स्वराणा सार्ववैदिकम् । २७
सामवेदे तु वक्ष्यामि स्वराणा चरित यथा ।
अल्पग्र थ प्रभूतार्थं सामवेदाग मुत्तमम् ॥२८

कण्ठ–कलाप–वृत्तो मे और तैत्तिराट् करको मे ऋग्वेद मे और सामवेद मे प्रथम स्वर ही कहना चाहिए ॥२२॥ ऋग्वेद तो द्वितीय और तृतीय के द्वारा होता है। उच्च मध्यम का सघात पार्थिव स्वर होता है ॥२३॥ करक स्वरो को करती हुई मे तृतीय प्रथम क्रुष्टा होती है। द्वितीयाद्य मद्रात हैं और तैत्तिरीय चार स्वरो के हाते हैं ॥२४॥ प्रथम-द्वितीय और तृतीय एव चतुर्थक मद्रा क्रुष्ट सामवेद का गान करने वाले मुनीश्वर रागो का करते हैं ।२५। ये प्रथम और द्वितीय भाडिभाल्लवित स्वर होते हैं। तथा वाज सनेयिको के ये दोना शतपथ स्वर होते हैं। ॥२६॥ विशेष रूप से ये स्वर सभी वेदो मे होने वाले होते हैं—ऐसा

कहा गया है। यह इतना ही सब स्वरों का सार्व वैदिक चरित है।२७। सामवेद में जिस प्रकार का स्वरों का चरित है वह मैं बतलाऊँगा। ग्रन्थ तो बहुत ही अल्प है किन्तु अर्थ बहुत अधिक है। सामवेद का अङ्ग अत्युत्तम होता है ॥२८॥

तान राग स्वर ग्राम मूर्च्छनाना तु लक्षणम् ।
पवित्र पावन पुण्य यथा तुभ्य प्रकीर्तितम् ॥२६
शिक्षामाहुर्द्विजातीनामृग्यजु साम लक्षणम् ।
सप्तस्वरास्त्रयो ग्रामा मूर्छनास्त्वेकविंशति ॥३०
ताना एको न पचाशदित्यतत् स्वरमण्डलम् ।
षड्जश्च ऋषभश्चैव गाधारो मध्यमस्तथा ॥३१
पचमो धवतश्चैव निषाद सप्तम स्वर ।
षड्जमध्यम गाधारस्त्रयो ग्रामा प्रकीर्तिता ॥३२
भूर्लोकाच्चायते षड्जो भुवर्लोकाच्च मध्यम ।
स्वर्गाश्चाच्चैव गाधारो ग्राम स्थानानि त्रीणि हि ॥३३
स्वराणा तु विशेषण ग्रामरागा इति स्मृता ।
विंशतिमध्यमग्रामे षड्ज ग्रामे चतुर्दश ॥३४
तानान् पचदशेच्छति गाधारे सामगायिनाम् ।
नदी विशाला सुमुखी चित्रा चित्रवतीम् ॥३५

तान राग स्वर ग्राम और मूर्च्छना का लक्षण परम पवित्र पावन (पवित्र बनाने वाला) और पुण्यमय होता है जैसा कि आपको मैंने वर्णित करके बतलाया है ॥२६॥ यह द्विजातियों को शिक्षा कही जाती है जो ऋग् यजु और साम का लक्षण है। स्वर सात होते हैं-ग्राम तीन होते हैं और मूर्च्छना इक्कीस हुआ करती हैं॥ ३०॥ तान इक्यावन हुआ करते हैं—यह इतना ही स्वरों का मण्डल हुआ करता है। अब उन सातों स्वरों के नाम बतलाये जाते हैं—षड्ज—ऋषभ—गान्धार-मध्यम पञ्चम-धैवत और निषाद ये सात स्वर हैं। षड्ज—मध्यम और

गान्धार—ये तीन ग्राम कीर्त्तित किये गये हैं ।।३१।।३२।। इन ग्रामों के तीन ही स्थान हुआ करते हैं—भूर्लोक से अपर से षड्ज होता है और भुवर्लोक से मध्यम होता है। स्वर्लोक से गान्धार हुआ करता है। ।।३३।। विशेष रूप से स्वरों के ग्राम राग कहे गये हैं। मध्यम ग्राम मे बीस होते हैं और षड्ज ग्राम में चौदह हुआ करते हैं ।।३४।। सामगायियों को गान्धार में पन्द्रह तानों की इच्छा किया करते हैं। अब मूर्च्छनाओं के नाम निर्दिष्ट किए जाते हैं—नदी—विशाला—सुमुखी—चित्रा—चित्रवती—सुखा और बला ये देवों की सात मूर्च्छनाएँ समझ लेनी चाहिए ।।३५।।

बला चाप्यथ विज्ञेया देवानां सप्त मूर्च्छना ।
आप्यायिनी विश्वभृता चन्द्रा हेमा कपर्दिनी ।।३६
मैत्री च वार्हती चैव पितॄणा सप्त मूर्च्छना ।
षड्जे तूत्तरमद्रास्याहृषभे चाभिरुद्गता ।।३७
अश्वक्रान्ता तु गांधारे तृतीया मूर्च्छना स्मृता ।
मध्यमेथुल सौवीरा हृषिका पचमे स्वरे ।।३८
धैवते चापि विज्ञेया मूर्च्छना तूत्तरा मता ।
निषादे रजनी विद्यादृषीणा सप्त मूर्छना । ३९
उपजीवति गंधर्वा देवाना सप्त मूर्छना ।
पितॄणा मूर्च्छना सप्त तथा यक्षान सशय ।।४०
ऋषीणां मूर्च्छना सप्तयास्त्विमा लौकिका स्मृता ।
षड्ज प्रीणाति वै देवानृषीन् प्रीणाति चर्षभ ।।४१
पितॄन् प्रीणाति गाधारो गधर्वान् मध्यम स्वर ।
देवान् पितॄन्नृषींश्चैव स्वर प्रीणाति पचम ।।४२

आप्यायिनी—विश्वभृता—चन्द्रा—हेमा—कपर्दिनी मैत्री—वार्हती—ये सात मूर्च्छनाएँ पितृगणों की हुआ करती हैं। षड्ज में उत्तर मद्रा होती है और ऋषभ में अभिरुद्गता हुआ करती है ।।३६।।३७।। गान्धार में अश्वक्रान्ता तीसरी मूर्च्छना बतायी गयी है। मध्यम में थुल सौ-

ललितपद-अक्षर-गुण से समृद्ध होता है—इस प्रकार से दश गुणों से युक्त गान होता है। चौदह गीति के दोष हुआ करते हैं उनके निम्नांकित नाम हैं–शंकित-भायण-भीति-उद्घृष्ट-अनुनासिक-काकस्वर-ऊर्ध्वगत-स्थान विवर्जित विस्वर-विरस-विश्लिष्ट-विषमाहत व्याकुल-तालहीन ।४४।४५। जो आचार्य लोग होते हैं और पण्डितगण पदच्छेद के इच्छुक होते हैं। स्त्रियाँ मधुर गुण को चाहती हैं तथा इतर जन निकृष्ट गुण को चाहा करते हैं ।।४६।। अब समस्त स्वरों के वर्णों के विषय में बतलाया जाता है जो प्रत्येक स्वर के भिन्न २ माने जाते हैं—षड्ज स्वर पद्म दल की आभा वाला होता है। ऋषभ स्वर शुक के पिञ्जर के समान वर्ण से युक्त हुआ करता है। सुवर्ण की सी आभा वाला गान्धार स्वर हुआ करता है। कुन्द के पुष्प के तुल्य मध्यम स्वर का वर्ण होता है ।।४७।। पञ्चम स्वर कृष्ण वर्ण से युक्त होता है और धैवत स्वर को पीत वर्ण वाला माना जाता है। निषाद स्वर में सभी वर्ण हुआ करते हैं—ये इतने ही स्वरों के वर्ण होते हैं ।।४८।। पञ्चम, मध्यम और षड्ज—ये तीनों स्वर ब्राह्मण कहे गये हैं और ऋषभ तथा धैवत ये दोनों स्वर क्षत्रिय वर्ण वाले होते हैं ।।४९।।

गान्धारश्च निषादश्च वैश्यावर्द्धेन वै स्मृतौ ।
शूद्रत्वं विधिनार्द्धेन पतितत्वान्न संशयः ।।५०

ऋषभो मूर्छितर्वाजतो धैवतसहितश्च पंचमो यत्र ।
निपतति मध्यमरागे स निषादं षाड्जवं विद्यात् ।।५१

यदि पंचम स्वरो विरमते गान्धारश्चान्तर स्वरो भवति ।
ऋषभो निषादसहितः पंचममोड़ा विद्यात् ।।५२

गान्धारस्याधिपत्येन निषादस्य गतागतं ।
धैवतस्य च दौर्बल्यात् मध्यम ग्राम उच्यते ।।५३

ईषत् स्पृष्टो निषादस्तु गान्धारश्चाधिको भवेत् ।

धैवत कंपितो यत्र स षड्जग्राम ईरित ॥५५
अतरस्वरसयुक्तकाकलि यत्र दृश्यते ।
त तु साधारित विद्यात् पचमस्थ तु कैशिकम् ॥५५
कैशिक भावयित्वा तु स्वरै सर्वै समतत ।
यस्मात्तु मध्यमे न्यासस्तस्मात् कैशिकमध्यम ॥५६

गान्धार और निषाद ये दोनो पैंवमावक्षन कहे गये हैं तथा अर्द्ध विधि से पतित न होने के कारण से शुद्धत्व होता है—इसमे संशय नहीं है ।।५०।। मूर्छित वर्जित ऋषभ और धैवत के सहित जहाँ पर पञ्चम होता है वह निषति मध्यम राग होता है और उसको निषाद एवम् षाड्जन जानना चाहिए ।।५१।। यदि पञ्चम स्वर विराम को प्राप्त होता है और गान्धार अन्तर स्वर हो जाता है तो उसको इस प्रकार का पञ्चम ही जानना चाहिए ।। ५२ ।। गान्धार स्वर के आधिपत्य के द्वारा और निषाद स्वर से गतागतों स तथा धैवत स्वर की दुबलता से मध्यम ग्राम कहा जाया करता है ।।५३।। निषाद स्वर ईषत्स्पृष्ट होता है और गान्धार अधिक होता है तथा जहाँ पर धैवत स्वर कम्पित होता है वह षड्ज ग्राम कहा गया है ।। ५४ ।। अन्तर स्वर से सयुक्त जहाँ पर काकलि दिखलाई दिया करता है तो उसको पञ्चमस्थ कैशिक साधारित समझना चाहिए ।।५५।। सभी ओर से समस्त स्वरो के द्वारा कैशिक को भावित करके जिससे मध्यम म न्यास किया जाता है उसी स कौशिक मध्यम होता है ।।५६।।

काकलिर्दृश्यते यत्र प्राधान्य पचमस्य तु ।
कश्यप कैशिक प्राह मध्यमग्रामसभवम् ॥५७
गीतिगेय विदु प्राज्ञा धेतिकारुप्रवादनम् ।
वेति वाद्यस्य सज्ञेय यद्वर्वस्य प्ररोचनम् ॥५८
य सामगानां प्रथम स वेणोर्मध्यम स्वर ।
यो द्वितीय स गाधारस्तृतीयस्त्वृषभ स्मृत ॥५९

चतुर्थ• षड्ज इत्याहु] पचमो धैवते भवेत् ।
षष्ठो निषादो विज्ञेय. सप्तम• पञ्चम• स्मृत ॥६०
षडज मयूरो वदति गावो रभति चर्षभम् ।
अजाविके तु गाँधार क्रौंचो वदति मध्यमम् ॥६१
पुष्प साधारणे काले कोकिला वक्ति पञ्चमम् ।
अश्वस्तु धैवत वक्ति निषाद वक्ति कुञ्जर. ॥६२
कंठादुत्तिष्ठते षड्ज शिरसस्त्वृषभ स्मृत• ।
गाधारस्त्वनुनासिक्य उरसो मध्यम स्वर. ॥६३

जहाँ परपञ्चम की प्रधानता से काकलि दिखलाई दिया करती है उसको कश्यप मध्यम ग्राम से समुत्पन्न कैशिक कहते हैं ॥ ५७ ॥ ब्राह्मगण ऐतिकामु प्रवादन को गेतिगेय कहते हैं और गन्धर्व का प्रयोजन वेतिवाद्य की सज्ञा वाला होता है ॥५८॥ जो साम गान करने वालो का प्रथम स्वर होता है वह वेणु का मध्यम स्वर हुआ करता है। जो द्वितीय स्वर होता है वह गान्धार है और तृतीय ऋषभ माना गया है ॥५६॥ चतुर्थ स्वर षड्ज कहा गया है और धैवत में पञ्चम से होना है। छठवाँ स्वर निषाद जानना चाहिए और सप्तम स्वर पञ्चम कहा गया है ॥६०॥ मयूर (मोर) पक्षी सर्वदा षड्ज स्वर का उच्चारण किया करता है। गौऐ सदा ऋषभ स्वर मे ही रँभाया करती हैं। अजाविक मे गान्धार स्वर होता है तथा क्रौञ्च मध्यम स्वर मे बोला करता है ॥६१॥ पुष्पों के साधारण विकास के समय मे कोयल पञ्चम स्वर मे बोलती है। अश्व सर्वदा धैवत स्वर मे ही बोला करता है और हाथी निषाद स्वर मे बोलता है ॥६२ ॥ षड्ज स्वर कण्ठ से उठा करता है और ऋषभ स्वर शिर से उठने वाला कहा गया है। गान्धार स्वर अनुनासिक कहा गया है जो नासिका से ही समुत्पन्न होता है। मध्यम स्वर उर. स्थल से उठता है ॥६३॥

उरसः शिरस. कंठादुत्थित पञ्चम. स्वर ।

ललाटात् धैवत विद्यान्निषाद सर्वसंधिजम् ॥६४
नासा कण्ठमुरस्तालु जिह्वादंताश्च संश्रित ।
षड्भि संजायते यस्मात् तस्मात् षड्ज स्मृत ॥६५
वायु समुत्थितो नाभे कण्ठशीर्ष समाहित ।
नदत्यृषभवद्यस्मात् तस्मात् ऋषभ उच्यते ॥६६
वायु समुत्थितो नाभे कठशीर्ष समाहत ।
वाति गंधवह पुण्यो गांधारस्तेन हेतुना ॥६७
वायु समुत्थितो नाभेरुरो हृदि समाहित ।
नाभिप्राप्तो महि वरदो मध्यमत्व समश्नुते ॥६८
वायु समुत्थितो नाभेरुरो हृत्कठशिरोहत ।
पंचस्थानोत्थितस्यास्य पंचमत्व विधीयते ॥६९
धैवत च निषाद च वर्जयित्वा तु नावुभौ ।
शेषान्पंच स्वरास्त्वन्य पंचस्थानोत्थितान् विदु ॥७०

पञ्चम स्वर के उठने के तीन स्थान माने गये हैं यह उर स्थल में कण्ठ में और सिर में तीनों स्थानों में उठता है । धैवत स्वर का उत्थान ललाट से जानना चाहिए और निषाद स्वर समस्त सन्धियों से समुत्पन्न होता है ।६४। यह षड्ज स्वर नासिका कण्ठ उर स्थल तालु जिह्वा और दांत इन छै स्थानों में सम्भव प्राप्त करने वाला होता है । क्योंकि यह उपर्युक्त छैओं स्थानों में सञ्जात हुआ करता है इसीलिए इसका नाम 'षड्ज'—यह पड़ गया है ।।६५।। नाभि के स्थान से उठा हुआ वायु फिर कण्ठ और सिर में समाहत हुआ करता है अर्थात् टकराता है और इसी कारण से इसका नाम ऋषभ स्वर कहा गया है । कहने का तात्पर्य यह है कि सभी स्वरों के नाम, क्रिया और अर्थ के अनुसार ही पड़ गये हैं ।।६६।। नाभि स्थल से समुत्थित वायु कण्ठ और शीर्ष में जाकर टकराता है फिर वह पुण्य वायु वहन किया करता है । इसी कारण से गान्धार नाम स्वर

गया है ।।६७।। नाभि से उठा हुआ वायु उर स्थल और हृदय में समाहित होजाता है। क्योंकि यह मध्य में ही प्राप्त होजाता है अतएव इस तरह स्वर का नाम मध्यम पड गया है ।।६८।। नाभि से उठकर उर स्थल हृदय और कण्ठ में समाहृत होकर बाहिर प्रकट होता है। यह पाँच स्थानो वाला है अतएव इसका नाम पञ्चम हो गया है।६६। धैवत और निषाद इन दो स्वरो को वर्जित करके अन्य विद्वान् सब सभी स्वरो को पाँच स्थानो मे समुत्थित मानते हैं।७०।

पचस्थानस्थित त्वेन सवस्थानानि धामते ।
अग्निगीतस्वर पड्ज ऋषभो ब्रह्मणोच्यते ।।७१
सामेन गीतो ह्याग्रागो विष्णुना मध्यम स्वर ।
पचमस्तु स्वरो गीतस्त्वयं वेति निधारय ।।७२
धैवतश्च निषादश्च गीतौ तु तुरुणा स्वरौ ।
आद्यस्य दैवत ब्रह्मा पड्जस्याप्युच्यते बुधै ।।७३
तीक्ष्ण दीप्त प्रकाश त्वाद्दृषभस्य हुताशन ।
गाव प्रणीते तुष्यति गाधारस्तेन हेतुना ।।७४
श्रुत्वा धैवोपतिष्ठति सौरभेया न सशय ।
सोमस्तु पचमस्यापि दैवत ब्रह्मराट् स्मृतम् ।।७५
निह्रासो यस्य वृद्धिश्च ग्राममासाद्य सोमवत् ।
अतिसधीयते यस्मादेतान् पूर्वोत्थितान् स्वरान् ।।७६
तस्मादस्य स्वरस्यापि धैवतत्व विधीयते ।
निपीदति स्वरा यस्मान्निषादस्तेन हेतुना ।।७७

पाच स्थानो मे स्थित होने के कारण से सभी स्थान धारण किये जाते है। षड्ज स्वर अग्निदेव के द्वारा गाया हुआ है।७१। गाधार स्वर सोमदेव के द्वारा गाया जाया करता है और भगवान विष्णु के द्वारा मध्यम स्वर का गान होता है। पञ्चम स्वर तो आपके ही द्वारा (नारदजी के द्वारा) गाया गया है। ऐसा निश्चय समझ

लीजिए।७२। धैवत और निषाद ये दो स्वर तुम्बरु के द्वारा गाये गये हैं। बुधजनों के द्वारा आद्य षड्ज स्वर का देवता ब्रह्माजी को बतलाया जाता है ॥७३॥ परमाधिक तीक्ष्ण, दीप्त और प्रकाश वाला होने से ऋषभ स्वर का अधिष्ठाता देवता हुताशन होता है। प्रणीत किये जाने पर गौयें परम सन्तुष्ट हुआ करती हैं इसी हेतु से इस स्वर को गान्धार कहा जाता है ॥७४॥ इसमें कुछ भी संशय नहीं कि इस स्वर का श्रवण करके ही सौरभेय उपस्थित होजाया करती हैं। पञ्चम स्वर का देवता सौम्य होता है और यह ब्रह्माण्ड कहा गया है ॥७५॥ जिसका निह्रास है और वृद्धि ग्राम को प्राप्त करके सोम के समान इन पूर्वोस्थित स्वरों को सन्धित करती है। इसी कारण से इस स्वर का नाम धैवत पड गया है। क्योंकि जिसमें स्वर निपीडित होते हैं उसी हेतु से निषाद यह नाम स्वर का होगया है।७६।७७।

सर्वांश्चाभिभवत्येष यदादित्योस्य दैवतम् ॥७८

दारवी गात्रवीणा च द्वे वीणे गान जातिषु।

सामकी गात्रवीणा तु तस्यास्त्व शृणु लक्षणम्।

गात्रवीणा तु सा प्रोक्ता यस्या गायति सामगा ॥७९

[illegible]

प्रणव प्राक् प्रयुञ्जीत व्याहृतीस्तदनन्तरम् ॥८१

सावित्रीवानुवचन ततो वै गानमारभेत् ॥८२

प्रसार्यचागुली सर्वा रोपयेत् स्वरमडलम् ॥८३

नवागुलीभिरगुष्ठमगुष्ठेनागुली स्पृशेन्।

विरला नागुली कुर्यान् मूले चैतान्न सस्पृशेत् ॥८४

यह सभी का अभिभूत कर देता है जब कि इसका देवता आदित्य होता है। गान जातियों में दो ही वीणा होती हैं। एक

दारवी वीणा होती है जो लकडी से रचित हुआ करती है और दूसरी गात्र वीणा होती है। स्वर और व्यञ्जन से सयुक्त,अगुली और अगुष्ठ से रञ्जित जो होती है वह गात्र वीणा कही जाती है। जिस पर साम गान करने वाले गाया करते हैं। साम की जो गात्र वीणा होती है उसका लक्षण आपने श्रवण किया है ॥७८।७६॥ अपने दोनों हाथों को पूर्णतया सयत करके रखने चाहिये जोकि जानुओं के ऊपर के भाग में स्थित होवें और अपने गुरुदेव की ही अनुकृति करनी चाहिए। जिससे कि अन्य-बुद्धि न होवे। सर्व प्रथम प्रणव (ओंकार) का प्रयोग करना चाहिये और इसके अनन्तर व्याहृतियों का प्रयोग करे। सावित्री की भाँति अनुवचन करे और इसके पश्चात् गान का आरम्भ करना चाहिये ॥८०—८२॥ समस्त अँगुलियों को प्रसारित करके स्वरमण्डल का रोपण करना चाहिये ।८३। नौ अँगुलियों से अँगुष्ठ को और अँगुष्ठ से अँगुलियों का स्पर्श करना चाहिये। मूल में अँगुलियों को विरत नहीं करे और इनका सस्पर्श नहीं करना चाहिये ॥८४॥

अगुष्ठाग्रेणतां नित्य मध्यमे पर्वणि स्पृशेत् ।
मात्राद्विमात्र वद्धाना विभागार्थे विभागवित् ॥८५
अगुलीभिर्द्विमात्र तु पाणे सव्यस्य दर्शयेत् ।
त्रिरेखायस्य दृश्येत सिद्धि तत्र विनिर्दिशेत् ॥८६
स पर्व इति विज्ञेय शेषमतरमतरम् ।
पर्वांतर सामसुचर्क्षु कुर्यान्ति लातरम् ॥८७
स्वरान् मध्यम पर्वसु सुनिविष्टान्निवशयेत् ।
न चात्र कपयेत् किंचिदगस्या वयव वुध ॥८८
अधस्तन मद न्यस्य हस्तमास्ते यथाक्रमम् ।
अभ्रमध्ये यथा विद्युत् दृश्यते मणिसूत्र इव ॥८६
नृपच्छेदविनृतीना यथा वातेषु वर्तरी ।

कूर्माङ्गानि च संहृत्य चेतो दृष्टि दिशन्मन. ।।६०
स्वस्थ. प्रशान्तो निर्भीतो वर्णामुच्चरयेत् बुधः ।
नासिकायास्तु पूर्वेण हस्त गोकर्णवद्धरेत् ।।६१

अँगुष्ठ के अग्रभाग से नित्य ही मध्यम पर्व मे उनका स्पर्श करना चाहिये कि विभागार्थ मे मात्रा द्विमात्र वर्णो का स्पर्श करे ।८५। उच्च स्वर की अँगुलियो से द्विमात्र को दर्शित करना चाहिये । जिसकी त्रिरेखा दिखाई देवे वहाँ पर सिद्धि का निर्देश करना चाहिए ॥ ८६ ॥ उसको पर्व समझना चाहिये । शेष अन्तर अन्तर ही होता है । मात्रों मे पर्वान्तर और स्वर मे तिलानन्तर करे ।८७। मध्यम पर्वों मे स्वरों को भली भाँति निविष्ट करते हुए मुनेवेशित्व करना चाहिए । उत्तम बुद्ध पुरुष को चाहिए किसी भी अङ्ग के अवयव को कम्पित नहीं करे ।।८८।। नीचे की ओर मुखिका को रखकर हस्त को यथाक्रम रखे । जिस प्रकार से बादलो के मध्य मे मणिगण के तुल्य विद्युत दिखाई

यथा दधिनि सर्पि स्यात्काष्ठस्थो वा यथानला ॥६५
प्रयत्नेनोपलभ्येत तद्वत्स्वरगता श्रुति ।
स्वरात्स्वरस्य सक्राम स्तुरसधिमनुल्वणम् ॥६६
अविच्छिन्न सम कुर्यात्सूक्ष्मच्छायातपोपमम् ।
अनागमतमतिक्रात विच्छिन्न विषमाहतम् ॥६७
तन्वन्तमस्थितात च वर्जयेत्कर्पण बुध ।
स्वरस्यानात् च्युतो यस्तु स्व स्थानमति वर्तते ॥६८
विस्वर सामगा ब्रू युविरक्तामिति वीणिन ।
अभ्यासार्थे द्रुता वृत्ति प्रयोगार्थे तु मध्यमाम् ॥६६

हस्त के अग्रभाग मे अपनी दृष्टि को विनिष्ट करके शास्त्र के अर्थ का अनुचिन्तन करना चाहिए। मुख और हस्त के द्वारा अच्छी तरह से वाक्य का प्रचार करे ॥६२॥ जैसे ही वर्णों का उच्चारण करे उसी भाँति इसको समाप्त कर देना चाहिए। अति हनन नहीं करे और निर्हणन भी न करे, न प्रमाथन करे और न कम्पन करना चाहिए ॥ ६३ ॥ शब्द के द्वारा व्योम मे जिस प्रकार से गति हुआ करती है उसी तरह से सामों का सम गायन करना चाहिये। जैसे सुचरण करने वाले मीनों का मार्ग उपलब्ध नहीं हुआ करता है ॥६४॥ अथवा आकाश मे विहगो की जैसे श्रुति हुआ करती है उसी के समान स्वरो मे रहने वाली श्रुति होती है। जिस रीति से दही मे घृत विद्यमान रहा करता है और दिखलाई नहीं देता अथवा काष्ठ मे स्थित जैसे अग्नि रहा करता है तथा बहुत कुछ प्रयत्नो के करने पर ही वह प्राप्त हुआ करते हैं उसी भाँति स्वरगता श्रुति भी होती है। स्वर से स्वर का सक्राम, अनुल्वग स्तुरसन्धि का जो अविच्छिन्न है उसे सम करे। सूक्ष्मछाया तप के समान अनागत, अतिक्रान्त, विच्छिन्न, विष, आहत तन्वन्त, अस्थितान्त कर्षण का बुधजन के द्वारा वर्जित कर देना चाहिये। स्वर स्थान से जो च्युत हो और अपने स्थान का अतिवर्त्तन कर देता है उसको सामगान करने वाले विस्वर कहते हैं और वीणी लोग उसे विरक्त कहा करते है।६५---६६'

शिष्याणामुपदेशार्थं कुर्यात् वृत्ति विलम्बिताम् ।
गृहीतग्रन्थ एव तु ग्रन्थोच्चारणशैक्षकान् ॥१००
हस्तेनाध्यापयेच्छिष्यान् शैक्षेण विधिना द्विज ।
क्रुष्टस्य मूर्द्धनि स्थान ललाटे प्रथमस्य तु ॥१०१
भ्रुवोर्मध्ये द्वितीयस्य तृतीयस्य तु कर्णयो ।
कण्ठस्थान चतुर्थस्य मन्द्रस्य रसनोच्यते ॥१०२
अतिस्वारस्य नीचस्य हृदि स्थान विधीयते ।
अगुष्ठस्योत्तमे क्रुष्टो ह्यगुष्ठे प्रथम स्वर ॥१०३
प्रदेशिन्या तु गाधार ऋषभस्तदनतरम् ।
अनामिकाया षड्ज तु कनिष्ठाया तु धैवत ॥१०४
तस्याधस्ताच्च योन्यास्तु निषाद तत्र निर्दिशेत् ।
अपर्वत्वादमध्यत्वादध्यत्वाच्च निरयश ॥१०५
मद्रोहि मदीभूतस्तु परिस्वार इति स्मृत ।
क्रुष्टेन देवा जीवति प्रथमे न तु मानुषा ॥१०६

अभ्यास के अर्थ मे द्रुत वृत्ति को तथा जिस समय मे अपने शिष्यो को उपदेश दिया जावे उस समय मे वृत्ति को विलम्बिता कर देनी चाहिए । ग्रन्थ के उच्चारण करने के शैक्षि को इसी प्रकार से ग्रन्थ गृहीत हुआ करते हैं ॥१००॥ द्विज को चाहिए कि शैक्षण की जो विधि है उसी के अनुसार हस्त के द्वारा शिष्यो को अध्ययन कराना चाहिये । क्रुष्ट का मूर्धा मे स्थान है और प्रथम का स्थान ललाट मे हुआ करता है। दोनों भृकुटियो के मध्य मे द्वितीय का तथा तृतीय का स्थान दोनो कानो मे हुआ करता है। चतुर्थ का कण्ठ स्थान है और मन्द्र का स्थान रसना कहा जाया करता है ॥ १०१।१०२ ॥ नीच अतिस्वार का स्थान हृदय मे किया जाता है। अंगुष्ठ के उत्तम मे क्रुष्ट और अंगुष्ठ म प्रथम स्वर होता है ।१०३। प्रदेशिनी अंगुली मे गान्धार स्वर रहता है और उसके अन तर ऋषभ रहा करता है।

अनामिका मे षड्ज स्वर का वास है तो कनिष्ठका अँगुली मे धैवत रहता है।१०४। और उसके नीचे के भाग मे वहाँ पर निषाद का विनिर्देश करना चाहिए। अपर्वत्व, अमध्यत्व और नित्य ही अव्ययत्व होने के कारण से मन्द्र मन्दीभूत होना है और परिस्वार इस नाम से कहा गया है। क्रुष्ट से देवगण जीवित रहा करते हैं।१०५।१०६।

पशवस्तु द्वितीये न गधर्वाप्सरसस्त्व नु।
अधजा पितरश्चैव चतुर्थस्वर जीविन ॥१०७
मन्द्रत्वेनोप जीवति पिशाचासुर राक्षस।
अतिस्वारेण नीचेन जगत्स्थावरजगमा ॥१०८
सर्वाणि खलु भूतानि धार्यन्ते सामिकैं स्वरैः।
दीप्तायताकरुणाना मदुमध्यमयोस्तथा ॥१०९
श्रुतीना यो विशेषज्ञो न स आचार्य उच्यते।
दीप्ता मद्रे द्वितीये च प्रचतुर्थे तथैव च ॥११०
अतिस्वारे तृतीये च क्रुष्टे तु करुणा श्रुति।
श्रुतयो या द्वितीयस्य मृदुमध्यायता. स्मृता. ॥११
तासामपि तु वक्ष्यामि लक्षणानि पृथक् पृथक्।
आयतात्व भवेन्नीचे मृदुतात्व विपर्यये ॥११२

पशुगण द्वितीय के द्वारा जीवित है और इसके पश्चात तृतीय से गन्धर्व तथा अप्सरायें जीवित रहा करते है। अधज और पितृगण चतुर्थ स्वर के द्वारा जीवित होते हैं।१०७। पिशाच और राक्षस सब मन्द्रत्व के द्वारा उपजीवित हुआ करते है। सब जगत् के जितने भी स्थावर तथा जङ्गम है वे सब अतिस्वार नीच के द्वारा जीवित रहा करते हैं।१०८। जितने भी भूत हैं वे सभी सामिक स्वरो के द्वारा धारण किये जाया करते है। दीप्त, आयत, करुणो का तथा मृदु और मध्यम श्रुतियो का जो भी विशेषताओ का ज्ञाता होता है वह आचार्य नहीं कहा जाया करता है। मन्द्र, द्वितीय और चतुर्थ मे दीप्त होती है।

अतिसार, तृतीय और कृष्ट में करुणा श्रुति हुआ करती है। द्वितीय की जो श्रुतियाँ होती हैं वे मृदु, मध्य और आयत कही गयी हैं ।१०६—१११। उन सबके भी पृथक २ लक्षणों को मैं अब बतलाता हूँ। नीच में आयतत्व होता है और विपर्यय में मृदु तत्व हुआ करता है ॥११२॥

स्वे स्वरे मध्यमत्वं तु तत्समीक्ष्य प्रयोजयेत् ।
द्वितीये विरता या तु कृष्टश्च परतो भवेत् ॥११३
दीप्तां तां तु विजानीयात् प्रायम्येन मृदु स्मृतः ।
अत्रैव विरता या तु चतुर्थेन प्रवर्तते ॥११४
तथा मन्द्रे भवेद्दीप्ता साम्नश्चैव समापने ।
नातितरश्रुतिं कुर्यात् स्वरयोर्नापि चातरे ॥११५
न च ह्रस्वे न दीर्घे च न चापि पुटिसंज्ञके ।
द्विविधा भति· नदालस्थितसंधि· सहोष्मभि ॥११६
स्थानेषु पंचस्वेतेषु विज्ञेय पुट संज्ञिकम् ।
स्वरांतराविरतानि ह्रस्व दीर्घ घुटानि च ॥११७
स्थिति स्थानेष्व शेषाणि श्रुतिवत्स्वरतो वदेत् ।
दीप्तामुदात्ते जानीयाद्दीप्ता च स्वरिते विदु ॥११८
अनुदात्ते मृदुर्ज्ञेया गधर्वा श्रुतिसंपदम् ।
उदात्तश्चानुदात्तश्च स्वरितप्रचिते तथा ॥११९
निघातश्चेति विज्ञेय स्वरभेदश्च पंचधा ।
अत ऊर्द्ध्वं प्रवक्ष्यामि आर्चिकस्य स्वरत्रयम् ॥१२०

अपने स्वर में मध्यम होता है उसकी समीक्षा करके ही प्रयोजित करना चाहिए। द्वितीय में जो विरता है वह कृष्ट के परे होवे ॥११३॥ उसको दीप्त जानना चाहिए और प्राथम्य से मृदु कहा गया है। यहाँ पर ही जो विरता है वह चतुर्थ से प्रवृत्त होती है ॥११४॥ उसी रीति से मन्द्र में दीप्ता होती है और साम के समापन में होती

है। स्वरों की अस्थिर श्रुति नहीं करनी चाहिये और अन्तर में भी न करे।११५। और उसको ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत मात्रा में भी नहीं करना चाहिये। ऊष्मों के साथ पदान्त स्थित सन्धि दो प्रकार की गति होती है।११६। इन पाँच स्थानों में पुट सहित जानना चाहिये। स्वरान्तर विरत और ह्रस्व दीर्घ पुट।११७। स्थित स्थानों में अंशों को श्रुति के समान स्वर में बोलना चाहिए। उदात्त में दीप्त आने और दीप्त स्वरित में आते हैं।११८। अनुदात्त में मृदु जानना चाहिए। गांधर्व श्रुति की करुणा को उदात्त, अनुदात्त, स्वरित, प्रचित और निघात, इस तरह से स्वरों के भेद पाँच प्रकार के जानते हैं। अब इसमें आगे आचिक के तीन स्वरों को कहूँगा॥११९—१२०।

उदात्तश्चानुदात्तश्च तृतीय स्वरित· स्वर ।
यसवोदात्त इत्युक्त. स एवस्वरितात्पर. ॥१२१
प्रचय. प्रोच्यते तज्ज्ञैर्न चात्रान्य स्त्वरान्तरम् ।
वर्णस्वारोतीतस्वर. स्वरितो द्विविध· स्मृत ॥१२
मात्रिको वर्ण एव तु दीर्घस्तूच्चरितादनु ।
स तु सप्तविधो ज्ञेय. स्वार. प्रत्ययस्य दर्शनात् ॥१२३
पदेन तु स विज्ञेयो भवेद्यो यत्र यादृश ।
सप्त स्वरान् प्रयुञ्जीत दक्षिण श्रवण प्रति ॥१२४
आचार्य विहित शास्त्रा पुत्र शिष्य हितैषिण. ।
उच्चादुच्चतर नास्ति नीचान्नीचतर तथा ॥१२५
वैस्वयस्वार सज्ञाया किंस्थान स्वार उच्यते ।
उच्चनीचस्य यन्मध्य साधारणमिति श्रुतिः ॥१२६

उदात्त, अनुदात्त, तीसरा स्वरित स्वर यसवोदात्त इस तरह से कहा गया है और वह ही स्वरित से पर होता है।१२१। उसके ज्ञान रखने वालों के द्वारा प्रचय कहा जाया करता है और यहाँ पर अन्य स्वरान्तर नहीं है। वर्णस्वार और अतीत स्वर—इस प्रकार से

स्वरित दो प्रकार का बताया गया है ।१२२। मात्रिक और वर्ण और उच्चरित के पश्चात दीर्घ होता है । वह स्वार प्रत्य में दर्शन से सात प्रकार का जानना चाहिये ।१२३। जो जहाँ पर जिस प्रकार का होता है वह पद के द्वारा ही जानने मे योग्य होता है । दक्षिण श्रवण के प्रति सात स्वरों का प्रयोग करना चाहिये । यह आचार्यों का विहित शास्त्र है जो कि अपने पुत्र और शिष्यों के हितैषी होते हैं । उच्च से अधिक उच्च नहीं होता है तथा नीच से अधिक नीच भी नहीं होता है ।१२४।१२५। वैस्वर्य स्वार सज्ञा मे किस स्थान वाला स्वार कहा जाता है । जो उच्च-नीच के मध्य मे स धारण है, वह श्रुति है ।१२६।

तस्वार स्वारसज्ञाया प्रतिजानति शंक्षिता ।
उदात्तो निषादगाधारावनुदात्त ऋषभ धैवतौ ॥१२७
स्वरित प्रभवा ह्येते षड्ज मध्यमपचमा ।
यत्र बखपरा ऊष्मा जिह्वामूल प्रयोजना ॥१२८
सामप्यानाप्यपेन्मात्रा प्रवृत्यैव रसास्वसा ।
जात्य क्षप्रोभिनिहित स्वैर व्यजन एव च ॥१२९
तिरो विराम प्रश्लिष्टोपावृत्त्श्च सप्तम ।
स्वराणामहमेतेषा पृथग्वक्ष्यामि लक्षणम् ॥१३०
उद्दिष्टाना तथान्यायमुदाहरणमेव च ।
सयकार मव वापि ह्यक्षर स्वरित भवेत् ॥१३१
न चोदात्त पुरस्तस्य जात्य स्वार स उच्यते ।
दूउग्मो यशाशतावपद्यते यत्रो वर्वचित् ॥१३२
अनुदात्तो प्रत्ययेतु विद्यान् क्षैप्रस्य लक्षणम् ।
ए ओ आभ्यामुदात्ताभ्यामकारो निहितश्च ॥१३३
अकारो यत्र लुप्तेत तमभिनिहित विदु ।
उदात्तपूर्व यत्किचिच्छन्दसि स्वरित भवेत् ॥१३४

उस स्वार को स्वार सञ्ज्ञा मे शैक्षिकगण जानते हैं। उदात्त मे निषाद और गान्धार होते हैं तथा अनुदात्त मे ऋषभ और धैवत हुआ करते हैं ॥१२७॥ षड्ज, मध्यम और पञ्चम ये स्वर स्वरित से प्रभूत होने वाले हुआ करते हैं। जहाँ पर क ख पर ऊष्म और जिह्वा मूल के प्रयोजन वाले हुआ करते है ।१२८। उसको भी मात्रा आज्ञापित करे प्रकृति ही से ऐसा करता है। स्वैर व्यञ्जन ही आत्य, क्षैप्र, अभिनिहित, तिरा, विराम, प्रश्लिष्ट और सातवां अपावृत होता है। मैं अब इन स्वरो म पृथक २ लक्षणो को बतलाऊंगा ॥१२९॥१३०॥ उद्दिष्टो के तथा न्याय उदाहरण भी वर्णन करूँगा। समकार अथवा सब भी अक्षर स्वरित होता है ।१३१। उसके आगे उदात्त न हो तो वह जात्य स्वार कहा जाया करता है। इ–उ वर्ण जब उदात्त होते हैं तो कही पर यव उत्पन्न हुआ करते हैं ।१३२। अनुदात्त प्रत्यय मे तो क्षैप्र का लक्षण जान लेना चाहिए। ए ओ इन उदात्तो से जो अकार निहित है जहा पर अकार लुप्त होजाया करता है उसको ही अभिहित कहा करते है। उदात्त पूर्व जो कुछ भी होता है वह छन्द मे स्वरित होता है ।१३३।१३४।

एप सर्वबहुस्वारस्तैर व्यञ्जन उच्यते ।
अवग्राहात् पर यत्र स्वरितं स्यादनन्तरम् ॥१३५
तिराविराम तं विद्यादुदात्तो यद्यवग्रह ।
इकार य त्र पश्येयुरिकारेणैव संयुतम् ॥१३६
उदात्तमनुदात्तेन प्रश्लिष्ट तं विचारय ।
स्वरे चेत्स्वरितं यत्र विवृता यत्र संहिता ॥१३७
एतत् पादात वृत्तस्य लक्षण शास्त्र नोदितम् ।
तान्य. स्वर सजात्येन श्व्यपरे क्षैप्र उच्यते ॥१३८
ते मन्यनाभिनिहितस्तोऽव्यञ्जन ऊनय ।
तिरो विरामो विष्टपिते प्रश्लिष्टो ह्रीईगोर्वण ॥१३९

पादवृत्त बदविदे स्वरा सप्तैवमादय ।
उच्चादेकाक्षरात् पूर्वात्स्वर यद्यदिहाक्षरम् ॥१४०
स्वारापाड्जात्पदर्जानामेषा प्रकृतिरुच्यते ।
चत्वारस्त्वादिन सारा क प पु श्रुति शास्त्रत ॥१४१

यह सब बहु स्वार है उनके द्वारा अभ्यञ्जन कहा जाया करता है। जहाँ पर अवग्रह से पर अनन्तर स्वरित होता है ।१३५। तिरविराम उसको जान लेना चाहिए यदि उदात्त अवग्रह हो। जहाँ पर इकार से ही मधुन इकार को देख ।१३६। अनुदात्त के साथ उदात्त यदि प्रश्लिष्ट हो तो विचार करे। यदि जहाँ पर स्वर म स्वरित हो और वहा महिला निवृत्ता हो यह पदान्त वृत्ति का लक्षण शास्त्र के द्वारा नोदित है। समात्मक साथ अ य स्वर न हो तो वह भ्रष्यप्र म क्षैप्र कहा जाया करता है ।१३७।१३८। वे मन्वन्ताभि निहित है और उनस ऊति क लिये अभ्यञ्जन है। ही ई मोवण निर्व्यञ्जित मे तिरोविराम है ।१३९। बदविद म पादवित्त है। इस प्रकार से स्वर सात ही हुआ करते हैं। पूर्व म रहने वाले उच्च एकाक्षर स यदि यहाँ पर जो कोई स्वर अक्षर हो तो स्वारा पाड जात्पदजों की यह प्रकृति कही जाया करती है। शास्त्र म चार ही आदि म सार हैं क प पु श्रुति ॥१४०।१४१।

उदात्त चैवनीचे वा जुहुयोग्रिमन्निदर्शनम् ।
इकारान्ते पदे पूर्व उकारे परत स्थिते ॥१४२
ह्रस्व वप विजानीयाद्येधावोनान् न संशय ।
इकाराते पदे चैवोकारद्वय परे पदे ॥१४३
दीर्घ वप विजानीयात् छागघूप्विति निदर्शनम् ।
भगादीर्घास्तु विज्ञेयात् पच सध्यक्षरेषु वै ॥१४४
मन्या यथा न इन्द्राभ्या क्षया ह्रस्वा प्रकीर्तिता ।
अतेकाम्रुदात्तानामनुदात्ता प्रत्यया यदि ॥१४५
शिववप विजानीयादुदात्ता प्रत्यया यदि ।

यप्रद्धिप्रभृतीनि स्युरुदात्तान्य क्षराणि तु ॥१४६
नीच वोच्च च परतस्तत्रोदात्त विदुर्बुधा ।
न रेफे वा हकारे वा द्विर्भावो जायते क्वचित् ॥१४७

उदात्त मे अथवा एक बीच मे जुहोग्रिसत् निदशन है । पूर्व इकारान्त पद मे परत उकार के स्थित होने पर इसको किस प्रकार जाने । इससे मेधावियो को कोई सशय नही होता है ।१४२। और इकारान्त पद मे जो पर पद मे दो उकार हो तो दीर्घ का कैसे जानना चाहिए । इसमे छागपु पु—यह निदर्शन उपस्थित है । पाच माध्यक्षरो मे तीन दीर्घ जान लने चाहिए ।१४३।१४४। जिस प्रकार से मध्य न हो इन्द्रो के द्वारा ह्रस्व प्रवर्तित हुए ही जान लने चाहिए । यदि उदात्त प्रत्यय होवे तो शिव क य जान लेवे । य प्रद्धि प्रभृति उदात्त अक्षर ही होवे तो नीच अथवा उच्च पर मे होवे वहाँ पर बुध जन उदात्त ही जाना करते है । रेफ मे अथवा हकार मे कहीं पर भी द्विर्भाव नही हुआ करता है ॥१४६।१४७॥

न च वर्ग द्वितीयेषु न चतुर्थे कदाचन ।
चतुर्थं तु तृतीये न द्वितीय प्रथमेन तु ॥१४८
आद्यमस्य च मध्य च स्वराक्षरेण पीडयेत् ।
अनन्त्यश्च भवेत् पूर्वो ह्यन्तश्च परतो यदि ॥१४९
तत्र मध्ये यमस्तिष्ठेत् स्ववर्ण पूर्ववर्णयो ।
वर्गात्यात् शवसं सार्द्धमनस्यैर्वापि सयुताम् ॥१५०
दृष्ट्वा यमा निवर्तन्ते अदेशिकमिवाध्वगा ।
तृतीयश्च चतुर्थश्च चतुर्थादिपर पदम् ॥१५१
द्वौ तृतीयौ हकारश्च हकारादि पर परम् ।
अनुस्वारोपधामूना तान् क्वचित् क्रमत परम् ॥१५२
रह पूर्व सयुते चाप्युत्तर क्रमेक्षर ।
सयोगो यत्र दृश्येत व्यज न विरते पदे ॥१५३

पूर्वाङ्गमहितं कृत्वा परागादौ निवेशयेत् ।
सयोगे स्वरितं यत्र उद्वात प्रतन तथा ॥१५४
पुवाङ्गम् तद्विजा नीयाद्यनारभ पर हि तत् ।
सयोगात् विजानीयात् पर सयोग नायकम् ॥१५५

कभी भी द्वितीय वर्णों म नहीं है और चतुथ मे भी नहीं होता है। तृतीय के साथ चतुर्थ तथा प्रथम के साथ द्वितीय नहीं हुआ करता है।१४८। आद्य—अ त और म-य स्वरा र के द्वारा पीड़ित करता चाहिये । यदि अ त पर मे हो तो अ त्य पूव म हो जाया करता है॥ १४६॥ वहाँ पर मध्य में यम स्थित रहा करता है और पूर्वा वर्णों म स्ववर्ण स्थित रहा करता है प्रथम—इनके अथवा अन्तस्थों के साथ नवुन वर्ग क अन्त में होने वालों को देखकर यम निवृत्त हो जाया करते हैं जिस तरह से मार्ग म गमन करने वाले अदे शिर को देखकर निवृत्त हो जाते हैं। तृतीय और चतुर्थ चतुर्थादि से पर पद हो—दो तृतीय और हकार हकारादि से पर पद हो—अनुस्वा रोपधामूल हो तो उनको यहाँ पर क्रम स पर को रह पूव सयुत होन पर अ तरा उत्तर को क्रमश किया करता है। जहाँ पर सयोग दिख लाई देवे । पद के विरत होन पर व्यञ्जन होवे ॥ १५०—१५३ ॥ तो पूर्वाङ्ग को आदिम करके पराङ्गादि म निवेशित करना चाहिए। जहाँ पर सयोग मे स्वरित हो तथा उद्वात प्रतन होवे उसको पूर्वाङ्ग जानना चाहिये और जिसके द्वारा आरम्भ होता है वह पर होता है। सयोग स पर को सयोग का नायक समझना चाहिए॥ १५४॥ ॥ १५५ ॥

सयुक्तस्य तु वर्णस्य य त र पूर्वमक्षरम् ।
अनुस्वार पदातश्च क्रमज प्र यय स्व र ॥१५६
स्वरभक्ति-तथा रेफ पूर्वपूर्वाङ्गमुच्यते ।
पादादौ चारादादौ च सयोगावग्रहेषु च ॥१५७
य शब्द इति विज्ञेयो यान्य स य इति स्मृत ।

पादादावप्यविच्छेदे मयोगाते च तिष्ठताम् ॥१५८
वर्जयित्वा रहपाणामपादेश प्रदृश्यते ।
स्वसयुक्तो गुरुर्ज्ञेय सानुस्वाराग्रिम स्फुट ॥१५६
अणु शेषो ह्निगोवापि युगलादि र विस्फुट ।
यदुदात्तमुदात्त तद्यत् स्वरित तत्पदे ॥१६०
भवति नीच यन्नी च नीचमेव तदात्र च ।
पश्यतदपि नीच अग्नि सुतो मित्रमिद वयद्ममपावह ॥१६१
प्रिय दूत घृत चित्तमति शब्दस्तु नीचत ।
अश्वेष्वेव सुतेष्वेव यज्ञेपु कलशेषु च ॥१६२
शतेषु सपविश्रपु नीचाच्चार्यते श्रुति ।
हारिवरुणवरेण्येपु धारापुरुषेपु स्वरतिरेफ ॥१६३

सयुक्त वर्ण का जो पर पूर्व अक्षर हो अनुस्वार और पदान्त अपने प्रत्यय मे क्रम से समुत्पन्न हो, स्वर भक्ति तथा रेफ पूर्व पूर्वाङ्ग कहा जाया करता है। पाद के आदि मे और अपाद के आदि मे—सयोग और अवग्रहो में य शब्द, ऐसा जानना चाहिए। जो अन्य है वह य, ऐसा कहा गया है ॥ १५६, १५७ ॥ पाद के आदि मे, अविच्छेद म भी और सयोग क अन्त मे स्थित रहने वाले रह वाणो को वर्जित करके अपादेश प्रकृष्ट रूप स दिखलाई दिया करता है। अपने से सयुक्त गुरु समझना चाहिए और अनुस्वार के सहित अग्रिम स्फुट है। ॥ १५८, १५६ ॥ अणुशेष ह्निगोवा भी युगलादि रवि स्फुट है। जो उदात्त है वह उदात्त है जो उस पद मे स्वरित नीच होता है। जो नीच है वह नीच ही है आ प्रश्न है। पश्य वह भी नीच है, अग्नि सुतो मित्रमिद वपद्ममावह प्रिय दूत घृत चित्त मतिशब्द नीच है। अश्वा म ही, सुतो मे ही, यज्ञा म और कलशों मे शतो म और सपविश्रा मे नीच मे श्रुति उच्चारण की जाती है। हारि, वरुण, वरेण्यो मे, धारा पुरुषो म स्वरतिरेफ है।।१६०—१६३॥

विश्वनरोकारश्च शेषास्तु रचरिता नरा ।
(द्वौ वरुणौवस्वरत उद्भूतमत्ववरुण धारेचौर धारामुरुद्वारे
स्व दोहते । मात्रिक वा द्विमात्र वा स्वयतेस्यंतेवयदिवृक्षरम्)
तस्यादितोर्द्ध मात्र वै शेष तु परतो भवेत् ॥१६४
अदीर्घ दीर्घवत्कुर्यात् द्विस्वर यत् प्रयुज्यते ।
कपोत्स्वरिताभिगीता ह्रस्वकर्पण मेव च ॥१६५
निमेपकाला मात्रा स्याद्विद्युतकालेति चापरे ।
ऋवतरा तुल्ययोगा वा कैश्चिदेव मुदीयते ॥१६६
समासेवग्रह कुर्यात्पदे चात्रानुमहितम् ।
येतोक्षरादितिकरण पदातस्य त विदु ॥१६७
(सर्वत्र मित्र पुत्रसखि शब्दा अहिशतत्रतो वग्राह्या ।
आदित्यविप्रनाता वेदाश्च सत्पति गोपति वृत्रहा समुद्राश्च ।
स्वरपुर्वोदेवयवश्चारिति देवतातये ।)
चिकितिश्च धचैव तावत् गृह्णाति पडिता ।
विवृत्तमश्चसो वै विज्ञेया इति मे मतम् ॥१६८

और विश्वनरोकार है शेषतुरचरित नर हैं। (द्वौ वरुणौ वस्वरत उद्भूतम मत्ववरुण धारेचौर धारा मुरुद्वारे स्वदोहते—मात्रिक है अथवा द्विमात्रिक है। स्वयते स्वयते मदि वृक्षरम्) उसके आदि मे अर्द्ध मात्र है शेष तो पर मे होता है।१६४। जो अदीर्घ है उसे दीर्घ के समान करना चाहिए जो द्विस्वर प्रयुक्त किया जाता है। कम्पोत्स्वरित मे अभिगीत है और ह्रस्व कर्षण ही होता है।१६५। निमेष काल मात्रा होती है और दूसरे यह कहते हैं कि विद्युत काला है। ऋवतरा अथवा तुल्य योगा होती है—इस प्रकार से कुछ लोगो के द्वारा कहा जाया करता है।१६६। समास मे अवग्रह करे और यहाँ पर अनुमहित पद है। ये तो क्षरादिति करण है उसको पद त का जानें।१६७। (सब जगह मित्र पुत्र, सखि शब्द अहिशा क्तोवग्राह्य हैं। आदित्य, विप्र तात

और वेद—सत्पति, गोपति, वृषहा और समुद्र । स्वर पुरोदेव मन और अदिति देवतायें) चि तिनि और म ही सब तक पण्डित ग्रहण किया करते हैं । चार निवृत्तियाँ हैं जिनको जानना चाहिये, यह मेरा मत है ।१६८।

अक्षराणां नियोगेन तासां नामानि मे शृणु ।
ह्रस्वादियत्सानुसृता वत्सानुसारिणी वाचे ॥१६६
पावकत्युभयो ह्रस्वा दीर्घा वृद्धा पिपीलिका: ।
चत सृणा विवृत्तीना अतर मात्रिक भवेत् ॥१७०
अर्द्ध मात्रेक मन्येपामन्येपामाणुमात्रिकम् ॥१७१
आपद्यते मकारो रेफोष्मासु प्रत्ययेष्य नुस्वारम् ।
पलयेप परसवर्णं स्पर्शेषु चोत्तमापत्तिम् ॥१७२
नकारान्ते पदे पूर्वे स्वरे च परतः स्थिते ।
अकाररंक्तमित्याहुस्तकारेण तु रज्यते ॥१७३
नकारान्ते पदे पूर्वे व्यञ्जनेश्च यवोरिपु ।
अर्द्ध मात्रा तु पूर्वस्य रज्यते त्वणुमात्रया ॥१७४
नकार स्वरमयुक्तश्चेत् धुं मनो विधीयते ।
रेफो रगश्च लोपश्च नानुस्वारोपि वा क्वचित् ॥१७५

अक्षरों के नियोग से उनके नाम अब आप सुनने प्रयत्न करिए । आगे वत्सानुसारिणी की तरह ह्रस्वादि के तुल्य वह अनुसृता है ॥ १६६ ॥ दोनों में पावकी ह्रस्वा—दीर्घा—वृद्धा पिपीलिका है । चारों निवृत्तियों का अन्तर मात्रिक होता है ॥ १७० ॥ अक्षरों का अर्द्ध मात्रिक होता है और अन्यों का अणु मात्रिक हुआ करता है ॥१७१॥ रेफ उष्माओं मकार आपन्न होता है । प्रत्यय में भी अनुस्वार होता है । पल येप पर सवर्ण और स्वरों [illegible] उपमार्गित है ॥१७२॥ नकारान्त पद में पूर्व स्वर के होने पर और पर भाग में स्थित होने पर अकार रक्तम्—ऐसा कहते हैं और नकार से रञ्जन

किया जाता है ।।१७३।। नकारान्त पद के पूर्व में होने पर यवहियों में व्यञ्जनों के द्वारा पूर्व की अर्धमात्र अणु मात्रा से रञ्जित की जाया करती है ।। १७४ ।। स्वर मयुक्त नकार और चतुर्युक्त विधान किया जाता है । रेफ–रङ्ग–और लोप अथवा वहीं पर सानुस्वार भी होता है ।।१७५।।

हृदयादुत्तिष्ठते रङ्ग कांस्येन समन्वितः ।
मृदुश्चैव द्विमात्रश्च दधन्वानिति निदर्शनम् ।।१७६
यथा सौराष्ट्रिकानार्य अरहिं इत्यभिभाषते ।
एव रङ्ग प्रयोक्तव्यो नारदेतन्मतं मम ।।१७७
स्वरागदुदधाश्चैव हणनमा सहोष्मभि ।
चतुर्णा पदजातीना पदाता दश कीर्तिता ।।१७८
स्वर उच्च स्वरो नीच स्वर स्वरित एव च ।
व्यञ्जना न तु वर्तन्ते यत्र तिष्ठति स स्वर ।।१७९
स्वरप्रधान गेस्वर्यमाचार्या प्रतिजानते ।
मरियद्व्यजन विद्यात्सूत्रवच्च स्वर विदु ।।१८०
दुर्बलस्य यथा राष्ट्र हरते बलवान् नृप ।
दुर्बल व्यजन तद्वद्धरेत बलवान्स्वर ।।१८१
उभावन्त विवृतिश्च शपसा रेफ एव च ।
जिह्वामूलमुपध्मा च गतिरष्टविधोष्मण ।।१८२

रङ्ग-कांस्य से समन्वित हृदय से उठता है । मृदु और द्विमात्र है दधन्वान्—यह नि दर्शन होता है ।। १७६ ।। जिस प्रकार से सौराष्ट्र देश मे रहने वाली नारियाँ "अरहिं" यह बोला करती हैं । इस प्रकार से रङ्ग का प्रयोग करना चाहिए । हे नारद ! यह मेरा मत है ।१७७। स्वराग दुदधा ही ऊष्म सबन वर्णों के साथ ङ णनम चारपद जातियों के दश पदान्त कीर्तित किय गये हैं ।। १७८ ।। स्वर उच्च होता है, स्वर नीच होता है और स्वर स्वरित होता है । जहाँ पर वह स्वर स्थित

हुआ करता है वहाँ पर व्यञ्जन नहीं होते हैं ।। १७० ।। स्वर जिसमे प्रधान होता है ऐसे सौस्वर्य को आचार्य जानते हैं। व्यञ्जन को मणि के समान जानना चाहिए और स्वर को सूत्र के तुल्य समझना चाहिए जिस सूत्र में मणियाँ पिरोकर रक्खी जाया करती हैं ।। १८० ।। किसी बलहीन राजा के राष्ट्र को जिस प्रकार से बलवान् नृप हरण कर लिया करता है ठीक उसी भाँति दुर्बल व्यञ्जन को बलशाली स्वर हरण कर लेता है।१८१। उभाव और निवृत्ति, शपस और रेफ, जिह्वामूल, उपध्मा, यह आठ प्रकार की ऊष्मा गमन वर्ण की गति हुआ करती है।१८२।

स्वरप्रत्ययाविवृत्ति संहितायो तु या भवेत् ।
विसर्गस्तत्र मतव्यस्तालव्यश्चात्र जायते ।।१८३
सन्ध्यक्षरे परे सधौ प्राप्तलुप्तो यवौ यदि ।
व्यजनाख्या विवृतिस्तु स्वराख्या गति संहिता ।।१८४
ऊष्मात विरतेयत्र सम्भावो भवति क्वचित् ।
विवृत्तिर्या भवेत्तत्र स्वराख्या ता विनिर्दिशेत्।।१८५
यद्योभावप्रसधानमुकारादि पर पदम् ।
स्वरात ताद्दश विद्याद्यदन्यत् व्यक्तभूष्मण ।।१८६
प्रथमा उत्तमाश्चैव पदातेपु यदि स्थिता ।
द्वितीय स्थानमापन्ना श्रयसप्रत्ययो यदि ।।१८७
प्रथमानूष्म सयुक्ता द्वितीयानिव दर्शयेत् ।
न चैतान्प्रतिजानीयात् यथा मत्स्य क्षुरोप्सरा ।।१८८
छन्दोमान च वृत च पादस्थान निकारणम् ।
ऋच स्वच्छन्दवृत्तास्तु पादास्तक्षरमानस ।।१८९

संहिता मे जो स्वर प्रत्यया विवृत्ति होती है वहाँ पर विसर्ग ही मानना चाहिये और यहाँ पर तालव्य हुआ करता है ।। १८३ ।। सन्ध्यक्षर में, पर सन्धि मे यदि यव प्राप्त लुप्त होवे तो प्रति संहिता

व्यञ्जनाख्य विवृत्ति स्वराख्या होती है ॥ १८४ ॥ जहाँ पर ऊष्मान्त विरत होता है तो वही पर सम्भाव होता है। वहाँ पर जो विवृत्ति होती है उसको स्वराख्या ही विनिर्दिष्ट करना चाहिये ।१८५। यदि ओ भावप्रसधास हो और उकारादि पर पद हो उस प्रकार की को स्व रा त ही समझना चाहिये और अन्यत्र ऊष्मा का व्यक्त है ।१८६। यदि प्रथमा और उत्तमा पदान्तो मे स्थित होवे और द्वितीय स्थान को समाप न हो और यदि श ष स प्रत्यय हो तो प्रथमो को द्वितीय के समान ऊष्म सयुक्त दिखाना चाहिये। इसको जिस तरह से मत्स्य क्षुरोत्सरा।। को जानना है वैसा नहो प्रति जानना चाहिए ॥१८८॥ छन्दोभाव वृत्त और पादस्थान ये तीन कारण हैं। ऋचाऐं स्वच्छन्द वृत्त वाली और पादाक्षर मानस होती है ।१८६।

आवर्ण्यान् स्वरभक्ति च छन्दो मानेन निर्दिशेत् ।
प्रत्ययेत सहारेफमिगीते स्वरभक्तया ॥१६०
ऋवर्णे तु प्रथक् रेफ प्रत्ययस्तु वृथा भवेत् ।
विद्याल्लघुमकार तु यदि तूष्माण सयुत ॥१६१
ऊष्मणैव हि सयुक्त ऋवारो यत्र पीड्यते ।
गुरुवर्ण स विज्ञेयस्तृच चात्र निदर्शनम् ॥१६२
ऋषभ च गृहीत च वृहस्पति पृथिव्या च ।
निर्ऋ तिपचमा ह्यत्र ऋकारा नात सशय ॥१६३
शषसहरादौ रेफ स्वरभक्तिर्जायते द्विपदसाधौ ।
इउवर्णाभ्यां हीना भवचिदेकपदाक्रम वियुक्ता ॥१६४
स्वरभक्तिर्द्विधा प्रोक्ता ऋकारे रेफ एव च ।
स्वरोदा व्यजनोदा च विहिताक्षरचिन्तकै ॥१६५
शपसेषु स्वरोदयाँ हकारे व्यजनोदयाम् ।
शपशेष विवृत्तां तुहकोर सवृता विदु ॥१६६

आवर्णों को और स्वरभक्ति को छन्द के मान से ही निर्दिष्ट

करना चाहिए। प्रयय से रेफ के साथ स्वरभक्ता से भाग करता है।१६०। ऋवर्ण में रेफ पृथक् होता है और प्रथम तो वृथा हो जाता है। यदि ऊष्माण समुन हो ना लघु मकार को जानना चाहिए।१६१। ऊष्मा के द्वारा संयुक्त जहाँ पर ऋकार पीडित करता है उसको गुरु वर्ण जानना चाहिये। यहाँ पर दृ च निदर्शन है।१६२। ऋषभ, गृहीत, बृहस्पति और पृथिव्या, यहाँ पर निदर्शन पञ्चमा है जो ऋकार से होती है, इसमें संशय नहीं है।१६३। श ष स हगादि में रेफ स्वर भक्ति होता है। द्विपद सन्धि से ३—३ वर्णों स हीना वही पर एक पराक्रम विभुक्ता होती है॥ १६४॥ स्वर भक्ति दो प्रकार की कही गई है—ऋकार में और रेफ में विहिताचार चिन्तकों ने यह स्वरोदा और व्यञ्जनोदा नामों द्वारा बतलायी है। श ष सो मे स्वरोदया और हकार में व्यञ्जनोदया, श प शेष निवृता और हकार म सवृता जानते हैं॥१६५ १६६॥

स्वरभक्ति प्रयु जान स्त्रीपारिखलुवर्जना।
इकारलघुकार चानसदीयं तथैव च॥१६७
सयोगपरञ्छापर विसर्जनीय द्विमात्रक चैव।
धवसातिक च नङ् मसानुस्वार प्रटत च॥१६८
यस्या पाद प्रथमो द्वादशमात्रास्तथा तृतीयोपि।
अप्टादशा द्वितीय समापन्न पञ्चदशमात्र॥१६६
यस्यालक्षणमुक्त या त्वन्या सा स्मृता विपुला।
अक्षराणा लघुह्रस्वमसयोगपर यदि॥२००
तत्सयोगोतरे विद्यान् गुरुधीरक्षराक्षराणितु।
विवृत्तिर्यत्र दृश्येत स्वारस्येवाग्रत स्थित॥२०१
गुरुस्वारमविज्ञेय दोषस्तत्र न विद्यते।
अप्टप्रकार विज्ञेय पदाना स्वरलक्षणम्॥२०२

स्वर भक्ति का प्रयोग करते वाले म स्त्री पारि का वर्जना

होती है। इकार और उकार, चानस दीर्घ, सयोग परच्छापर, विसर्जनीय और द्विमात्रक, व्यवसातिन, नड् मसानुसार प्रटत है ॥ १६७ । १६८ ॥ जिमका प्रथम पाद द्वादश माला वाला है तथा तृतीय भी उसी प्रकार का है। अठारह मात्रा वाला और पन्द्रह मात्रा वाला समापन है ॥ १६६ ॥ जिमका लक्षण कहा है और जो अन्या है वह विपुला कही गयी है। अक्षरो का यदि लघु ह्रस्वम सयोग पर हो उसके सयोगोत्तर मे गुरु औरक्षर हो जहां पर ऐसी विवृत्ति दिखलाई देवे वही स्वारस का ही आगे स्थित है ॥२००, २०१॥ गुरुस्वार मविशेष है वहां पर दोष नहीं होता है। पदो का स्वर लक्षण आठ प्रकार का जानना चाहिए ।२०२।

अतोदात्तमाद्युदात्तमुदात्तमनुदात्त नीच स्वरितम् ।
मध्योयत स्वरित द्विरदात्तमित्येता अष्टौ पद सज्ञा ।
अग्नि सोम प्रवोवीतं हविषा स्वरवनस्पति अतमंघ्यमयो-
साम्युदमनुनिपात्य आद्यास्वरितमुपसर्गो द्विर्नोचसाख्यात
इति स्वरितत्पराणि यानि स्युद्धारापरक्षराणि तु । सर्वाणि
प्रचयस्था न्यु पोदात्त निहन्यन ॥२०३
प्रचयो यत्र दृश्येत तत्र हन्यात्स्वर बुध ।
स्वरित नेयन्तो यत्र मद्रुन्तत्र निपातयेत् ॥२०४
पच विधिआचार्येव नाम गुप्त न्याम करण प्रतिज्ञोच्चारणा
अप्रोच्यते श्रेय ग्रनु येश्य प्रतिज्ञातोच्चारणा यस्य यस्य
विद्वर्णस्य करण नोपलभ्यते प्रतिज्ञा तत्र बोद्ध्याकरणम् हि
तदात्मकम् ॥२०५
तु गुण भयद्वर्गादिविधानस्वादयश्च गधर्वा ।
गाम मुनिभून करण स्वरनोद्भ्यान्नैव जानीयु ॥२०६
नरोत्तमाणि मदारसेद श्रीपादर्जनम् हेतुम् ।
जीर्णो हार प्रबुद्ध ग्र नूपनिस्मृता चिन्तयेत् ॥२०७
शरद् विपुवतो शीतादुपग्रगुस्थान मिप्यते ।

यावद्वासन्तिकी रात्रिर्मध्यमा पर्युपस्थिता ॥२०८
आम्रपालाशविल्वाना अपामार्गशिरिषयो ।
वाग्यत. प्रातरुत्थाय भक्षयेद्दन्तधावनम् ॥२०६
खादिरश्च कदम्बश्च कर वीर करजयो ।
सर्वेकण्टकिनो पुण्या क्षीरिणश्च यशस्विन ॥२१०

अन्तोदात्त, आद्युदात्त, उदात्त, अनुदात्त, नीच स्वरित, मध्योदात्त स्वरित, द्विसुदात्त ये इतनी आठ पद सज्ञाये हैं। अग्नि, मोम, प्रवोवीर्य, हविषा, स्वर वनस्पति, अन्तर्मध्य ममोताभ्युद—अनुनिपात्य भाव से स्वरित, उपसर्ग से द्विनीच वह आख्यात है—ये स्वरित पर की हैं द्वारा परस्पर मब प्रथयस्य उपोदात्त निहनन किया जाता है।२०३। जहाँ पर प्रचय दिखलाई देवे वहाँ पर बुध पुरुष स्वर का हनन करे। वहाँ पर केवल स्वरित हो वहाँ पर मृदु का निपातन करना चाहिये ॥ २०४ ॥ पाँच प्रकार का आचार्यक होता है, नाम मुख, न्यास करण, प्रतिज्ञोच्चारणा। वहाँ पर थेय वेश्य कहा जाता है यह प्रतिज्ञोच्चारणा है। जिस किसी वर्ण का करण उपलब्ध नहीं होता है वहाँ पर प्रतिज्ञा है और तदात्मक बोद्ध व्याकरण है ॥२०५॥ तुम्बरू भवद्विशिष्ट विश्वावसादि गन्धर्व हैं। सामो निभृत करण स्वर सौक्ष्म्य होने से नहीं जानना चाहिये ॥ २०६ ॥ कौक्षेयाग्नि, सदारक्षेद श्रीपाद दर्शन, हेतु जीर्णोद्धार, प्रबुद्ध, ब्रह्मयमिन् ब्रह्म का चिन्तन करे ॥ २०६ । २०७ ॥ शरद विपुवतोऽतीत से उपकाल मे उध्दाय इष्ट होता है जब तक वासन्तिकी रात्रि मध्यमा पर्युपस्थिता होनी है ॥ २०८॥ आम्र, पलाश, विल्व, अपामार्ग, शिरीष, इनकी दातुन प्रात काल मे उठकर मौनव्रती होते हुए करना चाहिए ॥ २०६ ॥ खदिर, कदम्ब, करवीर, ये सब कण्टकी पुण्य हैं और जो क्षीर वाले हैं वे यशस्वी हैं।२१०।

तेनास्य करण सौक्ष्म्य माधुर्यं चोप जायते ।
वर्णाश्च कुरुते सम्यक् प्राचीनोदवर्तिर्यया ॥२११

त्रिफला लवणाढ्येन भक्षयेच्छिष्यक: सदा ।
अग्निमेधाजनन्येषा स्वर वर्णकरी तथा ॥२१२
कृत्वा चावश्यकावमा जाठरं पर्युपास्य च ।
पीत्वा धूम घृतं चैव शुचिर्भूत्वा ततो वदेत् ॥२१३
मन्द्रेणोपक्रमेत्पूर्वं सर्वशाखा स्वय विधिः ।
सप्तमन्त्रानतिक्रम्य यथेष्टां वाचमुत्सृजेत् ॥२१४
न ता समीरयेद्वाच न प्राणमुपरोधयेत् ।
प्राणानामुपरोधेन वैस्वर्यं चोपजायते ॥२१५
स्वर व्यजन माधुर्यं लुप्यते नात्र सशय. ।
कुतीर्थादागत दग्धमपवर्णैश्च भक्षितम् ॥२१६

इनसे इसका करना सौम्य होता है और माधुर्य उपजात हुआ करता है । प्राचीनोदवर्ति के समान वर्ण सम्यक् करता है ॥ २११ ॥ शिष्य का सदा लवणाढ्य के साथ त्रिफला का भक्षण करना चाहिये । यह अग्नि मेधा की जननी होती है तथा स्वर और वर्ण की भी करने वाली है ॥२१२॥ आवश्यक कर्मों को करके और जठर का पर्युपासन करके धूम और घृत का पान करके परम शुचि होकर इसके उपरान्त मे बोलना चाहिये ॥२१३॥ सर्व प्रथम मन्द स्वर से आरम्भ करना चाहिये सब शाखाओ मे यही विधि है । सात मन्त्रा का अतिक्रमण फिर यथेष्ट वाणी का उत्सर्ग करना चाहिये ।२१४। उस वाणी का समीरण नही करे और पुण्य का उपरोध भी नही करना चाहिये । क्योंकि पुण्यों के उपरोध करने से विस्वरता समुत्पन्न होजाया करती है ।२१५। यहाँ पर स्वरों का और व्यञ्जनो का माधुर्य सर्वथा लुप्त हो जाया करता है, इसमे तनिक भी सशय नहीं है । कुतीर्थ से आगत, दग्ध और अपवर्णो के द्वारा भक्षित होना है ।२१६।

न तस्य परिमोक्षोऽस्ति पापाहेरिव किल्विषात् ।
सुतीर्थादागत जग्धु स्वम्नात सु प्रतिष्ठितम् ॥२०७

मुस्वरेण स्ववक्त्रेण प्रयुक्तं ब्रह्म राजति ।
न करालो न लम्बोष्ठो न च सर्वानुनासिकः ॥२१८
गद्गदो बद्धजिह्वश्च प्रयोगान्वक्तुमर्हति ।
एकचित्तोनिरुद्धान्तः स्नातो गानविवर्जितः ॥२१९
स तु वर्णान् प्रयुञ्जीत दन्तोष्ठं यस्य शोभनम् ।
पदविद्या न गृह्णन्ति चण्डास्तब्धाश्च ये नराः ॥२२०
अनभ्यासाश्च मदाराश्च येषां च विकृतं मनः ।
शनैर्विद्या शनैरर्थानारोहेत्पर्वतं शनैः ॥२२१
शनैरध्वसु वर्तेत योजनान्न परं व्रजेत् ।
योजनानां सहस्रं तु शनैर्याति पिपीलिका ॥२२२
अगच्छन्वैनतेयोऽपि पदमेकं न गच्छति ।
न हि पापहता वाणी प्रयोगान् वक्तुमर्हति ॥२२३

उसका विनियोग न पाठादि के ही समान परिमाण नहीं होता है। सुग्रीव न आचार स्वस्थान और गुरुनिहित का आदर करे।२१७। सुन्दर स्वर से युक्त अपने मुख से प्रयुक्त किया ब्रह्म (वेद) शोभित एवं दीप्त हुआ करता है। कराल लम्बे ओठों से युक्त और सर्वानु- नासिक वाला नहीं होना चाहिए। गद्गद और बद्ध जिह्वा वाला प्रयोगों का करने के योग्य होता है। एक में चित्त के लगाने वाला ... स्नान किया हुआ और गान से विवर्जित होकर ... ।२१८-२१९। वर्णों का प्रयोग उसी को करना चाहिए जिसके दाँत और होठ शोभन हों। ... पद विद्या का ग्रहण नहीं किया करते हैं जो मद ... हैं ... अभ्यासी और ... के ... विकृत मन ... होता है। विद्या ... और अर्थों का भी ... के ही समान ... करे।२२०-२२१। मार्गों में ... गमन करना चाहिए और योजन से अधिक गमन नहीं करना चाहिए। ... पिपीलिका (चींटी) धीरे धीरे ... ।

तक गमन कर जाया करती है ॥२२२॥ न गमन करने वाला गरुड एक कदम भी नहीं जा सकता है चाहे उसकी गमन शक्ति कितनी ही बड़ी है। पाद से हत हुई वाणी प्रयोगों को बोलने में योग्य नहीं हुआ करती है ॥२२३॥

बधिरस्येव जल्पस्य विदग्धा वामलोचना।
उपांशुचरितं चैव शोभते विलसन्निव ॥२२४
अविप्लव सहस्रेषु सदेहेष्वेव वर्तते।
पुस्तक प्रत्ययाधीतं नाधीतं गुरुसन्निधौ ॥२२५
राजतेन सभामध्ये जारगर्भेव कामिनी।
अञ्जनस्य क्षयं दृष्ट्वा वल्मीकस्य तु सञ्चयम् ॥२२६
अवन्ध्यं दिवसं कुर्याद्दानाध्ययन कर्मसु।
यत् कीट पांशुभिलेश्यो वल्मीकः क्रियते महान् ॥२२७
न तत्र बलसामार्थ्यमुद्योगस्तत्र कारणम्।
सहस्रगुणिता विद्या शतशः परिकीर्तिता ॥२२८
आगमिष्यति जिह्वाग्रे स्थलान्निम्नामिवोदकम्।
ह्यानामिव जात्याना अर्द्धं रात्रार्द्ध शायिनाम् ॥२२९
न हि विद्यार्थिना निद्रा चिरं नेत्रेषु तिष्ठति।
न भोजनविलासी स्यान्न च नारीनिषेवणं ॥२३०

बधिर के तन्य की बाम भावना की भाँति ही विदग्धा होती है। जो विप्लव रूप मे धन के समान ही उपांशु चरित का अध्ययन किया करता है वह अविप्लव सहस्रो में स देहो म ही रहा करता है। पुस्तक के प्रत्यय द्वारा जो अध्ययन किया है तथा किसी सुयोग्य गुरु के समीप मे उपस्थित रहकर अध्ययन नहीं किया है वह पुरुष कभी भी विद्वानों की सभा के मध्य मे जारपुरुष से गर्भ के धारण करने वाली कामिनी के समान ही शोभा प्राप्त नहीं किया करता है। अञ्जन का क्षय और वल्मीक का सञ्चय देखकर अपने सम्पूर्ण दिवस को दान

यद्यपि मेधा से गुणों के द्वारा भी सुश्रूषा के बिना भी विद्या प्राप्त हो जाया करती है किन्तु उस विद्या की कोई सफलता नहीं हुआ करती है। जिस प्रकार से यौवन वाली कामिनी वन्ध्या होने के कारण सफल नहीं होती है। यह इतना शिक्षा ग्रन्थ है जो मैंने आपको बतलाया है यह केवल दिक् मात्र ही है अर्थात् परमाधिक सूक्ष्म स्वरूप में ही समुद्दिष्ट किया है। इस आद्य वेदों के अङ्ग शास्त्र का ज्ञान प्राप्त करके मनुष्य ब्रह्म के ही समान हो जाया करता है।२३३—२३७।



कल्पवर्णन में गणेश पूजा, ग्रहशांति तथा श्राद्ध निरूपण

अथात सम्प्रवक्ष्यामि कल्पग्रन्थ मुनीश्वर।
यस्य विज्ञान मात्रेण स्यात् कर्म कुशलो नर ॥१
नक्षत्र कल्पो वेदाना सहिताना तथैव च।
चतुर्थ स्यादगिरस शाति कल्पश्च पञ्चम ॥२
नक्षत्राधीश्वराख्यात विस्तरेण यथातथम्।
नक्षत्र कल्पे निर्दिष्टे ज्ञातव्य तदिहापि च ॥३
वेदकल्पे विधान तु ऋगादीना मुनीश्वर।
धर्मार्थ काम मोक्षाणा सिद्धयै प्रोक्त सविस्तरम् ॥४
मन्त्राणामृषयश्चैव छन्दास्यथ च देवता।
निर्दिष्टा सहिताकल्पे मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभि ॥५
तथैवागिरसे कल्पे षट्कर्माणि सविस्तरम्।
अभिचार विधानेन निर्दिष्टानि स्वयभुवा ॥६
शाति कल्पे तु दिव्याना भौमाना मुनिसत्तम।

तयातोरिक्षोत्पातानां शांतयो ह्युदिताः पृथक् ॥७

इसके अनन्तर इसीलिये हे मुनीश्वर ! मैं अब कल्प ग्रन्थ का वर्णन करूँगा जिसके विज्ञान मात्र से ही मनुष्य कल्प-कुशल होजाया करता है ॥१॥ वेदों का और उसी भाँति संहिताओं का नक्षत्र कल्प होता है। चतुर्थ आङ्गिरस कल्प होता है और पाँचवा शांति कल्प हुआ करता है। २॥ नक्षत्रों के अधीश्वर विस्तार के साथ ठीक ठीक बतला दिये हैं। नक्षत्र कल्प में जो निर्दिष्ट किया गया है वह यहाँ पर भी जान लेना चाहिए ॥ ३ ॥ हे मुनीश्वर ! वेद कल्प में ऋक् आदि का विधान है जो कि धर्म अर्थ काम और मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों की सिद्धि के लिए विस्तार के साथ कहा गया है ॥४॥ तत्वों के पूर्णज्ञाता मुनियों के द्वारा संहिता कल्प में समस्त मन्त्रों के ऋषिगण, छन्द और देवताओं का निर्देश किया गया है ॥ ५ ॥ उसी प्रकार से आङ्गिरस कल्प में भगवान् स्वयम्भूदेव ने अभिचार के विधान से षट्कर्मों में मारण, मोहन वशीकरण उच्चाटन स्तम्भन और आकर्षण ये आते हैं ॥६॥ हे मुनि श्रेष्ठ ! शान्ति कल्प में दिव्य भौम और अन्तरिक्ष में होने वाले उत्पातों की शान्तियाँ पृथक् २ बतलाई गयी हैं। अर्थात् त्रिलोक में—पृथिवी में और आकाश में जो भी कोई उत्पात होते हैं उनकी अलग २ शान्ति करने का विधान बतलाया गया है ॥७॥

गणेशेनैतदुद्दिष्टं सम्यक् मन्त्रलक्षणे ।
विशेषः पृथगेतेषां स्थितः शाखान्तरेषु च ॥८
गृह्यकल्पे सर्वेषामुपयोगितयाऽधुना ।
वक्ष्यामि ते द्विजश्रेष्ठ सावधानतया शृणु ॥६
ॐकारश्चाथ शब्दश्च द्वावेतौ ब्राह्मण पुरा ।
कण्ठभित्त्वा विनिर्यातौ तस्मान्मांगल्यकाविमौ ॥१०
भूत्वा प्रोक्तानि कर्माणि तद्दूर्दानि करोति यः ।
सोऽथ शब्द प्रयुञ्जीत तदानन्त्यार्थमिष्यते ॥११

कुशाः परिसमूहाय सप्त शाखा प्रकीर्तिता ।
न्यूनाधिका निष्फलाय कर्मणोभिमतस्य च ॥१२
कृमिकीट पतगाद्या भ्रमति वसुधातन्न ।
तेषा सरक्षणार्थाय प्रोक्त परिसमूहनम् ॥१३
रेखा प्रोक्ताश्च यास्तिस्र कर्तव्यास्ता समा द्विज ।
न्यूनाधिका न कर्तव्या इत्येव परिभाषितम् ॥१४

यहाँ पर कल्पो के लक्षण मे अति सक्षेप से लक्षण को उद्दिष्ट कर दिया गया है। इनका विशेष रूप से वर्णन अन्य शाखाओ मे पृथक् स्थित है ॥८॥ हे द्विज श्रेष्ठ ! गृह्य कल्प मे तो सभी की उपयोगिता होने के कारण से मैं इस समय मे बतलाऊँगा। आप बहुत सावधान होकर उसका श्रवण कीजिए ॥ ९ ॥ ऊँकार और शब्द ये दोनो पूर्व काल मे ब्रह्मा के कण्ठ का भेदन करके निकले थे। इस कारण से ये दोनो परम माङ्गलिक होते है ॥१०॥ जो मानव इनको बोलकर उसके पश्चात् कर्मों की क्रिया करता है उसको अर्थ—इस शब्द का प्रयोग करना चाहिए वह अनन्त अर्थ के लिये अभीष्ट हुआ करता है ॥११॥ *कुशा परिसमूहन के लिये होती है और उनकी सात शाखाऐ कीर्तित की गयी है।* इनसे न्यून तथा अधिक जो कुशाऐ होती है वे अभिमत कर्म के लिये निष्फल होती है। अर्थात् ज्यादा या कम होने पर कर्म फलहीन हो जाया करता है॥ १२ ॥ इस पृथ्वी तल पर अनेक कृमि-कीट और पतङ्ग आदि भ्रमण किया किया करते हैं उन सब के सरक्षण के ही लिये परिसमूहन बताया गया है ॥१३॥ हे द्विज ! जो ये तीन रेखाऐ बतलाई गयी हैं उन तीनो को भी न्यून अथवा अधिक अर्थात् असमान कभी नही करना चाहिए—यह ही इनकी परिभाषा बताई गयी है ॥१४॥

मेदिनी मेदसा व्याप्ता मधुकैटभ दैत्ययो ।
सामवेनोपनिष्पन्न तदर्थमिति नारद ॥१५

वध्या दुष्टा च दीनाङ्गी मृतवत्सा च या भवेत् ।
यज्ञार्थे गोमय तस्या नाहरेदिति भावितम् ॥१६
ये भ्रमति सदाकाशे पतगाद्या भयकरा ।
तस्या प्रहरणार्थाय मत प्रोद्धरण द्विज ॥१७
श्रु वेण च कुशेनापि कुर्यादुल्लेखन भुव ।
अस्थि कटक सिद्धयर्थं ब्रह्मणा परिभाषितम् ॥१८
आपो देवगणा सर्वे तथा पितृगणा द्विज ।
तेनाद्भि भिरुक्षण प्रोक्त मुनिभिर्विधि यावित ॥१६
अग्नेरानयन प्रोक्त सौभाग्य स्त्रीभिरेव च ।
शुभदे मृण्मये पात्रे प्रोक्ष्याद् भिस्त निधापयेत ॥२०
अमृतस्य क्षय दृष्ट्वा ब्रह्माद्यं सर्वे देवतं ।
वेद्या निधा पितस्तस्मात्समिद् गर्भो हुताशन ॥२१

यह सम्पूर्ण मेदिनी मधु और कैटभ इन दोनों दैत्यों के मेद से व्याप्त हो रही है । हे नारद ! इसीलिये इस भूमि को गाय के गोवर से लीप लेनी चाहिए ॥१५॥ वध्या (बाँझ) दुष्टा दीनाङ्गी और जो मृतवत्सा अर्थात् बाँझ न होकर बच्चे तो उत्पन्न होवें किन्तु सब मृत जिसके हो जाते हैं । ऐसी जो कोई गौ होवे उसका गोवर भूलकर भी यज्ञ कर्म करने के लिए नहीं ग्रहण करना चाहिए—ऐसा विचार किया गया है ॥१६॥ हे द्विज ! जो महान् भयङ्कर पतङ्ग आदि सदा आकाश में भ्रमण किया करते हैं उनके प्रहरण के लिये ही प्रोद्धरण माना गया है ।१७। स्रुव के द्वारा और कुशा के द्वारा भी भूमि का उल्लेखन करे । ब्रह्माजी ने अस्थि कण्टकों की सिद्धि के लिये कहा है ॥१८॥ हे द्विज ! विधि विधान के महान् पण्डित मुनिगणों ने इसी कारण से जल के द्वारा उक्षण बतलाया है क्योंकि समस्त जल देवगण तथा पितृगण के ही समान माने गये हैं ॥ १६ ॥ सौभाग्यवती स्त्रियों के द्वारा अग्नि का आनयन अर्थात् घरों पर लाना बतलाया गया है और वह भी किसी परम

शुभ मृण्मय (मिट्टी से बने हुए) पात्र में लाना चाहिए तथा जलों से प्रोक्षण करके उसको वहाँ पर निधापित करना चाहिए ॥ २० ॥ ब्रह्मा आदि समस्त देवों ने अमृत का क्षय देखकर समिधाओं के गर्भ वाले अग्नि को इसी कारण से वेदी में निधापित किया है ॥२१॥

दक्षिणस्या दानवाद्या स्थिता यज्ञस्य नारद ।
तेभ्य संरक्षणार्थाय ब्रह्माण तद्दिशिन्यसेत् ॥२२
उत्तरे सर्वपात्राणि प्रणीताद्यानि पश्चिमे ।
यजमान पूर्वत स्युर्द्विजा सर्वेपि नारद ॥२३
द्यूते च व्यवहारे च यज्ञकर्मणि चेद्भवेत् ।
कार्तोदासीन चित्तस्तत्कर्म नश्येदिति स्थिति ॥२४
ब्रह्माचार्यौ स्वशाखौ हि कर्तव्यौ यज्ञकर्मणि ।
ऋत्विजा नियमो नास्ति यथालाभ समर्चयेत् ॥२५
द्वे पवित्र ह्यगुलेस्त प्रोक्षिणी चतुरगुला ।
आज्यस्थाली त्र्यगुलाथ चरुस्थाली षडगुला ॥२६
द्व्यगुल तूपयममेक समार्जनागुलम् ।
स्रुव षडगुल प्रोक्त स्रुचि सार्द्ध त्रयागुलम् ॥२७
प्रादेशमात्रा समिध पूर्णपात्र षडगुलम् ।
प्रोक्षिण्या उत्तरे भागे प्रणीतामग्रतोभि ॥२८

हे नारद ! दक्षिण दिशा में यज्ञ के दानव आदि स्थित रहा करते हैं अतएव उन से संरक्षण प्राप्त करने के लिये ही उसी दिशा मे ब्रह्माजी का न्यास करना चाहिए ॥२२॥ उत्तर दिशा में प्रणीता आदि सब पात्रों का न्यास करे और पश्चिम मे हे नारद ! यजमान को समवस्थित होना चाहिए तथा पूर्व में सब द्विजगण स्थित रहने चाहिये । ॥२३॥ यदि द्यूत क्रीडा मे—व्यवहार में और यज्ञ कर्म में आर्त एवं उदासीन चित्त वाला होकर स्थित रहता है तो वह कर्म ही नष्ट हो जाया करता है—ऐसी स्थिति होती है ॥२४॥ यज्ञ कर्म में जो ब्रह्मा

और आचार्य हो उनको अपनी शाखा वाला ही करना चाहिये। रहे ऋत्विजगण उन के विषय मे कोई भी विशेष नियम की व्यवस्था नही बनाई गयी है। अतएव उनका समर्चन यथा लाभ ही करना चाहिए।२५। दो पवित्रियाँ दो अङ्गुलियो के प्रमाण वाली होनी चाहिए। और जो प्रोक्षणी हो वह चार अगुलियो के प्रमाण वाली होनी चाहिए। जो आज्य स्थाली हो वहाँ तीन अङ्गुलियों के प्रमाण होवे तथा चरु स्थाली छै अङ्गुलियो के प्रमाण से युक्त स युक्त होनी चाहिए।२६। वहाँ पर एक उपयम दो अङ्गुलियो के प्रमाण वाला हो व जो समाजतागुल हो। मुव षडङ्गुल बताया गया है।२७। समस्त समिधायें प्रादेश मात्र होनी चाहिये तथा जो पूर्ण पात्र हो वह छै अगुल प्रमाण वाला होना चाहिये। प्रोक्षिणी के उत्तर भाग में प्रणीता होनी चाहिए जो आठ अङ्गुलियो के प्रमाण वाली होवे।२८।

यानि कानि च तीर्थानि समुद्रा सरिस्तथा।
प्रणीतायां समागन्तास्तस्मात्तां पूरयेज्जलैः ॥२९
वेदिका वस्त्रहीना च नाम्ना सम्प्रोच्यते द्विज।
परिस्तीर्य ततो दर्भैः परिध्यादिमां बुध ॥३०
इ द्रवज्र विष्णुचक्र वामदेव त्रिशूलकम्।
दर्भरूपतया त्रीणि पवित्रच्छेदनानि च ॥३१
प्रोक्षणी च प्रवर्तव्या प्रणीतोदक सयुता।
तेनाति पुण्यद कर्म पवित्रमिति कीर्तितम् ॥३२
आज्यस्थाली प्रवर्तव्या पलमात्र प्रमाणिका।
कुलाल चक्रघटित आसुर मृण्मय स्मृतम् ॥३३
तदेव हस्तघटित स्थाल्यादि देविक भवन्।
ध्रुवे च सर्व कर्माणि शुभान्यप्यशुभानि च ॥३४
तस्य नैव पवित्रार्थ वह्नौ तापनमीरितम्।
अग्रे घृतेन वैधस्य मध्ये नैव प्रकाशन ॥ ३

जितने जो भी कोई तीर्थ हैं व मसमुद्र और सरितायें हैं वे सभी

प्रणीता पात्र में समासन्न होते हैं इसी कारण से उस प्रणीता पात्र को जलों से पूरित कर देना चाहिए ॥२६॥ हे द्विज ! जो वेदिका होती है वह वस्त्रों से हीन ही रहा करती है अतएव नग्न कही जाती है। अतएव बुध पुरुष को चाहिए कि दर्भों से परिस्तीर्ण करके इसका समाच्छादन कर देवे ॥३०॥ वहाँ पर पवित्रछेदन करने वाले इन्द्रवज्र-विष्णुचक्र वामदेव का त्रिशूल इन तीनों को दर्भों के ही रूप से स्थित कर देवे ॥३१॥ जो प्रोक्षणी हो उसको प्राणीतोदक से समन्वित कर देना चाहिये। उससे अत्यधिक पुण्य प्रदान करने वाला एवं पवित्र कर्म होता है—ऐसा ही कहा गया है ॥३२॥ जो आज्य (घृत) की स्थाली हो उसको ऐसा ही बनाना चाहिए जो पल मात्र के प्रमाण वाली होवे। कुलाल (कुम्हार) के चाक के द्वारा जो मृण्मय (मिट्टी की बनी हुई) होती है उसको आसुर बताया गया है ॥३३॥ वह ही हाथ से विरचित स्थाली आदि होती है उसको दैविक कहा जाता है और जो स्रुव होता है उसमें सभी शुभ और अशुभ कर्म हुआ करते हैं।३४। और उसको पवित्र बनाने के लिये उसका अग्नि में तपाना बतलाया है। उसको *यदि आगे धृत किया जावे तो वैधव्य होता है और मध्य भाग में ग्रहण* करके रक्खा जावे तो प्रजा का क्षय हुआ करता है।३५।

मूले च म्रियते होता तस्माद्धार्यं विचार्य तत् ।
अग्नि सूर्यश्च सोमश्च विरंचिरनिलो यम ॥३६
स्रुवे षडेते देवास्तु प्रत्यगुसमुपाश्रिता ।
अग्निर्भोगार्थ नाशाय सूर्यो व्याधिकरो भवेत् ॥३७
निष्फलस्तु स्मृत सोमो विरिंचि सर्व कामद ।
अनिलो वृद्धिद प्रोक्तो यमो मृत्युप्रदो मत ॥३८
सामार्जनोपयमन कर्तव्य च कुशद्वयम् ।
पूर्वं तु सर्वशाय स्यात्पचशाख तथा परम् ॥३९
श्रीपर्णी च शमी तद्वद्खदिरश्च विकंकित ।

पलाशश्चैव विज्ञेया स्रुवे चैव तथा स्रुचि ॥४०
हस्तोन्मितं स्रुवं शस्ते त्रिदशाङ्गुलिकं स्रुचम् ।
विप्राणां चैतदाख्यातं ह्यन्येषामङ्गुलोनकम् ॥४१
शूद्राणां पतितानां च खरादीनां च नारद ।
दृष्टिदोषविनाशार्थं पात्राणां प्रोक्षणं स्मृतम् ॥४२

और मूल मे उसको ग्रहण किया जावे तो जो होता है उसकी ही मृत्यु हो जाया करती है । अतएव इसके ग्रहण करने के विषय मे भली भाँति विचार करके ही इसको धारण करना चाहिये । अग्नि, सूर्य, सोम, विरञ्चि, अनिल, यम ये छैं देवता स्रुव मे प्रत्येक अङ्गुलि मे उपास्थित हुआ करते हैं । जो अग्नि देवता होता है वह भोगार्थ के विनाश करने के लिये हुआ करता है और सूर्यदेव होते हैं वे व्याधियो के करने वाले हुआ करते हैं ।। ३६ ३७ ।। सोमदेव की जो वहाँ पर स्थिति होती है वह निष्फल अर्थात् बिना किसी फल वाली हुआ करती है ऐसा ही बताया गया है । विरञ्चि की वहाँ पर स्थिति सम्पूर्ण कामनाओ से पूर्ण करने वाली हुआ करती है । अनिल देवता वृद्धि के प्रदान करने वाले और यम मृत्यु का दाता हुआ करता है।३८। दो कुशाओ के द्वारा समार्जन एवं उपयमान करना चाहिए। पूर्व अर्थात् समार्जन तो सब शाखाओ से युक्त कुशा मे करे तथा दूसरा कर्म पाँच शाखाओ से युक्त दर्भ से करना चाहिए ।। ३६ ।। स्रुव और स्रुक के निर्माण कराने के लिये किन-किन वृक्षो की लकडी होनी चाहिये, यह बतलाते हुए कहते हैं श्रीपर्णी, शमी, खदिर, विकंकित और पलाश ये ही वृक्ष जानने चाहिए ।४०। एक हाथ प्रमाण वाला स्रुव प्रशस्त माना जाया करता है तथा तेरह अंगुल प्रमाण वाला स्रुक् अच्छा बताया गया है । यह इन दोनो का प्रमाण जो परमश्रेष्ठ एवं प्रशस्त बतलाया गया है वह केवल विप्रो के ही लिये कहा गया है । विप्रेतर वर्णों के ही लिये जो अन्य होते हैं उनके ये दोनो ही एक अंगुल न्यून हुआ

करते हैं ।४१। हे नारद ! शूद्र, पतित और जो खर आदि हैं उनकी दृष्टि दोषों के विनाश करने के लिये ही पात्रों का प्रोक्षण कहा गया है ।४२।

अकृते पूर्णपात्रे तु यज्ञच्छिद्र समुद्भवेत् ।
तस्मिन् पूर्णीकृते विप्र यज्ञसपूर्णता भवेत् । ४३
अष्टमुष्टिर्भवेत् किंचित् पुष्कल तच्चतुष्टयम् ।
पुष्कलानि तु चत्वारि पूर्णपात्र विदुर्बुध ॥४४
होम काले तु सप्राप्ते न दद्यादासन क्वचित् ।
दत्ते तृप्तो भवेत् वह्नि शाप दद्याच्च दारुणम् ॥४५
आधारौ नासिके प्रोक्तौ आज्यभागौ च चक्षुषी ।
प्राजापत्य मुख प्रोक्त करिर्व्याहृतिभि स्मृता ॥४६
शीर्षहस्तौ च पादौ च पचवारुणमीरितम् ।
तथा स्विष्टकृता विप्र श्रोत्रे पूर्णाहुतिस्तथा ॥४७
द्विमुख चैकहृदय चतु श्रोत्र द्विनासिकम् ।
द्विशीर्षक च षण्नेत्र पिंगल सप्तजिह्वकम् ॥४८
सव्यभागे त्रिहस्त च चतुर्हस्तञ्च दक्षिणे ।
श्रु कुश्रुवौ चाक्षमालाच या शक्तिदक्षिणे करे ॥४९

पूर्ण पात्र के न करने पर यज्ञच्छिद्र की समुत्पत्ति हो जाया करती है और उसके पूर्ण किये जाने पर हे विप्र ! यज्ञ की परिपूर्णता हो जाया करती है ॥ ४३ ॥ कुछ आठ मुट्ठियों वाला होता है । वह चतुष्टय पुष्कल होता है । चार पुष्कल हैं । बुध गण उसको पूर्ण पात्र जाना करते हैं ।४४। होम करने के समय के प्राप्त होने पर कहीं पर भी आसन नहीं देना चाहिए । आसन के देने पर वह्नि तृप्त हो जाता है और दारुण शाप भी दे देता है ।४५। दोनों आधार दो नासिकायें बतायी गयी हैं और दोनों आज्य भाग दो चक्षु हैं । प्राजापत्य मुख कहा गया है तथा व्याहृतियों के द्वारा कटि बतलायी गयी है ।४६। शीर्ष

दोनो हाथ और दोनो चरण पञ्च वारुणक कहा गया है। हे विप्र ! उसी प्रकार से स्विष्टकृत है तथा दोनो श्रोत्र पूर्णाहुति होती है।४७। दो मुख, एक हृदय, चार श्रोत्र, दो नासिकाऐं, दो शीर्षक, छै पिङ्गल नेत्र और सात जिह्वाऐं हैं।४८। सव्य (बाँये) भाग मे तीन हाथ और दक्षिण भाग मे चार हाथ हैं। स्रुक् स्रुव और जो अक्षमाला शक्ति है वह दक्षिण कर मे होती है।४९।

त्रिमेखल त्रिपाद च घृतपात्र द्विचामरम् ।
मेषारूढ चतु शृ ग बालादित्य समप्रभम् ।।५०
उपवीत समायुक्त जटाकु डल मडितम् ।
ज्ञात्वैवमग्निदेह तु होम कर्म समाचरेत् ।।५१
पयो दधि घृत चैव स्नेह पक्व तथैव च ।
जुहुयाद्यस्तु हस्तेन स विप्रो ब्रह्महा भवेत् ।।५२
यदन्न पुरुषोऽश्नाति तदन्न तस्य देवता ।
सर्वकाम समृद्धयर्थं तिलाधिक्य हविर्मतम् ।।५३
होमे मुद्रात्रय प्रोक्त मृगी हसी च सूकरी ।
अभिचारे सूकरी स्यान्मृगी हसी शुभात्मके ।।५४
सर्वागुलीभि क्रोडीस्याद्ध सी मुक्त कनिष्ठिका ।
मध्यमानामिकागुष्ठैर्मृ गी मुद्रा प्रकीर्तिता ।।५५
पूर्व प्रमाणमाहुत्या पचागुलिगृहीतया ।
दधिमध्वाज्यसयुक्त ऋत्विग्भिर्जु हुयात्तिलै. ।।५६

तीन मेखलाओ से युक्त, त्रिपाद, घृतपात्र, मेष पर समारूढ, चार शृगों से युक्त तथा बाल सूर्य के समान प्रभा वाला है।५०। यह अग्निदेव का स्वरूप बतलाया गया है। अग्नि उपवीत से समायुक्त हैं तथा जटा और कुण्डलो से समलङ्कृत हैं। इस उपर्युक्त प्रकार से युक्त अग्निदेव के देह का ज्ञान प्राप्त करके पीछे होम के कर्म का समारम्भ करना चाहिये।५१। जो विप्र पय (दुग्ध) दधि, घृत और किसी भी

स्नेह के द्वारा परिपक्व पदार्थ को हाथ से ही हवन किया करता है वह ब्रह्महा अर्थात् ब्राह्मण की हत्या करने वाला हुआ करता है ॥ ५२ ॥ जिस भी किसी अन्न को पुरुष खाया करता है वह अन्न उसका देवता होता है। समस्त कामनाओ की समृद्धि के लिये तिलो की अधिकता वाला हवि माना गया है ।५३। होम के अवसर पर तीन मुद्राऐं बतलाई गयी हैं वे तीन मृगी, हसी और सूकरी मुद्राऐं है। जो अभिचार के लिये कर्म किया जाता है अर्थात् अन्यो को सतप्त करने के कर्म मे सूकरी मुद्रा होती है और मृगी तथा हसी ये दो मुद्राऐं शुभात्मक कर्म मे की जाया करती हैं ॥५४॥ क्रोडी मुद्रा सभी अगुलियो के द्वारा की जाया करती है—हसी मुद्रा कनिष्ठिका अगुलि से रहित होती है तथा मृगी मुद्रा मध्यमा, अनामिका और अङ्गुष्ठ—इनके द्वारा प्रकीर्तित की गयी है ।५५। पाँचो अँगुलियो से गृहीत और पूर्व मे जो प्रमाण बताया गया है उस प्रमाण वाली आहुति के द्वारा दधि आज्य मे सयुत तिलो से ऋत्विजो को हवन करना चाहिए ।५६।

कुशास्त्वनामिकासक्ता कार्या स्यु पुण्यकर्मणि ॥५७
विनायक कर्मविघ्नसिद्ध्यर्थं विनियोजित ।
गणानामाधिपत्ये न रुद्रेण ब्रह्मणा तथा ॥५८
तेनोपसृष्टोपस्तस्य लक्षणानि निबोध मे ।
स्वप्नेव गाहेतेऽत्यर्थं जल मुडाश्च पश्यति ॥५६
काषाय वाससश्चैवक्रव्यादाश्चाधिरोहति ।
अत्यजैर्गर्दभैरुष्ट्रै सहैकत्रावतिष्ठते ॥६०
व्रजन्नपि तथात्मान मन्यतेऽनुगत परं ।
विमना विफलारम्भससीदत्य निमित्तत ॥६१
तेनोप सृष्टो लभते न राज्य राजनदन ।
कुमारी न च भर्तारमपत्य गर्भमगना ।
आचार्यत्व श्रोत्रियश्च न शिष्योध्ययन तथा ॥६२

वणिग्लाभं न चाप्नोति कृषिं चापि कृषी वलः ।
स्नपनं तस्य कर्तव्यं पुण्येऽह्नि विधिपूर्वकम् ।
गौरसर्षपकल्केन स्वस्ति वाच्या द्विजैः शुभा ॥६३

किसी भी पुण्य कर्म में कुशाओं को अनामिका अङ्गुलि में समासक्त रखनी चाहिए ।५७। भगवान् रुद्र तथा ब्रह्माजी के द्वारा गणों के आधिपत्य पद पर कर्मों के निर्विघ्नता पूर्वक सिद्धि के लिए विनायक (गणेशदेव) को विशेष रूप में नियोजित किया गया है ।५८। उनके द्वारा उपसृष्टोपस्त के लक्षणों को मुझसे आप लोग समझ लेवें । स्वप्न में बहुत ही अधिक जल का गाहन करे और मुण्डों का देखा करता है ।५९। काम के लिये वासमों का और क्रव्यादों का अधिरोहण किया करता है । अन्त्यज, गर्दभ और उष्ट्रों के साथ एक ही स्थान में अवस्थित हुआ करता है ।६०। गमन करता हुआ भी अपने आपको दूसरों के द्वारा अनुगत मानता है । उदास होकर विफल आरम्भों वाला बिना ही किसी निमित्त के दुःखित हुआ करता है ।६१। उनके द्वारा उपसृष्ट हो जाने वाला राजा का पुत्र भी क्यों न हो कभी भी राज्यासन की प्राप्ति नहीं कर सकता है । कुमारी कन्या उपसृष्टा होकर अपना भर्ता और अङ्गना गर्भ में सन्तति को प्राप्त नहीं किया करती है । श्रोत्रिय कभी आचार्यत्व के पद का लाभ तथा शिष्य अध्ययन का लाभ नहीं उठाता है ।६२। जो वैश्य व्यापार किया करता है वह अपने वाणिज्य व्यवसाय में लाभ प्राप्त नहीं किया करता है एवं किसान अपनी कृषि का लाभ प्राप्त नहीं करता है । अतएव किसी परम पुण्यमय दिवस में विधि-विधान के साथ उसका स्नपन करना चाहिए और द्विजों के द्वारा गौर सरसों के कल्क के द्वारा परम शुभ स्वस्ति का वाचन करना चाहिए ।६३।

अश्वस्थानाद् गजस्थानाद्वल्मीकात्सङ्गमाद्ध्रदात् ।
मृत्तिका रोचना गन्धान् गुग्गुलं चाप्सु निक्षिपेत् ॥६४

पाश्याह्ना ह्येवर्णश्चतुर्भि कलशैर्हृदात् ।
चर्मण्यानुडुहे रक्ते स्थाप्य भद्रासन तत ॥६५
सहस्राक्ष शतधार ऋषिभि पावन कृतम् ।
तेनत्वामभिषिचामि पाव मान्या पुनतु ते ॥६६
भग ते वरुणो राजा भग सूर्यो बृहस्पति ।
भर्गामिद्रश्च वायुश्च भग सप्तर्षयो ददु ॥६७
यत्ते केशेषु दौर्भाग्य सीमते यच्च मूर्द्ध नि ।
ललाटे कर्णयोरक्ष्णोरापस्तुदतु सर्वदा ॥६८
स्नानस्य सार्पप तैल स्रु वेणौदुवरेण तु ।
जुहुयान्मूर्द्ध नि कुशान्सव्येन परिगृह्य च ॥६९
मितश्च समितश्चैव तथा शाल कटकटो ।
कूष्माडो राजपुत्रश्चेत्यते स्वाहासमन्विते ॥७०
नामभिर्बलिमन्त्रैश्च नमस्कारसमन्वितै ॥७१

जहाँ अश्वो के ठहरने का स्थान हो वहा से—गजो के ठहर ने के स्थान से-सर्पों के रहने की बाँबी से जहाँ कई मार्गों का सङ्गम स्थल हो वहाँ से ह्रद से मृत्तिका का ग्रहण करे । उस मृत्तिका को रोचना गध, गुग्गुलु इनका बहुत शीघ्र निक्षिप्त करना चाहिए ॥६४॥ पाश्री के द्वारा आहूत करे और ह्रद से एक वर्ण वाले चार कलशो स लावे तथा वृषभ के रक्त चम मे इसके पश्चात् भद्रासन को स्थापित करना चाहिए ।६५। सहस्राक्ष शतधार को ऋषियो के द्वारा पावन किया गया है । उस से आपका अभिषिञ्चन करता हूँ । वे पावमान्य पवित्र करें ॥६६॥ राजा वरुण तुम्हारे भगको देन वाल हैं । सूय और बृहस्पति ने तुमको भग दिया है । इ द्र और वायु ने तथा सप्तर्षियो ने आपका भग दिया है । ।६७। जो तुम्हारे केशो मे दौभार्ग्य विद्यमान है और सी म त में तथा मूर्द्धा में दौर्भाग्य है । ललाट में-दोना कानो मे तथा दोना नेत्रो में जो दौर्भाग्य स्थित है उसको सवदा ये जल विनष्ट कर देवें ।६८। स्नान

करने का जो सार्षप अर्थात् सरसों का तैल है उसको गूलर की लकड़ी से निर्मित स्रुव के द्वारा बाँय हाथ से कुशाओं को ग्रहण करके मूर्द्धा से आहुतियाँ देकर हवन करे ।६९। मित-समित तथा शाल और कटंकट-कूष्माण्ड और राजपुत्र ये जिनके अन्त में हों स्वाहा शब्द से संयुत एवम् नमस्कार अर्थात् "नमः" इस पद से युक्त नामों से और बलि के देने वाले मन्त्रों से चतुष्पथ में सूर्य को गन्ध और दर्भों का आस्तरण करके देना चाहिए ।७०।७१।

दद्याच्चतुष्पथे सूर्यं कुशानास्तीर्य सर्वतः ॥७२
मूलकं पूरिकापूपास्तथैवोण्डरकोऽपि च ।
दध्यन्नं पायसं चैव गुडपिष्टं समोदकम् ।
एतान्सर्वानुपाहृत्य भूमौ कृत्वा ततः शिरः ॥७३
विनायकस्य जननीमुमापतिमथार्चयेत् ॥७४
धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैर्गन्धमाल्यानुलेपनैः ।
ब्राह्मणान् भोजयेत् पश्चात् वस्त्रयुग्मं गुरोरपि ॥७५
एवं विनायकस्य पूज्य ग्रहांश्चैव प्रपूजयेत् ।
श्रीरामः शान्तिकामो वा पुष्टिवृष्ट्यायु वीर्यवान् ॥७६
सूर्यं सोमो महीपुत्रो बुधो जीवो भृगु शनिः ।
राहुकेतू न चाग्नेयौ स्थापनीया ग्रहाः क्रमात् ॥७७

भाँति-भाँति के नैवेद्य पूरी, मालपुए (पूरी-पूए) उसी प्रकार से उण्डरक दधि, अन्न, पायस, गुडपिष्ट, समोदक इन सबको उपाहृत करके इसके अनन्तर भूमि का शिर करे ॥७२।७३।७४॥ फिर विनायक प्रभु की जननी तथा उमापति का अभ्यर्चन करना चाहिए और धूप, दीप, नैवेद्य, गन्ध, माला और अनुलेपनों के द्वारा यजन करे। इसके उपरान्त ब्राह्मणों को भोजन करावे तथा अपने गुरुदेव का भी भोजन कराके दो वस्त्र उनको समर्पित करना चाहिए ।७५। इस प्रकार से विनायक देव का पूजन करके अन्य समस्त ग्रहों का भी यथा विधि पूजन करे। जो

पुरुष श्री की कामना रखने वाला हो अथवा पुष्टि-वृष्टि और सुवीर्य प्राप्त करने का मनोरथ वाला हो उसको विनायक की पूजा के साथ २ अन्य ग्रहों का भी यजन करना चाहिए।७६। प्रधान नौ ग्रह होते हैं उनके नाम निम्न प्रकार से हैं-सूर्य, सोम (चन्द्र) महीसुत (मङ्गल), बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु, केतु—ये नौ ग्रह होते हैं। इन नौ ग्रहों की क्रम से जो कि बताया जा रहा है स्थापना करनी चाहिये ।७७।

ताम्रकाद्रजताद्रक्त चन्दनात् स्वर्णकादपि ।
हेम्नो रजतादयस सीसात्कार्या शुभाप्तये ।।७८
स्ववर्णैर्वा पटे लेख्या गंधैर्मंडलकेषु च ।
यथावर्णं प्रदेयानि वासांसि कुसुमानि च ।।७६
गंधाश्च बलयश्चैव धूपो देयश्च गुग्गुल. ।
कर्तव्या मन्त्रवतश्च चरव प्रतिदैवतम् ।।८०
आकृष्णेन इमं देवा अग्निमूर्द्धादिव ककुत.।
उद्बुध्यस्वाति मदर्यस्तथैवान्नात् परिस्तुत ।।८१
शन्नोदेवीस्तथा काण्डात्केतुं कृण्वन्नकेतव. ।
अर्क: पलाश खदिरस्त्वपामार्गोऽथ पिप्पल. ।।८२
उदुंबर शमी दूर्वा कुशाश्च समिध क्रमात् ।
एकैकस्मादष्ट शतमष्टा विंशति रेव च ।।८३

उन ग्रहों की रचना शुभ फल प्राप्ति के लिए ताम्र, रजत चाँदी), रक्त चन्दन से तथा हेम, चाँदी, लोह, सीसा इन धातुओं से करनी चाहिए ।७८। अथवा अपने वर्णों से इन ग्रहों का वस्त्र पर खन करना चाहिए और गन्धों के द्वारा मण्डल को पर लिख लेना ाहिए। जैसा भी जिस ग्रह का वर्ण बताया गया है उसी वर्ण के नुसार उनको वस्त्र तथा कुसुम भी समर्पित करने चाहिए ।७६। ·ध, बलि, धूप गुग्गुल की देवे और मन्त्र के द्वारा प्रत्येक देवत के ए चरु भी करना चाहिए ।८०। ग्रहों के मंत्रों की प्रतीक देकर

समझाते हुए निम्न रीति से सक्षेप मे समझाया जाता है । आकृष्णेन इमदेवा—अग्नि मूर्धादिव ककुन–उद्‌ध्यस्वाति, मदर्य तथा अया.परि बन –शन्नो देवी काण्डात्केतु—कुण्वन्न केतव । ये इस प्रकार से ग्रहो की प्रतीक दी गई है । आक पलाश (ढाक), खदिर अपामार्ग (ओधा) पीपल गूलर शमी दूर्वा (दूब), और कुशा ये नौ ग्रहो के लिए नौ प्रकार की क्रम से ही समिधायें बतायी गयी हैं । इन समिधाओ मे से एक २ से एक सौ आठ और कम से कम अट्ठाईस ग्रहण करनी चाहिए ।८१–८३।

होतव्या मधु सर्पिर्भ्या दध्ना क्षीरेण वा पुन ।
गुडौदन पायस च हविष्य क्षीरयाष्टिकम् ॥८४
दध्योदन हविश्चूर्ण माष चित्रान्नमेव च ।
दद्यात् ग्रह क्रमात् द्विजेभ्यो भोजन बुध ॥८५
शक्तितोपि यथा लाभ सत्कृत्य विधि पूर्वकम् ।
धेनु शखस्तया नड्वान्हेम वासो हय क्रमात् ॥८६
कृष्ण गौरायस छाग एता वै दक्षिणा स्मृता ।
यस्य यस्य तु यत् द्रव्य फलेनाव्य स तेन च ॥८७
ब्रह्मन्नेषा वरो दत्त पूजिता पूजयिष्यथ ।
ग्रहाधीना नरेन्द्राणा धनजात्युच्छ्रयास्तथा ॥८८
भावाभावी च जगतस्तस्मात् पूज्यतमा ग्रहा ।
आदित्यस्य सदा पूजा तिलक स्वामिनस्तथा ॥८९
महागणपतेश्चैव कुर्वन्सिद्धिमवाप्नुयात् ।
कर्मणा सफलत्व च श्रिय वाप्नोत्य नुत्तमाम् ॥९०
अकृत्वा मातृयाग तु यो ग्रहार्चा समारभेत् ।
कुप्यति मातरस्तस्य प्रत्यूह कुर्वते तथा ॥९१

इन उक्त समिधाओ से मधु घृत के द्वारा अथवा दधि और क्षीर के द्वारा हवन करना चाहिए । गुडौदन, पायस और क्षीरयाष्टिक

हविष्य होना चाहिये ॥८३॥ दधि, ओदन, हवि, चूर्ण, उर्द, चित्रान्न ये बुध पुरुष को द्विजातियों के लिये ग्रहो के ही क्रम से भोजन देना चाहिये ॥८५॥ शक्ति से यथालाभ विधि-विधान के साथ सत्कार करके धेनु, शंख, नड्वान, हिमवास, अश्व, कृष्णा,गौ, लौह और छाग ये क्रम से नौ ग्रहो के उपलक्ष्य में दक्षिणा बताई गई है। जिस-जिस ग्रह का जो द्रव्य उसका एक पल ग्रहण कर उसी के द्वारा अर्चन उनका करना चाहिये ॥८६।८७॥ हे ब्रह्मन्! इन ग्रहो को ऐसा वरदान दिया गया है कि आप लोग पूजित होकर पूजकों का अर्चन करेंगे। नरेन्द्रों के धन, जाति और उच्छ्रय आदि सब कुछ ग्रहो के ही अधीन हुआ करते हैं अर्थात् ग्रहो की ही कृपा पूर्ण दृष्टि से राजाओ का उत्थान समृद्धि आदि होती है ॥८८॥ जगत् के समस्त भाव और अभाव भी ग्रहो की ही प्रसन्नता से ही हुआ करते हैं। ग्रहो की प्रसन्नता लोगो पर होती है तो समस्त पदार्थों को उपलब्धि होती है और यदि ग्रह कुपित हो जाते हैं तो सबका अभाव होजाया करता है। यही इसका तात्पर्य है। इसी कारण से ग्रह सभी के लिए पूज्यतम हुआ करते हैं। भगवान् भुवनभास्कर सूर्य की सदा पूजा करनी चाहिए तथा स्वामी का तिलक करे ॥८९॥ और महा गणपति का अभ्यर्चन करते हुए मनुष्य सिद्धि को प्राप्त कर लिया करता है। गणपति के पूजन का ऐसा महा प्रभाव होता है कि सभी कृत कर्मों से सफलता प्राप्त होजाया करती है तथा अत्युत्तम श्रेष्ठ श्री को भी प्राप्त किया करता है ॥९०॥ जो कोई मनुष्य षोडश मातृकाओ की पूजा न करके जिनको कि मातृयाग कहा जाता है उन इन ग्रहो की ही अर्चा किया करता है या ग्रहो की पूजा का आरम्भ करता है उस पर मातृकायें कुपित होजाया करती हैं तथा उन लोगो के लिए विघ्न उपस्थित कर दिया करती हैं ॥९१॥

वसो पवित्र मन्त्रेण वसोर्द्धारा प्रकल्प्य च।

गौर्याद्या मातरः पूज्या मांगल्येषु शुभार्थिभिः ॥६२
गौरी पद्मा शची मेधा सावित्री विजया जया।
देवसेना स्वधा स्वाहा मातृकाद्यं वै धृतिर्धृति ॥६३
पुष्टिर्हृष्टिस्तथा तुष्टि रात्म देवतया सह।
गणेशेनाधिका ह्येता वृद्धौ पूज्यास्तु षोडश ॥६४
आवाहनं तथा पाद्यमर्घ्य स्नानं च चन्दनम्।
अक्षताश्चैव पुष्पाणि धूपं दीपं फलानि च ॥६५
नैवेद्याचमनीयं च ताम्बूलं पूगमेव च।
नीराजनं दक्षिणा च क्रमात् दद्याच्चतुष्टये ॥६६

जो अपने शुभ की अभिलाषा रखते हैं उनको वसु के पवित्र मन्त्र के द्वारा वसु की धारा को प्रकल्पित करके मांगलिक कर्मों में गौरी आदि जो षोडश मातायें हैं उनकी अर्चना करनी चाहिए। ६२। उन माताओं के नाम बतलाए जाते हैं—गौरी, पद्मा, शची, मेधा, सावित्री, विजया, जया, देवसेना, स्वधा, स्वाहा, मातृकाद्यं, वैधृति, धृति, पुष्टि, हृष्टि, तुष्टि इन सब सोलहों माताओं का आत्म देवता के ही साथ ही अर्थात् आत्मदेव गणेश के साथ में वृद्धि के काल में पूजना चाहिए ॥६३।६४॥ अब अर्चना का क्रम और उनके उपचारों का नाम बतलाते हैं—जिस देव का भी अर्चन करना हो सर्वप्रथम उस देव का आवाहन करे। इसके उपरान्त देवता के पादों में प्रक्षालनार्थ जो जल अर्पित किया जाता है उसको पाद्य कहते हैं। इसके अनन्तर पूजा के निमित्त जल का अर्घ्य देवे। फिर स्नान के लिए जल समर्पित कर स्नान करावे। चन्दन, अक्षत पुष्प, धूप, दीप और क्रम से फलों का समर्पण करे। इसके उपरान्त नैवेद्य (कोई भी मिष्ठान्न), आचमनीय ताम्बूल और पुङ्गीफल का समर्पण करना चाहिए। क्रम से चतुष्टय में नीराजन (आरती) और दक्षिणा देकर प्रणामान्त अभ्यर्चन करना चाहिए ॥ ६५।६६ ॥

पितृकल्प प्रवक्ष्यामि धन सततिवर्द्धनम् ।
अमावस्याष्टका वृद्धि कृष्णपक्षायन द्वयम् ॥६७
द्रव्य ब्राह्मण सपत्तिविपुवत् सूर्यसक्रम. ।
व्यतीपातो गजच्छाया ग्रहण चन्द्रसूर्ययो ॥६८
श्राद्ध प्रति रुचिश्चैव श्राद्धकाला प्रकीर्तिता. ।
अग्र्या सर्वेपु वेदेपु श्रोतियो ब्रह्मविद्युवा ॥६६
वेदार्थ विज्जेष्ठसामा त्रिमधुस्त्रिसुपर्णक. ।
स्वस्त्री यज्ञत्विग्जामाता प्राज्यश्च सुरमातुला ॥१००
त्रिणाचिकेत दौहित्र शिष्य सबधि वाधवा. ।
कर्म निष्ठास्तपोनिष्ठा पचाग्नि ब्रह्मचारिण. ॥१०१
पितृ मातृ पराश्चैव ब्राह्मणा श्राद्धसम्पद. ।
रोगी रिक्ताग. काण पौनर्भवस्तथा ॥१०२
अवकीर्णी कुण्डगोलौ कुनखी स्यावदतिक. ।
भृतकाध्यापक क्लीव कन्यादूष्यभिशस्तक ॥१०३
मित्रध्रुक् पिशुन सोम विक्रयी परिविदकः ।
मातृ पितृ गुरु त्यागी कु डाशी वृपलात्मज ॥१०४
पर पूर्वापति स्तेन. कमभ्रष्टाश्च निंदिता. ।
निमत्रयीत पूर्वेद्युर्वाह्मणा नात्मवान् शुचि ॥१०५

इसके अनन्तर मैं पितृकल्प के विषय मे जो वर्णन करूँगा जो कि धन और सन्तान की बढोतरी करने वाला है । अमावस्या, अष्टका, वृद्धि, कृष्णपक्ष दोनों अयन (उत्तरायण और दक्षिणायन), द्रव्य,ब्राह्मण सम्पत्ति, विपुवत्, सूर्यसक्रमण, व्यतोपात, गजच्छाया, चद्र और सूर्य का ग्रहण समय तथा जिस अवसर पर भी श्राद्ध करने के प्रति रुचि समुत्पन्न की जावे वह समय, ये ही काल श्राद्ध करने के काल कहे जाते हैं । जो समस्त वेदो में अग्रह्य अर्थात् सर्वश्रेष्ठ आता हो, श्रोत्रिय—ब्रह्म के वेत्ता—युवा—वेदो के अर्थों के जानने वाला, ज्येष्ठ

दत्वोदकं गंधमाल्यं प्रदायान्नं सदीपकम् ।
अथ सव्यं ततः कृत्वा पितृणाम् प्रदक्षिणम् ॥११२
द्विगुणास्तु कुशान्दत्वा ह्युशतस्त्वेत्यृचा पितृ न् ।
आवाह्य तदनुज्ञातो जपेदायु नस्ततः ॥११३

जिन श्राद्धीय ब्राह्मणों को श्राद्ध के लिये निमन्त्रण दिया जावे उनको भी मन-वचन शरीर और कर्मों के द्वारा पूर्णतया सदन होकर रहना चाहिए। श्राद्ध कर्म दुपहर के पश्चात् ही किया जाना चाहिए। अतएव अपराह्न काल में आगत उन ब्राह्मणों का स्वागत करने के साथ समभ्यर्चन करना चाहिए। १०६। अपने दोनों हाथों को पवित्र करके उन्हें आचमन कराये और फिर आसन पर समुपविष्ट करे। दैव कर्म में तो अपनी जैसी शक्ति हो तदनुसार ब्राह्मणों को निमन्त्रित करे अर्थात् एक, तीन, पाँच आदि रक्खे।१०७। पराधित शुचि (पवित्र) देश में दक्षिणा प्रवण दो दैवकर्म में पूर्व में—पित्र्य कर्म में उत्तर में एक एक रक्खे॥ १०८ ॥ इसी प्रकार से मातामहों का भी करे अथवा वहीं पर वैश्व देविक करे। हाथों का प्रक्षालन देकर विष्टर के लिये कुशाओं को भी अर्पित करना चाहिये॥ १०६॥ फिर अनुज्ञा प्राप्त किया हुआ होकर "विश्वेदेवास" इत्यादि ऋचा से आवाहन करना चाहिए। यवों के द्वारा अन्वाव किरण करे और इसके अनन्तर पवित्रियों के सहित भाजन में "शन्नो देव्या"—इस मन्त्र से जल को क्षिप्त करे। 'यवोऽसीति यवान्' इससे तथा "या दिव्य"—इत्यादि मन्त्र के द्वारा हाथ में पात्र का विनियोग करना चाहिए।११०। ।१११। उदक, गन्ध, माल्य और दीपक सहित अन्न देकर इसके पश्चात् अपसव्य करे और पितृगणों का अप्रदक्षिण करके दुगुनी कुशाओं को देवे। 'उशनस्त्वा'इत्यादि ऋचा से पितृगणों का आवाहन करे और उनके द्वारा अनुज्ञात होता हुआ 'आयुन्तुन' इसका जाप करना चाहिए।११२।११३।

यवार्थास्तु तिलैः कार्याः कुर्यादर्घ्यादि पूर्ववत् ।
दत्वार्घ्यं संस्रवांस्तेषां पात्रे कृत्वा विधानतः ॥११४

पितृभ्य स्थानमसीति न्युब्जं पात्र करोत्यध ।
अग्नौ करिष्यन्नादाय पृच्छत्यन्न पृथक् च तत् ॥११५
कुरुष्वेत्यभ्यनुज्ञातो दत्वाग्नौ पितृयज्ञवत् ।
हुतशेष प्रदद्यात्तु भाजनेषु समाहित ॥११६
यथा लाभोपपन्नेषु रौप्येषु च विशेषत. ।
दत्वान्न पृथ्वीपात्रमिति पात्राभि मन्त्रणम् ॥११७
कृत्वेद विष्णु रित्यन्ने द्विजाङ्गुष्ठ निवेशयेत् ।
सव्या हृतिका गायत्रो मधुवाता इति ऋचम् ॥११८
जप्त्वा यथासु ख वाच्य भुञ्जीरस्तेपि वाग्यता ।
अन्नमिष्ट हविष्या च दद्याद क्रोध नोत्वर ॥११९

जो भी यवार्थ हैं उन सबको तिलो के द्वारा करना चाहिए और वं की ही भांति अर्घ्य आदि की सम्पूर्ण प्रक्रिया को करे। अर्घ्य समर्पित करके उनके पात्र मे विधि-विधान से यवो के सहित करे। ।११४। "पितृभ्य स्थानमसि"—इस मन्त्र से पात्र को नीचे की ओर न्युब्ज कर देना चाहिए। अन्न को लेकर अग्नि मे करत हुए उसको पृथक् पूछना है। १२५। जब 'करो'—ऐसी अनुज्ञा प्राप्त करले तो अनुज्ञात होकर पितृयज्ञ के ही समान अग्नि मे देवें। हवन किये हुए मे जो भी कुछ शेष रहे उसको परम सावधान होकर भाजनो मे अर्थात् पात्रो मे देना चाहिए ॥११६॥ यथा लाभ जो भी उपपन्न हो उनमे तथा विशेष रूप से रौप्य अर्थात् चाँदी के निर्मित पात्रो मे अन्न देकर 'पृथिवी पात्र'-इससे पात्रो का अभिमन्त्रण करे।११७। यह करके 'विष्णु' -इत्यादि मन्त्र से द्विज के अङ्गुष्ठ को अन्न मे निवेशित करना चाहिए। व्याहृतियो के सहित गायत्री मन्त्र को तथा 'मधुवाता' इत्यादि ऋचा का जाप करके यथा सुख बोलना चाहिए और विप्रो को भी मौनव्रती होकर भोजन करना चाहिए। अभीष्ट अन्न और हविष्य को क्रोध रहित और त्वरा पूर्वक रहते हुए अर्पित करे।११८-११९।

शिला वृन्त होकर वृद्धि के अवसर पर नान्दीमुख पितृगणों का यजन करना चाहिए और दधि कर्कन्धु से मिश्रित पिण्डों को यवों से क्रिया करे। जो एकोद्दिष्ट श्राद्ध होता है वह देवों से हीन और एकार्घ पवित्रक होता है॥ १२९।१३०॥ आवाहनाग्नि से करण रहित अपसव्य के तुल्य होता है। अक्षय्य स्थान विप्र विसर्जन में उपस्थित होवे।१३१। 'अभिरम्यताम्' अर्थात् अभिरमण करो—ऐसा बोलना चाहिये और उनको कहना चाहिये कि हम अभिरत हो गये हैं। तिलों से युक्त गन्धोदक से चार पात्र करे॥ १३२॥ अर्घ्य के लिये पितृ पात्रों में प्रेतपात्र का प्रोक्षण करे और "ये समाना" इत्यादि दो मन्त्रों से प्रसवन करना चाहिए शेष समस्त कृत्य पूर्व की ही भाँति करना चाहिये।१३३।

एतत् सपिण्डीकरण मेकोद्दिष्टं स्त्रिया अपि।
अर्वाक् सपिण्डीकरण यस्य सयत्सरादभवेत् ॥१३४
तस्याप्यन्न सोदकु भ दद्यात् सवत्सर द्विजे।
मृते हानि तु कर्तव्य प्रतिमास तु वत्सरम् ॥१३५
प्रतिसम्वत्सर चैव आद्यमेकादशेहनि।
पिडाश्च गोजविप्रभ्यो दद्यादग्नौ जलेपि वा ॥१३६
प्रक्षिपेत्सर्वं विप्रेषु द्विजोच्छिष्ट न मार्जयेत्।
हविष्यान्नेन वै मास पायसेन तु वत्सरम् ॥१३७
तथा वर्षात् त्रयोदश्या मघासु च विशेषत।
कन्या कन्यावेदिनश्च पशून्व सत्सुतानपि ॥१३८
द्यूत कृषि च वाणिज्य द्विशफैकशफास्तथा।
ब्रह्मवर्चस्विन पुत्रान् स्वर्णरूप्ये सकुप्यके ॥१३९
ज्ञातिश्रैष्ठ्य सर्वकामानाप्नोति श्राद्धद सदा।
प्रतिपत् प्रभृति ध्वेका वर्जयित्वा चतुर्दशीम् ॥१४०

इतना सपिण्डीकरण है और स्त्री का भी एकोद्दिष्ट है जिसका

सपिण्डीकरण सम्वत्सर से पूर्व मे होता है।१३४। जल के कुम्भ के साथ उसका भी अन्न द्विज मे देना चाहिये। मृत हो जाने पर एक वर्ष तक प्रति मास में उस मृत्यु के दिन में करना चाहिये।१३५। प्रत्येक सम्वत्सर मे, माघ मे एकादश दिन मे पिण्डो को गौ और द्विजो के लिये देवे अथवा अग्नि मे या जल मे भी देना चाहिये ॥ १३६ ॥ द्विजो के भोजन करने पर उन द्विजो का जो उच्छिष्ट रहे उसका प्रक्षेप कर देवे और वर्ष मे पायस के द्वारा श्राद्ध करना चाहिए।१३७। तथा वर्ष में त्रयोदशी मे और विशेष रूप से मघाओ मे कन्या को, कन्या वेदियो को तथा सरसुत वाले पशुओ को भी, द्यूत, कृषि, वाणिज्य, द्विशफ, एकशफ, ब्रह्मवर्चस्वी पुत्रो को, सकुप्यक स्वर्ण और रूप्यक देता है वह सदा श्राद्ध के देने वाला अपनी जाति मे श्रेष्ठता और समस्त कामनाओ को प्राप्त किया करता है। प्रतिपदा प्रभृति में केवल एक चतुर्दशी को वर्जित कर देना चाहिये क्योकि चतुर्दशी तिथि में सामान्यतया किसी का भी श्राद्ध नही किया जाता है।।१३८—१४०॥

शस्त्रेण तु हता ये वै तेभ्यस्तत्र प्रदीयते ।
स्वर्गं ह्यपत्यमोजश्च शौर्य्यं क्षेत्रं बल तथा ॥१४१
पुत्रान् श्रैष्ठ्यञ्च सौभाग्य समृद्धि मुख्यता शुभम् ।
प्रवृत्त चक्रता चैव वाणिज्य प्रभृतीनि वि ॥१४२
अरोगित्व यशो वीतशोकता परमा गतिम् ।
धन विद्या भिषक्सिद्धि कुप्यगा अप्यजाविकम् ॥१४३
अश्वानायुश्च विधिवद्य श्राद्ध सम्प्रयच्छति ।
कृत्तिकादि भरण्य त सकामानाप्नुयादिमान ॥१४४
आस्तिक श्रद्दधानश्च व्यपेतमदमत्सर: ।
वसुरुद्रादिति सुता पितर श्राद्धदेवता ॥१४५
प्रीणयति मनुष्याणा पितॄन श्राद्धेन तर्पिता ।
आयु प्रजा धन विद्या स्वर्गं मोक्ष सुखानि च ॥१४६

प्रयच्छति तथा राज्य नृणा प्रीता. पितामहा ।
इत्येव कथित किंचित्कल्पाध्याये विशेषत. ।।१४७

जो लोग शस्त्रो के द्वारा आहत होकर मृत्युगत हुए होते हैं उन्ही पुरुषो के लिये चतुर्दशी के दिन श्राद्ध दिया जाया करता है, ऐसा ही धर्मशास्त्र का आदेश है। स्वर्ग, सन्तति, ओज, शौर्य, क्षेत्र, बल, श्रेष्ठ पुत्र, सौभाग्य, समृद्धि, मुख्यता, शुभ, प्रवृत्त, चक्रता, वाणिज्य प्रभृति, अरोगिता, यश, वीतशोकता, परमगति, धन, विद्या, भिषक् सिद्धि कुप्यज्ञा, अजाविक, अश्व आयु इन सबको वह मनुष्य प्राप्त किया करता है जो कृत्तिका के आदि से लेकर भरणी के अन्त पर्यन्त विधिपूर्वक श्राद्ध दिया करता है। वह मनुष्य सभी कामनाओ को प्राप्त किया करता है ।।१४१-१४४।। जो पुरुष आस्तिक और श्रद्धा सम्पन्न हो तथा मद और मत्सरता को त्याग कर देने वाला हो वही श्राद्ध का फल प्राप्त करता है। वसु-रुद्र और अदिति के पुत्र देवगण ये सब पितर हैं एव श्राद्धो के देवता होते हैं ।। १४५ ।। ये सब श्राद्धो के द्वारा स्वः तर्पित होते हुए मनुष्यो के पितृगणो को प्रीणित किया करते हैं अर्थात् प्रसन्न कर देते हैं। आयु प्रजा, धन विद्या, स्वर्ग, मोक्ष और सुखो को तथा परम प्रसन्न हुए पितामह मनुष्यों को राज्य भी प्रदान किया करते हैं। इस प्रकार से यह कुछ कल्पाध्याय मे विशेष रूप से कहा गया है ।१४६, १४७।

ज्ञातव्य वैदिके राजे पुराणान्तरकेपि च।
य इम चिन्तयेत् विद्वान् कल्पाध्याय मुनीश्वर ।।१४८
स भवेत् कर्मकुशल इहान्यत्र गति शुभाम्।
य शृणोति नरो भक्त्या दैवे पित्र्ये च कर्मणि ।।१४६
कल्पाध्याय स लभते देवपित्र्य क्रियाफलम्।
धन विद्या यश पुत्रान् परत्र च गति पराम् ।।१५०
अत पर व्याकरण तुभ्य वेदमुखाभिधम्।।

कथयिष्ये समासेन शृणुष्व सुसमाहित ॥१४९

यह वैदिक तन्त्र मे और पुराणान्तरो मे भी जान लेना चाहिये। हे मुनीश्वर ! जो विद्वान् पुरुष इस कल्पाध्याय का चिन्तन किया करता है।१४८। वह पुरुष यहाँ इस लोक म बडा अधिक कर्म कुशल हो जाता है तथा अन्यत्र अर्थात् परलोक मे शुभ गति को प्राप्त किया करता है। जो मनुष्य दैव और पित्र्य कम मे भक्ति से इसका श्रवण करता है।१४९। वह दैव पित्र्य की क्रिया के फल को प्राप्त करता है और कल्पाध्याय का लाभ करता है। धन, विद्या, यश, पुत्र परलोक मे शुभ गति प्राप्त करता है।१५०। इससे आगे वेद के मुख के नाम वाला व्याकरण आपको सक्षेप म सुनाये गे। उसको आप परम सावधान होकर सुनिये।१५१।



॥ व्याकरण-शास्त्र का वर्णन ॥

अथ व्याकरणम् वक्ष्ये सक्षेपत्तव नारद ।
सिद्ध रूपप्रबधे न मुख वेदस्य साप्रतम् ॥१
सुप्तिङन्त पद विप्र सुपा सप्त विभक्तय ।
स्वौजस प्रथमा प्रोक्ता सा प्रातिपदिकात्मिका ॥२
सबोधने च लिंगादावुक्ते कर्मणि कर्तरि ।
अर्थवत्प्रातिपदिकम् धातुप्रत्यय वर्जितम् ॥३
अमौशसौ द्वितीया स्यात्तत्कर्म क्रियते चयत् ।
द्वितीया कर्मणि प्रोक्तान्तरान्तरेण सयुते ॥४
टाभ्याभिसस्तृतीया स्यात् करणे कर्तरीरिता ।
येन क्रियते तत्करण कर्तास्यात्करोति स ॥५
ङेभ्याभ्यसश्चतुर्थी स्यात् सम्प्रदाने च कारके ।
यस्मै दित्सा धारयेद्वै रोचते सम्प्रदानकम् ॥६

पचमी स्यान्डसिभ्याम्यो ह्यपादाने च कारके ।
यतोपैति समादत्ते अपदत्ते च वा यत ॥७

श्रीसनन्दनजी ने कहा-हे नारद ! इसके अनन्तर मैं आपके समक्ष मैं अति सक्षेप से व्याकरण के विषय मे वर्णन करूँगा । यह व्याकरण सिद्धरूपों के प्रबन्ध से इस समय मे वेद का मुख है ॥१॥ हे विप्र ! सुप् और तिङ् जिनके अन्त मे होते हैं वे पद कहे जाते हैं । सुप् जो होते हैं उनकी सात विभक्तियाँ हुआ करती है । सु-औ-जस ये तीनो एक वचन-द्वि वचन और बहु वचन में विभक्तियाँ जो होती हैं इनको प्रथमा विभक्ति कहा गया है और वह प्रातिपादिकार्थिका होती है ॥ २ ॥ सम्बोधन मे लिङ्गादि में, उक्त कर्म में तथा कर्ता में धातु और प्रत्यय से रहित जो अर्थ वाला होता है वह प्रतिपादक होता है ॥२॥ यहाँ तक प्रथमा विभक्ति का वर्णन हुआ जिसमे यह बतला दिया गया है कि प्रथमा कहा-कहा होती है । अब द्वितीया विभक्ति बतलाते हैं—अम्-औ-शस्—ये पूर्ववत् तीनो वचनो मे द्वितीया विभक्ति है । यह जहाँ कर्म कारक होता है वहाँ पर ही की जाया करती है । द्वितीया विभक्ति कर्म में कही गयी है और अन्तरा अथवा अन्तरेण से जब सयुत होती है तब भी इन दोनों के सयोग मे द्वितीया विभक्ति हुआ करती है ॥३।४॥ टा-भ्याम्—भिस्—ये प्रत्यय तृतीया विभक्ति मे पूर्व ही की भाँति तीनो वचनो में होते है और यह विभक्ति करण तथा कर्त्ता में हुआ करती है । जिसके द्वारा क्रिया की जाती है उसी को करण कहते हैं क्योंकि यह क्रिया का एक साधन हुआ करता है । जो क्रिया के करने वाला है वह कर्त्ता कहा जाता है ॥५॥ ङे-भ्याम्-भ्यम्—ये चतुर्थी विभक्ति के तीनों वचनो में प्रत्यय होते हैं और यह सम्प्रदान कारक मे होती है । जिसके लिये कुछ देने की इच्छा होती है अथवा धारण की जाया करती है या रुचि जिसके पाने की होती है वही सम्प्रदान नाम से कही जाती है ॥६॥ अपादान कारक मे पचमी

विभक्ति हुआ करती है जिसमे ङसि—भ्याम्—भ्यस्—ये तीनों वचनों मे तीन प्रत्यय होते हैं। जहाँ से कोई भी पदार्थ दूर होता है या किसी वस्तु का समादान किया जाता है अथवा अपादान होता है वहाँ पर ही अपादान कारक का प्रयोग हुआ करता है ॥७॥

ङसोसामश्च षष्ठी स्यात्स्वामिसंबंध मुख्यके ।
ङ्योस्सुप सप्तमी तु स्या सा चाधिकरणे भवेत् ॥८
आधारे चापि विप्रेन्द्र रक्षार्थानां प्रयोगत ।
ईप्सित चानीप्सित यत्तदपादानकं स्मृतम् ॥९
पचमी पर्युपाङ्योगे इतरर्तेन्यदिङ् मुखे ।
एतैर्योगे द्वितीया स्यात्कर्म प्रवचनीयकै ॥१०
लक्षणे त्थ भूतेभिर्भागे चानुपरिप्रति ।
अन्तरेषु सहार्थे च हीने ह्युपश्च कथ्यते ॥११
द्वितीया च चतुर्थी स्याच्चेष्टाया गति कर्मणि ।
आप्राणाप विभक्तौ द्वे मनकर्मन्यनादरे ॥१२
नम स्वस्ति स्वधास्वाहा लवषड्योग ईरिता ।
चतुर्थी चैव तादर्थ्ये तुमर्थाद्भाव वाचिन ॥१३
तृतीया सहयोगे स्यात् कुत्सिताङ्गे विशेषणे ।
काले भावे सप्तमी स्यादेतैर्योगे च षष्ठ्यपि ॥१४

ङस—ओस्—आम्—ये तीन प्रत्यय तीनो वचनो मे षष्ठी विभक्ति मे हुआ करते है जहाँ पर स्वामी का सम्बन्ध मुख्यतया होता है वही पर षष्ठी या सम्बन्धकारक का प्रयोग हुआ करता है। ङि-ओस्—सुप्—ये तीन प्रत्यय तीनो वचनो मे सप्तमी विभक्ति मे होते हैं जो कि अधिकरण मे आया करती है ॥८॥ विप्रेन्द्र ! रक्षार्थों के प्रयोग से आधार मे भी ईप्सित है और अनीप्सित जो कुछ भी हो वह अपादान ही कहा गया है ॥९॥ परि उप आङ् के योग मे तथा इतर ऋत अन्य दिङ् मुख मे भी इनके योग मे पञ्चमी हुआ करती है और इन कर्म प्रवचनीयकों के

योग में द्वितीया विभक्ति होती है ।१०। जहाँ पर हृत्यभूत लक्षण का भाग हो वहाँ पर और अनु-परि तथा प्रति अन्तरों में—लक्षणार्थ में अर्थात् सह के योग में और हीनार्थ में भी तृतीया विभक्ति कही जाती है ।११। गति कर्म में और चेष्टा में द्वितीया और चतुर्थी दोनों ही होती हैं । अप्राणाभा में,मन्य कर्म में और अनादर में दो विभक्तियाँ होती हैं ॥१२॥ कुछ विशेष शब्दों के योग में सदा चतुर्थी विभक्ति ही हुआ करती है । वे शब्द—नम , स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा, अलम्, वषट् ये हैं । तादर्थ्य में और तुमर्थ के भाव के वाचक शब्दों के योग में भी चतुर्थी हुआ करती है ।१३। 'सह' इस शब्द के तथा सहायक अन्य शब्द के योग के और कुत्सित अङ्ग के विशेषण में भी तृतीया विभक्ति होती है । काल और भाव में सप्तमी होती है और इनके योग में षष्ठी भी विभक्ति हुआ करती है ॥१४॥

स्वामीश्वराधिपतिभिः साक्षिदायादसूतकैः ।
निर्धारणे द्वे विभक्ती षष्ठी हेतुप्रयोगके ॥१५
स्मृत्यर्थे कर्मणि तथा करोते प्रतियत्नके ।
हिंसार्थानां प्रयोगे च कृतिकर्मणि कर्तरि ॥१६
न कर्तृकर्मणो षष्ठी निष्ठादि प्रतिपादिका ।
ऐता वै द्विविधा ज्ञेया सुबादिषु विभक्तिषु ।
भूवादिषु तिङ् तेषु लकारा दश वै स्मृताः ॥१७
तिप्तस् झतीति प्रथमो मध्यम सिप्थस्थोत्तम ।
मिब्वस्मस परस्मै तु पदाना चात्मनेपदम् ॥१८
ता अतेते प्रथमो मध्य स आथे ध्वे तथात्तम ।
ए वहे मत आदशा ज्ञेया ह्यन्ये लिङादिषु ॥१९
नाम्निप्रयुज्यमाने तु प्रथम पुरुषो भवेत् ।
मध्यमो युष्मदि प्रोक्त उत्तम पुरुषस्मदि ॥२०
भूवाद्या धातव प्रोक्ता सनाद्यतास्तथा तत ।

लडीरितो वर्तमाने भूतेनद्यतने तथा ।।२१
मास्मयोगे च लङ वाच्यो लोडाशिषि च धातुत :
विध्यादौ स्यादाशिषि च लिङितो द्विविधो मुने ।।२२

स्वामी, स्वराधिपति, साक्षी, दायाद, सूतक के योग में और निर्धारण में दोनों विभक्तियाँ होती हैं अर्थात् षष्ठी और सप्तमी दो हुआ करती हैं किन्तु हेतु के प्रयोग में षष्ठी ही हुआ करती है ।। १५ ।। स्मृति के अर्थ कर्म में तथा 'हृ' धातु के प्रति यत्न में, हिंसार्थकों के प्रयोग में, कृतिकर्म कर्ता में भी यह विभक्ति होती है ।१६। कर्तृ कर्म में निष्ठादि की प्रतिपादिका षष्ठी नहीं होती है । सुप् आदि विभक्तियों में ये दो प्रकार की जान लेनी चाहिये । भुवादि तिङन्तों में दश प्रकार बताये गये हैं ।१७। तिङन्तों में तीन प्रथम, मध्यम और उत्तम तीन पुरुष होते हैं और प्रत्येक पुरुष में एक, द्विवचन और बहुवचन तीन २ वचन हुआ करते हैं । अब उन पुरुषों के प्रत्यय बतलाये जाते हैं । तिप्—तस्—अन्ति ये प्रथम पुरुष में प्रत्यय होते हैं । सिप्—थस—थ—ये मध्यम पुरुष में तीन प्रत्यय होते हैं । मिप्—वस्—मस् ये तीन प्रत्यय परस्मैपदी के बताए गए हैं । कुछ धातुयें परस्मैपदी होती हैं और कुछ आत्मनेपदी तथा कुछ उभय पदी भी होती हैं । अब आत्मनेपदी क्रियाओं में जो प्रत्यय होते हैं वह बतलाया जाता है । १८। ते—आ ते—ये तीन प्रत्यय तीनों वचनों में प्रथम पुरुष में होते हैं । से आ थे—ध्वे ये तीन मध्यम पुरुष में तथा ए—वहे—महे—उत्तम पुरुष के तीनों वचनों में होते हैं । अन्य आदेश जो इन्हीं प्रत्ययों के स्थान पर होते हैं वे लिङ् आदि लकारों में जान लेने चाहिए ।१६। किसी के नाम में जो प्रयुज्यमान होता है वह ही प्रथम पुरुष होता है । युष्मद् शब्द में जिसका प्रयोग किया जाता है वह मध्यम पुरुष कहा जाता है और अस्मद् अर्थात् अपने लिए जिसका प्रयोग होता है वह उत्तम पुरुष जानना चाहिए ।२०। भू आदि जो क्रिया के मूल शब्द

होते हैं और जिनका होना आदि अर्थ होता है वे 'धातु'-इस शब्द से व्याकरण की भाषा में कहे गए हैं। इसके पश्चात् उसी भाँति सनादि प्रत्ययान्त भी धातु होते हैं। लट् लकार वर्तमान काल में कहा गया है। अनद्यतन भूतकाल में और 'स्मरण'-इसके योग में लङ् लकार कहा जाता है। बारह घण्टे के समय तक का जो भूतकाल होता है वह अद्यतन भूत होता है और इससे ऊपर का भूतकाल अनद्यतन कहा जाया करता है। आशीर्वाद में धातु से लोट् होता है तथा आज्ञा में भी लोट् होता है। हे मुने! विधि-निमन्त्रण आदि में और आशीष में होने वाला लिङ् दो प्रकार का हुआ करता है।२१।२२।

लिङ्लीते परोक्षे स्यात् श्वस्तने लुड्भविष्यति।
स्यादनद्यतने लृट् च भविष्यत तु धातुत ॥२३
भूते लुङ् तिपस्यपो च क्रियाया लङ् प्रकीर्तित.।
सिद्धोदाहरण विद्धि संहितादिपुर सरम् ॥२४
दण्डाग्र च दधीद च मधूदक पित्र्यर्षभ।
होतृ्कारस्तथा सेय लाङ्गलीषा मनीषया ॥२५
गंगोदक तवल्कार ऋणार्णं च मुनीश्वर।
शीतार्तश्च मुनिश्रेष्ठ सेन्द्र सौकार इत्यपि ॥२६
वध्यासन च पित्रर्थो नायको लवणस्तथा।
त आद्या विष्णवे ह्यत्र तस्या अर्घो गुरा अध ॥२७

परोक्ष अतीत में लट् लकार होता है और श्वस्तन में लुड् लकार होता है जो भविष्यत् काल में आता है। अनद्यतन भविष्यत् काल में धातु से लृट् लकार होता है।२३। भूतकाल में और तिपस्यपो क्रिया में लङ् लकार कहा गया है। संहिता आदि के पूर्वक सिद्ध उदाहरण जान लेने चाहिए जो सन्धियाँ होकर बना करते हैं।२४। दण्डाग्रम दधीदम् मधूदकम् पित्र्यर्षभ होतृकार —इनमें अकार-इकार-उकार ऋकार और लृकार स्वरों की सन्धियाँ होने पर जो सिद्ध रूप

बनते हैं उनके क्रम से उदाहरण दिए हैं। लाङ्गलीषा और मनीषया इसी प्रकार के उदाहरण हैं। अब गुणसन्धि के उदाहरण सिद्ध रूप वाले दिए जाते हैं। सेयम्–गङ्गोदकम्–तवल्कार–ऋणार्णम्। हे मुनीश्वर! सीतार्त्त–सेन्द्र–सौगार–ये भी हे मुनिश्रेष्ठ विभिन्न सन्धियों के उदाहरण होते हैं।२५। वध्वासनम्–पित्रर्थ–ये यण सन्धि के उदाहरण हैं। नायक–लवण–ये अयादि सन्धि के उदाहरण हैं। त आयाः–विष्णव–इह–तस्या अर्थ–गुरा अध–य भी विविध सन्धियों के उदाहरण होते हैं। इनमें कहीं यकार का लोप होता है तो कहीं यण होता है और किसी स्थल पर व कार का लोप आदि सन्धि के साथ होकर सिद्धरूप उपर्युक्त बना करता है।२७।

हरेव विष्णो वेत्येवा दसोमादप्यमी अथा।
गौरी एतौ विष्णू इमौ दुर्गे अमूनो अर्जुन ॥२८
आ एव च प्रवृत्यते तिष्ठति मुनिसत्तम।
षडत्र षण्मासरश्च वाक्छुरो वाग्घरिस्तथा ॥२९
हरिश्शेते विभुश्चिकायस्तच्छेप यच्चरस्तथा।
प्रश्नस्त्वष हरिष्षष्ठ कृष्णष्टीकत इत्यपि ॥३०
भवान् षष्ठश्च सन्त षट्ते तल्लेप एव च।
चक्रिश्छिन्धि भवाञ्छौरिर्भवाञ्शौरिरित्यपि ॥३१
सम्यङ्ङनतोगच्छाया कृष्ण वन्दे मुनीश्वर।
तेजासि मस्यते गङ्गा हरिश्छेत्तामारश्शिव ॥३२
रामं काम्य शृणु पूज्यो हरि पूज्योसं एव हि।
रामो हृष्टोवत्ता अत्र गुप्ता दृष्ट इमायत ॥३३
विष्णुनम्यो रविरय मौ फल प्रातरच्युत।
भवनर्यन्यांप्यलरारमा भोमो एष हरिस्तथा।
एष शार्ङ्गी सेव राम महितंव प्रकीर्तिता ॥३४

हरेव–विष्णोऽत्र–ये पूर्व रूप सन्धि के सिद्ध स्वरूप हैं। अमी अथा गौरी एतौ–विष्णू इमौ–दुर्गे अमू–नो, अर्जुन–

होते हैं और जिनका होना आदि अर्थ होता है वे 'धातु'—इस शब्द से व्याकरण की भाषा में कहे गए हैं। इसके पश्चात् उसी भाँति सनादि प्रत्ययान्त भी धातु होते हैं। लट् लकार वर्तमान काल में कहा गया है। अनद्यतन भूतकाल में और 'मास्म'—इसके योग में लङ् लकार कहा जाता है। बारह घण्टे के समय तक का जो भूतकाल होता है वह अद्यतन भूत होता है और इससे ऊपर का भूतकाल अनद्यतन कहा जाया करता है। आशीर्वाद में धातु से लोट् होता है तथा आज्ञा में भी लोट् होता है। हे मुने ! विधि निमन्त्रण आदि में और आशीष का होने वाला लिङ् दो प्रकार का हुआ करता है।२१।२२।

लिडतीते परोक्षे स्यात् श्वस्तने लुड्भविष्यति।
स्यादनद्यतने लृट् च भविष्य त तु धातुत ॥२३
भूते लुड् तिपस्यपो च क्रियाया लङ् प्रकीर्तित ।
सिद्धोदाहरण विद्धि सहितादिपुर सरम् ॥२४
दडाग्र च दधीद च मधूदय पित्रर्षभ ।
होतॄकारस्तथा मय लागतीयर मनीषया ॥२५
गगोदक तवल्कार ऋणार्ण च मुनीश्वर ।
शीतार्तश्च मुनिश्रेष्ठ सेन्द्र सौकार इत्यपि ॥२६
सय्यासन च पित्र्यो नायको लवणस्तथा ।
त आद्या विष्णवे ह्यत्र तस्या अर्थो गुरा अध ॥२७

अष्टौ अथ मुने गद्यात् नविप्रदपुङ्मनः ॥३९
प्रत्यङ् पुराणमहान् धीमान् विद्वान्यद् विपदीक्षन दो ।
उशनानामिमे पुंगि रयुक्तनयिगमता: ॥४०
राधा गर्गा मनिर्गोपी म्नो धोर्घेनुबंधू म्वसा ।
गीर्नोम्पानलयोर्गो: थुन् मनुम्मवित्तु वा मत्रचित् ॥४१
र्गिरङ्गुरभा: श्रियाम्नय पुन गोमपमधि च ।
प्रामन्य पुत्रनध्येय वनूं चानिरि माँरि नु ॥४२
म्ननुदुग्ध त्रिमनद्य याश्चम्यारीस्मंत्र न ।
[illegible] ॥४३

हलन्त दोनों प्रकार के शब्द हैं। पुल्लिङ्ग मे होते हैं। व्याकरण में पुल्लिङ्ग, स्त्रीलिङ्ग और नपुंसक लिङ्ग मे तीन लिङ्ग होते हैं। ये सब अकल विरामक हैं ॥३६।४०॥ अब स्त्रीलिङ्ग मे आने वाले कतिपय शब्दों को दिखाया जाता है—राधा, सर्वा, गति, गोपी, स्त्री, श्री-धेनु-वधू स्वसा, गौ, नौ, उपानत्, द्यौ, भो-क्षुत्, ककुप्, मविद्, रुक्, विड्ड-उदभा ये स्त्री लिङ्ग मे होते हैं। स्रप-कुलम्-सोमपम्-अक्षि—ग्रामणी—अम्बु-खलपू, स्वनडुत्, विमलद्यु—चत्वारि-इदम्-एतद्-ब्रह्म-अह्-दण्डी-असृक्-किञ्चित्-त्यत्-आदि नपुंसकलिङ्ग मे होते हैं॥४१-४३।

एतद्वेभिद्गवाक्गवाड् गोअक्गोअड् गोक् गोड् ।
तिर्यग्यकृच्छकृच्चैव ददद्भवत् पचत्त्दत् ॥४४
दीव्यद्धनुच्च पिपठी पयोऽत्र सुपुमासि च ।
गुणद्रव्य क्रिया योगास्त्रिलिंगाश्च कति ब्रुवे ॥४५
शुक्त कीलालपाश्चैव शुचिश्च ग्रामणी सुधीः ।
पटु स्वयभू' कर्ता च माता चैव पिता च ना ॥४६
सत्यानाप्युस्तथा पुंसो मतभ्रमर दीर्घयात् ।
धनाकुसोमौ चगर्हस्ताविद्ग्रथास्वर्णत्वहृ ॥४७
रिम पञ्चिपद्वद्जातानहो तथा ।
सर्वं विश्वोभये चोभौ अन्यातरेतराणि च ॥४८
उत्तरश्चोत्तमो नेमस्त्वसमोथ समाहृय' ।
पूर्वोत्तरौत्तराश्चैव दक्षिणश्चोत्तराधरौ ॥४९
अपरश्चतुरोप्येतद्यावत्तत्किमसौ द्वयम् ।
युष्मदस्मच्च प्रथमश्चरमोल्पस्तथार्धक ॥५०
नोर कतिपयो द्वे च त्रयो शुद्धादस्यतथा ।
स्वेकाभुविरोध परिविपर्ययश्चा व्यपास्तथा ॥५१

एतद्, वेभिद्, गवाक्, गवाड्, गोअक्, गोअड्, गोक्, गोड्, तिर्यक्, यकृत्, शकृत्, ददत्, भवत्, पचत्, दीव्यत्, धनु, पिपठी, पय, अद,

सुपुमासि, इस प्रकार से कुछ शब्द गुण, द्रव्य और क्रिया के योग से स्त्री लिङ्ग वाले होते हैं ॥ ४४, ४५ ॥ स्त्री लिङ्ग में आने वाले कतिपय शब्द पुल्लिग में आया करते हैं यथा, शुक्ल, कीलालपा, शुचि ग्रामणी, सुधी, पटु, स्वयम्भू, कर्त्ता, माता और पितर ।४६। सर्व, विश्व उभय उभ, अन्य, अन्तर और इतर शब्द भी आया करते है ।४७, ४८। उत्तर, उत्तम, नेम अवम और सम, पूर्व और उत्तरोत्तर दक्षिण और उत्तर तथा अधर शब्द होते हैं ।। ४६ ।। अपर, चतुर, एतद्, यावद्, तद्, किम् और असौ, द्वयम् युष्मद्, अस्मद, प्रथम, चरम, अर्धक शब्द होते हैं ।। ५० ।। नोर, कतिपेय, ह्रँ, यय, गुद्धादि शब्द है। स्वेकाभु विरोध, परिविपर्यय तथा इसके अतिरिक्त अव्यय शब्द भी होते हैं ।५१।

तद्धिताश्चाप्यपत्यार्थे पाडवा श्रीधरस्तथा ।
गार्ग्यो नाडायनोत्रेयो गागेय पंतृष्वसीय ॥५२
देवतार्थे चेदमर्थ ह्यन्द्र ग्राह्यो हविर्बली ।
क्रियायुजो कर्मकर्त्राग्नेरेय कौकुम तथा ॥५३
भवाद्यर्थे तु कानीन क्षत्रियो वैदिक स्वक ।
स्वार्थे चौरस्तु तुल्यार्थे चद्रवन्मुखमीक्षते ॥५४
ब्राह्मणत्व ब्राह्मणता भावे ब्राह्मण्यमेव च ।
गोमान्धनी च धनवास्तर्थे प्रमितौ क्रियात् ॥५५
जातार्थे तु दिल श्रद्धालुरौन्नत्ये तु दतुर ।
स्रग्वी तपस्वी मेधावी मायाव्यस्त्यार्थ एव च ॥५६
वाचालश्चैव वाभाटो बहुवुस्तितमापिणि ।
ईपदपरिसमाप्तौ कल्पब्देशीय एव च ॥५७
चविकल्प कविदेश्य प्रकार वचने तथा ।
पटुजाती य पुरसाया वैद्यपाश प्रशमने ॥५८

व्याकरण में तद्धित प्रत्यय लगाकर भी अनेक शब्दों की रचना

होती है। अपत्य अर्थ में पाण्डु से पाण्डव और श्रीधर शब्द से श्रैधर आदि शब्द बना करते हैं। गार्ग्य, नाडायन, आत्रेय, गाङ्गेय, पैतृ ष्वस्रीय शब्द तद्धित प्रत्यय लगाकर निर्मित होते हैं।५२। अपत्यार्थ के अतिरिक्त देवता और इदमर्थ में भी शब्दों की रचना तद्धित प्रत्यय लगाकर हुआ करती है यथा इन्द्र है देवता जिसका उसे 'ऐन्द्र' तथा 'ब्राह्म' शब्दों की रचना करके कहा जाता है। हवि और बली होते हैं। कर्म कर्तृ में क्रिया के योग होने वाले धौरेय तथा कौंकुम शब्द बना करते हैं।५३। भवादि के अर्थ में कानीन, क्षत्रिय, शैदिक और स्वक शब्द बनते हैं। तद्धित प्रत्यय केवल स्वार्थ में भी हुआ करते हैं जो उसी अर्थ को प्रकट किया करते हैं जैसे—चोर से चौर शब्द होता है। तुल्यार्थ में 'वत्' प्रत्यय होना हाता है यथा—चन्द्रमा के समान मुख को देखता है ॥ ५४ ॥ तल् और त्व प्रत्यय लगाकर भाववाचक शब्द बनते हैं जैसे ब्राह्मण से ब्राह्मणत्व, ब्राह्मणता और ब्राह्मण्य शब्द होते हैं। अस्ति के अर्थ में, गोमान्, धनी और म तुप् प्रत्यय लगाकर बनते हैं। जहाँ प्रमिति का अर्थ हो वहाँ किम् शब्द से "किमान्" बना करता है।५५। जातार्थ में 'मुन्दिल' श्रद्धालु शब्दों की रचना होती है। उन्नति के अर्थ में दन्त शब्द से 'दन्तुर' बनता है। विद्यमानता प्रकट करने के अर्थात् अस्ति के अर्थ में स्रक्, तप, मेधा तथा माया शब्दों से स्रग्वी, तपस्वी, मेधावी और मायावी शब्दों की रचना होती है।५६। जो बहुत अधिक कुत्सित भाषण करने वाला व्यक्ति होता है उसको तद्धित प्रत्यय लगाकर वाचाल और वाचाट शब्दों से प्रकट किया जाया करता है। ईषद् अर्थ में और समाप्ति में कल्पप् और देशीय प्रत्यय हुआ करते हैं तथा प्रकार वचन में भी होते हैं यथा, कविकल्प, कविदेशीय। कुत्सा में 'पटु जातीय', और प्रशंसा में 'वैयाकरण' शब्द बनते हैं। ॥५७ ५८॥

वैयाकरणो भूतपूर्वे मतो दृष्टचरो मुने।

प्राचुर्यादिष्वन्नमयो मृण्मयं स्त्रीमयस्तथा ॥५६
जातार्थे लज्जितोत्यर्थे श्रेयान् श्रेष्ठश्च नारद।
कृष्णतरः शुक्लतमः किम आख्यानतोव्ययात् ॥६०
किंतरां चैवातितरामभिह्य च्चैस्तरामपि।
परिमाणे जानुदघ्न जानुद्वयसमित्यपि ॥६१
जानुमात्र च निर्धारे बहूना च द्वयो क्रमात्।
कतम कतर सख्येयविशेषावधारणे ॥६२
द्वितीयश्च तृतीयश्च चतुर्थ पञ्चपञ्चमौ।
एकादश कतिपय कतिथ कति नारद ॥६३
विंशश्च विंशतितमस्तथा शततमादय।
द्वेधा द्वैधा द्विधा सख्या प्रकारेथ मुनीश्वर ॥६४
क्रियावृत्तौ पचकृत्वो द्विस्त्रिर्बहुश इत्यपि।
द्वितय त्रितय चापि सख्याया हि द्वय त्रयम् ॥६५

हे मुने ! भूतपूर्व मे वैदरूप दृष्टचर माना गया है। प्रचुरता आदि के अर्थ मे 'मयट्' प्रत्यय हो जाने पर अन्नमय, मृण्मय आदि रूप बना करते हैं ॥ ५६ ॥ हे नारद ! जातार्थ मे 'इतच्' प्रत्यय लगाकर 'लज्जित' सिद्ध रूप बनता है और अत्यर्थ मे श्रेयान् और श्रेष्ठ शब्दो की रचना हुआ करती है। तरप् और तमप् प्रत्यय लगाकर कृष्णतर अधिक काला और शुक्लतम अर्थात् सबसे अधिक शुक्ल शब्दो की रचना हुआ करती है। किम् यह आख्यान से अव्यय शब्द है। इस किम् शब्द से अन्य भी अव्यय शब्दो की रचना होती है यथा—किंतराम् अतितराम् उच्चैस्तराम्। परिमाण जहाँ बतलाना होता है वहाँ पर जानुदघ्नम् जानुद्वयसम् इन शब्दो की भी रचना हुआ करती है ॥ ६० ६१॥ जहाँ निर्धारण हो वहाँ पर जानुमात्र तथा बहुतो मे और दो मे क्रम से निर्धारण करने पर जहाँ कि सख्येय का विशेष अवधारण होता है कतम और कतर ये शब्द बना करते हैं ।६२। हे मुनीश्वर !

द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ, पञ्चम, षष्ठ, एकादश, कतिपय, कतिथ, कति, हे नारद! विंश, विंशतितम और शतसे शततम आदि शब्दोंकी रचना होती है। सख्या के प्रकार मे द्वेधा, द्वैधा, द्विधा शब्द भी बना करते हैं। ॥ ६३, ६४ ॥ क्रिया की आवृत्ति मे पञ्चकृत्व, द्वि, त्रि, बहुश इन शब्दों की भी रचना होती है। सख्या मे द्वितय, त्रितय, द्वयम् त्रयम् शब्द भी बना करते हैं।६५।

कुटीरश्च समीरश्च शु डारोल्पार्थके मत ।
स्त्रैण पौस्नस्तु डिम्भश्च वृन्दारककृपीवलौ ॥६६
मलिनो विकटो गोमी भौरिकी विधमुत्कटम् ।
अवटीटोवनाटे निबिड चेक्षुशाकिनम् ॥६७
निबिरीसमेषुकारी वित्तोविद्याच्चणस्तथा ।
विद्याचु चुर्वहुतिय पर्वत शृ गिणास्तथा ॥६८
स्वामी विषमरूप्य चोपत्यकाधित्यका तथा ।
चिल्लश्च चिपिट चिक्क वातूल कुतपस्तथा ॥६९
वत्सलश्च हिमेलुश्च वहोऽश्चोपडस्तत ।
ऊर्णायुश्च मरुतश्चैवावी कामण्वतो तथा ॥७०
ज्योत्स्ना तमिस्त्राद्यीवच्च वलीवच्र्मण्वती ।
आसन्दीवच्च चक्रीवत्तूष्णीका जल्पनवपि ॥७१
कमश्च कयु यवश्च नारदेति
कतु भतवपौ सवरतथैव च ।
दास दाति दायमतो दायोद्द्यु शुभयुवत् ।
भवति वभूव भविता भविष्यति भवत्वभवद्भवेच्चापि ॥७२

अल्पार्थ मे कुटीर, समीर और शुण्डार ये शब्द माने गये हैं। स्त्रैण, पौस्न, डिम्भ, वृन्दारक और कृपीवल, इन शब्दों की रचना भी लक्षित प्रत्यय लगाकर हुआ करती है ॥ ६६ ॥ मलिन, विकट गोमी, भौरिकी विधम् उत्कटम् अवटार अर्थ मे अवटीट, निविडम्,

दुशाश्विनम्, निवरीस मेपुकारी, वित्त, विद्याचण, विद्याचुञ्चु, बहुनयम् पर्वत, भृणिण, स्वामी. विषमस्थम्, उपत्यका, अधित्यका, वल्ल, विर्पट, चिक, वातूल, कुतुप, वल्ल, हिमेलु, वहोड, उवड, ऊर्णायु मरत, एकाकी, चर्मण्वती, ज्योत्स्ना, तमिसाष्ठीवत् कक्षीवत्, चर्मण्वती। आसन्दीवत्, चक्रीवत्, तूष्णीका कल्पतकी, कम्भ, मधु, कम्ब, नारदकेति, कन्तु, कन्त, कम्न, मम्ब, सन्त, शक्ति, शप, मान्तौ, शमो, हयु, शु भ युवत्, इन शब्दों की रचना होती है। इसके आगे कुछ धातुओं के क्रियावाची शब्दों के विषय में बताया जाता है जो विभिन्न लकारों में बना करते हैं—भू धातु के जिसका अर्थ "होना" होता है भवति, बभूव, भविता, भविष्यति, भवतु, अभवत्, भवेत् में वर्तमान, परोक्षभूत, अद्यतन, भविष्यत, आज्ञा, भूतकाल और विधिलिङ् ये हुआ करते हैं ॥६६-७२॥

भूयादभूदभविष्यल्लादावेतानि रूपाणि ।
अस्ति जघासास्तास्त्यस्त्वाददद्यादि द्विरयमदास्यत् ॥७३
जुहोति जुहाय जुह्वाञ्चकार होता होष्यति जुहोतु ।
अजुहोज्जुहुयाद्धूयादहौपीदहौष्यद्दीव्यति ।
दिदेव देविता देविष्यति च अदीव्यद्दीव्येद्दीव्याद्वै ॥७४
अदेवीददेविष्यत्सुनोति सुषाव सोता सोष्यति वै ।
सुनोत्यसुनोत् सुनुयात् सूयादसावीदसोष्यत्तुदति च ॥७५
तुतोद तोत्ता तोत्स्यति तुदत्वत्तुदेत्तुद्यादि ।
अतौत्सीदतोत्स्यादिति च रुणद्धि रुरोध रोद्धा रोत्स्यति वै॥७६
रुणद्ध्वरुणद्रुध्यादरौत्सीदरोत्स्यच्च ।
तनोति ततान तनिता तनिष्यति तनोत्वतनोत्तनुयाद्धि ॥७७
अतनीत्तन्यातानीदतनिष्यत् क्रीणाति चिक्राय क्रेता क्रेष्यति
क्रीणातिरिति च । अक्रीणात् क्रीणीयात् क्रीयादक्रैषीदक्रैष्य
च्चोरयति चोरयामास चोरयिता चोरयिष्यति चोरयतु ॥७८

अचोरयत् चोरयेत् चोर्यात । अचूचुरदचोरिप्यदियेव दशवै गणा । प्रयोज वे भावयति सनीच्छाया बुभूपति ।
क्रियासमभिहारे तु पडितो वोभूयते मुने ॥७६

भूयात, अभविष्यत, अभूत्, ये भी इसी धातु के हुआ करते हैं। अद् भक्षण धातु के अत्ति, जघास, अत्ता, पति, अत्स्याद, अदयात, द्विरधा सदास्यत ।७३। हूलवने धातु के जुहोति, जुहाव, जुहवाञ्चकार, होता, होस्यति, जुहोतु, अजुहात, जुहुयात, हूयात अहोपीत, अहोप्यत् रूप विभिन्न लकारो मे हुआ करते हैं। दिव् क्रीडादि मे अय वाली धातु के निम्न रूप होते हैं—दीव्यति, दिदेव, देविता, देविष्यति अदीव्यत्, दीव्येत् दीव्यात, अदेवीत, अदेविष्यत, अदीव्यत, सूम् सवने धातु के, सुनोति, सुषाव, सोता, सोप्यति सुनोतु असुनोत सुनुयात सूयात्, असावीत, असोप्यत । ये रूप हुआ करते हैं । द धातु के वर्त्तमान् काल मे तुदति होता है ॥ ७३, ७४, ७५ ॥ तुतोद, तोत्ता, तोत्स्यति, तुदतु अतुदत, तुदेत, तुद्यात, अतोत्सीत, अतोत्स्यत ये रूप हुआ करते हैं। रुधं धातु के रुणद्धि, रुरोध, रोद्धा रोत्स्यति, रुणद्ध, अरुणेत, रुध्यात अरौत्सीत, अरोत्स्यता, तनु, विस्तारे, धातु से तनोति, ततान, तनिता, तनिष्यति तनोतु अतनोत तनुयात अतनीत, अतानीन्, अतनिष्यत् मे रूप होते है। क्रीञ् द्रव्यविनिमये धातु के निम्न रूप होते हैं जो खरीदने के अर्थ मे आया करते हैं—क्रीणाति, चिक्राय, क्रेता, क्रेष्यति, क्रीणातु अक्रीणात, क्रीणीयात, क्रीयात अक्रैषीत, अक्रेष्यत् । चुरस्तेये धातु के चोरयति, चोरया मास, चोरयित्वा, चोरयिष्यति, चोरयतु अचोरयत चोरयेत, चोर्यात, अचूचुरत्, अचोरयिष्यत । धातुओ के रूप दश गणो मे विभिन्न स्वरूप वाले हुआ करते हैं जिनके एक-एक धातु के उदाहरण एक एक रूप प्रत्येक लकार का लिख कर दिखा दिया गया है । जिन गणो के नाम भ्वादिगण, अदादिगण जुहोत्यादिगण, दिवादिगण, स्वादिगण, तुदादिगण, रुधादिगण, तनादिगण,

क्रयादिगण और चुरादिगण ये होते हैं। प्रत्येक गण में धातुओ के रूपो में कुछ परिवर्त्तन होता है। गणों के अतिरिक्त कुछ प्रक्रियाय हैं जिनमे अलग २ धातु से प्रत्यय लगाकर रूप बना करते हैं यथा—णि जन्त प्रक्रिया म प्रेरणार्थ होने पर भू धातु से णिच् प्रत्यय लगाने पर 'भवति' के स्थान मे भावयति। ऐसा रूप बना करता है और उसके रूप दशों लकारो म होते हैं। भवति का अर्थ 'होता है' तो भावयति का अर्थ होने की प्रेरणा देना है—यह हुआ करता है। सन्नन्त म इसी धातु का रूप 'बुभूषति' होता है। इसका अर्थ होने की इच्छा करता है, होना है। हे मुने। क्रिया का समभिहार जब होता है तो पण्डित 'बोभूयते' रूप का प्रयोग किया करते हैं। इसका अर्थ बारम्बार होना होता है ॥७६—७६॥

तथा यङ्लुकि बोभवीति च पठ्यते।
पुत्रीयतीत्यात्मनीच्छाया तथाचारेपि नारद।
अनुदात्तङितो धातो क्रिया विनिमये तथा ॥८०
निर्विशादेस्तथा विप्र विजानीह्यात्मने पदम्।
परस्मै पदमाख्यात शेषात् कर्तरि शाब्दिकै ॥८१
ञितस्वरितेश्च उभे यवव स्याद्भाव कर्मणो।
सौकर्यातिशय चैव यदा द्योतयितु मुने ॥८२
विवक्ष्यते न व्यापारो लक्षे कर्तुस्तदापरे।
लभते कर्तृता पश्य पच्यते ह्योदन स्वयम् ॥८३
साधुर्वासिश्छिनत्त्येव स्थाली पचति वै मुने।
धातो सकर्मकाद्भावे कर्मण्यपि ल प्रत्यया ॥८४

यङ्लुगन्त प्रक्रिया मे भू का ही 'बोभवीति' रूप होता है। अपनी आत्मा की इच्छा मे तथा आचारार्थ म भी हे नारद। पुत्रीयति रूप होता है। यह नाम धातु प्रक्रिया है अर्थात् नाम को ही धातु मान कर प्रत्यय होना है। पुत्र की अपनी आत्मा मे इच्छा

करता है या पुत्र की तरह आचरण करता है। ये अर्थ होते हैं। अनुदात्त जित धातु से क्रिया के विनिमय में भी उसी प्रकार से होता है ॥८०॥ हे विप्र ! उसी भाँति निविश आदि का भी आत्मनेपद जान लेना चाहिये। शाब्दिक अर्थात् व्याकरण शास्त्र के पण्डितों के द्वारा शेष से परस्मैपद जानना चाहिये और यह भी कर्त्ता में होता है ॥८१॥ और मित्स्वरितेत से भाव कर्म में दोनों ओर यक् हुआ करता है। हे मुने! जिस समय में जो कर्म का अतिशय द्योतित करता होता है तभी होता है ॥८२॥ कर्त्ता का लक्ष्य में व्यापार नहीं बतलाया जायगा उस समय में दूसरे कर्त्ता के पद को प्राप्त कर लिया करता हैं। देखो–ओदन स्वयं पकता है यही कर्म कर्त्तृ का उदाहरण है। यद्यपि ओदन पच् धातु का कर्म होता है किन्तु यहाँ पर कर्त्तृ पद प्राप्त कर लिया है ॥८३॥ हे मुने ! असि बहुत अच्छी तरह से छेदन करता है और इस तरह से स्थाली पाक करती है। सकर्मक धातु के भाव में (जहाँ केवल धातु के अर्थ का ही भान होता है उसको भाव कहा जाता है और जहाँ कर्म की प्रधानता होती है उसे कर्म कहते हैं) और कर्म में भी ल प्रत्यय हुआ करते हैं ॥८४॥

सकर्मेवा कर्मवाद्विप्र भावे वर्तरि कीर्तित ।
फल व्यापार योरेकनिष्ठतायाम कर्मक ॥८५
धातुस्तयोर्द्व भिभेदे सकर्मक उदाहृत ।
गौणे कर्मणि दुह्यादे प्रधाने नीहृकृष्वहाम् ॥८६
बुद्धि भक्षार्थयो शब्दकर्मणां निजेच्छया ।
प्रयोज्य कर्मण्यन्येषा ण्यन्ताना लादयोमत ॥८७
फल व्यापारयोर्धातुराश्रय तु तिडः स्मृता ।
फले प्रधान व्यापारस्तिङर्थस्तु विशेषणम् ॥८८
एधि तव्यमेधनीयमिति त्व य निदर्शनम् ।
भाव कर्माणि ट या स्यु ट त कर्तरि कीर्तिता ॥८९

कर्ता कारक इत्याद्या भूते भूतादि कीर्तितम् ।
गम्यादिगम्ये निर्दिष्ट शेषमद्यतने मतम् ॥६०

हे विप्र ! इसीलिये भाव और कर्त्ता में कीर्तित किया गया है। अब सकर्मक तथा अकर्मक की परिभाषायें बतलाई जाती हैं। जहाँ पर फल अर्थात् क्रिया का जो भी फल होता है वह और उस क्रिया का व्यापार यह दोनो ही एक ही में निष्ठित हुआ करते हैं वहाँ, पर ही समझ लेना चाहिये कि यह क्रिया अकर्मक है ॥८५॥ जिस जगह पर फल और व्यापार इन दोनों के धर्मियों की भिन्नता हो उसी धातु को सकर्मक धातु कहा गया है। कर्म भी दो प्रकार के हुआ करते हैं एक मुख्य कर्म और दूसरा गौण कर्म होता है। कुछ धातुयें द्विकर्मक भी होती हैं। दुह आदि धातुओं के गौण कर्म में और नी नीह आदि धातुओं के प्रधान कर्म में लकार होते हैं ॥८६॥ बुद्धि और भक्षार्थक धातुओं में शब्द कर्मको की अपनी इच्छा से तथा प्रयोज्य कर्म में अन्य जो व्यन्त आदि हैं उनके आदि प्रत्यय माने गए हैं।८७।फल और व्यापार इन दोनों के धातु का आश्रय होने पर तिङ् प्रत्यय कहे गये हैं। फल में प्रधानता है और जो व्यापार होता है वह तो तिङर्थ का विशेषण होता है।८८। एधिवृद्धौ धातु के एधितव्यम् एधनीयम्, ये दो उदाहरण कृत्य में अर्थात् कृदन्त प्रत्यय में निदर्शन दिये जाते हैं। भाव में, कर्म में कृत्य प्रत्यय होते हैं और क्त-यह कर्त्ता में कहा गया है ॥ ८६ ॥ कर्त्ता-कारक इत्यादि और भूत में भूतादि बताए गए हैं। गम्यादि गम्य में निर्दिष्ट किया गया है और शेष अद्यतन में माना गया है।६०।

अधिस्त्रीत्यव्ययीभावे यथाशक्ति च कीर्तितम् ।
रामाश्रितस्तत्पुरुषे धान्यार्थो यूपदारु च ॥६१
व्याघ्रभो राजपुरुषोदाशाण्डो द्विगुरुच्यते ।
पचगव दशग्रामी त्रिफलेति तु कीर्तित ॥६२
नीलोत्पल महापष्ठो तुल्यार्थं कर्मधारय. ।

अब्राह्मणो नञि प्रोक्तः कुंभकारादिकः कृता ॥६३
अन्यार्थे तु बहुव्रीहो ग्राम. प्राप्तोदको द्विज ।
पचगू रूपवद्भार्यो मध्याह्नः ससुतादिकः ॥६४
समुच्चये गुरु चेश भजस्तान्वाचये त्वट ।
भिक्षामान प नाचापि वाक्यमेवानयोर्भवेत् ॥६५
इतरेतरयोगे तु रामकृष्णौ समाहृतौ ।
रामकृष्ण द्विज द्वे द्वे ब्रह्म चैकमुपास्यते ॥६६

जहाँ पर अव्ययी भाव समास होता है अर्थात् किसी अव्यय (अधिकारी) शब्द के साथ समास होने पर जोकि अस्वपद विग्रह वाला हुआ करता है अर्थात् अपने पद के साथ जिसका समास में विग्रह नहीं होता है उसमें 'अधि स्त्री'–और 'यथा शक्ति' उदाहरण बताए गए हैं। जैसे शक्ति का अतिक्रमण न करके अर्थात् शक्ति के ही अनुसार जो कार्य किया जाता है वही 'यथाशक्ति' होता है। यह शब्द अव्ययीभाव समास होने पर पूरा ही अव्यय शब्द बन जाया करता है। दूसरा एक तत्पुरुष समास होता है। जिसके उदाहरण रामाश्रित', धान्यार्थ, यूपदारु व्याघ्रभी और राज पुरुष अक्षशौण्ड होते हैं। जहाँ पर विशेषण और विशेष्य का समास तुल्यार्थ में होता है वह 'कर्मधारय' समास कहा जाया करता है और जहाँ विशेषण संख्या वाचक होता है उसे द्विगु समास कहा जाता है। यथा–नीलोत्पल, महाषष्ठी यह कर्मधारय के उदाहरण हैं। पञ्चगवम्, दशग्रामी और त्रिफला यह द्विगु समास के उदाहरण है। अब्राह्मण, यह उदाहरण नञ् समास का है जहाँ पर 'न' के स्थान मे 'अ' ही शेष रहता है यह भी तत्पुरुष समास का एक विशेष भेद स्वरूप होता है। कुम्भकारादि भी कर्म तत्पुरुष के उदाहरण हैं ॥६१—६३॥ जहाँ पर समास में रहने वाले समस्त पद किसी अन्य अर्थ का संकेत किया करते हैं और उनके अर्थ की कोई प्रधानता नहीं होती है वहाँ पर 'बहुव्रीहि' समास

होता है और वह इस प्रकार से विशेषण हुआ करता है। यथा—'प्राप्तोदक ग्राम'—अर्थात् जिसको जल प्राप्त होगया है ऐसा ग्राम। यहाँ प्राप्तोदक शब्द ग्राम का विशेषण होता है। इसी तरह से पञ्चगु—रूपवद्भार्य, मध्याह्न और समुन्नादिः ये भी बहुव्रीहि समास के उदाहरण होते हैं ॥६४॥ अब द्वन्द्व समास के विषय में बतलाया जाता है। द्वन्द्व दो प्रकार का होता है। समुच्चयवाचक और दूसरा इतरेतर योग। यथा—'गुरु च ईश भजस्व' 'अध्यायने रवट' 'भिक्षामानयगां च' इन वाक्यों में समुच्चय द्वन्द्व होता है ॥६५॥ इतरेतरयोग द्वन्द्व में 'रामकृष्णौ समाहूतौ' हे द्विज! 'राम कृष्णम्' ये दो-दो शब्द हैं। इनमें एक की उपासना की जाती है।



॥ निरुक्त वर्णन ॥

निरुक्तं ते प्रवक्ष्यामि वेद श्रोत्रमनुत्तमम्।
तत्पञ्च विधं माख्यातं वैदिकं धातुरूपकम् ॥१
वर्णागमो वर्णविपर्ययश्च सर्वाविद्वर्णं विपर्यय।
विकारः यथापि वर्णाना वर्णनाश च संमत ॥२
तथा विकार नाशाभ्या वर्णाना यत्र नारद।
धातोर्योगातिशयो च सयोग परिकीर्तितः ॥३
सिद्धे वर्णागमः स सिंहो वर्णविपर्ययात्।
गूढोत्मा वर्णं विकृते वर्णनाशात्पृषोदर: ॥४
भ्रमरादिषु शब्देषु ज्ञेयो योगो हि पञ्चम।
बहुल छन्दसोऽत्युत्क्रमस्तु वाच्य पुनर्वसू ॥५
नभस्य: पृषतश्च तारास्वर्णादि मापि हि।
पर ध्वजदिगाप्यपि गतिमज्ञामना हि अ' ॥६
विभक्तिनो विपर्यासो यथा दध्ना जुहोति हि।

अभ्युत्सादयाम केतुच्छ्वनयीत्प्रमुखास्तथा ॥७

श्री सनन्दन जी ने कहा—अब मैं निरुक्त के विषय में बतलाऊँगा जो कि वेदश्रोत्र का एक उत्तम अङ्ग शास्त्र है। वेद के कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष और शिक्षा ये छै अङ्ग शास्त्र माने गये हैं। जिनका ज्ञान प्राप्त करना वैदिक को परमावश्यक है। वह निरुक्त पाँच प्रकार का कहा गया है जो वैदिक और धातु रूपक होता है। किसी स्थल पर तो वर्णों का आगम होता है—कहीं पर वर्णों का विपर्यय होजाया करता है। किसी स्थान पर वर्णों का विकार होजाता है और कहीं पर वर्ण का विनाश होता है ॥ १॥२ ॥ हे नारद ! जहा पर धातु का विकार और नाश के द्वारा योगानिशयी सयोग कहा गया है। वर्णागम से हस सिद्ध होता है—वर्ण विपर्यय से सिंह-वर्ण विकृति गूढोत्मा और वर्णनाश से पृषोदर सिद्ध होता है।३।४। भ्रमरादि शब्दो मे पञ्चम योग जान लेना चाहिए। "बहुल छन्दसि—यह कहा गया है। यहाँ पर पुनर्वसू वाच्य है। अपरस्मैपद में भी ममस्वद और वृषण ही होते हैं। पर व्यवहिता भी गति सज्ञा वाले हैं। वही दिखाते हैं आ विभक्तियों का विपर्यास होता है जैसे–दधना जुहोति। अभ्युत्सादयाम केतु छ्वनयीत तथा प्रमुख निष्ट्वर्याञ्चा तयोक्त गृभाय इत्यादिक हैं ॥ ३–७ ॥

सुप्तिङ्-पग्रहीलगनराणा कालहल् च स्वर कर्तृ यडा च ।
व्यत्ययमिच्छति शास्त्रकृदेषा सोपि च सिद्धयति वाहुलकेन ॥८
रात्री विम्वी च कद्रूश्चाविष्ट्वो वाजसनेयिन ॥९
कर्णभिश्च यशोभाग्य इत्याद्याश्चतुरक्षरम् ।
देवासोयो सर्वदेवतात्वावत इत्यपि ॥१०
उभयाविनमाद्याश्च प्रलयाद्याश्च स्तृच तथा ।
अपस्पृधेथा नो अव्यादायो अस्मान् मुखास्तथा ॥११
समर्थ्यास्थापदी ऋत्व्योरजिष्ट च तिपचकम् ।

हिरण्यये न नर च परमे व्योमनित्यपि ॥१२
उर्वियास्वप्रया वारवष्वादद्हुवेवधी ।
यजर्ध्वनमेमसि च स्नात्वी गत्वा पवास्य भो ॥१३
गोना चापरिहृवाश्चतुतुरिग्रं सितादिका ।
पश्येदतत् वभूधापि प्रमिणातित्यवीवृधत् ॥१४

सुप्—तिङ्—उपग्रह, लिङ्ग नर और काल, हल्, स्वर, कर्त्ता यङ् इनका शासन कर्त्ता व्यत्यय चाहता है वह भी बाहुलक के द्वारा सिद्ध हो जाता है ॥८॥ रामी विम्बी, कङ्, अभिप्ट्व, वाज सनेयिन कर्णेभि, मणोगाथ, इत्यादि चतुरक्षर हैं। वेमासोम, सवदेवता, भतित्वावत स था होते हैं।९॥१०॥ उमयावित, माता प्रमयाया, रतूच तथा अपस्तृ-धेयां, आ—अवद्याय अम्मानमुञ्चत्तम्यों स्यात्वी, महाम्यो रजिष्ट और मिष्म्नयम् हिरण्ययेन नर, परमे व्यमनि भी होते हैं ॥ ११॥१२ ॥ उर्विया, स्वप्नया, वार वत्वा दद्रुर वेवधी, यजध्वं, नममसि, स्नात्वी, गत्वा, पचास्य भो, गोना, अपरिहृवाश्रिति, अवीवृधद् ॥१३।१४॥

मित्रयुश्च दुरस्वा वा हात्वा सुधित मित्यपि ।
दधताद्या स्वतद्भिश्च समूवेति न भिष्य च ॥१५
प्रपाय च हरिवतेक्ष्णत मुर्धायतर ।
रथोतरो नसताद्या अम्नभु वरथा इति ॥१६
गृहाद्यादे परस्याध्यो श्रावयेत्यादिके प्लुन ।
धाभ्याश्च स्वतत्रात्यपोर्णीक्षिप्त्य च नभिष्टुन ॥१७
अमातुग श्रताबाहू स्यपोदन्नृमणा अपि ।
चतुर्विधात् बाहुलकात् प्रवृत्तरप्रवृत्तित ॥१८
विभाषयान्यथाभावतस्वं सिद्धयच्च वेदिनम् ।
भूवाद्या धातवो ज्ञेया परस्मैपदिनस्मृता ॥१९
एधाद्या आत्मनभाषा उदात्ता पदिपञ्चम्यता ।
अनादोपदविकच्च परस्मैपदिनो मुने ॥२०

शोकृपूर्वा द्विचत्वारिंशदुक्ता ह्यात्मने पदे ।
उदत्तेतस्तु पचाशत् फक्काद्या परिकीर्तिता ॥२१

मिमृधु, दुरस्वा, हास्वा, मुधितम् दधत्यर्थ, स्वदिष्ठ, सेमूवेति, धिष्व, प्रप्राय, हरिवतेक्ष्वत, सुर्पयितर, स्थौतरी, नसताद्या, अम्ज-भुविरयो—यह भी होते हैं ॥१५॥१६॥ ब्रूहि आवादे परस्याप्यो और भाव्य इत्यादि मे प्लुत होता है। दाश्वान्, स्वतवान् यापीमिभिष्टुत, मृभिष्टुत अभीषुण ऋतावादे, ग्दयोद नृमणा चार प्रकार के बाहुलक से प्रवृत्ति और अप्रवृत्ति से विकल्प के द्वारा अन्यथा शो कृ आदि हैं पूर्व मे जिनके ऐसी धातुऐ बयालीस कही गयी हैं और ये आत्मनेपद मे होती हैं। उदात्तेत फक्कादि पचास सख्या मे कीर्तित की गयी हैं ॥२१॥

वर्चाद्या अनुदात्तेत एकविंशतिरीरिता ।
गुपादयो द्विचत्वारिंशदुदात्तेत समीरिता ॥२२
घिण्यादयोऽनुदात्तेतो दश प्रोक्ता हि शाब्दिके ।
अणादयोप्युदात्तेत सप्तविंशति धातव ॥२३
अमादय समुद्दिष्टाश्चतुस्त्रिंशदि शाब्दिके ।
द्विसप्ततिमिता मन्यमुखाश्चोदात्त बधना ॥२४
स्वरितेद्धावुधातुस्तु एक एव प्रकीर्तित ।
क्षुधादयोऽनुदात्तेतो द्विपञ्चाशदुदाहृता ॥२५
घुषिराद्या उदात्तेतोऽष्टाशीतिर्धातवो मता ।
द्युताद्या अनुदात्तेतो द्वाविंशतिरतो मता ॥२६
पितस्त्रयोदशा घटादिष्वेनुदात्तेत ईरित ।
ततो ज्वलदुदात्तेतो द्विपचाशत् मितास्तथा ॥२७
स्वरितेद्राज् सप्रोक्तस्तनहभ्राजृतस्त्रय ।
अनुदात्तेत आख्यातास्ता युदात्ता इत स्यमात् ॥२८

वर्चाद्य अनुदात्तेत होते हैं और सख्या मे इक्कीस बतायी गयी

हैं तथा गुणादि उनुदात्तेत होती हैं और बयालीस सख्या मे कही गयी हैं ॥२२॥ वैयाकरणो ने धिण्यादि धातुओ को अनुदात्तेत कहा है जो दश बतलायी गयी हैं। अयादि भी उदात्तेत होती हैं जो कि सत्ताईस होती हैं ॥२३॥ शब्दिको के (व्याकरण के पण्डितो के) द्वारा अपादिक चौंतीस कही गयी हैं। उदात्त व घव वाली मव्य प्रमुख धातुऐ बहत्तर सख्या वाली बतायी गयी हैं ॥२४॥ स्वरिते सद्धावु धातु केवल एक ही कीर्त्तित की गयी हैं। क्षुधादि धातुयें अनुदात्तेत हैं और बावन सख्या मे कही गयी है ॥२५॥ घुषिरादि धातुयें उदात्तेत हैं और अट्ठासी सख्या म मानी गयी है। द्युतादि अनुदात्तेत है और सख्या म बाईस हैं। फिर घटोदश हैं और घटादि मे अनुदात्तेत कहा गया है। इस के अनन्तर ज्वरम् उदात्तेत हैं और बावन सख्या म मानी गयी हैं ॥ २६ ॥ २७ ॥ राजृ स्वरितेत कही गयी है और स्तनह भाजृ स तीन है। आख्यातामा अनदात्तेत हैं और इत स्मा से उदात्त हैं ॥२८॥

सहोनुदात्तेदेवस्तुरमैपोऽप्यात्मने पदी ।
मदम्नय उदात्तेता कुचद्रश्चा उदात्त इत ॥२६
स्वरितेत पचत्रिंशद्विकक्षाद्याश्च तत परम् ।
स्वरितेच्छिक्षाभृन्नाद्याश्चत्वार स्वरितेत्तत ॥३०
घेट परस्मैपदिन षट्चत्वारिंशदुदीरता ।
अष्टादश हिमहाद्यास्तु आमरनेपदिनो मता ॥३१
ततस्त्रपोऽनुदात्तेत पूङाद्या परिकीर्तिता ।
हुपरस्मैपदी चात्मने भापा स्तुशपातय ॥३२
रभद्यद्वयनुदात्तेनो ञिश्विदादात्त इन्मत ।
परस्मैपदिन पच दशसम्भ्वादयस्तथा ॥३३
िाधातुरुदात्तेऽच दानशानौभयात्मनौ ।
स्वरितेत पचाद्या परस्मैपदिनो मता ॥३४
स्वरितेतश्चयश्चैतौ यदवचौ परिभाषणौ ।

म्वाद्या एते षडधिक ससस धातवो मताः ॥३५

एक सह अनुदात्तेत है और तुरम एक आत्मनेपदी है। सद तीन हैं और उदात्तेत हैं कुचादि उदात्तेत है ॥२६॥ पैंतीस स्वरितेत हैं और इनके अनन्तर शिञ मृञ आदि चार स्वरितेत होती हैं। पेट परस्मैपदी हैं और छयालीस कही गयी हैं। स्मिङ् प्रभृति अठारह हैं जो आत्मनेपदी मानी जाती हैं। इसके अनन्तर पूङ् आदि तीन अनुदात्तेत कीर्तित की गयी हैं इसके अनन्तर पूङ्गाद्य तीन अनुदात्तेत कही गयी हैं। हृ धातु परस्मैपदी है और स्पुगुणादि तीन आत्मनेपदी होती हैं ॥३०॥३१॥३२॥ रमचन्द्य अनुदात्तेत और जिविन्दा इत् उदात्त कहे गये हैं। मथा स्कम्भवादि पन्द्रह परस्मैपदी होती हैं ॥३३॥ कित धातु उदात्तेत होना है। दाम मान उभयात्मक होते हैं। पचादक स्वरितेत और परस्मैपदी कही गयी है ॥३४॥ ये दोनों वद वचो परिभाषिणी तीन स्वरितेत हैं। येम्वादि एक सहस्र छै धातुयें मानी गयी हैं ॥३५॥

परस्मैपदिनो प्रोक्ता वदाश्चपि हनेति च ।
स्वरितेतोद्वियाद्यास्तु च त्वारो धातवो मता ॥३६
अधिङ का समाख्यातो धातुश्चात्मनेपदी ।
इरादयोनुदात्तेतो धातवस्तु त्रयोदश ॥३७
आत्मनेपदिनो प्रोक्ता पूङ् शीङ् द्वौ शाब्दिकैर्मुने ।
परस्मैपदिन प्रोक्ता पुमुखा सप्त धातव ॥३८
स्वरिते दुर्णु आख्यातो धातुरेको मुनीश्वर ।
घुमुखास्त्रय उद्दिष्टा परस्मैपदिनस्तथा ॥३९
टुञ्चोकस्तु समाख्यात स्मृतो नारद शाब्दिकै ॥४०
अष्टादश राप्रभृतय परस्मैपदिन स्मृता ।
इङ् ङात्मने पदी प्रोक्तो धातुर्नारद केवल ॥४१
विदादयस्तु चत्वार परस्मैपदिनो मता ।

जिघ्वप्याये समुद्दिष्टः परस्मैपदिकस्तथा ॥४२

वद और हन् परस्मैपदी कही गयी हैं। द्विपादि चार धातुयें स्वरितेत मानी गयी हैं ॥३६॥ एक चक्षिङ् धातु आत्मनपदी कही गयी है। इरादि तेरह त्रयोदश धातुयें अनुदात्तेत होती हैं ॥३७॥ हे मुने! शाब्दिकों के द्वारा षूङ् और शीङ् ये दो धातुयें आत्मनेपदी बतलाई गयी हैं। प्रमुख सात धातुयें परस्मैपदी कही गयी हैं ॥३८॥ हे मुनीश्वर! ऊर्णुञ् एक धातु स्वरितेत है और युजिन में मुख्य है ये तीन धातुयें परस्मैपदी उद्दिष्ट की गयी हैं। हे नारद! वैयाकरणों के द्वारा जुन् यह एक धातु समाख्यात कही गयी है ॥ ३६॥४०॥ रा-प्रभृति अठारह धातुयें परस्मैपदी बताई गयी हैं। इङ्धातु केवल हे नारद! आत्मनेपदी कही गयी हैं ॥४१॥ विद् आदि चार परस्मैपदी मानी गयी हैं। जिघ्वयृशान को उसी भाँति परस्मैपदिक कहा गया है ॥४२॥

परस्मैपदिनश्चैव ते मयोक्ताः स्वभावयः ।
दीधीङ् वेवीङ् स्मृतौ धातू आत्मनेपदिनौ मुने ॥४३
प्रथादयस्त्रयश्चापि उदात्तेत्त प्रकीर्तिता ।
चर्करीत च ह्नुङ् प्रोक्तोऽनुदात्तेद्वाक् प्रकीर्तित ॥४४
त्रिसप्तति समाख्याता धातवोऽदादिवेगण ।
दादयोधातवो वेदा परस्मैपदिनो मत ॥४५
स्वरितं हृ भृञाख्यात उदात्तेद्वाक् प्रकीर्तित ।
माङ् हाङ् द्वावनुदात्तेतौ स्वरितेदान च धातुपु ॥४६
वाणितिरायास्त्रयश्चापि स्वरितेत उदाहृता ।
घुमुधा द्वादश तथा परस्मैपदिनो मता ॥४७
द्वाविंशतिरिहोद्दिष्टा धातवो ह्वादिके गणे ।
परस्मैपदिन प्रोक्ता दिवाद्या पंचविंशति ॥४८
आत्मने पदिनौ धातू पूङ् ढङ् द्वावपि नारद ।

ओदित पूड़्मुखाः सप्त आत्मने पदिनो मता ॥४६

हे मुने ! मैंने आपको स्यमादिको को परस्मैपदी ही बतलाया है किन्तु दी धोङ्-वेवीङ् दो धातुऐ आत्मनेपदी होती हैं ।४३। प्रवादि भी तीन धातुयें भी उदात्तेत कही गयी हैं । हे मुनिश्रेष्ठ ! चर्करीत और ह्युङ अनुदात्तेत कहे गये है ॥ ४४ ॥ अदादिगण मे तिहत्तर धातुयें कही गयी हैं । ह्रादि धातुऐ वेद परस्मैपदी मानी गयी हैं ॥ ४५ ॥ भृञ स्वरितेत कही गयी है और धाङ् उदात्तेत बतायी गयी है । भाङ्-हाङ् ये को धातुऐ अनुदात्तेत है और आतव धातुओ मे स्वेरितेत होता है ॥ ४६ ॥ कालिनिरादि भी तीन स्वरितेत कीर्तित की गयी हैं । घुमुख बारह धातुयें परस्मैपदी मानी गयी हैं ॥४७॥ स्वादिक गण मे यहाँ पर बाईस धातुयें उद्दिष्ट की गयी हैं । देवादि पच्चीस धातुये परस्मैपदी बताई गई हैं ॥ ४८ ॥ हे नारद ! पूङ् और हूङ् ये धातुये आत्मनेपदी कही गयी हैं । पूङ् प्रमुख है जिनमे ऐसी ओदित सात धातुएँ आत्मनेपदी मानी गयी हैं ॥४९॥

आत्मनेपदिनो विप्र दीङ्मुखास्त्विह कीर्तिता ।
स्यति प्रभृतयो वेदा परस्मैपदिनो मता ॥५०
जन्यादय पचदश आत्मनेपदिनो मुने ।
मृषाद्या स्वरितेतस्तु धातव पच कीर्तिता ॥५१
एकादश पदाद्यास्तु ह्यात्मनेपदिनो मता ।
राधो कर्मक एवात्र वृद्धो स्वादिषु रादिके ॥५२
उदात्तेतस्तुदाद्यास्तु त्रयोदश समीरिता ।
परस्मैपदिनोऽष्टात्र रध्याद्या परिकीर्तिता ॥५३
समाद्याश्चाप्युदात्तेत षट्चत्वारिंशदीरिता ।
चत्वारिंशच्छत चापि दिवादौ धातवो मत ॥५४
स्वाद्य स्वरितेतोऽष्टा धातव परिकीर्तिता ।

सप्तद्यातो दुर्नीतिस्तु परस्मैपदिनो मुने ॥५५
अष्टिघावनुदात्तेतोधातू द्वौ परिकीर्तितौ ।
परस्मैपदिनस्त्वथ तिवाद्यास्तु चतुर्दश ॥५६
द्वात्रिंशदात्तेत प्रोक्ता विप्रेन्द्र स्वादिके गणे ।
स्वरितेत षडाद्यातास्तुदाद्या मुनिसत्तम ॥५७

हे विप्र ! दीङ् प्रमुख धातुएँ यहाँ पर आत्मनेपदी बतायी गयी है और स्वमि प्रमुनि वेद परस्मैपदी मानी गयी है ॥५०॥ हे मुनिवर ! ऊँकादि पन्द्रह धातुएँ आत्मनेपदी होती है। मृषादि पाँच धातुएँ स्वरितेत कही गयी है ॥५१॥ पदादि ग्यारह धातुएँ आत्मनेपदी मानी गयी है। यहाँ पर राधो कर्मक ही है वृद्धि मे स्वादि तुरादिक मे है ॥५२॥ तुदादि तेरह धातुएँ उदात्तेत समीरित की गई है। एव तो चालीस धातुएँ दिवादिगण मे बतायी गयी है। यहाँ पर रधादि आठ धातुएँ परिकीर्तित की गयी है। शमादि छयालीस धातुएँ उदात्तेत कही गयी है ॥५३॥५४॥ स्वादि धातुएँ स्वरितेत बतायी गयी है। हे मुने ! दुनोति आदि धातु परस्मैपदी तथाद्यात की गयी है ॥५५॥ अष्टिघ दो धातुएँ अनुदात्तेत परिकीर्तित की गई है। तिवादि चौदह धातुएँ यहाँ पर परस्मैपदी कही गयी है ॥५६॥ हे विप्रेन्द्र ! स्वादिगण मे बत्तीस धातुएँ बतायी गयी है। हे मुनि सत्तम ! तुदादि छः धातुएँ स्वरितेत कही गयी है ॥५७॥

अप्युदात्तेऽनुपीपूर्वा आत्मनेपदिनोऽगंषा ।
शषाद्य उदात्तेत प्रोक्ता पर्याधिकम् शतम् ॥५८
मृधुं दात्तोद्दिष्टोऽदिष्टो धातुरेतो मुनीश्वर।
कृकुम्याप्येव चत्वार परस्मैपदिनो मता ॥५९
कुडाद्यात्तोऽनुदात्तोऽथ कुटाद्या मुनिमानदा ।
पृङ् मृङ् आत्मनेभाषौ षट् परस्मैपदे विप्रे ॥६०
आत्मनेपदिनौ धातू हङ् गृङ् द्वौ चाप्युदात्तौ ।

प्रच्छदिषोडशाख्यात परस्मैपदिनोमुने ॥६१
स्वरितेत षट् ततश्च प्रोक्ता मिलमुखा मुने ।
कृती प्रभृतयश्चापि पत्स्मैपदिनस्त्रय ॥६२
सप्त पचाशदधिकास्तुदादो धातव शतम् ।
स्वरितेतो रुधोनन्दा परस्मैभावित कृती ॥६३

जुषी पूर्व अनुदात्त त है और आत्मनेपदी है। वश्चादि एकसौ पाँच धातुए उदात्तेत कही गई है ॥ ५८ ॥ हे मुनीश्वर यहाँ पर गुरि यह एक ही धातु उदात्तेत उदिष्ट की गयी है। णू प्रमुख चार धातुएँ परस्मैपदी मानी गयी हैं ॥ ५६ ॥ कुङ अनुदात्तेत कही गई है और कुटादि पूर्ति को प्राप्त हो गई हैं। पृङ, मृङ दो आत्मनेपदी कही गई है और रिपि की छै परस्मैपदी होती है।६०। दङ, और धृङ, ये दो धातुएँ आत्मनेपदी कही गयी है। हे मुने ! प्रच्छ प्रभृति सोलह धातुएँ परस्मैपदी कही गयी हैं ॥ ६१ ॥ हे मुने ! मिल है प्रमुख जिनमे ऐसी छै धातुएँ स्वरितेत बतलायी गयी हैं। कृती प्रभृति भी तीन परस्मैपदी कही गई हैं ॥६२॥ तुदादि मे एकसौ सत्तावन धातुये हैं। रुध नन्दा स्वरितेत और परस्मैपदी भाषित की गई है ॥६३॥

ञिइधीतोनुदात्तेतस्त्रयो धातव ईरिता ।
उदात्तेत पिपपिपरधात्मा पर्वविंशति ॥६४
स्वरितेतस्ततो सप्त धातव परिकीर्तिता ।
मनुवन्वात्मनेभाषौ स्वरितेत् कृञ् उदाहृत ॥६५
ततो द्वौ कीर्तितौ विप्र धातवा दश शाब्दिवे ।
प्राद्या सप्तोभयेभाषा सौत्रा स्तम्भ्वादिवस्तया ॥६६
परस्मैपदिन प्रोक्ताश्चत्वापि मुनीश्वर ।
द्वाविंशतिरुदात्तेत क्र्याद्या धातवो मता ॥६७
वृङ्ङात्मनेपदो धातु श्र याद्याश्चैवविंशति ।
परस्मैपदिनश्चाथ स्वरितेत् ग्रह एव च ॥६८

क्र्यादिके पु द्विपंचाशद्धातवः कीर्तिता बुधैः ।
चुराद्या धातवो ज्यंताः षट्त्रिंशदधिकं शतम् ॥६६
चित्याद्यष्टादशाख्याता आत्मनेपदिनो मुने ।
पर्चाद्या आधृषीयास्तु ज्यंता वा परिकीर्तिता ॥७०

त्रि इन्धीत तीन धातुयें अनुदात्तेत कही गई हैं। शिप पिप इष प्रभृति पच्चीस धातुयें उदात्तेत होती हैं ॥६४॥ तनो सात धातुयें स्वरितेत परिकीर्त्तित की गई हैं। मनुवनु आत्मनेपदी हैं। स्तृञ् स्वरितेत उदाहृत की गई है ॥ ६५ ॥ हे विप्र ! दो धातु कीर्त्तित की गई है और शाब्दिकों के द्वारा दस धातुयें बतायी गई हैं कृयादि सात धातुयें उभयपदी हैं तथा स्तम्भादिक सौत्र हैं ।६६। हे मुनीश्वर ! ये चारो ही परस्मैपदी कही गयी है। क्रुध आदि बाईस धातुएँ उदात्तेत मानी गयी हैं ॥६७॥ वृङ्‌ङ् आत्मनेपदी धातु है और ग्रन्थ प्रभृति इक्कीस धातुये परस्मैपदी हैं और मह भी है। ये सब स्वरितेत हैं। ॥६८॥ बुध पुरुषों के द्वारा क्रयादिकों में बावन धातुये कीर्त्तित की गयी हैं। चुरादिक ज्यन्त धातुयें एक सौ छत्तीस हैं ।६६। हे मुनिवर ! चिनिप्रभृति अठारह धातुयें आत्मनेपदी आख्यात की गई हैं। पर्चादि आधृषीय अथवा ज्यन्त कीर्तित की गई हैं ॥७०॥

अदता धातवश्चैव चत्वारिंशत्तथाष्ट च ।
पदाद्यास्तु दश प्रोक्ता धातवो ह्यात्मने पदे ॥७१
सूत्रदा अष्ट चाप्यत्र ज्यंता प्रोक्ता मनीषिभि. ।
धात्वर्थं प्रातिपादिकाद्वहुलं चेष्ठन्मतम् ॥७२
तत्करोति तदाचष्टे हेतुमत्यपि णिर्यत. ।
धात्वर्थं कर्तृकरणाचित्राद्याश्चापि धातव. ॥७३
अष्ट सप्राप्त आख्यातोनुदात्तोऽच्छान्दिकैर्वुधैः ।
स्तोमाद्या षोडश तथा अदतस्य निदर्शनम् ॥७४
तथा धातुमयादन्ये सौत्राश्चि वंदिका. ।

सर्वे सर्वगणीयाश्च तथानेकार्थवाचिन ॥७५
सनाद्यता धातवश्च तथा,वं नाम धातव ।
एवमानत्यमुद्भाव्य धातूनामिह नारद ।
सक्षेपोय समुद्दिष्टो विस्तरस्तत्र तत्र च ॥७६
ऊद्दृदतयोति रुक्णुशीड् स्नुनुक्षुश्विडीड् श्रिभि ।
वृड् वृञ्भ्या च विनैकाचो जतेपु निहता स्मृता ॥७७

अवन्त धातुये अड्तालीस होती हैं। पदादि दश धातुये आत्मने पद मे बतलायी गई हैं ॥७१॥ यहाँ पर सूत्रधा आठ ञ्य त मनीषियो के द्वारा कही गई हैं। धात्वथ मे चेष्ठ के समान प्रतिपादिक से बहुल माना गया है॥७२॥ वह या वैसा ही करता है—तथा उस प्रकार की चेष्टा करता है—हेतुमान् में भी णि प्रत्यय माना गया है। धातु के अथ मे कत् करण वाली चित्राद्य भी धातुय हैं॥७३॥ शाब्दिक अर्थात् व्याकरण ज्ञाता बुध जनो के द्वारा प्रष्टु सप्राम अनुदात्तत कहा गया है। स्तोम आदि सोलह हैं तथा नद् त का निग्गान है।७४। उसी प्रकार से बाहुलय शब्द के होने से न्य सौत्र लौकिक और वदिक हैं। ये सब सभी गणो मे होने वाली हैं तथा अनेक प्रकार के अर्थों के भी बतलाने वाले हैं।७५। सन् प्रत्यय जनके अन्त मे होता है ऐसी सनाद्यन्त धातुये है और उसी भाँति से नाम धातुये भी हैं। नाम धातु का तात्पर्य यह है कि प्रतिपादित करो के नाम से जो धातुये बनाई जाती हैं वे नाम धातु के नाम से कही जाती हैं यथा दुख से दुखायते बन जाती है। हे नारद ! इस प्रकार से यहाँ पर धातुओ की अनन्तता को उद्भावित करके यह रम सक्षेप समुद्दिष्ट किया गया है और तहाँ तहाँ पर इसका विस्तार भी है।७६। अब कुछ धातुओ के नामो का उल्लेख किया जाता है—ऊद् न्त थतै यौ र रु दणु शीङ स्नु नु क्षु श्विड ईङ श्रिङ् और वृ र बिना एवं अच् वाली अज तों मे निहित कही गई हैं॥७७॥

शक्लृपच्मुच्रिच्वच्विच्सिच् प्रच्छित्यज्निजिरभज ।
भञ्ज्भुज्भ्रस्ज्मस्जिमज्युज्रुज्रञ्जविजिरस्वञ्जिसञ्ज् सृजं ॥७८
अद्क्षुद्खिद्छिद्तुदिनुद पद्यभिद्विद्यतिविनद् ।
शद्सदी स्विद्यतिस्स्कन्दिर्हदीक्रुधक्षुधि वुध्यती ॥७९
बन्धियुधिरुधीराधिव्यध्शुध साधिसिध्यती ।
मन्यहन्नाप्क्षिप्छुपितपजिपस्तृप्यतिदृप्यती ॥८०
लिव् लुव् वप्लप्स्वप्सृपियभरमलभगम्नम्यमोरभि ।
क्रुशिर्दंशिदिशी दृश्मृश्रिश्रुश्लिश्विश् स्पृश कृषि ॥८१
त्विप् तुप्द्विप्दुप् पुष्यापिप्विप्शुप्श्लिष्यतयोघसि ।
वसतिदहदिहिदुहोन् मिह् रुह् लिह् वहिस्तथा ॥८२
अनुदात्ता हलन्तेषु धातवो द्व्यधिकं शतम् ।
चाद्या निपाता गदय प्राद्या दिग्देशकालजा ॥८३
शब्दा प्रोक्ता ह्यनेकार्था सर्वलिंगा अपि द्विज ।
गणपाठ सूत्रपाठो धातुपाठस्तथैव च ॥८४

शक्लृ, पच्, मुच्, रिच्, वच्, विच्, सिच्, प्रच्छि, त्यज्, निजिर, भज्, भञ्ज्, भुज्, भ्रस्ज्, मस्जियज्, युज्, रुज्, रञ्ज, विजिर, स्वञ्जि, सञ्ज, सृज् । ७८ । अद्, क्षुध्, खिद् छिद्, तुद, पद्य, भिद्, विद्यति, विन्द्, शद् सदि, स्विद्यति, स्कन्दिर, हदी, क्रुध्, क्षुधि, बुध्, ।७९। बन्धि, युधि, राधि, रुधि, व्यध्, शुध्, साधि, सिद्धयति, मन्य, हने, आप्, क्षिप् छुपिन, तप्, तिप्, तृप्यति, दृप्यति ।८०। लिव् लुप्, वप् शप् स्वप्, सृपियम, रभ्, लभ्, गम्, नम्, यम, रम्, क्रुशि, दंशि, दिशि, दृश्, मृश्, रिश, रुश्, लिश्, विश्, स्पृश्, कृषि ॥८१॥ त्विप्, तुप् द्विप्, दुप्, पुष्य, पिष्, शिप् शुप्, श्लिष्य, तयोघासि, वस्, दह, दिह् दुह्, नह्, मह्, रुह्, लिह्, वहि ।८२। हलन्तों में अनुदात्त धातु एक सौ दो हैं । चाद्य निपात गदय हैं और दिग्देश कालज प्राद्य हैं ।८३। हे द्विज ! शब्द अनेक अर्थों वाले कहे गये हैं और सभी लिंगों वाले भी

होते हैं। गण पाठ, सूत्र पाठ और उसी भाँति धातु प ठ भी होता है ॥८४॥

पाठोनुनासिकाना च पारायणमिहोच्यते ।
शब्दा सिद्धा वैदिकान्तु लौकिकाश्चापि नारद ॥८५
शब्दपारायण तस्मात् कारण शब्द सग्रहे ।
लघुमार्गेण शब्दाना साधूना सनिरूपणम् ॥८६
प्रकृति प्रत्ययादेशलोपागममुखं कृतम् ।
इत्यमेतत्समाख्यात निरुक्त किंचदेव ते ॥८७
कात्स्न्र्येन वक्तुमान स्यात् कोपियक्तो न नारद ॥८८

अनुनासिको का पाठ यहाँ पर पारायण कहा जाया करता है। हे नारद ! सिद्ध शब्द वैदिक और लौकिक भी होते हैं।८५। इसी शब्दो के सग्रह मे शब्द पारायण कारण है। साधु शब्दो का लघु मा के द्वारा भली भाँति से निरूपण है ॥८६॥ वह निरूपण प्रकृति, प्रत्यय, आदेश, लाप और आगमो के द्वारा किया गया है। ह नारद! इस रीति से आपके सामने यह कुछ थोड़ा सा ही निरुक्त कहा गया है। इसकी अनन्तता होने के कारण से इसको पूर्ण रूप से कहने के लिये तो कोई भी समर्थ नहीं है।८७।८८।



॥ त्रिस्कन्ध ज्योतिष का गणित-स्कन्ध ॥

ज्योतिषाङ्गं प्रवक्ष्यामि यदुक्तं ब्रह्मणा पुरा ।
यस्य विज्ञान मात्रेण धर्मसिद्धिर्भवेन्नृणाम् ॥१
त्रिस्कन्ध ज्योतिष शास्त्र चतुर्लक्षमुदाहृतम् ।
गणित जातक विप्र संहिता स्कन्ध संज्ञितम् ॥२
गणिते परिकर्माणि खगमध्यस्फुटक्रिये ।
अनुयोगश्चन्द्रसूर्यग्रहण चोदयास्तकम् ॥३

छाया शृङ्गोन्नतियुती पातसाधनमीरितम् ।
जातके राशिभेदाश्च ग्रहयोनिवियोनिजे ॥४
निषेकजन्मारिष्टानि ह्यायुर्दायो दशाक्रम ।
कर्माजीव चाष्टवर्गो राजयोगाश्च नाभसा ॥५
चन्द्रयोगा प्रव्रज्याख्या राशिशील च दृक्फलम् ।
ग्रहभाव फल चैवाश्रय योग प्रकीर्णके ॥६
अनिष्टयोगा स्त्रीजन्मफल निर्याणमेव च ।
नष्ट जन्म विधान च तथा द्रेष्काण लक्षणम् ॥७

श्री सनन्दनजी ने कहा-श्रीब्रह्माजी ने प्राचीनकाल में वर्णन किया था उस ज्योतिष के एक अङ्ग का मैं अब वर्णन करूँगा जिससे केवल विज्ञान के द्वारा मनुष्यो के धर्म की सिद्धि होजाया करती है ॥१॥ यह ज्योतिष शास्त्र तीन स्कन्धों वाला होता है अर्थात् यह मुख्य तीन प्रकरणो मे बतलाया गया है जो चार लाख श्लोको वाला है-ऐसा कहा गया है । उन तीनो स्कन्धो के नाम जातक-गणित और संहिता हैं। कुछ विद्वानो के मत मे पाँच स्कन्ध भी माने गये है जिनमे स्वरोदय और सामुद्रिक भी आजाते हैं ॥२॥ गणित स्कन्ध ही वास्तव मे सिद्धान्त भाग है । इसमे परिकर्म अर्थात् जोड़-बाकी-गुणा-भाग-वर्ग-वर्गमूल और घन आदि सभी हैं जिनके द्वारा ग्रहो के स्पष्ट करने की रीति बतायी गयी है । तथा देश, दिशा और काल का ज्ञान एवं सूर्य-सोम का ग्रहण इनका उदयास्त, छायाधिकार, चन्द्र शृंगान्नति, ग्रह युति, पात और सूर्य-चन्द्र के क्रान्ति-साम्य का वर्णन किया गया है ॥३॥ जातक का ही होरा स्कन्ध कहा जाता है । इसमे राशियो के भेद,ग्रहों की जाति, रूप, गुण, भेद आदि तथा मानवेतर जन्मफल, गर्भाधान, जन्म, अरिष्ट, आयु दशाक्रम, आजीविका, अष्टकवर्ग, राज-योग, नाभसयोग, चन्द्रयोग, प्रव्रज्या योग, राशिशील, ग्रहो की दृष्टि का फल, ग्रहभाव फल, आश्रय योग, प्रकीर्ण, अनिष्ट योग, स्त्री जातक

कम मृत्यु का विचार, नष्ट जन्म विधान अर्थात् न जाने हुये जन्म के काल के ज्ञान का विचार और द्रेष्काण के लक्षण आदि समस्त विषयों का वर्णन किया गया है ॥४—७॥

सहिता शास्त्ररूपं च ग्रहचारोऽब्दलक्षणम् ।
तिथि वासर नक्षत्र योग तिथ्यर्द्ध संज्ञका ॥८
मुहोर्तोपग्रहा सूर्य संक्रान्तिर्गोचर क्रमात् ।
चन्द्र तारा बल चैव सर्व लग्नार्त वाह्वय ॥६
आधान पु ससीमन्त जात नामान्न भुक्तयः ।
चौल कर्णच्छिदा मौञ्जी क्षुरिका बन्धने तथा ॥१०
समावतन वैवाह प्रतिष्ठासद्म लक्षणम् ।
यात्रा प्रवेशनं सद्योवृष्टि कर्म विलक्षणम् ॥११
उत्पत्ति लक्षण चैव सर्व सक्षेपतो ब्रुवे ।
एक दशशत चैव सहस्रायुत लक्षणम् ॥१२
प्रयुत कोटि संज्ञा चार्बुदमब्ज च खर्वकम् ।
निखर्व च महापद्म शंकुजलधिरेव च ॥१३
अन्त्य मध्य परार्द्ध च सज्ञा दशगुणोत्तरा ।
क्रमदुत्क्रमतो वापि योग कार्योऽन्तर तथा ॥१४

अब तृतीय संहिता स्कन्ध के स्वरूप का वर्णन किया जाता है। इस स्कन्ध में ग्रहों की गति-वर्ष का लक्षण, तिथि दिन नक्षत्र, योग करण मुहूर्त उपग्रह-सूर्य, का सङ्क्रमण-ग्रहगोचर चन्द्र तथा, तारा बल समस्त लग्नों का विचार ऋतुदर्शन विचार गर्भाधान पुंसवन-सीमन्तो नयन, जातकर्म, नामकरण, अन्नप्राशन चूडाकरण—कर्णछेदन उपनयन मौञ्जी बन्धन अर्थात् वेदारम्भ क्षुरिका बन्धन समावर्त्तन विवाह प्रतिष्ठा गृह, लक्षण-यात्रा विचार-गृह प्रवेश तत्काल की वृष्टि का ज्ञान कर्मों की विलक्षणता और- उत्पत्ति का लक्षण प्रभृति विभिन्न विषयों का वर्णन मैं सक्षेप सही करूँगा।॥८—१२॥ अब

सर्व प्रथम गणित के विषय का विचार किया जाता है। एक-दश शत अर्थात् इकाई दहाई और सैकडा सहस्र (हजार)-अच्युत (दश हजार) लक्ष (लाख) प्रयुत (दश लाख) कोटि (करोड) अर्बुद (दश करोड) अब्ज (अरब)-खर्व (दश अरब)—निखर्व-(खर्व) महा पद्म (दश खर्व)—शङ्कु (नील) जलधि (दश नील) अन्त्य (पद्म) मध्य (दश पद्म) और परार्ध (शख) इत्यादि सख्या के बतलाने वाली सज्ञायें हैं जोकि उत्तरोत्तर दश गुनी मानी गयी हैं। यथा स्थान पर स्थित अङ्को का जोड अथवा अन्तर (बाकी) क्रम से या व्युत्क्रम से करना चाहिये। तात्पर्य यह है कि इकाई या सैकडा की ओर से जोडा जाना चाहिये। इसी प्रकार से अन्तर भी होता है ॥ १३।१४॥

हन्याद्गुणे गुण्य स्यात्तं नैवोपान्तिमादिकान् ।
शुद्धयेद्धरो यद्गुणश्च भाजन्यात्तत्फल मुने ॥१५
समाङ्कघातो वर्ग स्यात्तमेवाहु कृति बुधा ।
अन्त्यात्तु विषमात्यक्त्वा कृति मूल न्यसेत्पृथक् ॥१६
द्विगुणेनामुना भक्ते फल मूले न्यसेत्क्रमात् ।
तत् कृति च त्यजेद्विप्र मूलेन विभजेत् पुन ॥१७
एव मुहुर्वर्गमूल जायते च मुनीश्वर ॥१८
समत्र्यङ्कहति प्रोक्तो घनस्तत्र विधि पदे ।
प्रोच्यते विषय पाद्म समे द्व च तत परम् ।
विशोध्य विषमात्त्याद् घन तन्मूलमुच्यते ॥१९
त्रिनिघ्न्याप्त मूलकृत्या सम मूले न्यसेत् फलम् ।
तत्कृति चान्त्यनिहितान् त्रिघ्नी चापि विशोधयेत् ॥२०
घन च विषमादेव घनमूल मुहुर्भवेत् ॥२१

गुणन अर्थात् गुणा में दो प्रकार की सख्या आती है जिसके मध्य में × ऐसा एक निशान दिया जाता है जो उन दोनों सख्याओं

का स्पष्ट स्वरूप प्रकट किया करते हैं। इस चिह्न के प्रथम जो सख्या होती है वह गुण्य कही जाती है और पीछे की सख्या को गुणक कहते हैं। भाग मे भी भाज्य-भाजक, भजनफल या लब्धि तीन वस्तुऐं होती हैं। अब वर्गमूल के निकालने की पद्धति को समझाया जाता है। दो समान अङ्कों के गुणन फल को ही वर्ग कहते हैं। विद्वान जन उसी को 'कृति'—इस नाम से भी कहा करते हैं।।१६।। पुन द्विगुणित मूल से सम अङ्क मे भाग देवे और जो लब्धि आवे उसका वर्ग विषय में घटा देना चाहिए और दूना करके पंक्ति मे रख देवे। हे मुनीश्वर ! इस प्रकार से बार बार करने पर पंक्ति का आधा वर्गमूल होता है।१७। अब घनमूल बतलाया जाता है—समान तीन अंकों के गुणन फल को ही 'घन' कहा जाता है। दाहिने के प्रथम अङ्क पर खड़ी लकीर के रूप म घन या विषम का चिह्न लगा देवें और उसके वाम भाग मे पार्श्व म रहने वाले दो अंकों पर पड़ी लकीर के रूप मे अघन या समका चिह्न लगा देना चाहिए। इसी रीति से अन्तिम अङ्क तक एक विषम (घन) और दो सम (अघन) के चिह्न लगाने चाहिये। विषम घन मे जितने सम घट सकें उतने घटा देवे चाहिए। उस काल को अलग रक्खे। उसका घन मूल लेकर उस घनमूल का वर्ग करे फिर उसको तीन से गुणा करे। जो लब्धि हो उसको अलग लिख कर रक्खे। तथा उससे आदि अङ्क मे भाग देना चाहिए। उस लब्धि का जो अलग थी उसका वर्ग करे और उसमें अन्त्य (प्रथम मूलाङ्क) एव तीन से गुणा करना चाहिए और उसके बाद मे उसे घटा देने एव अलग रक्खी हुई लब्धि के घन को अगले अङ्क मे घटा देवे। इसी प्रकार से बार २ करने पर घनमूल सिद्ध होजाया करता है।।१८ २१।

अन्योन्यहारनिहतौ हराशौ तु समच्छिदा।
लवा लवघ्नाश्च हरा हरदना हि सवणनम्।
भाग प्रभागे विज्ञय मुने शास्त्राथ चिन्तकै ॥२२

अनुबन्धेऽपवाहे चैकस्य चेदधिकोनक. ।
भागास्तलस्थहारेण हार स्वाशधिकेन तान् ॥२३
ऊनेन चापि गुणयेद्धनर्णं चिन्तयेत्तया ।
कार्यस्तुल्य हराशाना योगश्चाप्यन्तर मुने ॥२४
अहाररासौ रूप तु कल्पयेद्धरम प्यथ ।
अशाहतिश्छेदघातहृद्भिन्नगुणने फलम् ॥२५
छेद चापि लव विद्वन् परिवर्त्य हरस्य च ।
शेष कार्यो भागहारे कर्तव्यो गुणना विधि ॥२६
हराशयो कृती वर्गौ घनो घन विधी मुने ।
पदसिद्धयै पदे कुर्यादथो स्ख सर्वतश्च स्खम् ॥२७

भिन्न अङ्को के परस्पर जो हर से हर (भाजक) और अश (भाज्य) दोनो का गुणा कर देने से सबके नीचे बराबर हर होजाया करता है । भाग प्रभाग मे अश को अश से और हर को हर से गुणा कर देना चाहिये । भागानुबन्ध और भागापवाह मे यदि एक अक अपने अश से अधिक अथवा ऊन हो तो तलस्थ हर से ऊपर वाले हर को गुणा करना चाहिये । किसी भाग के जोडने का नाम 'भागानुबन्ध' कहा जाता है तथा घटाने को 'भागापवाह' कहते हैं । भागानुबन्ध एव भागापवाह मे यदि एक अङ्क अपने अश से ज्यादा या कम होवे तो तल मे रहने वाले हर को ऊपर मे रहने वाले हर से गुणित कर देवे । इसके अनन्तर अपने अश से ज्यादा ऊन किये हुये हर से अश को गुणित कर देना चाहिए। तात्पर्य यह है कि भागानुबन्ध मे हर अश का जोड करके और भागापवाह म हर अशका अन्तर करके ही करे ।२२-२४। ऐसा करने से भागानुबन्ध और भागापवाह का फल सिद्ध होजायगा । जिसके तल में हर नही होवे उसके नीचे एक हर की कल्पना कर लेनी चाहिये । भिन्न के गुणा करने के साधन में अश अश का गुणा करना तथा हर हर से गुणन से भाग देना चाहिए

॥२५—२६॥ भिन्नाङ्क के वर्गादि साधन मे यदि वग करना हो तो हर और अश दोनोका वग करे तथा घन करना अभीष्ट होतो दोना का घन करे। हे मुने! इसी प्रकार वगमूल निकालना हो तो दोनो का वग मूल और घनमूल निकालना हो तो भी दोनो का घनमूल निकालना चाहिये। यथा–३/७ का वग होता है ६/४६ मल हुआ। इस तरह से ३/७ का घन २७/३४३ और मूल ३/७ हुआ है ॥२७॥

छेद गुण गुण छेद वर्ग मूल पद कृतिम्।
ऋण स्व स्वमृण कुर्याद्दृश्ये राशिप्रसिद्धये ॥२८
अथ स्वांशाधिको न तु लवाढ्यो नो हरो हर।
अशस्त्वविकृतस्तत्र विलोमे शेषमुक्तवत् ॥२६
उद्दिष्टराशि राक्षुण्णोहृतोऽशा रहितौ युत।
इष्टघनष्टमेतेन भवत राशि तु सक्रम ॥३०
योगोऽन्तरेणोनयुतोर्धितो राशीरितीरितम्।
राश्य तरहृत वर्गा तर योगस्ततश्च तौ ॥३१
गजघ्नाष्टकृति०र्यैका दलिता चेष्टभाजिता।
एकोऽस्य वर्गो दलित सैको राशि परो मत ॥३२
द्विगुणेष्टहृत रूप सेष्ट प्रागरूपक परम्।
वगयोगा तरे व्येके राश्योवर्गौ स्त एतयो ॥३३
इष्टवर्गकृतिश्चेष्टघनोऽभ्घ्नौ च सरूक।
आद्य स्यातामुभे व्यक्ते गणितेऽव्यक्त एव च ॥३४

विलोम विधि से राशि का ज्ञान प्राप्त करनेके लिए दृश्य म हर को गणक गणक कोहर वग को मल मूल को वग ऋण को धन और धन को ऋण बना कर अंत मे उल्टी क्रिया करने पर राशि की इष्ट सख्या सिद्ध होती है। यह विशेषता होती है कि जहा पर अपना अंश जोडा गया हो वहाँ पर हर को अंश मे जाड कर हर की कल्पना करे तथा जहाँ अपना अश घटाया गया हो वहाँ हर मे अंश को घटा

कर हर की कल्पना करनी चाहिए और अश जैसा का तैसा ही रहना चाहिए । फिर दृश्य राशि मे विलोम क्रिया उक्त रीति से करे तो राशि सिद्ध हुआ करती है ॥२८।२६॥ अभीष्ट सख्या जानने के लिये इष्ट राशि की कल्पना कर लेनी चाहिए । फिर जो प्रश्न करने वाले का कथन है। उसी के अनुसार उस राशि का गुणा करे अथवा भाग देवे । कोई अश घटाने या जोड़ने को कहा गया हो तो उसको घटा देवे तथा जोड़ देवे । तात्पर्य यह है कि प्रश्न में जो भी क्रियाऐं बनायी गयी हों वे सब इष्ट राशि मे करके फिर जो राशि निष्पन्न होवे उससे कल्पित इष्ट गुणित इष्ट से भाग देवे । उसमे जो भी लब्धि हो वही इष्ट राशि होती है ॥३०॥ सक्रमण - गणित मे यदि दो सख्याओ के योग और अन्तर का ज्ञान होगया है तो योग को दो स्थानो पर लिखे और एक जगह अन्तर को जोड कर उसका आधा करे तो एक सख्या का ज्ञान होगा और दूसरी जगह अन्तर को घटा कर आधा करे तो दूसरी सख्या ज्ञात होगी । इस रीति से दोनो सख्यायें ज्ञात होजाया करती हैं। वर्ग के सक्रमण मे यदि दो सख्याओं का वर्गान्तर तथा अन्तर का ज्ञान हो तो वर्गान्तर मे अन्तर से भाग देने पर जो लब्धि आती है वही उनका योग है। योग का ज्ञान होने पर पुन पूर्व मे कथित रीति से दोनो सख्याओ का ज्ञान प्राप्त करना चाहिये ॥३१॥ वर्ग कर्म गणित मे इष्ट का वर्ग करके उसको आठ से गुणा करे फिर उसमे से एक घटा कर और उसका आधा करे । इसके उपरान्त उसमे इष्ट से भाग देवे तो एक राशि ज्ञात होजायगी फिर उसका आधा करे और उसमे एक जोड देवे तो दूसरी सख्या ज्ञात होगी ।३२। या कोई इष्ट की कल्पना करके उसको फिर द्विगुणित इष्ट मे एक से भाग देकर लब्धि जो आवे उसमे इष्ट को जोड़ देवे प्रथम सख्या होगी तथा दूसरी सख्या १ होगी । यहाँ तो सख्यायें वे ही होगी जिनके वर्गों के योग और अन्तर मे एक के घटा देने पर

भी मन्नांद्ध ही शेष रहा करता है ॥३३॥ किसी इष्ट के वर्ग का वर्ग तथा पृथक् उसी का घन करके दोनो को अलग २ आठ से गुणा करे। फिर प्रथम मे एक जोड देवे तो दोनो सख्यायें ज्ञात होजायेंगी। यह विधि व्यक्त-अव्यक्त दोनो गणितो में उपयुक्त है ॥३४॥

गुणघ्न मूलोनयुते सगुणार्द्ध कृते पदम् ।
दृष्टस्य च गुणार्द्धोनयुत वर्गीकृत गुण ॥३५
यदा लवोनयुग्राशि दृश्य भागोनयुग्भुवा ।
भक्त तथा मूलगुण ताभ्या साध्योऽथ व्यक्तवत् ॥३६
प्रमागेच्छे सजातीय आद्यन्ते मध्यग फलम् ।
इच्छाघ्नमाद्यहृत्स्वेष्ट फल व्यस्ते विपर्ययात् ॥३७
पञ्चराश्यादिकेऽन्योन्य पक्ष कृत्वा फलच्छिदाम् ।
बहुराशिवधे भक्तेफल स्वल्पवधेन च ॥३८
इष्टकर्मविधेर्मूलच्युत मिश्रात्कलान्तरम् ।
मानघ्नकालश्चातीतकालघ्नफल सहृता ॥३९
स्वयोगभक्ता मिश्रघ्ना लम्प्रयुक्तदलानि च ॥४०
बहुराशिलाफात् स्वल्पराशिमासफल बहु ।
चेद्राशिजफल मासफलाहृतिहृत चय ।
क्षेपरमिश्रता क्षेपयोगभक्ता फलानि च ॥४१
भजेच्छिदहोऽशस्तैर्मिश्रं रूप कालश्च पूतिकृत् ।
गुणो गच्छेऽसमे व्येके समे वर्गोऽर्द्धिते-तत ॥४२
यद् गच्छान्त फला व्यस्त गुण वर्ग भव हि तत् ।
व्येक व्येकगुणाप्त च प्राग्घ्न मान गुणात्तरे ॥४३

गुणकम अपने इष्टाङ्क गुणित मूल से कम या युक्त होकर यदि कोई राशि दृश्य हुई हो तो मूल गुणक के आधे का वर्ग दृश्य सख्या से जोडकर मूल लेना चाहिये। उसमे क्रम से मूल गुणक के आधा जोडना तथा घटाना चाहिये यदि राशि मूलसे ऊन या मूल से युक्त होकर फिर

अपने किसी भाग से भी कम या युत होकर दृश्य होती होवे तो उस भाग को १ मे ऊन या युत करके और यदि भाग ऊन हुआ होवे तो घटा करके और यदि युत हुआ होवे तो जोड करके उसके द्वारा अलग-अलग दृश्य और मूल गुणकर्म भाग देनाचाहिये और फिर इन नवीन दृश्य तथा मूल गुणक मे से पूर्व की ही भाँति राशि का साधन करे ॥३५।३६॥ त्रैराशिक मे प्रमाण और इच्छा ये दोनो समान जाति के होते हैं। इनको आदि-अन्त मे रखना चाहिए। फल भिन्न जाति का है अतएव उसको बीच मे स्थापित करे। फल को इच्छा से गुणा करके प्रमाण के द्वारा भाग देने से लब्धि ही इष्ट फल हुआ करती है। यह क्रम त्रैराशिक का वर्णित किया गया है। जहाँ व्यस्त त्रैराशिक होता है वहा पर इसके विपरीत क्रिया की जानी चाहिये। तात्पर्य यह है कि प्रमाण फल को प्रमाण से गुणा करके इच्छा से भाग देने पर लब्धि ही हुआ करती है। प्रमाण, प्रमाण फल और इच्छा—इन तीन राशियों का जानकर इच्छा फल की जानने की क्रिया का ही नाम त्रैराशिक है ॥३७॥ इसी प्रकार से पंच-राशिक–सप्तराशिक–नवराशिक–एकादश राशिक आदि मे फल तथा हरों को परस्पर पक्ष मे परिवर्तित करके अर्थात् प्रमाण पक्ष वाले को इच्छा पक्ष में और इच्छा पक्ष वाले को प्रमाण मेरखकर अधिकराशियो के घातमे अन्य राशियो के घातसे भाग देने पर जो भी लब्धि आवेवही इच्छाफल है।३८।मिश्रधन को इष्ट मानकर इष्टकर्म से मूलधन का ज्ञान प्राप्तकर, उसको मिश्रधन मे घटानेसे कालान्तर(सूद)समझना चाहिए। अपने २ प्रमाण धन से अपने अपने काल को गुणा करना उसमे अपने अपने व्यतीत काल और फल के घात से भाग देना, लब्धि को पृथक रहने देना, उन सब मे उन्ही के योग का पृथक २ भाग देना तथा सबको मिश्रधन से गुणा कर देना चाहिये। फिर क्रम से प्रयुक्त व्यापार मे लगाये हुए धन खण्ड के प्रमाण ज्ञात होते हैं ॥ ३६ ॥ पञ्चराशिक आदि मे फल और हर को अन्योन्य पक्ष नयन करन से इच्छा पक्ष

मे फल के चले जाने से इच्छा पण बहुराशि और प्रमाण पक्ष स्वल्प राशि माना गया है। इसी गणित के उदाहरण मे अब इच्छा फल जानकर मूलधन जानना होगा तो फलो को परस्पर पक्ष मे परिवर्तन करने से प्रमाण पण (स्वल्प राशि) का फल ये बहुराशि (इच्छापण) से अधिक होगा। यहाँ राशिज फल को इष्टमास और प्रमाण फल के गुणन से भाग देने पर मूल धन होता है ॥४०॥ प्रक्षेप (पूँजी के टुकडे) को पृथक २ मिश्र धन से गुणा करना और उसमें प्रक्षेप के योग से भाग देना चाहिये। इससे क्रम २ फल ज्ञात होते हैं। वापी आदि पूरण के प्रश्न मे—अपने-अपने अशो से हर में भाग देना फिर उन सबके योग से १ म भाग देने पर वापी के भरने के समय का ज्ञान होता है। द्विगुण चयादि वृद्धि मे फल का साधन—अर्थात् जहाँ पर द्विगुण त्रिगुण आदि चय हो वहाँ पर यदि विषम सख्या ३, ५ ७ आदि हों तो उसमें से १ घटाकर गुणक लिखना चाहिये इस रीति से एक घटाने मे और आधा करने मे भी जिस समय मे विषमाङ्क हो तब गुणक चिह्न और जिस समय मे समाक होवे तो वग का चिह्न करना चाहिये इस प्रकार से जब तक पद को सख्या समाप्त न होवे तब तक करते ही रहना चाहिये। फिर अ तिम चिह्न से उलटा गुणन और वर्ग पल साधन करके आदि मे रहने वाले चिह्न तक जो फल हो उसमें १ घटा करके शेष मे एकोन गुणक से भाग देना चाहिए। लब्धि को आदि अक से गुणा करने पर सर्वधन होता है ॥४१–४३॥

भुजकोटिकृतेर्योगमूल कर्णश्च दोर्भवेत् ।
श्रुतिकोटिकृरतेन्त पर्द दो वर्गयोर्गयो ॥४४
विवराद् यत्पद कोटि क्षेत्रे त्रिचतुरस्रके ।
राश्योरन्तर वर्गेण द्विघ्ने घाते युते तयो ॥४५
वर्गयागोऽथ योगान्तर्हतिर्वर्गान्तर भवेत् ।
व्यास आकृतिसक्षुण्णोऽद्रयाप्त स्यात्परिधिर्मुने ॥४६

ज्याव्यास योगविवराहतमूलोनितोऽर्द्धित ।
व्यास शर शरोनाच्च व्यासच्छरगुणात्पदम् ॥४७
द्विघ्न जीवाय जीवार्द्ध वर्गे शरहृते युते ।
व्यासो वृत्ते भवेदेय प्रोक्त गणित कोविदै ॥४८

क्षेत्र व्यवहार का प्रकरण बतलाया जाता है—भुज और कोटि के वर्ग योग का मूल वर्ण हुआ करता है। भुज और वर्ण के वर्गान्तर का मूल कोटि होता है तथा कोटि एव वर्ण के वर्गान्तर का मूल भुज होता है—ये बाते त्रिभुज अथवा चतुर्भुज के क्षेत्र के लिये बतलायी गयी है। अथवा राशि के अन्तर वर्ग मे उन्हीं दोना राशियो का द्विगुणित घात (गुणन फल) जोड दिया जाय तो वर्ग योग होता है अथवा उन्ही दोनो राशियो के योगान्तर का घात वर्गान्तर होता है। ॥ ४४, ४५ ॥ हे मुने ! व्यास को बाईस से गुणा करना तथा सात से भाग देना चाहिए। इससे स्थूल परिधि का ज्ञान हुआ करता है ।४६। ज्या (जीवा) और व्यास का योग एक जगह पर ही रखना चाहिए। और अन्तर को दूसरी जगह पर रखना चाहिये। फिर इन दोनो का गुणा करे। उस गुणन का मूल ग्रहण करना और उसको व्यास म घटा देना चाहिए। फिर उसका आधा करे वही 'शर होगा। व्यास म शर को घटाना चाहिए। अन्तर को शर से गुणा करे, उसका मूल लेकर उसे दूना करना चाहिए। उस समय म 'जीवा' हो जायगी। जीवा का आधा करके उसका वर्ग करे, शर से भाग देवे और सन्धि मे शर को जोड देना चाहिए तब व्यास का मान होगा ॥४७, ४८॥

चापोनिघ्न परिधि प्रागाख्या परिधे कृते ।
सुर्याशेन शरघ्ने नाद्योनेनाद्य चतुर्गुणम् ॥४६
व्यासाघ्न प्रभजेद्विप्र ज्यका सजायते स्फुटा ।
ज्याङ्घ्रोयुक्तो वृत्तवर्गोऽङ्घ्रिघ्न व्यासाद्यमौर्विहृत् ॥५०
मद्योऽाप्त वर्गाऽङ्घ्रे पेदऽर्ण्णितिने धनु ।

स्थूल मध्याण्वन्नवेधो वृत्ताङ्काशेश भागिव ॥४१
वृत्ताङ्काश कृतिर्वेधनिघ्नी घनकरा मितौ ।
वारिव्यासहतं दैर्घ्यं वेधाङ्गुल हृत पुन ॥४२
खखेन्दुरामविहृत मान द्रोणादिवारिण ।
विस्तारायाम वेधानामङ्गुल्योऽन्योन्य ताडिता । ४३
रसाङ्काभ्रव्धिभिर्भक्ता धान्ये द्रोणादिका मिति ।
उत्सेदव्यास दैर्घ्याणामङ्गुलान्यश्मनो द्विज ॥४४
मिथोघ्नानिभजेत्खखेशैर्द्रोणादि मिति भवेत् ।
विस्ताराद्यङ्गुलान्येव मिथोघ्नान्ययसा भवेत् ॥४५

परिधि से चाप को घटाकर शेष मे चाप से ही गुणा करने गुणन फल प्रथम कहा जाता है। परिधि का वर्ग बनाना, उस चतुर्थ भाग ग्रहण करना, उसको पाँच से गुणा करके उसमे प्रथम घटा देना चाहिए, यह भाजक होगा। चतुर्गुणित व्यास को प्रथम गुणा कर देना, यह भाज्य हुआ। भाज्य मे भाजक से भाग देना—र जीवा हो जाती है। व्यास को चार से गुणा करके उसमे जीवा जोड़ देने से यह भाजक होता है। परिधि के वर्ग को जीवा के चतु भाग को पाँच से गुणा करने पर यह भाज्य होता है। फिर भाज्य भाजक मे भाग देने पर जो लब्धि आवे उसे परिधि वर्ग के चतुर्थांश घटा देवे और शेष का मूल ग्रहण करे उसे वृत्त (परिधि) के आधे घटा देने पर धनु (चाप) होता है ॥ ४६, ५० ॥ अब अन्नादि रा का व्यवहार बतलाया जाता है—राशि के व्यवहार मे अन्नराशियो स्थूल, मध्यम और सूक्ष्म को क्रमश उनकी परिधि का नवमांश, दश मांश और एकादशांश वेध होता है। परिधि का षष्ठांश ग्रहण क उसका वर्ग करना तथा उसका वेध से गुणा करना चाहिए। इसक नाम "घनहस्त" होता है। जल के व्यास (चौड़ाई) से लम्बाई क गुणा करना। फिर उसी को गहराई के अङ्गुल मान से गुणा करना ए

३१०० से भाग देना चाहिए। इस तरह से जल का द्रोणात्मक मान ज्ञात हो जाता है। चौडाई-गहराई और लम्बाई के अंगुलात्मक मान को परस्पर से गुणा करना और उसमे ४०९६ से भाग देवे तो अन्न का द्रोण आदि मान हो जायगा। ऊँचाई-चौडाई और लम्बाई के मान को जो अंगुलात्मक हो परस्पर मे गुणा करना और ११५० से भाग देवे तो पत्थर का द्रोण स्वरूप मान हो जाता है। विस्तार आदि अंगुलात्मक मान को परस्पर मे गुणा करना चाहिए तथा ५८१ से भाग देना चाहिए तो जो लब्धि हो वह लोहे के द्रोणात्मक मान की सूचना दिया करती है ॥ ५१-५५॥

वागेभमार्गणैर्लब्धं द्रोणाद्य मानमादिशेत् ।
दीपं शकुतलच्छिद्रघ्न शकुभी भवेत् मुने ॥५६
नरोनदीपकशिखौच्यभक्तो ह्यथ भोदधृते ।
शङ्कौ नृदीपाधश्छिद्रघ्ने दीपौच्च्य नराग्विते ॥५७
विशङ्कुदीपौच्च्य गुणा छाया शकूद्धृता भवेत् ।
दीप शक्वन्तर चाग्रच्छायाग्रविवरघ्नभा ॥५८
मानान्तरहृता भूमि स्यादथो भूनराहृति ।
प्रभाप्ता जायते दीपशिखौ च्च्य स्मात् त्रिराशिकात् ॥५९
एतत् सक्षेपत प्रोक्त गणिते त्र स्वर्गकम् ।
ग्रहमध्यादिक वक्ष्ये गणिते नातिविस्तरात् ॥६०
युगमान स्मृत विप्र खचतुष्करदार्णवा ।
तद्दशाशास्तु चत्वार कृताख्य पदमुच्यते ॥६१
त्रयस्त्रेता द्वापरो द्वौ कलिरेक प्रकीर्तित ।
मनु कृताब्द सहिता युगानामेव सप्तति ॥६२
विधेर्दिने स्यु विप्रेन्द्र ननवस्तु चतुर्दश ।
तावत्येव निशातस्य विप्रेन्द्र परिकीर्तित ॥६३

छाया माधा मे प्रदीप और शङ्कुतल का जो अंतर हो

उससे शकु को गुणा करना चाहिये और दीपक की ऊँचाई में शकु को घटाकर उससे उस गुणित शकु में भाग देने पर छाया का मान हो जाता है। शकु और दीप तल के अन्तर से शकु को गुणा करना और छाया से भाग देकर फिर उस लब्धि में शकु को जोड देने से दीपक की ऊँचाई हो जाया करती है। शकु रहित दीपक की ऊँचाई से छाया को गुणा करके शकु से भाग देवे तो शकु तथा द्रोण का अन्तर ज्ञात हो जाता है। छायाग्र के अन्तर से छाया को गुणा करे और छाया के प्रमाणान्तर से भाग देवे तो "भू" हो जायगी। भू और शकु का गुणा (घात) करे और छाया से भाग देवे तो दीपक की ऊँचाई होगी। ऊपर में बताई हुई इन सभी बातों का ज्ञान त्रैराशिक से ही होता है। यह परिकर्म गणित मैंने अति संक्षेप में बतला दिया है। अब ग्रह का जो मध्यादिक गणित होता है उसे मैं बतलाता हूँ वह भी संक्षेप में ही होगा अधिक विस्तार से नहीं बतलाया जायगा ॥ ५६—६० ॥ हे विप्रवर! सत्ययुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग इन चारों युगों का मिला हुआ मान तैतालीस लाख बीस हजार वर्ष बतलाया गया है। इसके दशांश में चार से गुणा कर देने पर सत्ययुग नामक पाद होगा। जिसका मान १७ लाख अट्ठाईस हजार वर्ष होता है। दशांश में तीन का गुणा करने पर १२९६००० वर्ष त्रेता नामक पाद होता है। दशांश में दो का गुणा करने पर ८६४००० वर्ष द्वापर नामक पाद होता है और उक्त दशांश को एक गुना ही रखने पर ४३२००० वर्ष कलियुग नामक पाद कहा जाता है। कृताब्द सहित (एक सत्ययुग अधिक) इकहत्तर चारों युगों की चौकडी का एक मन्वन्तर हुआ करता है। हे ब्रह्मन्! ब्रह्माजी के एक दिन में चौदह मनु हो जाया करते हैं और उतने ही मन्वन्तर उनकी एक रात में समाप्त हो जाते हैं। तात्पर्य यह है कि ब्रह्माजी के एक दिन और एक रात्रि में अट्ठाईस मन्वन्तर समाप्त हो जाया करते हैं।६३।

स्वयम्भुव. सृष्टिगतानब्दान्सपिण्ड्य नारद ।
खचरानयन कार्यमथवेष्टयुगादित. ॥६४
युगे सूर्यज्ञ शुक्राणा खचतुष्कदार्णवा ।
कुजार्किगुरु शीघ्राणा भगणा पूर्वयायिनाम् ॥६५
इन्दो रसग्निन्त्रिश्रीपुसप्त भूधरमार्गणा. ।
दस्त्रत्र्यष्टरसाङ्काक्षि लोचनानि कुजस्य तु ॥६६
बुधशीघ्रस्य शून्यर्तु खाद्रित्र्यङ्कनगेन्दव. ।
वृहस्पते खदस्राक्षिवेदपड् वह्नयस्तथा ॥६७
सितशीघ्रस्य पटसात्रियमाश्विखभूधरा ।
शनेर्भुजङ्गपट्पचरसवेनिशाकरा ॥६८
चन्द्रोच्चस्याग्निशून्याश्विवसुसर्पार्णवा युगे ।
वाम पातस्य वस्वग्निपमाश्विशिखिदस्रका ॥६९

हे नारद ! ब्रह्माजी के वर्त्तमान कल्प में जितने वर्ष व्यतीत हो गये हैं उन सबको एकत्रित करके ग्रहानयन अर्थात् ग्रह साधन करना चाहिए अथवा इष्ट युगादि से ग्रह साधन करे ॥ ६४ ॥ एक युग में पूर्व दिशा की ओर चलते हुए सूर्य्य, बुध और शुक्र इन तीनों ग्रहों के ४३२०००० भ्रमण हुआ करते हैं तथा मङ्गल, शनि और बृहस्पति के शीघ्रोच्च भगण भी उतने ही हुआ करते हैं ॥ ६५ ॥ एक युग में चन्द्र के भगण ५७७५३३३६ होते हैं। भौम के २२९६८३२, बुध के शीघ्रोच्च के १७९३७०६०, बृहस्पति के ३६४२२०, शुक्र के शीघ्रोच्च के ७०२२३७६, शनि के १४६५६८ तथा चन्द्रमा के उच्च के भगण ४८८२०३ होते हैं। चन्द्रमा के पात की व मगति सम्बन्धी भगणों की स २३२२३८ है ॥ ६६–६९ ॥

उदयादुदय भानोर्भूमिसावन वासरा ।
वसुद्व्यष्टाद्रिरूपाङ्कसप्ताद्रितिथयो युगे ॥७०
षड्वह्निविहुताशाङ्कतिथयश्चाधिमासका ।

तिथिक्षया यमार्थाश्विद्वधष्ट व्योम शराश्विन ।।७१
खचतुष्कसमुद्राष्टकुपञ्च रविमासका ।
षट् त्र्यग्नित्रयवेदाग्निपञ्च शुभ्राशुमासका ।।७२
प्राग्गते सूर्यमन्दस्य कल्पे सप्ताष्टवह्नय ।
कौजस्य वेदखयमा बौधस्याष्टर्तुवह्नय ।।७३
खखरन्ध्राणि जैवस्य शौक्रस्यार्थगुणेष व ।
गोऽग्नय शनिमन्दस्य पातानामथ वायत ।।७४
मनुदस्रास्तु कौजस्य बौधस्याष्टाष्ट सागरा ।
कृताद्रि चन्द्रा जैवस्य शौक्रस्याग्निखनन्दना ।।७५

सूर्य के एक उदय से दूसरे उदय पर्यन्त जो भी दिन का मान होता है उसे भौम वासर अथवा सावन वासर कहा जाता है। वे एक महायुग (चतुर्युग) मे १५७७९१७८२८ होते हैं। चान्द्र दिवस १६०३०००००८० होते हैं। अधिमास १५९३३३६ होते हैं। तिथिक्षय २५०८२२५२ होते हैं। रविमासो की संख्या ५१८४०००० है। चान्द्र मास ५३४३३३६ हैं। पूर्वाभिमुख गति के क्रम से एक कल्प मे सूर्य के मन्दोच्च भगण ३८७—मङ्गल के मन्दोच्च भगण २०४—बुध के मन्दोच्च ३६८—गुरु के मन्दोच्च ९००—शुक्र के मन्दोच्च ५३५ और शनि के मन्दोच्च भगण ३९ होते हैं। अब मङ्गल प्रभृति ग्रहो के पातो की विलोमगति (पश्चिम में गमन) के अनुरूप एक कल्प मे होने वाले भगणो का वर्णन किया जाता है। भौमपात [illegible] भगण २१४, बुध-पात के भगण ४८८ गुरुपात के भगण १७४, भृगुपात के भगण ९०३ तथा शनिपात के भगण ६६२ है ।।७०-७५।।

शनिपातस्य भगणा कल्पे यमरसर्तव ।
वर्तमान युगेयाना वत्सरा भगणाभिधा ।।७६
मासीकृतायुता मासैर्मधुशुक्लादिभिर्गतै ।
पृथक् स्यास्तेऽधिमासघ्ना सूर्यमास विभाजिता ।।७७
लब्धोधिमासकैर्युक्ता दिनीकृत्य दिनान्विता ।

द्विघ्नास्तिथिक्षयाभ्यस्ताश्चान्द्रवासरभाजिता ॥७८
लब्धोनरात्रिरहिता लङ्कायामार्द्धरात्रिकः ।
सावनो द्युगणः सूर्याद् दिनमासाब्दपास्ततः ॥७९
सप्तभिः क्षयितः शेषः सूर्याद्यो वासरेश्वरः ।
मासाब्ददिनसंख्याप्तं द्वित्रिघ्नं रूपसंयुतम् ॥८०
सप्तोद्धृतावशेषौ तौ विज्ञेयौ मासवर्षपौ ।
ग्रहस्य भगणाभ्यस्तो दिनराशिः कुवासरः ॥८१
विभाजितो मध्यगत्या भगणादिग्रहो भवेत् ।
एवं स्वशीघ्रमन्दोच्चा ये प्रोक्ताः पूर्वमायिनः ॥८२
विलोमगतयः पातास्तद्वच्चक्राद् विशोधिताः ।
योजनानि शतान्यष्टौ भूकर्णो द्विगुणानि तु ॥८३
तद्वर्गतो दशगुणात्पदं भूपरिधिर्भवेत् ।
लम्बज्याघ्नस्त्रिजीवाप्तः स्फुटो भूपरिधिः स्वकः ॥८४

वर्तमान युग में अर्थात् जिस युग में जिस समय में अहर्गण या ...िक का ज्ञान करना हो उस समय में सृष्टि आदि काल या युगादि काल से अब तक जितने वर्ष व्यतीत हो चुके हैं वे सूर्य के भगण होते हैं। भगण को बारह से गुणा करके मास बना लेने चाहिए। उसमें वर्तमान वर्ष के चैत्र शुक्ला प्रतिपदा से लेकर वर्तमान मास तक जितने भी मास व्यतीत हुए हों उन सबकी स० को जोड़कर योग फल को दो स्थानों पर रख और दूसरे स्थान में रखे हुए मास गण को उपयुक्त अधिमासों को जो भी संख्या हो उससे गुणा करके गुणन फल में युग के सूर्य मासों की संख्या से भाग देना चाहिए। फिर जो भी लब्धि हो उस अधिमास की संख्या मान करके और उसको प्रथम स्थान में स्थित मासों के गण में जोड़ देना चाहिए। यह योग फल चान्द्र मासों की संख्या का सूचक हुआ करता है। उस संख्या को फिर तीस से गुणा करें। यह

गुणन फल तिथियों की सख्या का सूचक हुआ करता है। इसमे वर्त्तमान मास की शुक्ल प्रतिपदा से इष्ट तिथि तक की सख्या को जोड देवे। इस जोड के दे देने पर चान्द्र दिन की सख्या ज्ञात होती है। इसको भी दो स्थलो पर रखे। दूसरे स्थान मे स्थित सख्या को युग के लिये कथित तिथि क्षय की सख्या [redacted] गुणा करना चाहिए। गुणन फल जो हो उसमे युग की चान्द्र दिन अर्थात् तिथि सख्या के द्वारा भाग देवे। जो भी लब्धि हो वही तिथि क्षय की सख्या है। उसको प्रथम स्थान मे स्थित चान्द्र दिन सख्या मे से घटा देवे तो अभीष्ट दिन का लङ्कार्द्ध रात्रि कालिक सावन दिन गण (अहगण) होता है। इससे दिवस पति मास पति तथा वर्ष पति का ज्ञान प्राप्त करे ॥ ७६–७६ ॥ जिस प्रकार से दिन गण मे ७ से भाग देने पर बचे हुए १ आदि सख्या [redacted] अनुसार रवि आदि वारो के पतियो को समझना चाहिए तथा दिन गण मे ३० से भाग देने पर लब्धि को २ से गुणा करके गुणन–फल मे १ जोड देना चाहिये। इसके पश्चात् उसमे ७ से भाग देकर १ आदि शेष होने पर रवि आदि मास पति समझ लेवे। इसी प्रकार से दिनगण मे ३६० से भाग देकर लब्धि को ३ से गुणा करे और गुणन फल मे १ जोड देवे फिर उसमे ७ से भाग देने पर १ आदि शेष सख्या के अनुसार रवि आदि वर्त्तमान वर्ष पति होते है। ८० ॥ अब मध्यम ग्रह ज्ञान के विषय मे बतलाया जाता है—युग के वास्ते वर्णित भगण की जो सख्या हो उससे दिनगण का गुणा करे। गुणन फल मे युग की कुदिन (सावन दिन) सख्या से भाग दिये जाने पर भगणादि ग्रह लङ्काध रात्रि कालिक होता है। इसी रीति [redacted] पूर्वाभिमुख गति वाले जो शीघ्रोच्च और मन्दोच्च बताये गये है उनके भगण के द्वारा उनका भी साधन होता है ॥ ८१, ८२ ॥ विलोम (पश्चिमाभिमुख) गति वाले जो ग्रहो के पात भगण कहे गये है उनके द्वारा इसी रीति से पात सिद्ध हो उनको बारहो राशियो म

घटा देने से शेष को मेषादि क्रम से राश्यादि पात समझना चाहिये अब भूपरिधि मान बतलाया जाता है—पृथिवी का व्यास १६०० योजन है। इसके वर्ग को १० से गुणा करके गुणन फल का मूल भूमध्य परिधि हुआ करता है अर्थात् वर्ग मूल की जो संख्या हो उतने योजन की पृथिवी की परिधि जाननी चाहिये। इस भूमध्य परिधि की संख्या को अपने-अपने लम्बांश ज्या से गुणा करके उसमें त्रिज्या (३४३८) से भाग देवे फिर जो लब्धि हो वह स्पष्ट भू परिधि की योजन संख्या होती है ॥ ८३–८४ ॥

तेन देशान्तराभ्यस्ता ग्रहभुक्ति विभाजिता ।
कलादि तत्फल प्राच्या ग्रहेभ्य. परिशोधयेत् ॥८५
रेखा प्रतीची संस्थाने प्रक्षिपेत्स्तु स्वदेशजा ।
राक्षसालयदेवौकः शैलयोर्मध्य सूत्रगा ॥८६
अवन्तिकारोहितक यथा सन्निहित सर ।
वारप्रवृत्ति प्राग्देशे क्षपार्द्धेऽभ्यधिके भवेत् ॥८७
तद्देशान्तर नाडीभि. पश्चादूने विनिर्दिशेत् ।
इष्टनाडीगुणा भुक्ति. षष्ट्या भक्ता कलादिकम् ॥८८
गते शोध्य तथा याज्य गम्ये तात्कालिको ग्रह ।
भचक्रलिप्ताशीत्यश परम दक्षिणोत्तरम् ॥८९
विक्षिप्यते स्वपातेन स्वकान्त्यन्तादनुष्णगु ।
तन्नवाश द्विगुणित जीवस्त्रिगुणित कुज ॥९०

अब यहाँ से देशान्तर संस्कार बतलाया जाता है—ग्रह की कलादि मध्य गति को देशान्तर योजन अर्थात् रेखा देश से जितने योजन पूर्व अथवा पश्चिम अपना स्थान हो उससे गुणा करे। जो गुणनफल हो उसमें "स्पष्ट परिधि योजन" के द्वारा भाग दिये जाने पर जो भी लब्धि हो वह कला आदि हैं। उस लब्धि को रेखा से पूर्व देश में पूर्व साधित ग्रह में घटा देने से और पश्चिम देश में जोड़ देने से स्वस्थानीय अर्ध

राशि कालिक ग्रह होता है ।८८। भेदादेश—लंका से सुमेरु पर्वत पर्यन्त याम्योत्तर रेखा के जो-जो देश (स्थान) हैं वे रेखा देश कहलाते हैं जैसे-उज्जयिनी रोहतक, कुरुक्षेत्र आदि ।८९। मध्य रात्रि-पूर्वक रेखा से पूर्व देश में रेखा देशीय मध्य रात्रि से देशान्तर घटी तुल्य पीछे और रेखा से पश्चिम देश में मध्य रात्रि देशान्तर घटी तुल्य पूर्व ही वार प्रवृत्ति (रवि आदि वारों का प्रारम्भ) होती है।९०। इष्टकाल में स्पष्ट ग्रह जानने की विधि—मध्यरात्रि से जितनी घटी पश्चात् ग्रह बनाना अभीष्ट हो तो उस समय के ग्रह की गति को गुणा करके उसमें गुणानम से ६० से भाग देकर लब्धि । गुणक लब्धि कला को पूर्व में साधित किये हुए ग्रह में जोड़ देने से तथा जितनी घटी मध्य रात्रि से पूर्व ग्रह बनाना हो तो है ।८९।९०।

ग्रह गुरु रंजा घातो. विदिश्यन्ते चतुर्गुणम् ।
राशि लिप्ताष्टमो भाग: प्रथम ज्यार्द्ध मुच्यते ॥९१
तत्तद्विभक्तलब्धोनमिश्रित तद् द्वितीयकम् ।
आद्यं नैव क्रमात्पिण्डान् भक्त्वा लब्धोन संयुताः ॥९२
खण्डकाः स्युः चतुर्विंशज्यार्द्धपिण्डाः क्रमादमी ।
परमापक्रमज्या तु सप्तरन्ध्रगुणेन्दव ॥९३
तद्गुणा ज्या त्रिजीवाप्ता तच्चाप क्रान्तिरुच्यते ।
ग्रह राशोध्य मन्दोच्चतथा शीघ्राद्विशोध्य च ॥९४

शेष केन्द्रपद तस्माद् भुजज्या कोटिरेव च ।
गताद् भुजज्यात्रिपमे गम्याकोटि पदे भवेत् ॥६५
युग्मे तु गम्याद्वाहुज्या कोटिज्या तु गताद् भवेत् ।
लिप्तास्तत्वमैर्भक्ता लब्ध ज्यापिण्डक गतम् ॥६६
गतगम्यान्तराभ्यस्त विभजेत्तत्वलोचनै ।
तदवाप्तफल योज्य ज्यापिण्डे गतसंज्ञके ॥६७
स्यात्क्रमज्या विधिरयमुत्क्रमज्यास्वपि स्मृत ।
ज्या प्रोह्य शेष तत्वाश्विहृता तद्विवरोद्धृतम् ॥६८

अब अभीष्ट जीवा साधन के लिये उपयोगी २४ जीवा साधन बताये जाते है—राशि कला १८०० का अष्टम भाग (२२५ कला) प्रथम जीवार्ध हुआ करता है। उसम प्रथम जीवार्ध से भाग लेकर लब्धि को प्रथम जीवार्ध में ही घटाकर शेष को प्रथम जीवार्ध म ही जोड देने से द्वितीय जीवार्ध होता है। इसी रीति से प्रथम जीवा से ही द्वितीय जीवा मे भाग देकर जो लब्धि हो उसको द्वितीय खण्ड म घटाकर शेष को द्वितीय जीवार्ध मे जोड देने से तृतीय जीवार्ध होता है। ऐसे ही आगे भी क्रिया करते जाने से क्रमश २४ जीवार्ध, सिद्ध हुआ करते है ।६१।६२। इस प्रकार से सूर्य की परम क्रान्ति ज्या १३६७ होती है। इस परम क्रान्ति ज्या से ग्रह की ज्या अर्थात् भुजज्या को गुणा करके त्रिज्या के द्वारा भाग देने से 'इष्ट-क्रा त्रिज्या' होती है। उसका चाप बनाने से 'इष्ट क्रान्ति (मध्यमा) कहलाया करती है ॥ ६३ ॥ अब भुजज्या और कोटिज्या बनाने की रीतिपर प्रकाश डाला जाता है—ग्रहो का अपने २ मन्दोच्चमे घटाने से शेष उस ग्रह का 'मन्द केन्द्र' तथा शीघ्रोच्च मे घटा देने से शेष उस ग्रह का 'शीघ्रकेन्द्र' कहा जाता है। उस राश्यादि केन्द्र की 'भुजज्या' और 'कोटिज्या' बनानी चाहिए। विषम अर्थात् १ ३ पद म 'गत' चापकी भुजज्या और 'गम्य चापकी जीवा 'भुजज्या' और 'गत चापकी जीवा

'कोटिज्या' होती है ।६४।६५। इष्टज्या की साधन विधि बतलाई जाती है—जितने राश्यादि चापकी जीवायना हो तो उसकी कला बना लेवे फिर उसमे २२५ से भाग देना चाहिए। जो भी लब्धि हो उतनी सख्या (सिद्ध २४ ज्या पिण्ड मे) गत ज्या पिण्ड की सख्या समझे। शेष कला को 'गत ज्या' तथा 'गम्य ज्या' के अ तर से गुणा करके २२५ से भाग देवे और लब्ध कलादि को 'गतज्या' पिण्ड म जोड देने से अभीष्ट ज्या' होजाती है। 'उत्क्रम ज्या भी इसी विधि से आया करती है। ।६६।६७। अब जीवा से चाप बनाने की विधि बतलायी जाती है—इष्ट जीवा की कलामे सिद्ध जीवा पिण्डो मे से जितनी सख्या वाली जीवा घटे उनको घटा देना चाहिए। शेष कला को २२५ से गुणा करके जो गुणनफल हो उसमे गत, गम्य जीवा के अ तर से भाग देवे। जो लब्धि कलादि हो उसको घटायी हुई सिद्ध जीवा सख्या मे गुणित २२५ मे जोड देने से इष्ट ज्या का चाप होता है ।६८।

सख्यातत्वाश्विसवर्गे सयोज्य धनुरुच्यते।
रवेम न्द परिध्यशा मनव शीतगो रदा ॥६६
युग्मान्ते विषमान्ते तु नखलिप्तो निवास्तयो।
युग्मान्तेऽर्थाद्रय खाग्निसुरा सूर्या नवार्णवा ॥१००
ओजे द्व्यगा वसुयमा रदा रुद्रा गजाब्धय।
कुजदीनामत शीघ्र या युग्मान्तेऽर्थाग्निदस्रका ॥१०१
गुणाग्निचन्द्रा खनगा द्विरसाक्षीणि गोऽग्नय।
ओजान्ते द्वित्रियमला द्विविश्वे यमपर्वता ॥१०२
खर्तुदस्र वियद्वेदा शीघ्रकर्मणि कीर्तता।
ओजयुग्मान्तरगुणा भुजज्या त्रिज्ययोद्धृता ॥१०३
युग्म वृत्त धनर्णं स्यादोजदूनाधिके स्फुटम्।
तद्गुणे भुजकोटिज्ये भगणाश विभाजिते ॥१०४
तद्भुजज्याफलधनुर्मान्द लिप्तादिक फलम्।

शीघ्र्य कोटिफल केन्द्रे मकरादौ धन स्मृतम् ॥१०५
सशोध्य तु त्रिजीवाया कर्क्यादौ कोटिज फलम् ।
तद्बाहुफलवर्गैक्यान्मूल कर्णश्चलाभिध ॥१०६

रवि और चन्द्र के मन्द परिध्यश—सम पद के अन्त मे सूर्य के १४ अश और चन्द्रमा के ३२ अश मन्द परिधिमान होते हैं। तथा विषम पद के अन्त मे २० कला कम अर्थात् सूर्य के १३।४० और चन्द्रमा के ३१।४० मन्द परिध्यश हैं।९८। मङ्गलादि ग्रहों की मन्द और शीघ्र परिधि—सम पदान्त मे मङ्गल के ७५, बुध के ३०, गुरु के ३३, शुक्र के १२, और शनि के ४९ तथा विषम पदान्त मे मङ्गल के ७२ बुध के २८, गुरु के ३२, शुक्र के ११ और शनि के ४८ मद परिध्यश हैं। इसी प्रकार समपद के अन्त मे मङ्गल के २३५, बुध के १३३, गुरु के ७०, शुक्र के २६२, और शनि के ३९ तथा विषम प न मे मङ्गल के के २३२, बुध के १३२, गुरु के ७२ शुक्र के २६० और शनि के ४० शीघ्र परिध्यश बताये गये हैं ॥१००—१०२॥ अभीष्ट स्थान मे परिधि स्थान—अभीष्ट स्थान मन्द या शीघ्र परिधि बनानी हो तो उस ग्रह की भुजज्या का विषम समपदान्त परिधि के अन्तर से गुणा करके जो गुणन फल प्राप्त हो उसमे त्रिज्या (३४३८) से भाग देकर जो भी कलादि प्राप्त हो उसको समपदान्त परिधि में जोड़ देने से या घटा देने से इष्ट स्थान मे स्पष्ट, मन्द या शीघ्र परिध्यश होते हैं। विषम पदान्तसे समपदान्त कम हो तो जोड़ देवे और अधिकहो तो घटा देना चाहिए।१०३। भुजफल, कोटिफल, साधन—इस रीति से स्वाधित स्पष्ट परिधिसे ग्रह की भुजज्या और 'कोटिज्या'को पृथक् २ गुणा करके भगणाश (३६०) से भाग देवे और लब्ध भुजज्या से भुज फल और कोटिज्या से कोटि फल होते हैं एव मन्द परिधि के द्वारा मन्द फल और शीघ्र परिधि के द्वारा शीघ्र फल समझ लेने चाहिए। यहाँ मन्द परिधि वश भुजज्या के द्वारा जो भी भुज फल प्राप्त हो उसका चाप बनाने से

मन्द बलादि फल होता है ।१०४। शीघ्र कर्ण साधन—पूर्वोक्त रीति से शीघ्र परिधि के द्वारा जो भी कोटि फल प्राप्त हो, यदि मकरादि केन्द्र हों तो उसको त्रिज्या (३४३८) में जोड़ देना चाहिए और कर्कादि के हों तो घटा देना चाहिए। जोड़ने पर या घटा देने पर जो फल हो उसके वर्ग में शीघ्र भुजफल के वर्ग को जोड़ देवे फिर उसका मूल ग्रहण करने से शीघ्र कर्ण होता है ॥१०५–१०६॥

> त्रिज्याभ्यस्त भुजफलं चलकर्ण विभाजितम् ।
> लब्धस्य चाप लिप्तादिफलं शैघ्र्यमिदं स्मृतम् ॥१०७
> एतदाद्ये कुजादीनां चतुर्थे चैव कर्मणि ।
> मान्दं कर्मैकमर्केन्द्वोः भौमादीनाम थोच्यते ॥१०८
> शैघ्र्यं मान्दं पुनर्मान्दं शैघ्र्यं चत्वार्यनुक्रमात् ।
> अजादिकेन्द्रे सर्वेषां शैघ्र्ये मान्दे च कर्मणि ॥१०९
> धनं ग्रहाणां लिप्तादि तुलादौ ऋणमेव तत् ।
> अर्कबाहुफलाभ्यस्ता ग्रहभुक्ति विभाजिता ॥११०

शीघ्र फल साधन—पूर्व कथित विधि से साधित शीघ्र भुजफल को त्रिज्या से गुणा करे और कर्ण के द्वारा भाग देवे । उससे जो कलादि लब्ध होवे,उसके चाप बनानेसे शीघ्र भुजफल मङ्गल होताहै ये शीघ्रफल प्रभृति ग्रहों में प्रथम तथा चतुर्थ कर्म में संस्कृत (धन या ऋण) किया जाता है ।१०७। रवि और चन्द्रमें केवल एक ही मन्द फल का संस्कार (धन या ऋण) किया जाता है । हे मुने । अब मैं मङ्गल आदि ५ ग्रहों के संस्कार का वर्णन करके बतलाता हूँ । उनमें प्रथम शीघ्र फल का, द्वितीय मन्द फल का, तृतीय भी मन्द फलका और चतुर्थ शीघ्र फलका संस्कार किया जाता है ॥१०८॥ संस्कार की विधि–शीघ्र या मन्द के द्र मेषादि (६ राशि के अन्दर) हों तो शीघ्र फल और मन्द फल जोड़े जाया करते हैं । यदि तुला आदि केन्द्र (छः राशियों से ऊपर) हों तो

घटाये जाया करते हैं । रविभुज फल संस्कार—प्रत्येक ग्रह की गति कला का पृथक पृथक सूर्य के मन्दफल कला से गुणा करके उसमें २१६०० के द्वारा भाग देने पर जो कलादि लब्धि हो उसको पूर्व साधित प्रथम कालिक ग्रहों में रविमन्द फल के समान संस्कार करना चाहिए । यदि मन्द फल धन हो तो धन ऋण हो तो ऋण करे । इस से स्पष्ट सूर्योदय कालिक ग्रह हो जाते हैं ।११०।

भचक्रकलिकाभिस्तु लिप्ता कार्या ग्रहेन्दुवत् ।
स्वमन्दभुक्तिसंशुद्ध मध्य भुक्ते निशापत ॥१११
ग्रहभुक्ते फल काय ग्रहवन्मन्दकर्मणि ।
दोर्ज्यान्तरगुणा भुक्तिस्तत्त्वनेत्रोद्धृता पुन ॥११२
स्वमन्द परिधिक्षुण्णा भगणाशोद्धृता कला ।
कर्कादौ तु धनं तत्र मकरादावृण स्मृतम् ॥११३
मन्दस्फुटोद्भूता भुक्ति प्रोज्मय शीघ्रोच्चभुक्तित ।
तच्छेष विवरेणाथ हन्यात् त्रिज्यान्त्य कर्णयो ॥११४
चलकर्ण हृत भुक्तौ कर्णे त्रिज्याधिके धनम् ।
ऋणमूनेऽधिके प्रोज्झ्य शेष वक्रगतिर्भवत् ॥११५

स्पष्ट ग्रह गति साधनार्थ गति फल—चन्द्रमध्य गति से चन्द्र मन्दोच्च गति को घटाकर उससे अर्थात् चन्द्र के द्रुतगति तथा अन्य ग्रहोंकी स्वल्पान्तर से अपनी २ गति से ही मन्द स्पष्ट गति साधन में फल का साधन करे । जैसे—उक्त गति अर्थात् चन्द्र की केन्द्र गति और अन्य ग्रहों की गति को दोर्ज्यान्तर अर्थात् भुजज्या तथा अन्य ज्या के अन्तर से गुणा करके उसको २२५ के द्वारा भाग देवे । लब्धि को अपनी अपनी मन्द परिधि से गुणा करके भगणांश ३६० के द्वारा भाग लेना चाहिए और जो कलादि फल की लब्धि हो उसको कर्कादि अर्थात् ३ से ऊपर ६ राशियों के भीतर केन्द्र हो तो मध्य गति में जोड़ देने से तथा मकरादि ६ राशि से ऊपर ६ राशि तक केन्द्र हो तो घटाने से मन्द स्पष्ट गति होती है ।

पुनः इस मन्द स्पष्ट गति को अपनी शीघ्रोच्च गति में घटा कर शेष को त्रिज्या तथा अन्तिम शीघ्र कर्ण के अन्तर से गुणा करे फिर पूर्व साधित शीघ्र कर्ण के द्वारा भाग देना चाहिए। उससे जो लब्धि कलादि हो उसको यदि त्रिज्या से अधिक हो तो मन्द स्पष्ट गति में जोड़ देने और अल्प हो तो घटाने से स्पष्ट गति होती है। यदि साधिता ऋण गतिफल मन्द स्पष्ट गति से अधिक हो तो उसी ऋण गतिफल में मन्द स्पष्टगति को घटा देना चाहिए जो भी बचे वह वक्रगति होती है। ऐसी स्थिति में वह ग्रह वक्रगति वाला रहा करता है ॥१११-११५॥

कृततुं चन्द्रैवेदेन्द्रै शून्यत्र्येकैर्गुणाष्टिभिः ।
शरुद्रैश्चतुर्थेषु केन्द्रांशैर्भू सुतादयः ॥११६
वक्रिणश्चक्रशुद्धैस्तैरंशैरुज्झन्ति वक्रताम् ।
क्रान्तिज्या विषुवद्भाघ्नी क्षितिज्या द्वादशोद्धृता ॥११७
त्रिज्यागुणा दिनव्यासभक्ता चाप चरासव ।
तत्कार्मुकदक्रान्तौ धनहीने पृथक् स्थिते ॥११८
स्वाहोरात्र चतुर्भागे दिनरात्रिदले स्मृते ।
याम्यक्रान्तौ विपर्यस्ते द्विगुणे तु दिनक्षपे ॥११९
भभोगोऽष्ट शतीलिप्ताः खाश्विशैलास्तथा तिथेः ।
ग्रहलिप्ता भभोगाप्ता भानि भुक्त्या दिनादिकम् ॥१२०
रवीन्दुयोगलिप्ताभ्यो योगा भभोगभाजिताः ।
गतगम्याश्च षष्टिघ्न्यो भुक्तयोगाप्तनाडिकाः ॥१२१

ग्रहों की वक्र केन्द्रांश संख्या—यदि मङ्गल अपने चतुर्थ शीघ्र केन्द्रांश १६४ में, बुध १४४ केन्द्रांश में, गुरु १३० केन्द्रांश में, शुक्र १६२ केन्द्रांश में और शनि ११५ केन्द्रांश में हो तो ये सब वक्रगति वाले होते हैं। अपने २ वक्र केन्द्रांश को ३६० में घटा देने से शेष के समान केन्द्रांश होने पर फिर मार्गी होता है ॥११६॥ काल ज्ञान के

विषय में बतलाया जाता है—रवि क्रान्ति ज्या को पलभा से गुणा करे जो गुणनफल हो उसमें १२ से भाग दे। लब्धि जो होती है वह कुज्या हुआ करती है। उस कुज्या को त्रिज्या से गुणा करना चाहिए। द्युज्या से फिर भाग देवे। द्युज्या क्रान्ति की कोटिज्या कही जाती है। लब्धि (चरज्या) के चाप बनाने से चरासु होते हैं। दीर्घ अक्षर के दशबार उच्चारण करने में जितना समय लगता है उतना समय एक असु कहा जाता है और ६ असु (प्राण) का एक पल होता है तथा ६० पल की १ घड़ी होती है। अतएव चरासु में ६ का भाग देने से पल बनाकर ही दिनमान का साधन करना चाहिए। उस चरासु को यदि उत्तर क्रान्ति हो तो १५ घड़ी में जोड़ देने पर दिनार्ध तथा १५ घड़ी में घटा देने पर रात्र्यर्ध हो जाता है। यदि दक्षिण क्रान्ति हो तो इस के विपरीत होता है अर्थात् १५ घड़ी में घटाने से दिनार्ध और १५ घड़ी जोड़ देने पर रात्र्यर्ध हो जाया करता है। दिनार्ध का दूना करने पर पूर्ण दिनमान तथा रात्र्यर्ध का द्विगुणित कर देने से रात्रिमान निकल आता है ॥११७-११९॥ अब नक्षत्र साधन बताते हैं—८०० कला का एक-एक नक्षत्र भोग और ७२० कला का एक-एक तिथि का भोग मान हुआ करता है। इसलिए इस समय में ग्रह किस नक्षत्र में है—यह ज्ञान प्राप्त करना हो तो राश्यादि ग्रह को कलात्मक बनाकर उसमें भभोग ८०० के द्वारा भाग देने से जो भी लब्धि हो उसके अनुसार अश्विनी आदि गत नक्षत्र समझ लेने चाहिए। अब कलादि से ग्रह की

जाति कला के योग से भाग देने से गत तथा गम्य घटी हो जाती है ॥१२१॥

अर्कोन चन्द्रलिप्ताभ्यस्तिथियो भोगभाजिता ।
गता गम्याश्च षष्टिघ्नो नाड्यो भुक्त्यन्तरोद्धृता ॥१२२
तिथयः शुक्ल प्रतिपदो याता द्विघ्ना नगोद्धृता ।
शेष ववो वालवश्च कौलवस्तैतिलो गरः ॥१२३
वणिजश्च भवेद्विष्टि कृष्णाभूतापराद्धं त ।
शकुनिर्नागश्च चतुष्पद किंस्तुघ्न मेव च ॥१२४
शिलातलेऽम्बुसंशुद्धे वज्रलेपेऽपि वा समे ।
तत्र शाकुयमुनैरिष्टं सम मण्डलमालिखेत् ॥१२५
तन्मध्ये स्थापयेच्छंकु कल्पनाद्वादशांगुलम् ।
तच्छायाग्र स्पृशेद्यत्र वृत्ते पूर्वापराद्धयो ॥१२६
तत्र बिन्दु विधायोभौ वृत्ते पूर्वापराभिधौ ।
तन्मध्ये तिमिना रेखा कर्त्तव्य दक्षिणोत्तरा ॥१२७
याम्योत्तरदिशोर्मध्ये तिमिना पूर्वपश्चिमा ।
दिङ्मध्यमत्स्यै संसाध्या विदिशस्तद्वदेव हि ॥१२८

तिथि में करण जानने की रीति बतलाते हैं—स्पष्ट चन्द्र में स्पष्ट सूर्य को घटाकर शेष राश्यादि की कला बनाकर इसमें तिथि भोग से अर्थात् ७२० से भाग देवे जो लब्धि है वह गत तिथि की संख्या होती है और शेष वर्त्तमान तिथि की गत कला है। उसको ७२० में घटाने से गम्य कला निकल आती है। गत और गम्यकला को पृथक् ६० से गुणा करके चन्द्र तथा रवि के स्पष्ट गत्यन्तर से भाग देकर लब्धि में क्रम से भुक्त और भोग्य घटी होती है। पश्चाङ्ग में वर्त्तमान तिथि के आगे भोग्य घटी ही लिखी जाया करती है ॥१२२॥ शुक्ल पक्ष की गत प्रतिपदा आदि तिथि की संख्या को दूना करके ७ के द्वारा भाग देना चाहिए। १ आदि शेष में क्रम से १ वव, २ बालव ३ कौलव, ४ तैतिल

१ गर, ६ वणिज ७ विष्टि (भद्रा)—ये करण वर्तमान तिथि के पूर्वार्ध में होते हैं। ये सात करण शुक्ल प्रतिपदा के उत्तरार्ध से कृष्ण १४ के पूर्वार्ध तक २८ तिथियों में आठ आवृत्ति करते हैं। इसी कारण ये ७ चर करण कहे जाते हैं। कृष्ण पक्ष १४ के उत्तरार्ध से शुक्ल प्रतिपदा के पूर्वार्ध तक क्रम से १ शकुनि २ नाग ३ चतुष्पद और ४ किंस्तुघ्न ये चार स्थिर करण हुआ करते हैं ॥ १२३।१२४ ॥

अब दिक्साधन बतलाया जाता है—जल से संशोधित शिला तल या बराबर भूमि ([illegible]) के द्वारा सम बनाये हुए भूतल में (जिस अंगुल मान से शङ्कु बनाया गया है उसी अङ्गुल मान से अभीष्ट त्रिज्यांगुल से वृत्त बनाकर उसके मध्य में स्थान द्वादश विभाग से बने हुए शङ्कु स्थापना करे। उस शङ्कु की छाया का अग्रभाग जिस पूर्वाह्न में जहाँ पर भी वृत्त परिधि में स्पर्श करे वहीं पर पश्चिम बिन्दु

जाति कला के योग से भाग देने से गत तथा गम्य घटी हो जाती है ॥१२१॥

अर्कोन चन्द्रलिप्ताभ्यस्तिथयो भोगभाजिता ।
गता गम्याश्च षष्टिघ्नो नाड्यो भुक्त्यन्तरोद्धृता ॥१२२
तिथय शुक्ल प्रतिपदो याता द्विघ्ना नगोद्धृता ।
शेष बवो बालवश्च कौलवस्तैतिलो गर ॥१२३
वणिजश्च भवेद्विष्टि कृष्णाभूतापराद्धं स ।
शकुनिर्नागश्च चतुष्पद किंस्तुघ्न मेव च ॥१२४
शिलायलेऽम्बुसंशुद्धे वज्रलेपेऽपि वा समे ।
तत्र शङ्क्वगुलैरिष्टं सम मण्डलमालिखेत् ॥१२५
तन्मध्ये स्थापयेच्छङ्कु कल्पनाद्वादशागुलम् ।
तच्छायाग्र स्पृशेद्यत्र वृत्ते पूर्वापराद्धं यो ॥१२६
तत्र बिन्दु विधायोभौ वृत्ते पूर्वापराभिधौ ।
तन्मध्ये तिमिनः रेखा कर्त्तव्य दक्षिणोत्तरा ॥१२७
याम्यात्तरदिशोर्मध्ये तिमिना पूर्वपश्चिमा ।
दिङ्मध्यमत्स्यैः ससाध्या विदिशस्तद्वदेव हि ॥१२८

तिथि में करण जानने की रीति बतलाते हैं—स्पष्ट चन्द्र में स्पष्ट सूर्य को घटाकर शेष राश्यादि की कला बनाकर इसमें तिथि भोग से अर्थात् ७२० से भाग देने जो लब्धि है वह गत तिथि की सख्या होती है और शेष वर्त्तमान तिथि की गत कला है। उसको ७२० में घटाने से गम्य कला निकल आती है। गत और गम्यकला को पृथक ६० से गुणा करके चन्द्र तथा रवि के स्पष्ट गत्यन्तर से भाग देकर लब्ध के क्रम से भुक्त और गम्य घटी होती है। पञ्चाङ्ग में वर्त्तमान तिथि के आगे गम्य घटी ही लिखी जाया करती है ॥१२२॥ शुक्ल पक्ष की गत प्रतिपदा आदि तिथि की सख्या को दूना करके ७ के द्वारा भाग देना चाहिए। १ आदि शेष में क्रम से १ बव २ बालव ३ कौलव, ४ तैतिल

५ गर, ६ वणिज, ७ विष्टि (भद्रा)—ये करण वर्त्तमान तिथि के पूर्वार्ध मे होते हैं। ये सात करण शुक्ल प्रतिपदा के उत्तरार्ध में कृष्ण १४ के पूर्वार्ध तक २८ तिथियों में आठ आवृत्ति कर आते हैं। इसी कारण से ये ७ चर करण कहे जाते हैं। कृष्ण पक्ष १४ के उत्तरार्ध से शुक्ल प्रतिपदा के पूर्वार्ध तक क्रम से १ शकुनि, २ नाग, ३ चतुष्पद और ४ किंस्तुघ्न ये चार स्थिर करण हुआ करते हैं॥ १२३।१२४॥ अब दिक साधन बतलाया जाता है—जल स सशोधित शिला तल या वज्रलेप सीमेण्ट) के द्वारा सम बनाये हुए भूतल में जिस अंगुल मान से शङ्कु बनाया गया है उसी अङ्गुल मान से अभीष्ट त्रिज्यांगुल से वृत्त बनाकर उसके मध्य मे समान द्वादश विभाग स बने हुए शङ्कुकी स्थापना करे। उस शकु की छाया का अग्रभाग दिनके पूर्वार्ध मे जहाँ पर भी वृत्त परिधि में स्पर्श करे वही पर पश्चिम बिन्दु समझ लेवे और दिन के उत्तरार्ध में फिर उसी शकुकी छाया का अग्रभाग जहाँ पर वृत्त परिधि का स्पर्श करे वहाँ पर पूर्व बिन्दु समझ लेना चाहिए। इसी रीति पूर्व और पश्चिम बिन्दु को जान लेना चाहिए। तात्पर्य यह है कि उन दोनो बिन्दुओं म एक सरल रेखा खीचने से पूर्वा पर रेखा बन जायगी। उस पूर्वापर रेखा के दोनो अग्रभागो को केन्द्र मान कर दो वृत्तार्ध बनाने से मत्स्याकार बन जायगा। उसके मुख एवं पुच्छ म रेखा बना देने से दक्षिणोत्तर रेखा बन जायगी। यह दक्षिणोत्तर रेखा केन्द्र बिन्दु से होकर जाया करती है। यह रेखा जहाँ पर वृत्त से स्पर्श करे वहाँ पर दक्षिण तथा उत्तर दिशा के बिन्दु समझे। पुन दक्षिणोत्तर रेखा पर पूर्वोक्त युक्ति से मत्स्योत्पादन द्वारा पूर्वा पर रेखा बनावे तो यह रेखा केन्द्र बिन्दु से होकर ठीक पूर्व और पश्चिम बिन्दु का स्पर्श करेगी। इस रीति से चार दिशाओं का ज्ञान प्राप्त करके पुन दो-दो दिशाओं के मध्य बिन्दु से मत्स्योत्पादन के द्वारा विदिशाओं अर्थात् कोणों का ज्ञान भी प्राप्त करना चाहिए॥१२५–१२८॥

जाति कला के भाग से भाग देने से गत तथा गम्य घटी हो जाती हैं ।।१२१।।

अर्कोन चन्द्रलिप्ताभ्यस्तिथियो भोगभाजिता ।
गता गम्याश्च षष्टिघ्नो नाड्यो भुक्त्यन्तरोद्धृता ।।१२२
तिथय शुक्ल प्रतिपदो माता द्विघ्ना नगाद्धृता ।
शेष ववो वालवश्च कौलवस्तैतिलो गर ।।१२३
वणिजश्च भवेद्विष्टि कृष्णाभूतापराद्धँत ।
शकुनिर्नागश्च चतुष्पद किंस्तुघ्न मेव च ।।१२४
शिलातलेऽम्बुसशुद्धे वज्रलेपेऽपि वा समे ।
तत्र शक्वङ्गुलैरिष्टं सम मण्डलमालिखेत् ।।१२५
तन्मध्ये स्थापयेच्छकु कल्पनाद्वादशाङ्गुलम् ।
तच्छायाग्र स्पृशेद्यत्र वृत्ते पूर्वापराद्धँयो ।।१२६
तत्र विन्दु विधायोभौ वृत्ते पूर्वापराभिधौ ।
तन्मध्ये तिमिना रेखा कर्त्तव्य दक्षिणोत्तरा ।।१२७
याम्योत्तरदिशोर्मध्ये तिमिना पूर्वपश्चिमा ।
दिङ्मध्यमत्स्यै समाध्या विदिशस्तद्वदेव हि ।।१२८

तिथि में करण जानने की रीति बतलाते हैं—स्पष्ट चन्द्र में स्पष्ट सूर्य को घटाकर शेष राश्यादि की कला बनाकर इसमें तिथि भोग से अर्थात् ७२० से भाग देवे जो लब्धि है वह गत तिथि की संख्या होती है और शप वर्त्तमान तिथि की गत कला है। उसको ७२० म घटाने से गम्य कला निकल आती है। गत और गम्यकला को पृथक् ६० मे गुणा करके चन्द्र तथा रवि के स्पष्ट गत्यन्तर स भाग देकर लाब्ध कें क्रम न भुक्त और गम्य घटी होती है। पञ्चाङ्ग म वर्तमान तिथि क आगे गम्य घटी ही लिखी जाया करती है ।।१२२।। शुक्ल पक्ष की गत प्रतिपदा आदि तिथि की गणना को दूना करके ७ के द्वारा भाग देना चाहिए। १ आदि शेष म क्रम म १ वव २ वालव, ३ कौलव, ४ तैतिल

५ मृग, ६ वणिज, ७ विष्टि (भद्रा)—ये करण वर्त्तमान तिथि के पूर्वार्ध में होते हैं। ये सात करण शुक्ल प्रतिपदा के उत्तरार्ध से कृष्ण १४ के पूर्वार्ध तक २८ तिथियों में आठ आवृत्ति कर जाते हैं। इसी कारण से ये ७ चर करण कहे जाते हैं। कृष्ण पक्ष १४ के उत्तरार्ध में शुक्ल प्रतिपदा के पूर्वार्ध तक क्रम से १ शकुनि, २ नाग ३ चतुष्पद और ४ किंस्तुघ्न ये चार स्थिर करण हुआ करते हैं ॥ १२३।१२४ ॥ अब दिक् साधन बतलाया जाता है—जल से संशोधित शिला तल या वज्रलेप सीमेण्ट) के द्वारा सम बनाये हुए भूतल में जिस अंगुल मान से शङ्कु बनाया गया है उसी अङ्गुल मान से अभीष्ट त्रिज्यागुल से वृत्त बनाकर उसके मध्य में समान द्वादश विभाग से बने हुए शङ्कु की स्थापना करे। उस शंकु की छाया का अग्रभाग दिनके पूर्वार्ध में जहाँ पर भी वृत्त परिधि में स्पर्श करे वही पर पश्चिम विन्दु समझ लेवे और दिन के उत्तरार्ध में फिर उसी शंकु की छाया का अग्रभाग जहाँ पर वृत्त परिधि का स्पर्श करे वहाँ पर पूर्व विन्दु समझ लेना चाहिए। इसी रीति पूर्व और पश्चिम बिन्दु को जान लेना चाहिए। तात्पर्य यह है कि उन दोनों विन्दुओं में एक सरल रेखा खींचने से पूर्वापर रेखा बन जायगी। उस पूर्वापर रेखा के दोनों अग्रभागों को केन्द्र मान कर दो वृत्तार्ध बनाने से मत्स्याकार बन जायगा। उसके मुख एवं पुच्छ में रेखा बना देने से दक्षिणोत्तर रेखा बन जायगी। यह दक्षिणोत्तर रेखा केन्द्र बिन्दु में होकर जाया करती है। यह रेखा जहाँ पर वृत्त में स्पर्श करे वहाँ पर दक्षिण तथा उत्तर दिशा के विन्दु समझें। पुनः दक्षिणोत्तर रेखा पर पूर्वोक्त युक्ति से मत्स्योत्पादन द्वारा पूर्वापर रेखा बनावे तो यह रेखा केन्द्र विन्दु में होकर ठीक पूर्व और पश्चिम विन्दु का स्पर्श करेगी। इस रीति से चार दिशाओं का ज्ञान प्राप्त करके पुनः दो दो दिशाओं के मध्य विन्दु में मत्स्योत्पादन के द्वारा विदिशाओं अर्थात् कोणों का ज्ञान भी प्राप्त करना चाहिए ॥१२५–१२८॥

चतुरस्र बहि कुयात्सूत्रमध्याद्विनि सृत ।
भुत्रसू गगुलैस्तत्र दत्त रिष्ट प्रभा स्मृता ॥१२६
प्राकपश्चिमाश्रिता रेखा प्रोच्यते सममण्डले ।
उ मण्डले च विपुवण्मण्डले परिकीर्तते ॥१३०
रेखाप्राच्यपरा साध्या विपुवदभाग्रगा तथा ।
इष्टच्छायाविपुवतोमध्यसग्राभिधीयते ॥१३१
शाकुच्छायाकृतियुतेमू ल कर्णोस्य वगत ।
प्रोज्झय शकुकृति मुल छाया शकु विपययात् ॥१३२
त्रिशत्कृत्यो युगे भाना चक्र प्राव परिलम्वते ।
तद्गुणाद्भूदिनैभक्ताद द्युगणाद्यन्वाप्यन ॥१३३
तद्दास्त्रिघ्नाद्दशाप्ताशा विज्ञया अयनाभिधा ।
तत्संस्कृताद्ग्रहात् क्रान्ति-च्छायाचरदनादिकम् ॥१३४
शकुच्छायाहन त्रिज्ये विपुवत्कण भाजिते ।
लम्बाक्षज्य तयोश्चापे लम्वाक्षौ दक्षिणौ सदा ॥१३५

इस रीति से वस मे सब दिशाओ का ज्ञान प्राप्त हो जाने पर वृत्त के बाहिर चारो दिशाओ क विन्दुओ से स्पश रेखा के द्वारा चतुरस्र (चतुभु ज) बनाना चाहिए वृत्त क मध्य के द्र स भुजाङ्गुल के समान विन्दुपद छाया रेखा होती है। उस छाया रेखा को पूर्वा पर रेखा के समानान्तर बनावे। पूर्वापर रेखा पूर्वापर वृत्त उ मण्डल और नारी वृत्त क धर तल मे होती है। इसीलिए क्षितिज धरातल सम वृत्त के केन्द्र से पूर्वा पर रेखा खीचकर फिर पलभ क विन्दुगत पूर्वापर क समा-नान्तर रेखा बनावे। इस प्रकार स इष्ट छायाग्र तथा पलभा रेखा क बीच (अ तर) का अग्र कहता है॥१२६ १३०।१३१॥ शकु क वग म छाया क वग को जोड़कर मूल ग्रहण करने स छाया कण होता है और छाया कण क वग म शकु क वर्ग को घटा न स मूल छाया होती है तथा छाया क वग को घटा ने स मूल शकु हो जाता है॥ १३२॥

अब अयनांश साधन बतलाते हैं—एक युग में राशि चक्र सृष्टचादि स्थान में पूर्व और पश्चिम को ६०० बार चलित होता है। जो कि उसके भगण कहलाते हैं। इसीलिये अहर्गण को ६०० से गुणा करके युग के कुदिन से भाग देकर र श्यादि फल से भुज बनावे। उस भुज को ३ से गुणा करके १० के द्वारा भाग देवे सो जो लब्धि होती है वह अयनांश होती है। इस अयनांश को अहर्गण के द्वारा साधित ग्रह में जोड़कर क्रान्ति, छाया और चर खण्ड आदि बनाने चाहिए ।।१३३।। ।।१३४।। अब लम्बांश और अक्षांश साधन का प्रकार बताते हैं—शङ्कु और पलभा को पृथक्-पृथक् त्रिज्या से गुणा करके उसमें पल कर्ण से भाग देने पर लब्धि क्रमशः 'लम्बज्या' और "अक्षज्या' होती है। दोनों के चाप बना देने से ' लम्बांश " और "अक्षांश हो जाते हैं। अक्ष की दिशा सर्वदा दक्षिण ही समझी जाया करती है।१३५।

स्वाक्षार्कापक्रमयुति दिक्साम्येऽन्तरमन्यथा ।
शेषा नतांशा सूर्यस्य तद्बाहुज्ये च कोटिजा ।।१३६
शङ्कुमानाङ्गुलाभ्यस्ते भुजत्रिज्ये यथाक्रमम् ।
कोटिज्यया विभज्याप्ते छायाकर्णावहर्दले ।।१३७
स्वाक्षार्कनतभागाना दिक्साम्येऽन्तरमन्यथा ।
दिग्भेदेऽपक्रम शेषस्तस्य ज्या त्रिज्यया हता ।।१३८
परमापक्रमज्याप्ता चाप मेषादिगो रवि ।
कर्क्यादौ प्रोज्झ्य चक्रार्द्धात् तुलादौ भार्धसयुतात् ।।१३९
मृगादौ प्रोज्झ्य चक्रात्तु मध्याह्नेऽर्क स्फुटो भवेत् ।
तन्मान्दमसकृद्वाम फल मध्यो दिवाकर ।।१४०
ग्रहोदय प्राणहता खखाष्टैकोद्धृता गति ।
चरासवो लब्धयुता स्वाहोरात्रासव स्मृता ।।१४१
त्रिभद्युकर्णार्द्धगुणा स्वाहोरात्रार्द्ध भाजिता ।
क्रमादेकद्वित्रिभज्यास्तच्चापानि पृथक्-पृथक् ।।१४२

स्वाधोऽध प्रविशोघ्याथ मेषालङ्कोदयासव ।
खागाप्टयोऽर्यगोर्मका शरघ्यच्छ हिमाशव ॥१४३
स्वदेशचरखण्डोना भवन्त्योप्टोदयासव ।
व्यस्ता व्यस्तैयुं ता स्वै स्वै कर्कटाद्यास्ततस्त्रय ॥१४४

अब सूर्य ज्ञान म मध्याह्न-छाया साधन बतलाया जाता है-अपने अक्षाश और सूर्य के क्रान्यश दोनो एक ही दिशा की ओर हो तो योग करने से और यदि भिन्न दिशा मे हो तो दोनो का अन्तर करने से भेद सूर्य 'नताश' होता है। उस नताश की भुजज्या और कोटिज्या बनावे। भुजज्या और त्रिज्या को पृथक् २ शकुमान (१२) से गुणा करके उसमे फिर कोटिज्या से भाग देने पर लब्धि क्रमश मध्याह्न काल म छाया और छाया कर्ण के मान को सूचित किया करती है ॥१३६।१३७॥ मध्याह्न छाया से सूर्य साधन-अपने अक्षाश और मध्याह्न कालिक सूर्य के 'नताश' ये दोनो एक ही दिशा के हो तो अन्तर करने से और यदि भिन्न दिशा के हो तो योग करने से जो फल हो वह सूर्य की 'क्रान्ति' होती है। क्रान्तिज्या को त्रिज्या से गुणा करके उसमे परम क्रान्तिज्या १३६७ से भाग देवे। जो लब्धि होती है वह सूर्य की 'भुजज्या' होती है। उसके चाप बनाकर मेष आदि ३ राशि मे सूर्य हो तो वही स्पष्ट सूर्य होता है। कर्कादि तीन राशियो मे हो तो उस चाप को ६ राशियो म घटा देवे। तुलादि तीन राशि मे हो तो ६ राशि मे जोड देवे और मकरादि ३ राशि म हो तो १२ राशि म घटा देवे फिर जो भी जोड या अन्तर हो वह मध्याह्न मे स्पष्ट सूर्य होता है। उस स्पष्ट सूर्य से विपरीत क्रिया के द्वारा मन्द फल साधन कर बार-बार सस्कार करने से मध्यम सूर्य का ज्ञान होता है ॥१३८-१४०॥ ग्रहों के अहोरात्र मान—जिस राशि मे तात्काल ग्रह हो उस राशि के उदयमान स उस ग्रह की गति का गुणा करे फिर उसम १८०० से भाग देकर लब्ध असु को अहोरात्रासु मे जोड

देवे । वही उस ग्रह का अहोरात्र मान होता है। असु से घडी और पल बना लेना चाहिये॥१४१॥राशियों के उदयमान१ राशि, २ राशि, ३राशि की ज्या को पृथक २ परमाल्प द्यु ज्या'(परम कान्ति कोटिज्या) से गुणा करके उसमें अपनी द्यु ज्या से भाग देकर जो भी लब्धियाँ हो उनके चाप बना लेवे। उनमें प्रथम चाप मेष का उदय (लङ्कोदय) मान होता है। प्रथम चाप को द्वितीय चाप में घटाने पर शेष वृष का उदयमान होता है। इसी रीति से द्वितीय चाप को तृतीय चाप मे घटाने पर जो शेष रहे वह मिथुन का लङ्कोदय मान होता है। पुन उन्ही तीनों को अर्थात् लङ्कोदय मानों को उत्क्रम से रखकर—इन तीनों में अपने देश के तीनों चर खण्डों को उत्क्रम से जोडने पर कर्क आदि ३ राशियों के स्वदेशोदय मान होते हैं। एवं मेषादि कन्या पर्यन्त ६ राशियों के उदयमान सिद्ध होते हैं। पुन ये ही उत्क्रम से तुला आदि ६ राशियों के मान होते हैं ॥१४२–१४४॥

उत्क्रमेण षडेवैते भवन्तीष्टास्तुलादय ।
गतभोग्यासव कार्या सायनात् स्वेष्टभास्करात् ॥१४५
स्वोदयासुहता भुक्तभोग्या भक्ता खवह्निभि ।
अभीष्टघटिकासुभ्यो भोग्यासून्प्रविशोधयेत् ॥१४६
तद्वदेवैष्यलग्नासूनेव वातास्तथोत्क्रमात् ।
शेष चेत् त्रिंशताभ्यस्तमशुद्धेन विभाजितम् ॥१४७
भागयुक्ता च हीन च व्ययनाश तनु कुजे ।
प्राक् पश्चान्नतनाडी भिस्तद्वल्लङ्कोदया सुभि ॥१४८
मानौ क्षयधने कृत्वा मध्य लग्न तदा भवेत् ।
भोग्यासूनूनकस्याथ भुक्तासूनधिकस्य च ॥१४९
सपिण्ड्यान्तरलग्नासूनेव स्यात्कालसाधनम् ।
विराट्चर्कभुजाशाश्चेदिन्द्राल्पा स्याद्ग्रहो विधो ॥१५०
राश्या शिवघ्ना शैलाप्ता व्यग्वकाप्ता शरोऽङ्गुलै ।

अवं विधुर्विधु भूभा छादयत्यथ छन्नम् ॥१५१
छादच्छादकमानार्धं शरोन भ्राह्यवर्जितम् ।
तत् खच्छन्न च मानैक्यार्धं शराढ्य दशाहतम् ॥१५२
छन्नघ्नमस्मान्मूल तु स्वाङ्गोन ग्लौवयु हृतम् ।
स्थित्यर्द्धं घटिकादि स्याद् व्यगुवाह्वशरामितो ॥१५३
इष्टे पलैस्तदूनाढ्य व्यगावूनेऽर्कपग् गृहात् ।
तदन्यथाधिके तस्मिन्नेव स्पष्टे मुखान्यगे ॥१५४

मग्न साधन–इष्ट काल के सायनांश सूर्य के भुक्तांश और भाग्यांश के द्वारा भुक्तासु' और 'भोग्यासु का साधन करना चाहिए। यथा–भुक्तांश को सायन सूर्य के स्वदेशोदय मान से गुणा करके ३० का भाग देवे। जो लब्धि है हो उसको भुक्तासु और भाग्यांश को स्वदेशोदय मान से गुणा करे। फिर उसमें ३० का भाग देवे। जो लब्धि है वह भोग्यासु होते हैं। इष्ट घडी के असु बनाकर उसमें भोग्यासु को घटा देना चाहिए। जो शेष बच उसमें अग्रिम राशियों में से जितने के स्वदेशोदय मान घटे उतने घटा देवे। अथवा इसी प्रकार से इष्टासु में भुक्तासु का घटाकर शेष में गत राशियों के उत्क्रम से उनके जितने स्वदेशोदय मान घटें उतने घटा देवे। जिस राशि तक का मान घट जावे वहां तक शुद्ध और जिसका मान न घटे वह अशुद्ध संज्ञक होती है। बचे हुए इष्टासु को ३० से गुणा करके अशुद्ध राशि के उदयमान से भाग देवे और लब्ध अंश आदि को (भुक्त उत्क्रम विधि हो तो) अशुद्ध राशि की संख्या घटाने से मग्न लग्न होता है। उसमें अयनांश घटाने से फल में जोड देवे और (भुक्त उत्क्रम विधि हो तो) अशुद्धराशि की संख्या में अथवा युक्त उदय लग्न होता है। १४४—१४७। मध्य दशम लग्न साधन–इसी रीति से पूर्वनत बलासु से लङ्कोदय के द्वारा अंशादि साधन करके उसको सूर्य में घटाने से तथा पश्चिम नत बलासु और लङ्कोदयके द्वारा भोगांशमें अंशादिका साधन करके सूर्य में जोडने से

मध्य (दशम अंशाश, मध्य) लग्न होता है ॥ १४८ ॥ लग्न और स्पष्ट सूर्य को जानकर इष्टकाल साधन—लग्न और सूर्य इन दोनों में जो भी ऊन अर्थात् पीछे हो उसके भोग्यांश के द्वारा भोग्यासु और जो अधिक हो तो उसके भुक्तांश के द्वारा भुक्तासु साधन करके दोनों को जोड़े तथा उसमें उन दोनों लग्न और सूर्य के बीच में जो राशियाँ हों उनके उदयासुओं को जोड़ देवे तो इष्ट का कालासु हो जाया करता है। १४६। ग्रहण साधन—पर्वान्त काल में स्पष्ट सूर्य, चन्द्र और राहु का साधन करे। सूर्य में राहु को घटा कर जो भी शेष बचे उसके भुजांश यदि १४ से अल्प हो तो चन्द्र ग्रहण की सम्भावना समझनी चाहिये। उन भुजांशों को ११ से गुणा कर ७ से भाग देने पर लब्धि-शर अङ्गुल आदि शर होता है ॥ १५० ॥ सूर्य सूर्य को चन्द्रमा और चन्द्र को भूभा (पृथ्वी छाया) छादित करती है। इसीलिये सूर्य ग्रहण में सूर्य छाद्य और चन्द्रमा छादक होता है। तथा चन्द्रग्रहण में चन्द्र छाद्य और भूभा छादक ग्रहणकर्त्री है। ऐसा ही समझना चाहिये। अब छन्न ग्रास मान कहते हैं—छाद्य और छादक के बिम्ब मान का योग करके उसके आधे में 'शर' घटाने से 'छन्न' (ग्रास) मान होता है। यदि ग्रास मान ग्राह्य (छाद्य) से अधिक हो तो उसमें छाद्य को घटा कर जो शेष बचे उतना ख 'छन्न'(खग्रास) समझना चाहिए। मानैक्यार्ध (छाद्य छादक के बिम्ब योगार्ध) को शर जोड़कर १० से गुणा करना चाहिये। फिर ग्रास मान से गुणा करके गुणनफल का जो मूल हो उसमें अपना षष्ठांश घटाकर शेष में चन्द्र बिम्ब से भाग देवे। जो लब्धि प्राप्त हो घटी आदि का स्थित्यर्ध समझें। इस स्थित्यर्ध का दो स्थलों में रक्खें। व्यगु (व्यगु राहु घटाया हुआ सूर्य) यदि ६ या १२ राशि से ऊन हो तो द्विगुणित व्यगु भुजांश तुल्य पल को प्रथम स्थानागत स्थित्यर्ध में घटावे और द्वितीय स्थान वाले में जोड़ देवे। यदि व्यगु ६ या १२ से अधिक हो तो विपरीत क्रम से (प्रथम स्थान में जोड़ने और द्वितीय

स्थान में घटाने से) स्पर्श और मोक्ष कालिक स्पष्ट स्थित्यर्ध होता है ।।१५१ १५४।।

ग्रासनखाहते छाद्यमानाप्ते स्युर्विशोपका ।
पूर्णान्त्या मध्यमत्र स्याद्दर्शान्तेऽङ्क त्रिभोनकम् ।।१५५
पृथक् तत् क्रान्त्यक्षभागसस्कृतो स्युनताशका ।
तद् द्विघ्न शक्रति द्विघ्नो द्युनार्धाकयुता हर ।।१५६
त्रिभोनाङ्कविश्लेपाशाशोनघ्ना पुरन्दरा ।
हराप्ता लम्बन स्वर्ण वित्रिभेऽर्काधिकोनके ।।१५७
विश्वघ्न लम्बन कलाढयोनस्तु तिथिवद् व्यगु ।
शरोऽस्फो लम्बन षड्घ्न सल्लवाढ्योनवित्रिभात् ।।१५८
नताशास्तद्दशाशोनघ्ना धृत्स्यस्त द्विवर्जितो ।
साप्टेन्दुलिप्तं षड्भिस्तु भक्ता नतिनताशादिक् ।।१५९
तयोनाढ्यो हि भिन्नैकदिक् शर स्फुटता व्रजेत् ।
ततश्छन्न स्थितिदले साध्ये स्थित्यर्धषड्दति ।।१६०
अशास्तैर्वित्रिभ द्विष्ठ रहित सहित क्रमात् ।
विधाय ताभ्या सशाध्ये लम्बने पूर्ववत् तयो ।।१६१
पूर्वोक्ते सस्कृते ताभ्या स्थित्यर्द्धे भवत स्फुटे ।
ताभ्या हीनयुता मध्यदर्श कालौ मुखान्तगौ ।।१६२

ग्रहण विशोपक (विश्व) फल— अ गुलादि ग्रास मान को २० से गुणा करे । जो गुणनफल हो उसमें अ गुलात्मक छाद्य मान से भाग देना चाहिए । जो भी लब्धि आवे वह विशोपक फल होता है । सूर्य ग्रहण म विशेष लम्बन—घटी–साधन—पर्वा तकाल मे ग्रहण का मध्य होता है । सूर्य ग्रहण मे दर्शा त कालिक लग्न बना कर उसमे तीन राशि घटाने से वित्रिभ या त्रिभोन लग्न कहलाता है । उसको पृथक रखकर उसकी क्रा ति और अक्षाश के सस्कार (एक दिशा मे योग भिन्न दिशा मे अ तर) करने से नताश होता है । उसका २२

वा भाग करके वग करे। यदि २ से कम हो तो उसी मे और यदि २ स अधिक हाजाय तो २ घटा कर शेष के अध भाग का उसी वग म जोड कर पुन १२ मे जोडने से हार होता है। त्रिमाज नग और सूय के अ तराश के दशमांश को १४ मे घटा कर शेप को उसी दश-माश से गुणा करना चाहिये। उसमे पूव स धित हार से भाग देन पर लब्धि तुल्य घटयादि लम्बन होना है। यह लम्बन यदि त्रिभि सूय से अधिक हो तो धन अल्प हो तो ऋण होता है। अर्थात् साधित दर्शा त काल मे इस लम्बन को जोडने–घटाने से पृष्ठ स्थानीय दर्शा त काल होता है ॥१५५–१५७ घटयादि लम्बन को १३ से गुणा करने पर गुणनफल लब्धि होता है उसको लम्बक म जोड या घटा कर शर बनाने से पृष्ठीय दर्शा त कालिक शर स्पष्ट होता है। तथा घटयादि लम्बन को ६ से गुणा करके और गुणन फल को अंशादि मानकर त्रिभिम मे जोड या घटा के नताश साधन करे। नताश के दशमाश को १८ मे घटा कर शेष को उसी दशमांश से गुणा करना चाहिए। फिर गुणनफल को ६ अश १८ कला म घटा कर जो भी शेष बचे उससे गुणनफल मे ही भाग देने से लब्धि अ गुलादि नताश की दिशा की ही गति होती है। इस नति और पूर्व साधित शर दोनो मे संस्कार (भि न दिशा हो तो अ तर और एक दिशा हो तो योग) से स्पष्ट शर होता है। सूय ग्रहण मे उसी शर से ग्राह्य और स्थि यध बनावे। स्थि यध को ६ से गुणा करके अ शादि गुणनफल को त्रिभिम मे घटा देवे और दूसरे स्थान में जोड देना चाहिए। इन दोनो पर से पूर्वोक्त विधि स लम्बन साधन करके कमश पूव विधि से साधित स्पश और मोक्ष काल मे संस्कार करन स स्पष्ट पृष्ठस्थानीय स्पश और मोक्ष काल होते हैं ॥१५८–१६२॥

अर्का घना विध्व ईशा नवपच॰शाशरा ।
कालाशास्तैर्म्नयक्ते रवौ हस्तोदयो विधो ॥१६३

त्रिज्या मे अल्प हो तो जोड देवे फिर उसमे ३ से भाग देने पर क्रमश मङ्गल प्रभृति ग्रहों के बिम्ब प्रमाण होते हैं। ग्रहों की युति से गति गम्य दिन साधन-जिन दो ग्रहों की युति-काल का ज्ञान प्राप्त करना अभीष्ट हो वे दोनो मार्गी हो अथवा दोनो ही वक्री हो तो दोनो ग्रहों की अन्तर कला से दोनो की गत्यन्तर कला से भाग देना चाहिये। यदि एक वक्र और एक मार्गी हो तो दोनो की गति योग कला से भाग देना चाहिये। फिर जो भी लब्धि आवे वह ग्रहय युति के गतिमा-गम्य दिनादि हैं। ग्रहों की युति मे भेद ज्ञान—जिन दो ग्रहों की युति होनी हो उन दोनो को अपनी गति से संस्कृत कर एक दिशा के हो तो अन्तर और यदि भिन्न दिशा के हों तो योग करने से दोनों ग्रहों का अन्तर होता है वह अन्तर यदि दोनो के बिम्बमान योगार्द्ध से अल्प हो तो उनके योग मे भेद होता है। इसलिए इसमे बीच वाले को छादक और ऊपर वाले को छाद्य मान कर सूर्य ग्रहण के समान ही लम्बन, ग्रासमान आदि साधना करना चाहिये ॥ १६९—१७१ ॥ पाताधिकार—रात्री सत्ता—जब सूर्य और चन्द्रमा दोनो एक ही अयन में हो अर्थात् याम्यायन, दक्षिणायन अथवा सौम्यायन, उत्तरायण मे होवें तथा उन दोनो के राश्यादि योग १२ राशि हो तो उस स्थिति मे दोनो के क्रान्ति साम्य होने पर वैधृति नाम वाला पात कहलाता है तथा जब दानो भिन्न २ अयन मे हो और दोनो का योग ६ राशि हो तो उस स्थिति मे दोनो के क्रान्ति साम्य होने पर व्यतीपात नामक पात होता है। जब सूर्य चन्द्र का अन्तर चक्र ० या ६ राशि हो उस समय में तात्कालिक अयनांशादि से युक्त सूर्य और चन्द्रमा की अपनी अपनी क्रांति का साधन करे। यदि शर संस्कृत चन्द्रमा की क्रान्ति तात्कालिक सूर्य की क्रान्ति म अधिक हो तथा यदि चन्द्रमा विषम पद मे हो तो पातकाल को बीता हुआ समझ लेवे। यदि विषम पद में स्थित चन्द्रमा शर संस्कृत क्रान्ति सूर्य की क्रान्ति से अल्प हो

तो पातकाल को भावी (होने वाला) समझ लेना चाहिये। यदि चन्द्रमा सम पद में हो तो इसमे विपरीत पातकाल समझे अर्थात् सूर्य की क्रान्ति से चन्द्रमा की स्पष्ट क्रान्ति अधिक हो तो भावी और अल्प हो तो गत समझे। यदि स्पष्ट क्रान्ति बनाने में चन्द्रमा के शर में घटायी जावे तो ऐसी स्थिति में तो चन्द्रमा के बिम्ब और स्थान में पद की भिन्नता होती है ।।१७२—१७३।।

भास्करेन्द्वोर्भचक्रान्त चक्रार्धावधि सस्थयो ।
दृक्तुल्यमाधिताशरदियुक्तयो स्वापक्रमौ ।।१७४
अथोजपदगस्येन्दो क्रान्तिविक्षेप सस्कृता ।
यदि स्याद्धिका भानो क्रान्ते पातो गतस्तदा ।।१७५
न्यूना चेत्स्यात्तदा भावी वाम युग्मपदस्य च ।
पदान्यत्वविधो क्रान्तिविक्षेपाच्चेद् विशुद्धयति ।।१७६
क्रान्त्योर्ज्ये त्रिज्यकाभ्यस्ते परमापक्रमोद्धृते ।
तच्चापान्तरमर्द्ध वा योज्य भ विनि गोतगो ।।१७७
शोध्य चन्द्राद्गते पाते तत्सूर्यगतिताडितम् ।
चन्द्रभुक्त्या हृत भानो लिप्तादि शशिवत्फलम् ।।१७८
तद्वच्छशाङ्कपातस्य फल देय विपर्ययात् ।
कर्मैतदसकृत्तावद्क्रान्ती यावत्समे तयो ।।१७९

स्पष्ट क्रान्ति-साम्यज्ञान प्रकार—सूर्य और चन्द्रमा दोनो की क्रान्ति ज्या की त्रिज्या से गुणा करके उसमे परम क्रान्ति ज्या से भाग देव। जो भी लब्धियाँ हों उन दोनो के चाप बनावे। उन दोनो चापों का जो भी अन्तर हो उसको सम्पूर्ण या अर्ध (कुछ न्यून) करके गम्य पात हो तो चन्द्रमा में जोड़ देवे और गतपात हो तो घटावे। पुन उपर्युक्त चाप के अन्तर या उसके खण्ड को सूर्य की गति से गुणा करके उस आये हुए गुणन फल से चन्द्रकी गति से भाग देना चाहिए जो भी लब्धि हो उसका चन्द्रमा के समान ही सूर्य मे सस्कार करे (गम्य पात

हो तो जोड़े और गतपात हो तो घटा दवे) इसी प्रकार से (सूर्यफल चन्द्र उक्त चापान्तर को चन्द्रपात की गति से गुणा करके उसमें चन्द्र गति से भाग देवे) सविता चन्द्र पात के कलादि फल को चन्द्रपात (राहु) में विपरीत संस्कार करे अर्थात् गत पात में जोड़े और गम्य पात में घटा देव तो सन्नकालासन्न समय के सूर्य, चद्रमा और चन्द्रपात होते हैं। फिर इन तीनों रवि चन्द्र और चद्रपात के द्वारा उपर्युक्त क्रिया का बार-बार करता रहे जब तक दोनों की क्रान्ति समान हो जावे।१७४-१७६।

क्रान्त्यो समत्वे पातोऽथ प्रक्षिप्ताशोनिते विधौ।
हीने प्रर्द्ध रात्राद्यानो भावी तात्कालिकेऽधिके ॥१८०
स्थिरीकृतार्द्धरात्रन्द्वोर्द्वयो विवरलिप्तिका।
षष्टिघ्न्यश्चन्द्रभुक्त्याप्ता पातकालस्य नाडिका ॥१८१
रवोन्द्वोर्मानयोगार्द्धं षष्ट्या सगुण्य भाजयेत्।
तयोर्भुक्त्यन्तरेणाप्त स्थित्यर्धं नाडिकाद्भुतम् ॥१८२
पातकाल स्फुटो मध्य सोऽपि स्थित्यर्द्धवर्जित।
तस्य सम्भवकाल स्यात्तत्संयुक्तोऽन्त्यसंज्ञित ॥१८३
आद्यन्तकालयोर्मध्य कालो ज्ञाऽतिदारुण।
प्रज्वलज्ज्वलनाकार सर्वकर्मसु गर्हित ॥१८४
इत्येतद्गणिते किंचित्प्रोक्त सक्षेपतो द्विज।
जातक वच्मि समयाद्राशिसज्ञातुर सरम् ॥१८५

इस तरह से क्रान्ति-साम्य होने पर पात समझना चाहिए। यदि उपर्युक्त क्रिया के द्वारा प्राप्त अंशादि से युक्त या हीन किया हुआ चद्रमा अर्ध रात्रि कालिक साधित चद्रमा से अल्प हो तो पात काल को गत समझना चाहिए और यदि अधिक हो तो पातकाल को भावी समझे। अर्ध रात्रि से गत-गम्य पातकाल का ज्ञान—ऊपर से बतायी हुयी क्रिया के द्वारा स्थिरीकृत पातकालिक चद्रमा और अर्ध रात्रिकालिक

चन्द्रमा जो हो इन दोनों की अन्तर कला को ६६ से गुणा करके गुणन-फल में चन्द्र की गति कला से भाग होने पर जो भी लब्धि आवें उतनी घटी अर्धरात्रि से पीछे या आगे (गतपात में पीछे और गम्य पात में आगे) तक पात काल की घड़ी समझी जाया करती है ।१८०।१८१। पात के स्थित काल, आरम्भ तथा अन्त काल का साधन—सूर्य तथा चन्द्र के बिम्ब योगार्द्ध को ६० से गुणा करे और गुणन फल में जो सूर्य चन्द्र की गत्यन्तर कला हो उससे भाग देना चाहिए । जो भी लब्धि हो वह पात स्थित्यर्ध घटी होती है । इसको पात के स्पष्ट मध्यकाल में घटा देने से पात का आरम्भ काल होता है और जोड़ देने से अन्त काल होता है । पात के आरम्भ काल से गम्य काल पर्यन्त जो मध्य का काल है वह प्रज्वलित अग्नि के तुल्य अत्यन्त दारुण होता है जो कि समस्त कार्यों में निषिद्ध माना गया है । हे ब्रह्मन् ! इस प्रकार से इस ज्योतिष शास्त्र के गणित स्कन्ध को संक्षिप्त रूप में कुछ उपयोगी विषयों का ही प्रतिपादन किया है । अब इसके आगे राशियों की संज्ञा आदि के कथन के साथ में जातक का कुछ प्रमुख वर्णन करूँगा ।१८२। ।१८३।१८४।१८५।



।। त्रिस्कन्ध ज्योतिष का जातक-स्कन्ध ।।

मूर्द्धास्य दोर्हृत्क्रोडकटिवस्ति व्यञ्जको नख ।
जानुजङ्घाङ्घ्रियुग च कालाङ्गानि क्रियादय ॥१
भौमास्फुजिद्बुधेन्दुश्च रविसौम्यसिता कुज. ।
गुरु मन्दार्किगुरवा मेषादीनामधीश्वरा ॥२
होरे विषमभेर्केन्द्वो समभे शशिसूर्ययो ।
आदिपञ्चनवाधीशा द्रेष्काणेशा प्रकीर्तिता ॥३
पञ्चेष्टाष्टाद्रिपञ्चांशा कुजार्कीज्यज्ञशुक्रगा ।

ओजे विपर्ययाद्युग्मे त्रिंशांशेशा समीरिताः ॥४
क्रियेणतौलिकर्कांद्या मेषादिषु नवांशकाः ।
स्वभाद्द्वादशभागेशा षड्वर्गं राशिपूर्वकम् ॥५
गोजाश्व कर्कयुग्मेन राश्याख्या पृष्ठोदयाः ।
शेषा दिनाख्यास्तूभय तिमि क्रूर सौम्य पुमान् ॥६
पुमान् च क्लीवश्चर स्थिर द्विस्वभावकाः ।
मेषाद्या पूर्वतोदिक्स्था स्वस्वस्थान चरास्तथा ॥७

सनन्दनजी ने गणित ज्योतिष का सिद्धान्त प्रतिपादन करने के पश्चात् बतलाया कि ये आकाशस्थ मेष आदि बारह राशियाँ भी सूक्ष्म रूप से काल-पुरुष के अङ्ग हैं जिनको मस्तक, मुख बाहु, हृदय उदर, कटि, पेडू, जननेन्द्रिय, ऊरु, जानु, जंघा और दोनों चरणों की उपमा दी जा सकती है। इन बारह राशियों के एक एक स्वामी हैं जिन्हें क्रम से—मङ्गल, शुक्र, बुध चन्द्रमा, सूर्य, बुध शुक्र, मङ्गल गुरु शनि, शनि तथा गुरु माना गया है। (एक ग्रह दो-दो राशियों का स्वामी भी है) जो राशियाँ विषम हैं उनमें पहले सूर्य की और फिर चन्द्रमा की होरा व्यतीत होती है और सम राशियों में इससे विपरीत क्रम होता है। एक राशि के ३० अंश माने गये हैं जिनको १५ अंश के दो 'होरा' और १० अंश के तीन 'द्रेष्काण' में विभाजित किया गया है। आदि से १० अंश तक उसी राशि का द्रेष्काण होता है ॥ १–३ ॥ विषम राशियों में पाँच-पाँच अंश तक मङ्गल और फिर आठ सात तथा पाँच राशि अंशों में बृहस्पति, बुध और शुक्र को त्रिंशांशेप कहा गया है। सम राशियों में इसका विपरीत क्रम होता है। मेष आदि राशियों के नवमांश मेष, मकर, तुला और कर्क से प्रारम्भ होते हैं। ढाई अंश के द्वादशांश होते हैं जो अपनी राशि से अन्तिम राशि तक जाते हैं ॥ ४–८ ॥ छः राशियाँ रात में बली होती हैं उनको पृष्ठोदय कहते हैं वृष, मेष, धनु कर्क, मिथुन,

मकर इस श्रेणी में हैं। शेष छः राशियों को क्रूर और रात्रि संज्ञक को सौम्य बतलाया है। ये राशियाँ क्रम से पुरुष, स्त्री और क्लीव (नपुंसक) भी कही जाती हैं। इन राशियों का क्रम से चर स्थिर तथा द्विस्वभाव होने की दृष्टि से तीन विभागों में बाँटा गया है। जैसे मेष 'चर' वृष 'स्थिर' और मिथुन 'द्विस्वभाव' वाली है। ऐसा ही क्रम अंत तक चला गया है। ये राशियाँ तीन-तीन के विभागों में क्रम से पूर्व दक्षिण, पश्चिम और उत्तर में स्थित हैं ॥६-७॥

अजोक्षैणाङ्गनाकीटझषजूकाइनादितः।
उच्चानि द्विस्त्रिमनुयुक्तिथीषु भरुनखांशकैः ॥८
तत्तत्सप्तमनीचानि प्राङ् मध्यान्त्यंशका क्रमात्।
वर्गोत्तमाश्च राशेपुभावद्वादश मूर्तिमान् ॥९
सिंहोक्षाविस्त्रश्चतौलि कुंभा मूलत्रिकोणभम्।
चतुरस्रं तुर्यमृत्युत्रिकोणं नवपंचकम् ॥१०
रिष्फाष्टषट्कं त्रिकभं केन्द्रं प्राक्तुयसप्तखम्।
नृपाद कीट पश्वो बलाढ्या केन्द्रगाः क्रमात् ॥११
केन्द्रात्परम् पणरमापोक्लिममतः परम्।
रक्त श्वेत शुकनिभ पाटलो धूम्रपाण्डुरौ। १२
चित्र कृष्ण पीतपिंगौ बभ्रु स्वच्छ प्रभाक्रियात्।
साम्याशाद्यप्लवत्वं स्याद्द्वितीये वशिरर्कभात् ॥१३

सूर्य, चन्द्रमा, मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि का उच्च मेष से तुला तक होता है। जिस ग्रह की जो राशि उच्च कही गई है उससे सातवीं राशि उसका नीच स्थान होता है। चर में पूर्व नवमांश वर्गोत्तम है। स्थिर में मध्य नवमांश और द्विस्वभाव में अन्तिम नवमांश वर्गोत्तम है। लग्न आदि में बारह भाव होते हैं ॥ ८-९ ॥ सूर्य का सिंह, चन्द्रमा का वृष, मङ्गल का मेष, बुध का कन्या, गुरु का धनु शुक्र का तुला और शनि का कुम्भ—ये मूल त्रिकोण कहे गये हैं।

चतुथ और अष्टम भाव का नाम चतुरस्र तथा नवम पञ्चम का त्रिकोण है। द्वादश, अष्टम, षष्ठ का नाम त्रिक' है चतुथ, सप्तम, दशम का नाम केन्द्र है। द्विपद, जलचर कीट और पशु—ये राशियाँ क्रमश केन्द्र मे बली होती हैं। केन्द्र के पश्चात् के स्थान ' प ण फ र ' कहे गये हैं उसके बाद वाले आपोक्लिम' कहलाते हैं। बारहो राशियों का वण क्रमश लाल श्वेत, हरित पाटल धूम्र, पाडु चितकबरा, कृष्ण, पीत पिङ्ग भूरा और स्वच्छ कहा गया है। सब राशियाँ स्वामी की ओर झुकी रहती हैं। सूय की राशि से दूसरे का नाम वेशि' है ॥ १०-१३ ॥

कालात्मार्को मनश्चन्द्र कुज सत्व वचोबुध ।
जीवोज्ञान सुख शुक्र कामो दु ख दिनेशज ॥१४
नृपौ रवीन्दू नेतासृज कुमारो ज्ञ कवीज्यकौ ।
सचिवौ सूर्यज प्रेष्योमतो योतिर्विदावरै ॥१५

[illegible] ॥१६
[illegible] ।
[illegible] ॥१७
[illegible] स्मृता ।
[illegible] ॥१८

चन्द्रार्कजीवा ज्ञसितौ कुजार्की सात्विकादिका ।
द्युतेन्द्वग्निखलाभूकोसखायोपराधिपा ॥२०
वस्त्र स्थल नव वह्निकहत मध्यद तथा ।
स्फुटित रवितस्ताम्र तार त म्र शुनिस्तया ॥२१
हमनास्यापमीन्यशो शिशिराद्या प्रकीर्तिता ।

सौरशुक्रारचन्द्रज्ञगुरुपूर्वासु च क्रमात् ॥२२

काल पुरुष की कल्पना मे सूर्य उसके आत्मा, चन्द्रमा मन, मङ्गल सत्व, बुध वाणी, बृहस्पति ज्ञान, शुक्र, काम तथा शनि दुःख रूप हैं। सूर्य, चन्द्रमा नृप, मङ्गल नेता, बुध कुमार, बृहस्पतितथा शुक्र मन्त्री और शनि सचिव के समान है ॥१४-१५॥ सूर्यादि ग्रहों का वर्ण ताम्र, शुक्ल, रक्त, हरित, पीत, चितकबरा तथा काला है। अग्नि, जल कार्तिकेय, हरि, इन्द्र, शची और ब्रह्मा सात इनके स्वामी कहे गये हैं ॥१६॥ सूर्य, शुक्र, मङ्गल, राहु, शनि, चन्द्रमा, बुध तथा बृहस्पति—ये आठो क्रमश पूर्व, आग्नेय, दक्षिण, नैर्ऋत्य, पश्चिम, वायव्य, उत्तर तथा ईशान दिशाओ के स्वामी हैं। चन्द्रमा (क्षीण), सूर्य, मङ्गल, और शनि ये पापग्रह हैं। बुध तथा शनि क्लीव हैं, शुक्र, चन्द्रमा स्त्री ग्रह, शेष पुरुष ग्रह हैं। मङ्गल, बुध, गुरु, शुक्र, तथा शनि क्रम से अग्नि, भूमि, आकाश, जल तथा वायु तत्वो के स्वामी हैं ॥१७-१८॥ शुक्र, गुरु ब्राह्मण, मङ्गल, सूर्य क्षत्रिय, चन्द्रमा वैश्य, बुध शूद्र वर्ण वालो के स्वामी हैं। शनि अन्त्यजो तथा राहु म्लेच्छो के अधिपति कहे गये हैं ॥१९॥ चन्द्रमा, सूर्य, बृहस्पति, सतोगुण के, मङ्गल-शनि तमोगुण के स्वामी हैं। सूर्य देवताओ के, चन्द्रमा जल के, मङ्गल अग्नि के, बुध क्रीडा के, बृहस्पति भूमि के, शुक्र कोप के, शनि शयन के तथा राहु ऊसर के स्वामी हैं। स्थूल, नवीन, जला हुआ, भीगा हुआ, मध्यम, सुदृढ़ तथा फटा हुआ क्रम से सूर्यादि का वस्त्र कहा गया है। तांबा, मणि, सुवर्ण, कांसा, चांदी, मोती तथा लोहा ये क्रमश इनकी धातुएं हैं। शिशिर, बसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद और हेमन्त क्रमश शनि, शुक्र, मङ्गल, चन्द्र, बुध तथा गुरु की ऋतुएँ हैं ॥२०-२२॥

स्वामित्रिकोणतुङ्गाद्यस्थानान्येव वृद्धित ।
सौरेज्यारारपरे पूर्व क्रमात्पश्येति नारद ॥२३

अयनक्षणघस्तर्तु मासार्द्ध शरदो रवे ।
कटुतिक्तक्षारमिश्रामधुराम्लाकषायका ॥२४
त्रिकोणात्सात्यघाधर्मायु सुखस्वोपच सुहृत ।
जीवोजीवज्ञौ सितज्ञौ व्यर्का व्यार भमादमी ॥२५
वीद्वर्को विधुर्जेद्वर्का सुहृदोन्ये रवेधता ।
मियोधनव्ययायत्रिचधुव्यापारग सुहृत् ॥२६
घ्येकानुभक्तामयान् ज्ञात्वा मिथोदीरसहजा मुने ।
मत्वालोधिसुहृन् मित्रपूर्वकान् कल्पयेत् पुन ॥२७

समस्त ग्रह अपने स्थान से ३ १० स्थान को एक चरण से ५, ९ को दो चरण से ४ ८ को तीन चरण से और ७ वें को चार-चरण से देखते हैं। पर ३ १० को शनि ५ ९ को बृहस्पति तथा ४ ८ को मङ्गल पूर्ण दृष्टि (चारों चरण) से देखते हैं अन्य ग्रह केवल सप्तम को पूर्ण दृष्टि से देखते हैं ॥ २४ ॥ अयन मुहूर्त अहोरात्र मास पक्षवारा तथा वर्ष क्रम से सूर्यादि के कालमान हैं। कटु लवण तिक्त मिश्रित मधुर अम्ल और कषाय क्रमश सब ग्रहों के रस हैं। ग्रहों के अपने मूल त्रिकोण स्थान से २ १२ ५ ९ ८ ४ स्थानों के स्वामी मित्र होते हैं और १ ३ ६ ७ १० ११ के शत्रु होते हैं। सूर्य का बृहस्पति चन्द्र के गुरु बुध मङ्गल के शुक्र बुध बुध के रवि को छोड़कर शेष सभी ग्रह बृहस्पति के मङ्गल को छोड़कर सभी ग्रह शुक्र के चन्द्र-रवि को छोड़कर सभी ग्रह और शनि के मङ्गल—चन्द्र—रवि को छोड़कर सभी ग्रह मित्र होते हैं। इसके अतिरिक्त जो दो ग्रह २—१२ । ३—११ । ४—१० स्थानो मे हों वे तात्कालिक मित्र होते हैं ॥ २४–२७ ॥

स्वोच्च त्रिकोणगेहा पुनवांशेस्थानजवनम् ।
दिक्षु सोम्येज्ययो सूर्यारयो सौरे सिताब्जयो ॥२८
खाद्दनूदगनेन्ये तु वक्र च समागमे ।

उत्तरस्था दीप्तकराश्चेष्टा वीर्ययुता मता ॥२६
निशीन्दुकुजसौराश्च सर्वदा क्षोह्नि चापरे।
क्रूरा कृष्णे सिते सौम्या मत कालबलबुधं ॥३०
सौरारज्ञेज्यशुक्रेन्दुसूर्याधिक्य परस्परम् ।
पापास्तु बलिनः सौम्या विवक्षा ,कटकोपगे ॥३१
क्लीवे तद्दर्शनाद्वापि ज्ञाद्राकांशसम जनु ।
स्वांशे पापा पराशस्था सौम्या लग्न वियोजिनम् ॥३२
निर्बल च तदादेश्य वियोनेजंन्म पण्डितं ।
शीर्ष वक्त्रगते पादावसो सृष्टमुरस्तथा ॥३३
पार्श्वे कुक्षी स्वपानाद्यो मेढ्मुप्को तथा स्फिजौ ।
पुच्छा चतुष्पदाङ्गेषु मेषाद्या राशय स्मृता ॥३४
लग्नांशाद्ग्रहयुग्दृष्ट्वा वर्णान् बलयुताद्वदेत् ।
हक्समान प्रमाणाश्च दृष्टेरेखा स्मरस्थिते ॥३५

अब विभिन्न ग्रहो के प्रभाव पर विचार करते हुए कहते है स्वय के उच्च, मूल त्रिकोण, गृह और नवमाश मे स्थान के अनुसार विभिन्न् ग्रहो का न्यूनाधिक प्रभाव होता है। बुध और बृहस्पति को पूर्व (उदय लग्न) म दिन्सम्बन्धी बल प्राप्त होता है। इसी प्रकार सूर्य और मङ्गल को दक्षिण (दशम भाव) मे, शनि को पश्चिम (सप्तम भाव) म, चन्द्र तथा शुक्र को उत्तर (चतुर्थ भाव) मे बल मिलता है। सूर्य और चन्द्रमा उत्तरायण मे तथा दूसरे ग्रह वक्री होने तथा चन्द्रमा [redacted] साथ समागम मे बली समझ जाते है। जिन दो ग्रहो म युति होती है तो जो ग्रह उत्तर मे होता है वह अधिक शक्तिशाली समझा जाता है। चन्द्रमा, मङ्गल और शनि ये सदैव रात्रि मे बली होते है, बुध दिन और रात्रि दोनो म तथा अन्य दिन मे होते है। पाप ग्रह कृष्णपक्ष मे और शुभ-ग्रह शुक्लपक्ष मे अधिक शक्तिशाली होते है ॥ २८—३० ॥ शनि, मङ्गल,

बुध, बृहस्पति, शुक्र, चन्द्रमा तथा सूर्य ये सब उत्तरोत्तर अधिक शक्ति रखने वाले कहे गये हैं। पापग्रह निर्बल और शुभ बलवान हों, नपुंसक ग्रह केन्द्र में हों तथा लग्न पर शनि या बुध की दृष्टि हो, तो चन्द्रमा जिस राशि के बारहवें अंश में हो उसी राशि के अनुसार वियोनि (पशु पक्षी आदि) का जन्म माना जाता है। अथवा पाप ग्रह अपने नवमांश में और शुभ ग्रह अन्य ग्रहों के नवमांश में हों तथा वियोनि राशि लग्न में निर्बल हों तो भी वियोनि का जन्म मानना चाहिये। मस्तक मुख, पैर, कन्धा, पीठ, हृदय, दोनों बगलें, पेट, गुदा, लिङ्ग, अण्डकोष, चूतड़ और पूंछ आदि अंगों में मेषादि राशियों का स्थान होता है। लग्न में जिस ग्रह का योग हो उस ग्रह के समान और यदि किसी का योग न हो तो लग्न के नवमांश के समान वियोनि प्राणी वर्ण (रङ्ग) कहना चाहिए ॥३१-३५॥

खगव्यशे बलाग्नेगे चरमांशे ग्रहान्विते ।
बांशेस्थलाम्बुज सौरेद्दीक्षायोगभवा द्विजा ॥३६
विप्रलैस्तनु चद्रैज्यार्कैस्तरुणा जनि वदेत् ।
स्थलाबुभेन्द्रोश कृतश्चेतरेषा मुदाहृत. ॥३७
स्थलांव च पति खेटो लग्नाद्यावन्मिते गृहे ।
तावंत एव तरवे स्थलजा जलजास्तथा ॥३८
अंत. सारारवी सौरे दुर्भगा. क्षीरिणो विधौ ।
भौमे कंटकिनो वृया ईज्ये ज्ञे सफलाफलो ॥३९
पुष्पिता भोगवे स्निग्धाश्चद्रय कटुका कुजे ।
अशुम भर्क्षे शुभ खेट शुभ वृक्ष कुभूमिजम् ॥४०
कुर्याद्विलोभगो वापि स्वांशोक्तपरो समेम् ।
कुजेन्दुहेतुक स्त्रोणा प्रतिमासमिहर्तवम् ॥४१
नेष्टस्थे जन्यथास्तै स्त्रीयु क्तासन्नरे रक्षिते ।
पादयुक्ते क्षिते द्यूने रुपाप्रीत्या शुभग्रहे ॥४२

ग्रह पूर्ण लग्न में यदि बुध को नवमांश हो, चर राशि पर हो और शनि या चन्द्रमा की दृष्टि हो तो स्थल अथवा जल मे रहने वाले पक्षी का जन्म समझना चाहिये। चन्द्रमा, बृहस्पति, सूर्य के निर्बल होने पर स्थल अथवा जल के वृक्षों का जन्म जानना चाहिये। उस स्थल का जल का स्वामी लग्न से जितने नवमांश आगे हों उतनी ही संख्या समझनी चाहिए ॥ ३६-३८ ॥ अगर स्वामी सूर्य हों तो अन्त सार वाले वृक्ष, शनि हो तो दुर्भग (बेकार), चन्द्रमा हो तो दूध वाले, मङ्गल हो तो काँटे वाले, बृहस्पति से फल वाले, बुध से फल रहित, शुक्र से फूल वाले वृक्षों का जन्म समझना चाहिए। चन्द्रमा से स्निग्ध, मगल होने से कटु वृक्ष होते हैं। शुभ ग्रह होने से कुभूमि में भी अच्छे वृक्ष हो जाते हैं और इसके विपरीत ग्रह होने से अच्छी भूमि भी उत्तम वृक्ष उत्पन्न करने में समर्थ नहीं होती। स्त्रियों के मासिक धर्म का कारण भी मगल और चन्द्रमा का प्रभाव ही होता है। जब चन्द्रमा स्त्री की राशि से नेष्ट हो और बृहस्पति से देखा जाता हो तो स्त्री को पुरुष का सयोग प्राप्त होता है। सप्तम भाव पर पाप ग्रह का योग हो तो रोष-पूर्वक और शुभग्रह का योग हो तो प्रेमयुक्त पति पत्नी का सयोग कहा गया है ॥ ३९-४२ ॥

शुक्रार्केन्दुजै स्वायास्थैरीज्य चापत्रिकोणगे।
भवेदपत्य विप्रेन्द्र पुंसा सद्वीर्यशालिनाम् ॥४३
अगर्केन्दो कुजार्की चेत् पु स्त्रियोरामय प्रदौ।
व्ययस्वगौ युतौ चैकदृष्टयामृत्युप्रदौ तयो ॥४४
शुक्रार्कौ मातृपितरौ दिवा नक्त शशीनजौ।
मातृव्यपितृव्यसज्ञौ वा पक्षमौ समे यमौ ॥४५
पापदृष्टे शुभे धी ते तु गे वे सप्तगे यमे।
क्षीणेन्दु युक्ते नष्टे मृत्युमेष्य गतो ध्रुवम् ॥४
मु पपड्डा पृथगस्थौ तात-ट्ट पापमध्यगौ।

यदा तदा गर्भयुता नारी मृत्युमवाप्नुयात् ॥४७
लग्नाच्चन्द्राच्चतुर्यस्थे पापैर्निधनगे कुजे ।
नष्टेन्दौ कुजरव्योश्च वधुरिष्फगयोमृ ति ॥४८
तन्वस्तसस्थयोर्भौमरव्योशस्त्र भव क्षय ।
यन्मासाधिपतिर्नष्टस्तन्मासे सस्रवे त्यजतेत् ॥४६

सयोग काल मे शुक्र, सूय, चन्द्रमा तथा मगल नवमास पर हों और वृहस्पति केन्द्र या त्रिकोण मे हो तो सन्तान की प्राप्ति निश्चित रूप से होती है । यदि उस समय मङ्गल और शनि सूर्य से सप्तम हो तो पुरुष के लिये और चन्द्रमा से सप्तम हो तो स्त्री के लिए रोगोत्पत्ति का कारण होते हैं । इसी प्रकार ये ग्रह सूय से १२ २ मे हो तो पुरुष के लिये और चन्द्रमा से ही तो स्त्री के लिये मृत्युप्रद कहे गये है ॥ ४३–४४ ॥ दिन मे गर्भाधान होने पर शुक्र और सूर्य क्रमश मातृ–पितृ ग्रह होते हैं और रात्रि मे होने पर चन्द्रमा और शनि कहे गये हैं । पितृग्रह विषम राशि मे होने से पिता के लिये और मातृग्रह सम राशि मे होने से माता के लिये शुभ कहे गये हैं । यदि बारहवे स्थान मे पापगृह हो और शुभगृह के बजाय पापगृह द्वारा ही देखा जा रहा हो अथवा लग्न मे शनि हो और वह क्षीण चन्द्रमा और मङ्गल स देखा जाता हो तो गर्भाधान के फलस्वरूप स्त्री की मृत्यु सम्भावित होती है ॥ ४५–४६ ॥ लग्न और चन्द्रमा पापगृहों के मध्य में हो तो स्त्री और गर्भ या केवल स्त्री की ही मृत्यु की आशंका मानना चाहिये ।४७। लग्न या चद्रमा से पाप ग्रह चतुर्थ हो, मङ्गल अष्टम भाव में हो अथवा लग्न से चौथे या बारहवे स्थान में मङ्गल और शनि हो तब भी मृत्यु का भय रहता है ।४८। लग्न मे मङ्गल और सप्तम सूर्य होने से गर्भवती का शस्त्र मे मारे जाने की सम्भावना होती है । गर्भ की स्थापना के समय जिस मास का अधिपति अस्त होता हो तो उस महीने मे गर्भ के गिर जाने की संभावना समझनी चाहिय ॥ ४६॥

लग्नेन्दुगैः शुभैः खेटैः त्रिकोणार्थास्त मूर्धगैः ।
पापैस्त्रिषष्ठ लाभस्थैः सुखी गर्भो रवीक्षितः ॥
ओजभे पुरुषांशेर्के ज्येन्दुलग्नैर्बलान्वितैः ।
गुर्वर्कौ विषमस्थौ वा पुंजन्म प्रवदेत्तदा ॥५१
युग्मभांशस्थितैरेभिस्तु वक्रेन्दुभृगुभिस्तथा ।
यामस्थानगतैर्वाऽथ स्त्रियो जन्म मनीषिभिः ॥५२
द्व्यंगस्था बुधगदृष्टाः स्वपक्षे यमलाकराः ।
लग्न त्रिकोणभावस्य भौर पुंजन्मकृत्तथा ॥५३
मिथः स्वोन्दुर्भागौ वा पश्यन समग रविः ।
वज्रोयागविधू ओजे जको युग्मोज सम्स्थितौ ॥५४
कुजेक्षितं पुमांशेर्गोन्दुहिना क्लीब जन्मदा ।
समे सितेन्दू ओजस्था ज्ञागेज्या नृवीक्षितौ ।
समे त्रासगो यमस्थाने वा यम ...

चन्द्रमा सम और लग्न विषम राशि में हो और उन पर मङ्गल की दृष्टि हो, अथवा लग्न, चन्द्र और शुक्र तीनों पुरुष राशि के नवमास में हों तो नपुसक (हिजड़ा) का जन्म होता है। यदि सम राशि वाले शुक्र और चन्द्रमा हो और बुध, मयन, लग्न, बृहस्पति विषम राशि में स्थित रहते हुए पुरुष गृह मे देखे जाते हों तो जुड़वा सन्तान होती है। अथवा लग्न एव चन्द्रमा समराशि मे हो व बुध, मङ्गल लग्न एव गुरु समराशि के हों तो भी जुड़वाँ उत्पन्न होने की सम्भावना मानी जाती है ॥ ५४—५५ ॥

ग्रहोदयस्थान् वगाशान् पश्यति ज्ञे स्वभागगे॥५६
त्रितय शाशकायुग्ममिश्रं सममादिशेत् ।
लग्ने चापान्त्यभागस्थे तदशस्थ बलिग्रहे ॥५७
वीर्याढयज्ञार्किसदृष्टे कोशस्थावहयोगिन ।
सितारेज्यार्क चन्द्रार्किज्ञागेशतेर्केन्दवोधिपा ॥५८
मासाना तत्सम वाच्य गर्भस्थस्य शुभाशुभम् ।
त्रिकोणेज्ञे परैर्नष्टे द्विमुखाहिनकपान्वित ॥५९
अवागावादावशुभेभसधिस्थै प्रजायते ।
वीरान् सगोश्चदष्टेव्वष्टार्कतिभ सहिता ॥६०
आरार्को वेज्यभाशस्थौ सदतोगर्भकस्तदा ।
खभेजे भुवि मदारदृष्टे कुब्जस्तु गर्भग ।
पगुर्मीने यमेद्वारैर्दष्टे शागेभसधिगे ॥६१
पापैर्जडो विधौ गर्भ शुभदृष्टिविवर्जिते ।
मृगान्त्यगे वामनक सौरेंद्वर्कनिरीक्षिते ।
धीनयोदपगेस्थ्यशे पापास्तैरसिरोह्लदा ॥६२
रवीन्दुयुक्ते सिंहेंगे माहगे माहेयार्किनिरीक्षिते ।
नेत्रहीना मिश्रखेटेदृष्टे बुद्बुद् लोचना ।
व्ययेजो वामनयन दक्ष सूर्यो विनाशयेत् ॥६३

जब बुध नवमांश में रहकर द्विस्वभाव राशिस्थ ग्रह और लग्न को देखता है तो तीन सन्तान एक साथ उत्पन्न होने की सम्भावना रहती है। उनमें से दो बुध के सदृश और एक लग्न के सदृश्य होंगे। यदि धनु-राशि अन्तिम अंश लग्न हो, उसी अंश में बलवान ग्रह स्थित हो और बली बुध या शनि से देखे जाते हो तो तीन से भी अधिक सन्तान की सम्भावना समझ लेनी चाहिए ॥२६—२७॥ गर्भकाल दश महीनों के दश स्वामी या अधिपति ज्योतिष शास्त्र में बतलाये हैं। वे क्रम से शुक्र, मङ्गल, बृहस्पति, सूर्य, चन्द्रमा, शनि, बुध आधीन लग्नेश सूर्य और चन्द्रमा होते हैं। जिस मास में जैसा सबल या निर्बल ग्रह होता है, उस मास में वैसा ही शुभ या अशुभ प्रभाव गर्भ और गर्भवती पर पड़ता है। बुध त्रिकोण में हो और अन्य ग्रह निर्बल हो तो गर्भस्थ शिशु के दो मुख, चार हाथ, चार पैर आदि होते हैं। चन्द्रमा वृष में और अन्य ग्रह निर्बल हो तो बालक गूँगा होता है। यदि उन ग्रहों पर शुभ ग्रहों की दृष्टि हो तो बालक अधिक दिनों में बोलता है ॥२८—३०॥ मङ्गल और शनि के बुध की राशि नवमांश में होने से बालक जन्म लेते समय ही दाँतयुक्त होता है। यदि चन्द्रमा कर्क राशि में होकर लग्न में हो और शनि तथा मङ्गल की दृष्टि हो तो शिशु गर्भावस्था में ही कुब्ज (कुबड़ा) होता है। अगर लग्न मीन राशि की हो और शनि, चन्द्र एवं मङ्गल की दृष्टि हो तो पंगु होता है। पापग्रह तथा चन्द्रमा के राशि सन्धि में होने तथा शुभ ग्रहों की दृष्टि न होने से बालक जड़ होता है। यदि लग्न मकर राशि के अन्तिम अंश में हो एवं शनि चन्द्रमा तथा सूर्य की दृष्टि हो तो बौना होता है। पञ्चम तथा नवम लग्न के द्रेष्काण में अशुभ ग्रह होने से वह पैर अथवा हाथों से रहित होता है। सूर्य और चन्द्रमा सिंह लग्न में हो और शनि, मंगल की दृष्टि हो तो अन्धा होता है। अगर शुभ तथा अशुभ दोनों की दृष्टि हो तो नेत्रों में बुदबुद (फूली) होती है। लग्न से बारहवें भाव पर

चन्द्रमा हो तो बाँयी आँख नष्ट हो जाती है और सूर्य हो तो दाहिनी आँख जाती रहती है ।।६१–६३।।

नेष्टा योगा शुभैर्दृष्टा. पापाः स्युर्नात्र संशयः ।
मदेस्ते मदभांशगे नियेकेन्द्वये जनि. ।।६४
द्वादशाब्दे शशिन्येव सुतावपि विचिंतयेत् ।।६५
आधानेन्दु द्वादशांशा पापास्तद्राशिभि. पुरः ।।६६
शशाके जन्ममासादि द्विघ्नमिष्टश्वसाः स्मृताः ।।६७
पितु परोक्षे जन्मास्यादिन्दोर्नंन्नमपश्यति ।।६८
मध्याद्भ्रष्टेर्कं विदेशस्थे जनने नारिजन्म यं ।
मदेन्नगस्थे कुजेस्ते च शोस्कुजि मध्यगे विधौ ।।६९
पापागेब्जे त्रिभागे सौ स्वायगैः सद्भिःरद्गत. ।
सूर्यंस्तदृष्टिगो वापि ज्ञेयो ज्योतिर्विदो वरै. ।।७०
धनुष्यदशांगे भानो शेषैर्बनयुतै. धरै. ।
योगादतो तु यमनो जायेते मुनिसत्तम् ।।७१

अथवा बुध और शुक्र के बीच चन्द्रमा होने पर भी पिता के न होने पर शिशु जन्म होना कहा जाता है। पाप की राशियुक्त लग्न मे चन्द्र हो अथवा वृश्चिक राशि के द्रेष्काण मे हो तो सर्प का जन्म समझना चाहिये। यदि सूर्य चतुष्पद राशि मे हो और अन्य ग्रह बलवान हो तो एक ही कोश में यमल (जुड़वा) शिशुओं का जन्म होता है। ॥६४–७१॥



॥ त्रिस्कन्ध ज्योतिष का संहिता स्कन्ध ॥

क्रमाच्चैत्रादिमासेषु मेषाद्या क्रमशो यता ।
चैत्रशुक्लप्रतिपदि यो वार स नृप स्मृत ॥१
मेषप्रवेशे सेनानी कर्कटे सस्यपो भवेत् ।
समोद्यधीश्वर सूर्यो मध्यमश्चोत्तमो विधु ॥२
ने ट कुजो बुधो जीवोभृगुस्त्वतिशुभङ्कुर ।
अधमो रवि जो वाच्यो ज्ञाता चैषा बलाबलम् ॥३
दण्डाकोर कबधेवा ध्वाक्षाकारेथ कोलके ।
दृष्टेर्के मण्डले व्याधिर्भीतिश्चोरार्थनाशनम् ॥४
छानध्वज पताकाच सन्निभैस्तिमितैर्ध्वनै ।
रविमण्डलगैर्धूम्रं सस्फुलिगैर्जगत् क्षय ॥५
सितरक्तौ पीतकृष्णैर्वर्णा विप्रादिपीडनम् ।
घ्नन्ति द्वित्रिचतुर्वर्णैर्भुवि राजजनान्मुो ॥६
ऊर्द्ध्वं भानुकरैस्ताम्रैर्नाश याति चमूपति ।
पीतैर्नृपसुत श्वेतै पुरोधाश्चित्रतैर्जना ॥७

चैत्र आदि बारह महीनो म क्रम से लगा कर मीन तक बारह राशियाँ आती रहती हैं जिनमे सूर्य की सक्रान्ति कही जाती है। चैत्र शुक्ल के प्रथम दिन (प्रतिपदा का) जो वार (दिन) पड़ता है वही उस

वर्ष का राजा कहा जाता है। मेष राशि में सूर्य का प्रवेश होते समय जो दिन हो वह सेनापति या मन्त्री होता है। कर्क राशि की संक्रान्ति वाला वार सस्य (अन्नादि) का अधिपति माना जाता है। जब किसी वर्ष का अधिपति सूर्य हो तो वह मध्यम और चन्द्रमा हो तो उत्तम फल प्राप्त होता है।१-२। मङ्गल को अशुभ फल देने वाला और बुध, बृहस्पति तथा शुक्र को बहुत शुभ फलदायक माना गया है। शनि के अधिपतित्व को अधम कहा गया। इन सब ग्रहों के बलाबल को देखकर ही उस वर्ष के न्यूनाधिक शुभ या अशुभ होने का निर्णय किया जाता है। ३। सूर्य के मण्डल में यदि दण्ड, कबन्ध, कौआ अथवा कील के आकार वाले चिन्ह दिखाई पड़ें तो उसका फल रोग, भ्रांति और चोरों का उपद्रव तथा अर्थ नाश होता है। अगर छत्र, ध्वजा पताका, सजल मेघ, अग्नि की चिनगारियों जैसे चिन्ह दिखाई दें तो देश का नाश समझना चाहिए।४-५। श्वेत, लाल, पीला या काला रंग सूर्य मण्डल में जान पड़े तो क्रमशः चारों वर्णों के लोगों को पीड़ा सहन करनी पड़ती है। यदि इन रंगों में से कई रंग के वर्ण मिले हुये दिखाई पड़ें तो राजा लोगों का नाश होता है।६। सूर्य की ऊर्ध्व-किरणें लाल रङ्ग की हों तो सेनापति का पीले रङ्ग की हों तो राजकुमार का श्वेत हों तो पुरोधा (पुरोहित) और विभिन्न वर्ण की हों तो जनता का नाश होता है।७।

धूम्रं नृपविशस्तेस्तु जलदाधोमुखीर्जगत् ।
शुभोर्क शिशिरे ताम्र कंकुमाभा वसन्तिके ॥८
ग्रीष्मश्चापाण्डुरश्चैव विचित्रो जलदागमे ।
पद्मोदिराभ शरदि हेमते लोहितच्छवि ॥९
पीत, शीते सितेवृष्टौ ग्रीष्मे लाहितभारवि ।
रोगानावृष्टिभयकृत् क्रमादुक्तो मुनीश्वर ॥१०
इन्द्रचापार्द्ध मूर्तिस्तु भानुर्भू पविरोधकृत् ।
शशरक्तनिभे भानौ संग्रामो न चिराद्भुवि ॥११

मयूरपत्रसङ्काशो द्वादशाब्द न वर्षति ।
चन्द्रमासदृशो भानु कुर्याद् भूपातर क्षितौ ॥१२
अर्के श्यामे कीटभय भस्माभे राष्ट्रज तथा ।
छिद्रेकमण्डले दृष्ट महाराज विनाशनम् ॥१३
घटाकृति क्षुद्भयकृत्पुरहातोरणाकृति ।
छत्राकृतेदेशहति खडभानु नृपातकृत् ॥१४

सूर्य की इन किरणों का रग यदि धुँआ का सा हो तो राजा का, पिशग हो तो मेघ (वर्षा) का नाश होता है। अगर किरणें अधोमुख हो तो जगत के लिये अकल्याणकारी होती हैं। यदि शिशिर ऋतु मे सूर्य ताम्रवर्ण दिखाई दे तो उसे शुभ कहा गया है। इसी प्रकार बसन्त ऋतु मे पीला, वर्षा मे मिले जुले अनेक रगो का, शरद मे पद्म के रग का और हेमन्त मे लोहित (रक्त वर्ण) रङ्ग का सूर्य दिखाई पड़े तो वह शुभ होता है। यदि जाड़े की ऋतु मे सूर्य का रङ्ग पीला जान पड़े तो रोग का सूचक है, वर्षा मे श्वेत दिखाई दे तो जलाभाव का चिन्ह है और ग्रीष्म मे लाल रङ्ग का जान पड़े तो किसी प्रकार का भय उपस्थित होता है। सूर्य का आधा भाग इन्द्र धनुष के से रङ्ग का दिखाई पड़े तो राजाओ मे कलह होता है। यदि वह शशक के रक्त के समान दिखाई दे तो शीघ्र ही महायुद्ध छिड जाता है ॥ ८--११॥ यदि सूर्य का रङ्ग मोर पख के समान हो तो बारह वर्ष तक वर्षा नही होती, अगर सूर्य कभी चन्द्रमा के समान दिखाई दे तो राज्य परिवर्तन हो जाता है ॥ १२ ॥ श्याम रङ्ग का दिखाई पड़ने से कीट-भय उत्पन्न होता है, भस्म के समान हो तो राष्ट्र व्यापी सङ्कट सामने आता है, यदि सूर्य मडल मे छिद्र दिखाई दें तो महाराजा की आकृति वाला सूर्य का विनाश होता है ॥१३॥ घट अकाल उत्पन्न करता है, तोरण के आकार वाला नगरो का नष्ट करने वाला होता है, छात्र की आकृति वाला देश का नाशक और खण्डित दिखाई पड़ने पर राजा का अन्त करने वाला होता है ॥१४॥

पाप्यशृङ्गोन्नतश्चन्द्रः शुभदो मीन मेषयोः ।
सौम्य शृङ्गोन्नतः श्रेष्ठो नृयुङ् मकरयोस्तथा ॥१५
घटोक्षणस्तु सम. कर्कचापयो. शरसन्निभः ।
चापवक्रोऽमेहयोश्च शूलवत्तुलकन्ययो. ॥१६
विपरीतोदितश्चन्द्रो दुर्भिक्षकलहप्रदः ।
आषाढद्वयमूलेन्द्रधिष्ण्यानां याम्यग. शशी ॥१७
अग्निप्रदस्तोयचर वन सर्प विनाशकृत् ।
विशाखा मित्रयोर्याम्यपार्श्वग. पापग. शशी ॥१८
दुर्भिक्ष धनधान्यादिनाशने भयकृत् सदा ।
फाल्गुन्योरुदितो भौमो वैश्वदेवे प्रतीपग. ॥२०
अस्तगश्चनुराधायां लोकत्रयविनाशकृत् ।
उदितः श्रवणे पुष्ये वक्रगोऽश्वमहान्दि. ॥२१

मीन और मेष राशि में यदि शुक्ल पक्ष में नवीन चन्द्रमा का दक्षिण शृङ्ग उन्नत दिखाई दे तो वह शुभ होता है, मिथुन और मकर राशि में भी ऐसा होना श्रेष्ठ कहा गया है, कुम्भ और वृष में दोनों शृंगों का सम होना उत्तम माना गया है। कर्क और धनु राशियों में दोनों शृंग बाणाकृति हो तो शुभ होता है। वृश्चिक और सिंह में भी, धनुष के आकार के शृंग कल्याणकारी माने गये हैं। तुला और (कन्या) में शूल की आकृति के शृङ्ग उत्तम कहे गये हैं। यदि चन्द्रमा की आकृति उत्पत्तिकर्ता मानना चाहिए। पूर्वाषाढ, इससे भिन्न प्रकार की हो तो उसे दुर्भिक्ष और कलह का उत्तराषाढ, मूल, ज्येष्ठा नक्षत्रों में चन्द्रमा दक्षिण की ओर दिखाई दे तो अग्नि भय होता है और जलचरों, थलचरों तथा सर्पों का नाश होता है। विशाखा और अनुराधा में यदि दक्षिण हो तो पापफल देने वाला होता है। १७वें या १८वें नक्षत्र में मङ्गल यदि वक्र हो तो उसको 'मुसल" कहते हैं और उससे अकाल या भुखमरी का भय उत्पन्न होता है। यदि मङ्गल पूर्वाफाल्गुनी या उत्तराफाल्गुनी में उदित होकर

उत्तराषाढ़ मे वक्र हो तथा राहिणी मे अस्त दा तीन लोक के लिए नाशकारी होता है। यदि वह श्रवण नक्षत्र मे उदित होकर पुष्य म वक्रगति को प्राप्त है ॥१५—२१॥

यदि्दग्गोऽभ्युदितो भौमस्तद्दिग्भूप भयप्रद ।
मघामध्यगतो भौमस्तत्र चव प्रतीपग ॥२२
अवृष्टिशस्त्राभयद पीड्य देवा नृपातकृत् ।
पितृद्विदैवधातृ णा भिद्य ते गडतारका ॥२३
दुर्भिक्ष मरण रोग करोति क्षितिजस्तदा ।
त्रिपूत्तरासु रोहिण्या नैॠ ते श्रवणे मृगे ॥२४
अवृष्टिदश्चरन्भौमो दक्षिणे रोहिणीस्थित ।
भूमिज सर्वधाण्यानां मुदगामी शुभप्रद ॥२५
अनावृष्टाग्निभयकृदनय नृप विग्रह ।
वसुवैष्णव विश्वेन्दु धातृभेषु चरन्बुध ॥२६
भिनत्ति यदि तत्तारा बाधावृष्टिभयकर ।
आर्द्रादिपितृभातेषु दृश्यते यदि चन्द्रज ॥२७
तदा दुर्भिक्षकलहरोगानावृष्टि भीतिहृत् ।
हस्तादिमुतारासु विचरन्निन्दुनदन ॥
क्षेम सुभिक्षमारोग्य कुरुते रोगनाशनम् ॥२८

मङ्गल जिस दिशा म उदय हो उसी तरफ के शासक के लिय भयप्रदकारी होता है। यदि मङ्गल मघा नक्षत्र से चलता हुआ वक्री हो जाय तो उसस अवृष्टि लड़ाई झगड़े की सम्भावना होती है राजा क लिये भी भयप्रद होता है। अब मङ्गल मघा, विशाखा या रोहिणी क योगतारा का भेदन करे तो उस अकाल मृत्यु और बीमारी मान वाला कहा गया है। तीनों उत्तरा नक्षत्र रोहिणी मूल श्रवण और मृगशिरा—इन नक्षत्रा क बीच होकर मङ्गल चल अथवा रोहिणी क दक्षिण तरफ होकर चल तो उससे वर्षा का अभाव होता है।

जब मङ्गल सब ग्रहो के उत्तर की ओर होकर चलता है तब उसे शुभ माना गया है और दक्षिण की तरफ चले तो अशुभ ॥२२-२५॥ आँधी मेघ आदि की बाधा न होने पर साफ आकाश मे बुध का उदय होना दिखाई न पडे तो अनावृष्टि अग्निकाण्ड, और युद्ध का भय समझना चाहिये, धनिष्ठा, श्रवण, उत्तराषाढ मृगशिरा और रोहिणी मे चलता हुआ बुध यदि योगताराओ का भेदन करे तो वह लोगो मे झगडे और अनावृष्टि की सम्भावना उत्पन्न करता है। यदि आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य, आश्लेषा, मघा, इन, नक्षत्रो मे बुध दिखाई पडे तो अकाल, कलह, रोग तथा अवृष्टि का भय जानना चाहिये। हस्त नक्षत्र से आगे के छँ नक्षत्रो मे बुध के रहने पर जनता मे सुभिक्ष, कल्याण और आरोग्य रहता है ॥२५-२८॥

अहिर्बुध्न्यार्यमाग्नेययाम्येषु चरन्बुध ॥२६
वैशाखे श्रावणे पौषे आषाढेभ्युदितो बुध ।
जगता पापफलदस्त्वितरेषु शुभप्रद ॥३०
द्विमारजोदिमास्तस्य पचमैकादशास्थिभात् ।
मन्नक्षत्रोदितो जीवस्तन्नक्षत्राख्यवत्सर ॥३१
कार्तिको मार्गशीर्षश्च नृणा दुष्टफल प्रद ।
शुभप्रदौ पौष माघौ मध्यमौ फाल्गुनो मधु ॥३२
माधव शुभदो ज्येष्ठो नृणा मध्यफल प्रद ।
शुचिर्मध्यो नभ श्रेष्ठो भाद्र श्रेष्ठ ववचिन्नर ॥३३
सौम्य मध्यमयाम्येषु मार्गेषु वीथिकात्रयम् ।
शुक्रस्य दस्रभाजूनेय पर्यायैश्च त्रिभिस्त्रिभि ॥३४
नागेभैरावताश्चैव वृषभोष्ट्रखराह्वया ।
मृगाजदहनाख्या स्युर्याम्याता वीथयो नव ॥३५

वैशाख, श्रावण, पौष और आषाढ मे उदय होने पर बुध अशुभ फल देता है और अन्य मासो मे शुभ फल देने वाला होता है

।२६-३०।। कृत्तिका आदि दो-दो नक्षत्रो के आश्रय से कार्तिक आदि मास होते हैं, परन्तु अन्तिम (आश्विन) पञ्चम (फाल्गुन) और एकादश (भाद्रपद) ये तीन नक्षत्रो से पूर्ण होते हैं। बृहस्पति का जिन नक्षत्रो मे उदय होता है, उन नक्षत्रो से सम्वत्सरो के नाम रखे जाते हैं। उन सम्वत्सरो मे से "कार्तिक" और "मार्गशीर्ष" नाम वाले सम्वत्सर प्राणियो के लिये अकल्याणकारी होते हैं। पौष और माघ नाम वाले उत्तम फल देते हैं और फाल्गुन तथा चैत्र मध्यम फल देते हैं। वैशाख शुभ और ज्येष्ठ मध्यम होता है। आषाढ मध्यम, श्रावण श्रेष्ठ और भाद्रपद कभी श्रेष्ठ और कभी विपरीत होता है ।।३१-३३।। शुक्र के तीन मार्ग कहे गये हैं—सौम्य उत्तर, मध्य और याम्य (दक्षिण)। इनमे तीन-तीन वीथियाँ होती हैं और एक-एक वीथी मे तीन-तीन नक्षत्र आते हैं। इनमे अश्विनी से आरम्भ करना चाहिए। इस प्रकार उत्तर से दक्षिण तक शुक्र के मार्ग मे नौ वीथियाँ हैं जिनके नाम हैं—नाग, इभ, ऐरावत, वृष, उष्ट्र, खर, मृग, अज तथा दहन कहे गये हैं ।।३४-३५।।

सौम्य मार्गे च तिसृषु चरन्वीथिषु भार्गवः ।
धान्यार्घ वृष्टि सस्याना परिपूर्ति करोति हि ।।३६

कृष्णाष्टम्या चतुर्दश्याममाया च यदा सितः ।
उदयास्त मन याति तदा जलमयी मही ।।३७

श्रवणानिलहस्तार्द्रा भरणी भाग्य भेषु च ।
चरन्छनैश्चरो नृणा सुभिक्षारोग्य सस्यकृत ।।३८

रोगो लाभस्तथा हानिर्लाभ. सौख्यच बधनम् ।
आयास. श्रेष्ठयात्रा च धन लाभ क्रमात्फलम् ।।३९

बहुधार्यविजस्त्वेतद्वक्य. फलमीदृशम् ।
करोत्येव सम साम्य शीघ्रगेपूक्रमात् फलम् ।।४०

एकस्मिन्नेव मासे तु चन्द्रार्कग्रहणं यदा ।
विरोधो धरणीशानामर्घवृष्टि विनाशनम् ॥४१
यावन्तो दिवसान्केतुर्दृश्यते विविधात्मकः ।
तावन्मासैः फलं यच्छा त्यष्टौ साख्य वत्सरैः ।
ये दिव्या केतवस्तेपि शश्वज्जीव फल प्रदाः ॥४२

उत्तर मार्ग की तीन वीथियों में चलने पर शुक्र धान्य, धन, वृष्टि और अन्न की पैदावार की वृद्धि करता है ॥३६॥ कृष्ण पक्ष की अष्टमी, चतुर्दशी तथा अमावस्या को यदि शुक्र का उदय या अस्त हो तो पृथ्वी जल से परिपूर्ण हो जाती है ॥ ३७ ॥ श्रवण, स्वाती, हस्त, आर्द्रा, भरणी और पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्रों में विचरण करने पर शनि सुभिक्ष, आरोग्य और कृषि की उपज को बढ़ाने वाला कहा गया है ।३८। शनि का वर्तमान जिस अङ्ग में हो उसी के अनुसार रोग, लाभ हानि-लाभ, मित्रता, बंधन, परिश्रम, श्रेष्ठ यात्रा व धन लाभ के फल उत्पन्न करती है ॥३९॥ शुक्र वक्रगामी होने पर ही शनि के ये फल स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ते हैं। यदि वह सम मार्ग पर हो तो फल मध्यम होते हैं और शीघ्रगति से हो तो उत्तम फल प्राप्त होता है ।४०। जब एक ही महीने में चन्द्रमा और सूर्य दोनों के ग्रहण पड़ते हैं तो परिणामस्वरूप राजाओं में लड़ाई झगड़े, अर्थनाश और अवृष्टि का संकट उपस्थित होता है ॥४१॥ जितने दिनों तक केतु (पुच्छलतारा) आकाश में दिखाई देता है, उतने ही महीने या सौर वर्षों तक वह अपना शुभाशुभ फल प्रकट करता रहता है। जो केतु दिव्य होते हैं वे प्राणियों को विविध प्रकार के फल देने वाले होते हैं ॥४२॥

ह्रस्व स्निग्ध सुप्रसन्न श्वेतकेतु सुवृष्टिकृत् ।
क्षिप्रादस्तमयं याति दीर्घकेतुरवृष्टिकृत् ॥४३
अनिष्टदो धूमकेतु शक्रचापसमप्रभः ।
द्वित्रिचतुः शूल रूपः स च राज्यान्तकृन्मतः ॥४४

प्रणिहारस्तु वर्णाभा दीप्तिमतोर्वं सूनव ।
ऐतवश्चोदिता पूर्वापरयोर्नृपहानिदा ॥४५
अयाद्वेश चमूनाथ सस्यपाना वलावलम् ।
तत्काल च ग्रहचार च ज्ञात्वा फल वदेत् ॥४६
सौम्यायन मासषटक मृगाद्यभानुभुक्तित ।
ग्रह सुराणा तद्रात्रि कर्काद्य दक्षिणाय नम् ॥४७
गृह प्रवेश वैवाह प्रतिष्ठा मौजिबधनम् ।
माघादौ मगल कर्म विधेय चोत्तरायणे ॥४८
याम्यायने गर्हित च कर्म यत्नात्प्रशस्यते ।
माघादिमासौ द्वौ द्वौ च ऋतव शिशिरादय ॥४९
मृगाच्छिशिर वसतश्च ग्रीष्मा स्युश्चोत्तरायणे ।
वर्षा शरच्च हेमत कर्काद्वि दक्षिणायने ॥५०

ह्रस्व (छोटे आकार वाला), स्निग्ध सुप्रसन्न (स्व वर्ण का केतु सुवृष्टि का सूचक होता है। शीघ्र अस्त होन वाला विशाल आकार का केतु अवृष्टिकारक कहा गया है ।४३। जिस धूमकेतु का वर्ण इन्द्र धनुष के तुल्य जान पडे उसे अनिष्टकारक समझना चाहिये। जो दो, तीन या चार प्रकार के रूपो मे शूलाकृति दिखाई दे वह राज्य को नष्ट करने वाला होता है ।४४। जो केतु पूर्व अथवा पश्चिम दिशा में मणि, हार और सुवर्ण के तुल्य प्रभा युक्त दिखाई दे तो उन दिशाओ के राजाओ के लिये हानिकारक होता है ।४५। किसी भी सम्वतसर का फल जानने के लिये उस वर्ष के राजा, मत्री तथा धान्येश का बलाबल और उनकी तात्कालिक स्थिति को देखकर फल कहना चाहिये । ४६ । छै महीनो तक मृगादि मे सूर्य जब सौम्यायन (उत्तरायण) रहता है, तब वह देवताओ का दिन होता है और छै महीने तक कर्कादि राशियो मे जब दक्षिणायन रहता है उसे देवताओ की रात्रि कहा जाता है ॥४७॥ गृह प्रवेश, विवाह, प्रतिष्ठा मौंजि (यज्ञोपवीत) आदि शुभ कर्म माघ

आदि उत्तरायण के महीनो में करने चाहिये । दक्षिणायन के समय इन कार्यों का होना गर्हित माना गया है । अगर कभी करना ही पड़े तो उसके लिये विशेष पूजा आदि का विधान करना पड़ता है । माघ से आरम्भ करके दो-दो महीनो की शिशिर आदि ऋतुऐं कही गई है ।४६। मकर से दो-दो राशियो मे शिशिर, वसन्त और ग्रीष्म ऋतुऐं उत्तरायण मे होती हैं और कर्क से दो दो राशियो मे वर्षा, शरद और हेमन्त दक्षिणायन मे होती हैं ॥५०॥

कार्तिके शुक्लनवमी त्वादि कृतयुगस्य च ।
त्रेतादिर्माधवे शुक्ले तृतीया पुण्यसंज्ञिता ॥५१
कृष्णापचदशी माघे द्वापरादि मुदीरिता ।
कल्यादि स्यात्कृष्णपक्षे नभस्यस्य त्रयोदशी ॥५२
भाद्रे कृष्ण त्रयोदश्या मघामिन्दु करे रवि ।
गजच्छाया तथा ज्ञेया श्राद्धे ह्यत्यतपुण्यदा ॥५३
रवि स्थिरश्चरश्चन्द्र क्रूरो वक्रोखिलो बुध ।
लघुरीज्यो मृदु शुक्रस्तीक्ष्णो दिनकरात्मज. ॥५४
चित्रादितत्रु विष्ण्व वात्याधिमित्र वसूडुपु ।
समृगेज्येपु बालाना कर्णवेध क्रिया हिता ॥५५
उत्तरात्रयमैत्रेन्द्र वसु वारुण भेपु च ।
पुष्यार्कपौष्णधिष्ण्येपु नृत्यारम्भ प्रशस्यते ॥५६

सतयुग का आरम्भ कार्तिक मे शुक्ल पक्ष की नवमी (अक्षय-नवमी) को हुआ माना है । त्रेता वैशाख शुक्ल की तृतीया (अक्षयतीज) को आरम्भ हुआ । माघ की अमावास्या द्वापर को आदि तिथि कही गई है और कलियुग की आदि तिथि भाद्रपद कृष्णपक्ष की त्रयोदशी बतलाई है । ये सब तिथियाँ विशेष पुण्यप्रद समझी जाती हैं ।५१-५२। भाद्रपद कृष्णपक्ष की तेरस को यदि सूर्य हस्त नक्षत्र मे और चन्द्रमा मघा में हो तो उसे "गजच्छाया" योग कहा जाता है । ऐसा दिन

पितरों के श्राद्ध के लिये अत्यन्त पुण्यदायक कहा गया है ॥५३॥ रविवार का दिन स्थिर सोमवार का चर, मङ्गल क्रूर, बुध अखिल, बृहस्पति लघु शुक्र मृदु और शनि तीक्ष्ण कहा गया है ॥५४॥ चित्रा, पुनर्वसु श्रवण, हस्त, रेवती, अश्विनी, अनुराधा, धनिष्ठा, मृगशिरा और पुष्य नक्षत्र कर्णवेध संस्कार के लिये उपयुक्त कहे गये हैं ॥ ५५ ॥ उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ, उत्तर भाद्रपद, अनुराधा, ज्येष्ठा, धनिष्ठा, शतभिषा, पुष्य, हस्त और रेवती को नृत्यारम्भ आदि के लिये प्रशस्त माना गया है ॥५६॥

हस्तर्क्षम् च रवाविन्दौ चन्द्रभ दस्रभ कुजे ।
सौम्य मित्रभमाचार्ये तिष्य पौष्ण भृगोसुते ॥५७
रोहिणी मदवारे च सिद्धियोगाह्वया अमी ।
आदित्य भौमयोर्नन्दा भद्रा शुक्र शशाङ्क यो ॥५८
जया सौम्ये गुरौ रिक्ता शनि पूर्णेति नो शुभा ।
नदा तिथि शुक्रवारे सौम्ये भद्रा कुजे जया ॥५६
रिक्ता मन्दे गुरोर्वारे पूर्णा सिद्धाह्वया अमी ।
एकादश्या मिन्दुवारो द्वादश्यामर्क वासर ॥६०
षष्ठी गुरौ तृतीया ज्ञे,ऽष्टमी शुक्रे शनैश्चरे ।
नवमी पचमी भौमे दग्धयोगा प्रकीर्तिता ॥६१
माघ फाल्गुण वैशाखा ज्येष्ठमासा शुभ प्रदा ।
मध्यम कार्तिकौ मार्गशीर्षो वै निंदिता परे ॥६२
चतुर्थमगिजिल्लग्नमुदयर्क्षाच्च सप्तमम् ।
गोधूलिक तदुभय विवाहे पुत्र पौत्रदम ॥६३

रविवार को हस्त, सोमवार को मृगशिरा, मङ्गल को अश्विनी, बुध को अनुराधा, बृहस्पति को पुष्य, शुक्र को रेवती और शनिवार को रोहिणी नक्षत्र हो तो उस अवसर का सिद्धि योग कहा गया है। रवि और मङ्गल को नन्दा, शुक्र और सोम को भद्रा, बुधवार को जया

बृहस्पति को रिक्ता और शनिवार को पूर्णा हो तो उस दिन शुभ कर्म न करे। शुक्रवार को नन्दा, बुध को भद्रा, मङ्गल को जया, शनिवार को रिक्ता और गुरुवार को पूर्णा तिथि हो तो उसे सिद्ध योग कहा गया है। रविवार को द्वादशी, सोमवार को एकादशी, बृहस्पति को षष्ठी, शुक्र को अष्टमी, शनि को नवमी तथा मङ्गलवार को पञ्चमी तिथि हो तो 'दग्ध योग' कहा जाता है ॥ ५७–६१ ॥ माघ, फाल्गुन, वैशाख और ज्येष्ठ—ये चार महीने विवाह के लिये उत्तम, कार्तिक तथा अगहन के महीने मध्यम और अन्य महीने निन्दित कहे गये हैं ॥ ६२ ॥ सूर्योदय के समय जो लग्न रहता है उससे चतुर्थ लग्न का नाम 'अभिजित्' है और सातवाँ "गोधूलि" लग्न कहा जाता है। इन दोनों लग्नों में विवाह कार्य होने से पुत्र–पौत्रों की वृद्धि होती है ॥६३॥

एकद्वित्रिचतुःशाला सप्तशाला दशाह्वया ।
ता पुनः षड्विधा शाला प्रत्येकं दशषड्विधा ॥६४
न मदेन्दुदिने प्राची न व्रजेद्दक्षिणां गुरौ ।
सितार्कयोर्न प्रतीचीं नोदीचीं ज्ञारयोर्दिने ॥६५
इद्राज पादचतुरास्यार्य मर्क्षाणि पूर्वत ।
मूलानि सर्वद्वाराणि मित्रार्कज्याश्च भानि च ॥६६
गन्धर्वं नगरं चैव दिवा नक्षत्र दर्शनम्
महोल्कापतनं काष्ठतृण रक्त प्रवर्षणम् ।
गान्धर्वं देह दिग्धून भूमिकम्पं दिवा निशि ॥६७
अनग्नौ च स्फुलिङ्गाश्च ज्वलनं च विर्नेधनम् ।
निशीन्द्र चाप मङ्कव शिखरे श्वेतवायस ॥६८
दृश्यते विस्फुलिंगाश्च गोगजाश्वोष्ट्रगात्रत ।
जतवो द्वित्रिशिरसा जायते वापि योनिषु ॥६९
एवमाद्या महोत्पाता वहव स्थान नाशदा ।

केचिन्मृत्युप्रदा केचिच्छत्रुभ्यश्च भय प्रदा ॥७०

घर छ प्रकार के कहे गये हैं—एक शाला, द्विशाला, त्रिशाला, चतुशाला, सप्तशाला तथा दशशाला । इनमे से प्रत्येक के १६ भेद बतलाये गये हैं ॥ ६४ ॥ शनि और सोमवार के दिन पूर्व दिशा की ओर यात्रा न करे, वृहस्पति को दक्षिण की तरफ न जाय, शुक्र और रविवार को पश्चिम की यात्रा निषिद्ध है और मङ्गल को उत्तर की ओर न जाय । ज्येष्ठा, पूर्व भाद्रपद, रोहिणी और उत्तरा फाल्गुनी—ये नक्षत्र क्रमश. पूर्व, दक्षिण, पश्चिम और उत्तर दिशाओ म शूल होते है ॥६५-६६॥ आकाश मे ग धर्व नगर का दिखाई देना, दिन मे तारे का दृष्टिगोचर होना, बडी उल्का गिरना, काष्ठ, तृण और रक्त की वर्षा, गन्धर्व-दर्शन, दिग्दाह, दिशाओ मे धुँआ छा जाना, दिन या रात्रि मे भूकम्प होना, बिना आग के चिनगारियाँ-सी उडती दिखाई देना, बिना ई धन के आग प्रकट होना, रात्रि मे इन्द्र धनुष या परि-वेश देखना, वृक्ष के ऊपर उजला कौआ दिखाई पडना, आग की चिनगारियाँ दिखाई पडना, गौ, हाथी, घोडो के दो या तीन मस्तक वाला बच्चा पैदा होना आदि घटनाये बहुत बडे उत्पातो और नाश के चिन्ह होते हैं । इनमे से कितने ही मृत्यु करने वाले और कितने ही शत्रु का आक्रमण तथा भय को सूचित करने वाले होते हैं । ॥६७-७०॥



॥ संक्षिप्त छन्द-शास्त्र वर्णन ॥

वैदिक लौकिक चापि छन्दो द्विविध मुच्यते ।
मात्रा वर्ण विभेदेन तच्चापि द्विविध पुन ॥१
मयौ रसौ तजौ भनौ गुर्ल्लघुरपि द्विज ।
वारण छदसि प्रोक्ताश्छद.शास्त्र विशारदै -

सर्वगो मगण प्रोक्तो मुखलो यगणः स्मृतः।
मध्यलो रगणश्चैव प्रान्त्यगः सगणो मतः ॥३
तगणोन्तलघु ख्यातो मध्यगो जोभ आदिग.।
त्रिलघुर्नगण. प्रोक्तस्त्रिका वर्णगणामुने ॥४
चतुर्लास्तु गणाः पञ्च प्रोक्ता आर्यादि समस्ताः।
सयोगश्च विसर्गश्चानुस्वारो लघुत. पर ॥५
लघोर्दीर्घत्वमाख्याति दीर्घो गोलो लघुर्मत.।
पादश्चतुर्थभाग. स्याद् विच्छेदो यति रुच्यते ॥६
समम‌र्द्धसम वृत्तं विषमं चापि नारद।
तुल्य लक्षणतः पाद चतुष्के सममुच्यते ॥७

श्री सनन्दनजी ने कहा—वैदिक और लौकिक दो प्रकार का छन्द कहा जाता है। मात्रिक और वार्णिक के भेद से वह लौकिक छन्द भी दो प्रकार का होता है। जिस छन्द मे गुरु-लघु मात्राओ का हिसाब होता है वह मात्रिक छन्द कहलाता है और जिस छन्द मे वर्णों का ही हिसाब होता है वह वार्णिक छन्द कहा जाया करता है ॥१॥ हे द्विज! छन्द शास्त्र के पण्डितों ने मगण-यगण-रगण-तगण - सगण-जगण—भगण-नगण इन आठ गणो को छन्द मे कारण बतलाया है तथा इन गणो के साथ गुरु और लघु भी कारण स्वरूप होते हैं ॥२॥ ये गण तीन-तीन वर्णों के होते हैं। जिस गण मे तीनो वर्ण गुरु होते हैं वह मगण होता है। यगण मे प्रथम वर्ण लघु होता है और शेष दो गुरु होते हैं। जिस गण के मध्य का वर्ण लघु और शेष दो गुरु होते हैं वह रगण कहा जाता है। सगण मे अंतिम वर्ण गुरु और शेष दो लघु होते हैं ॥ ३ ॥ जिस गण में अंतिम वर्ण लघु और शेष दो गुरु होते हैं वह तगण तथा मध्य का वर्ण गुरु और शेष दो लघु होते हैं जगण होता है। आदि का वर्ण जिस गण मे गुरु होता है वह भगण कहलाता है। तीनो वर्ण जहाँ लघु हैं वह नगण और तीनो जिसमे गुरु हो वह मगण कहा जाया

करता है ॥४॥ चतुर्मा आर्यादि से सम्मत पाँच गण कहे जाते हैं। संयोग—विसर्ग और अनुस्वार लघु वर्ण से परे हो तो लघु वर्ण को भी दीर्घता होजाया करती है। जो दीर्घ अर्थात् दो मात्रा वाला होता है उसको गुरु कहते हैं और जो ह्रस्व एक मात्रा वाला होता है वह लघु होजाया करता है। वर्ण को उच्चारण के क्रम से कम समय को ही मात्रा कहा गया है। इसी हिसाब से दीर्घ में दुगुना समय लगता है। दुगुने समय से भी अधिक समय जिसमें लगता है वह गुरु कहा जाता है। छन्द में केवल लघु और दीर्घ होने का ही विचार होता है।छन्द का चतुर्थभाग पाद कहलाताहै। जो विच्छेद है ताई उसको यति कहा जाता है ॥५।६॥ हे नारद! मात्रिक छन्द तीन प्रकार का होता है—सम-अर्ध, सम और विषम। तुल्य लक्षण से जिसके चारों पाद समान होते हैं वह सम छन्द कहलाता है ॥७॥

आद्यन्तौ द्विचतुर्थौ समम र्द्धसमं ततम् ।
लक्षण भिन्न यस्य पादचतुष्के विषम हितत् ॥८
एकाक्षरात् समारभ्य वर्णैकैकस्य वृद्धित ।
षड्विंशत्यक्षरं यावत् पादस्तावत् पृथक् पृथक् ॥९
तत्तत् षड्वृष्टयादि दक्षा परिकल्पिता ।
त्रिभि षड्भि वदैर्वर्णैर्वा शृणु मत्ता यथोत्तरम् ॥१०
उक्तात्युक्ता तथा मध्या प्रतिष्ठा स्यात् सुप्रतिष्ठा ।
गायत्र्युष्णिगनुष्टुप् च बृहती पंक्तिरेव च ॥११
त्रिष्टुप् च जगती चैव तथातिजगती मता ।
शक्वरी सातिपूर्वा च अष्ट्यत्यष्टी सम स्मृते ॥१२
धृतिश्च विधृतिश्चैव कृति प्रकृतिराकृति ।
विकृति सङ्कृतिश्चैव तथातिकृतिरुत्कृति ॥१३
इत्येताश्छन्दसां मता प्रस्तारात् भेदकाधिका ।
पाद सर्वगुरो पूर्वाल्लघु स्यात् गुरोरध ॥१४

जल मे खड़ा होकर जलाशय की मिट्टी को बाँयें हाथ की हथेली और मणिबन्ध (पहुँचा) तक लगाकर शुद्धि करे। बाँयें हाथ की एक अँगुली से कुछ मिट्टी लेकर उसे अपने शिर के चारो तरफ घुमा कर 'फट्' शब्द का उच्चारण करे ।।८।।६।। फिर हथेली की मिट्टी को छः अङ्गों मे लेपन करे और तब धो डाले। इस प्रकार बाह्य स्नान करके आन्तरिक स्नान करे। मन म यह भावना करे कि अनन्त सूर्यों के समान प्रकाशमान और दैवी आभूषणों तथा दिव्य आयुधो से सम्पन्न भगवान के चरणोदक से उत्पन्न दिव्य धारा मेरे ब्रह्मरन्ध्र के द्वारा अन्तरङ्ग मे प्रवेश कर रही है ।।१२।१४।।

तया सक्षालयेत्सर्वमन्तर्देहगतं मलम् ।।१५
तत्क्षणाद् विरजा मन्त्री जायते स्फटिकोपम ।
तत श्रौतोक्त विधिना स्नात्वा मन्त्री समाहित ।।१६
मन्त्रस्नाने तत कुर्यात्तद्विधान मयोच्यतो।
देश कालौघ सकीर्त्य प्राणायाम षडगकं ।।१७
कृत्वार्क मंडलात्तीर्थंग्याह्वयेन् मुष्टिमुद्रया ।
ब्रह्माण्डोदरतीर्थानि करे स्पृष्टानि ते र वे ।।
तेन सत्येन मे देव देहि तीर्थ दिवाकर ।।१८
गगे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति ।
नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेस्मिन्सन्निधिं कुरु ।।१६
इत्या बाह्य जले तानि सुधाबीजेन योजयेत् ।
गोमुद्रयामृतीकृत्य कवचेनावगु ठ्य च ।।२०
सरक्ष्यास्त्रेण तत्पश्चान्मत्स्यमुद्रा प्रदर्शयेत् ।
वह्न्यर्कन्दु मडलानि तत्र सचिन्तयेद् बुध ।।२१

फिर उसी दिव्य धारा से अन्तर के सम्पूर्ण मैल को भावना द्वारा धो डाले। इसम साधक रजोगुण से मुक्त होकर स्फटिक के समान शुद्ध और पवित्र हो जाता है। फिर शास्त्रोक्त विधि से

तीर्थ-जल में स्नान करके मन्त्र-स्नान करे। इसके लिये देश और काल का संकल्प करके प्राणायाम और षडङ्ग न्यास करे और दोनों हाथों में मुष्टि मुद्रा बना सूर्य मण्डल से आते हुए तीर्थों का आवाहन करे। आवाहन के लिए मन्त्र है (ब्रह्माण्डोदर [illegible]) अर्थात्—हे सूर्य देव ब्रह्माण्ड के भीतर जितने तीर्थ हैं उन सबका आपकी किरणें स्पर्श करती हैं। इस सत्य सिद्धान्त के आधार पर आप मुझे सब तीर्थों का पुण्य प्रदान कीजिये। गंगा, यमुना, गोदावरी, सरस्वती, नर्मदा, सिन्धु कावेरी इन सातों महा नदियों का प्रवेश इसी जल में हो जाय। ॥१५।१६॥ जल में इस प्रकार सब तीर्थों का आवाहन करके उस सुधा बीज (वं) से युक्त करे और धेनु मुद्रा से अमृतीकरण करके कवच द्वारा अवगुण्ठित करे। अस्त्र मुद्रा द्वारा संरक्षण करके चक्रमुद्रा का प्रदर्शन करे और उसी जल में अग्नि सूर्य और चन्द्रमा के मण्डलों की भावना करे। (धेनु मुद्रा की विधि यह है कि बायें हाथ की अंगुलियों के बीच दाहिने हाथ की अंगुलियों को संयुक्त करके दायीं तर्जनी को मध्यमा से लगावे। दायें हाथ की मध्यमा में बायें हाथ की तर्जनी को मिलावे। फिर बायें हाथ की अनामिका से दायें हाथ की कनिष्ठिका का संयोजन करे। ऐसी आकृति बनाकर उनका मुँह नीचे की ओर करे। यही धेनुमुद्रा कही जाती है) ॥२०।२१॥

मन्त्रैरेवं मन्त्रेण सुधाबीजेन तज्जलम् ।
कुर्वीत धेन्वाख्यया तत्र समस्तं भावयेत् ॥२२
पूजयेत च तन्मध्ये स्नानादावाह्य देवताम् ।
स्नानादि सार्पयेत्ता च मालयं स्नापयेत्तं ॥२३
निराचम्य ततो नत्वा तत्त्वार्थ प्रत्यङ्मुखी ।
आधार सर्वदुर्गाणा त्रिलोकेश्वरीजम ॥
ततः स्नात्वा नत्वा आशा आलप्य उपमानम् ॥२४
इति नत्वा जलम् पर सर्वसिद्धानि आपर ।

निमज्य सलिले तस्मिन्मूल देवाकृति स्मरेत् ॥२५
निमज्ज्योन्मज्ज्य त्रिश्चैव सिचेत्क कु भमुद्रया ।
त्रिमूलेन चतुर्मंत्ररभिषिचेन्निजा तनुम् ॥२६
पृथिव्या यानि तीर्थानि दक्षाघ्रौ तानि भूसुरे ।
स्वष्ट देव समुद्वास्य मन्त्री मार्तण्ड मण्डले ॥२७
तस्तीरं समागत्य वस्त्र सक्षाल्य यत्नत ।
वाससी परिधायाथ कुर्यात् सध्यादिक सुधी ॥२८

तत्पश्चात् मूल मन्त्र और सुधा बीज (व) द्वारा जल को अभिमन्त्रित मूल मन्त्र से ग्यारह बार अभिमन्त्रित करे और मध्य मे पूजा-यन्त्र की भावना करते हुये देवता का आवाहन करे । उसी समय देवता को मानसिक रूपसे स्नान कराके उपचार सहित उसकी पूजाकरे। मेरे इष्टदेव यही पर सिंहासन के ऊपर विराजमान हैं यह भावना करके उन्हे नमस्कार करे । साथ ही निम्न मन्त्र पढकर जल को भी प्रणाम करे (आधार ऐसी प्रणमायहम्) अर्थात् 'हे जल ! तुम सब भूतो के और महा तेजस्वी विष्णु भगवान के भी आधार हो । इस कारण आप विष्णु रुप ही हो, मैं आपको प्रणाम करता हूँ ॥२१—२४॥ इस प्रकार नमस्कार करके साधक अपने शरीर के सातो छिद्रों को बद करे और तीन बार जल मे डुबकी लगावे । फिर ऊपर उठकर दोनों हाथो से कुम्भमुद्रा (घडा के समान) द्वारा अपने सिर पर अभिषक करे फिर अपने इष्टदेव का सूर्य मण्डल मे विसर्जन करके धुले हुये वस्त्र धारण करके सन्ध्या आदि कर्म करे) ॥२५ २८॥

रोगाद्यशक्तो मनुज कुर्यात्तत्राघमर्षणम्।
अथवा भस्म नो स्नातो रजोभिश्चैव वा क्षम ॥२६
अथ सध्यादिक कुर्यात् स्थित्वा चवासने शुभे ।
कशवन तथा नारायणन माधवनच ॥३०
सप्राश्य ताय गोविन्द विष्णुभ्या क्षालयेत् करौ ।

मधुसूदन त्रिविक्रमाभ्यामोष्ठौ च मार्जयेत् ॥
वामन श्रीधराभ्यां च मुख हस्तौ स्पृशेत्ततः ।
हृषीकेश पद्मनाभाभ्यां स्पृशेच्चरणौ ततः ॥३२
दामोदरेण मूर्द्धानं मुखं संकर्षणेन च ।
वासुदेवेन प्रद्युम्नेन स्पृशेन्नासिके ततः ॥३३
अनिरुद्ध पुरुषोत्तमाभ्यां नेत्रे स्पृशेत्ततः ।
अधोक्षज नृसिंहाभ्यां श्रवणे संस्पृशेत्तथा ॥३४
नाभि स्पृशेदच्युतेन जनार्दनेन वक्षसि ।
हरिणा विष्णुनांसौ वैष्णवाचमनं त्विदम् ॥३५

यदि कोई बीमारी आदि से कमजोर होने से स्नान न कर सके तो अपमार्जन द्वारा भस्म अथवा रज से स्नान करके शुभ आसन पर बैठ कर तत्पश्चात् कर्म करे ॥२९।३०॥ फिर 'ॐ केशवाय नमः' 'ॐ नारायणाय नमः' 'ॐ माधवाय नमः' इन तीन मन्त्रों से तीन बार जल का आचमन करे। 'ॐ गोविन्दाय नमः' 'ॐ विष्णवे नमः' इन मन्त्रों को बोलकर दोनों हाथों को धो ले। फिर 'ॐ मधुसूदनाय नमः' 'ॐ त्रिविक्रमाय नमः' द्वारा दोनों ओठों का मार्जन करना ।३१। 'ॐ वामनाय नमः' 'ॐ श्रीधराय नमः' से मुख और दोनों हाथों को स्पर्श करना। 'ॐ हृषीकेशाय नमः' 'ॐ पद्मनाभाय नमः' द्वारा दोनों पैरों को स्पर्श करना ॥३२॥ 'ॐ दामोदराय नमः' 'ॐ संकर्षणाय नमः' से मूर्धा का और 'ॐ वासुदेवाय नमः' 'ॐ प्रद्युम्नाय नमः' से क्रमशः दाँये और बाँये नथुने को स्पर्श करे। ३३। 'ॐ अनिरुद्धाय नमः' 'ॐ पुरुषोत्तमाय नमः' से दोनों नेत्रों को, 'ॐ अधोक्षजाय नमः' 'ॐ नृसिंहाय नमः' से दोनों कानों को, 'ॐ अच्युताय नमः' 'ॐ जनार्दनाय नमः' से वक्ष स्थल को तथा 'ॐ हरये नमः' 'ॐ विष्णवे नमः' से दोनों कन्धों को स्पर्श करे। यही वैष्णव आचमन की विधि है ।३४।३५।

प्रणवाद्यैश्चतुर्थ्यन्तैः केशवादिभि नामभिः ।

मुखे नसो प्रदेशिन्या नामया नेत्र कर्ण यो ॥३६
धनिष्ठिया नाभि देश सर्वंत्रागुष्ठयोजनम् ।
आत्म विद्या शिवैस्तत्त्वं स्वाहातं शैवमीरितम् ॥३७
दीर्घ त्रयेन्दु युग्व्योम पूर्वकैश्च पिवेज्जलम् ।
आत्मविद्या शिवैरेव शैव स्वाहा वसानिकं ॥३८
वाग्लज्जा श्रीमुखं प्रोक्त शाक्त स्वाहा वसानि कं ।
वाग्लज्जा श्रीमुखं प्रोक्त द्विजाचमनमर्थदम् ॥३६
तिलक च तत कुर्याद् भाले सुष्टु गदाकृति ।
मध्क हृदये शखचक्रे चैव भुजद्वये ॥४०
शार्ङ्ग बाण मस्तके च विन्यसेत् क्रमश सुधी ।
कणमूले पार्श्वयोश्च पृष्ठे नाभौ ककुदपि । ४१

आदि मे प्रणव और अन्त मे चतुर्थी का एक वचन और नम पद लगा पूर्वोक्त केशव आदि नामो से मुख आदि नासा से मुख आदि का स्पर्श करना चाहिये । मुख और नाक को तर्जनी अँगुली से स्पर्श करना चाहिये । नेत्रो तथा काना को अनामिका से तथा नाभि देश को कनिष्ठा अँगुली से स्पर्श करना चाहिये । अँगूठा का स्पर्श सभी अगो मे करना चाहिये । स्वाहा' पद अन्त मे लगाकर चतुर्थी विभक्ति के साथ आत्मतत्व विद्यातत्त्व और शिवतत्व का उच्चारण द्वारा किया हुआ शिव आचमन कहा जाता है ॥३६।३८॥ आदि मे क्रमश तीन दीर्घ अनुस्वार और ह (अर्थात् हा ह्रीं हूं) लगाकर अ त मे 'स्वाहा पद' वाला आत्मतत्व, विद्यातत्व और शिवतत्त्व शब्दो का उच्चारण करने से (जैसे— ह्रां आ मतत्वाय स्वाहा — ह्री विद्यातत्वाय स्वाहा') उस आचमन को शैव कहा जाता है । आदि मे 'ऐ ह्रीं श्रीं ये बीज लगाकर स्वाहान्त होने स उस आचमन को शाक्त आचमन कहा जात' हैं । हे ब्रह्मन वाग्बीज ए लज्जाबीज (ह्री) और श्री बीज (श्री) क प्रारम्भ मे प्रयोग करने से वह आचमन अभीष्ट

उद्देश्य का पूरा करने वाला होता है ॥३६॥ उसके पश्चात् मस्तक पर गदा की आकार वाला सुन्दर तिलक लगाना, हृदय पर नदक नामक खड्ग की और दोनो भुजाओ पर क्रमश. खड्ग की और दोनो भुजाओ पर क्रमश खड्ग और चक्र की आकृति बनानी चाहिये। उत्तम बुद्धि वाले वैष्णव को क्रमशः मस्तक, कर्णमूल, पार्श्व भाग, पीठ, नाभि, ककुद (शिखा) मे भी शार्ङ्ग धनुष और बाण का न्यास करना आवश्यक है ॥४०।४१॥

एव तु वैष्णव कुर्यात् मृद्भि तीर्थोद्भवादिभि. ।
अग्निहोत्रोद्भव भस्म गृहीत्वा त्र्यवकेण तु ॥४२
किंवाग्निरिति मत्रेणाभिमन्त्र्य पचमनकं. ।
क्रमात्तत्पुरुषाघोरसद्योजातादि नामभि. ॥४३
पचकुर्यात् त्रिपुण्ड्राणि भालासोदराहृत्सु च ।
शैव शाक्त त्रिकोणाभ नारीवद्वा समाचरेत् ॥४४
कृत्वा तु वैदिकी सध्या तांत्रिकी च समाचरेत् ।
आचम्य विधिवन्मत्री तीर्थान्यावाह्य पूर्ववत् ॥४५
ततस्त्रिवार दर्भेण भूमौ तोय विनि क्षिपेत् ।
सप्तधा तज्जलेनाथ मूर्द्धानमभिषेचयेत् ॥४६
ततश्च प्राणानायम्य कृत्वा न्यास षडगकम् ।
आदाय वाम हस्तेम्बु दक्षेणाच्छाद्य पाणिना ॥४७
वियद्वाटदग्नि तोयक्ष्मा वीजै. समभ्य मत्रवित् ।
मूलेन तस्मात् श्चोतद्भिर्विन्दु भितस्तत्त्व मुद्रया ॥४८
स्वशिर सप्तधा प्रोक्ष्यावशिष्ट तत्पुनर्जलम् ।
कृत्वा तदक्षर मत्री नासिकातिक मानयेत् ॥४६

वैष्णव पुरुष को तीर्थ की मिट्टी (गोपी चन्दन) आदि से तिलक करना चाहिये। शैव को 'त्र्यम्बक' मन्त्र से अग्निहोत्र की भस्म लेकर 'अग्निरिति मन्त्र' से अभिमन्त्रित करके तत्पुरुष, अघोर, सद्यो-

जात वामदेव और ईशान–इन नामों से क्रमश मस्तक, कन्धा उदर, भुजा और हृदय—इन स्थानो पर त्रिपुण्ड लगाना चाहिए। शक्ति के उपासको को त्रिकोण की आकृति का अथवा स्त्रियो के जैसा गोल तिलक लगाना चाहिये ॥४२–४४॥ वैदिक सन्ध्या करने के पश्चात् साधक को आचमन करके तान्त्रिक सन्ध्या करनी चाहिये। इसके लिये पूर्ववत् जल में तीर्थों का आवाहन करके कुशा से पृथ्वी पर तीन बार जल छिड़कना। फिर उसी जल से अपने मस्तक पर सात बार अभिषेक करना ॥४५।४६॥ फिर प्राणायाम और षडङ्गन्यास करके बाँये हाथ मे जल लेकर उस दाँये हाथ से ढकना और मङ्गल पुरुष को आकाश, वायु अग्नि जल तथा पृथ्वी के बीज मन्त्रों द्वारा उसे अभिमन्त्रित करना। फिर तत्त्वमुद्रा पूर्वक अपने मस्तक पर सात बार मार्जन करना और शेष जल को बीजाक्षरों से अभिमन्त्रित करके नाक को पास लाना ॥४७।४९॥

जल तेजोमय तच्चाकृष्यातश्चेडया पुन ।
प्रक्षाल्यान्तर्गतं तेन कल्मषं तज्जलं पुन ॥५०
कृष्ण वर्णं पिंगलया रेचेत्स्वाग्रतस्तथा ।
क्षिपेदस्त्रेण तत्पश्चात् कल्पिते कुलिशोपले ॥५१
एतद्धि सर्वपापघ्नं प्रोक्त कैवाघमर्षणम् ।
ततश्च हस्तौ प्रक्षाल्य प्राग्वदाचम्य मन्त्रवित् ॥५२
समुत्थाय च मन्त्रज्ञस्ताम्रपात्रे सुमादिकम् ।
प्रक्षिप्यार्घं प्रदद्याद्वै मूलार्तमन्त्रमुच्चरन् ॥५३
रविमण्डल संस्थाय देवायार्घ्यं प्रकल्पयेत् ।
दत्त्वार्घं त्रिरनेनाथ देवं रविगत स्मरेत् ॥५४
स्वकल्पोक्ता च गायत्री जपेदष्टोत्तरं शतम् ।
अष्टाविंशतिवार वा गुह्य तिमनुनापयेत् ॥५५

उस तेजोमय जल को इड़ा नाड़ी द्वारा भीतर खींचने की भावना करके अन्दर के सब मलों को धोना। फिर भावना द्वारा काले पड़े हुए उस जल को पिंगला द्वारा बाहर निकालना। और अपने सम्मुख वज्रमय पत्थर की कल्पना के अस्त्र मन्त्र (फट्) का उच्चारण करते हुए उस जल को पत्थर पर डाल देना। इस क्रिया को सब पापों का नाश करने वाली अघमर्षण क्रिया कही जाती है। फिर मन्त्र-वेत्ता पुरुष को पूर्ववत् आचमन करके खड़ा होना और तांबे के पात्र में पुष्प चन्दन आदि डालकर मूल मन्त्र का उच्चारण करके सूर्यमण्डल में विराजमान इष्टदेव का अर्घ्य देना चाहिये। इस तरह तीन बार अर्घ्य देकर आराध्य देव का ध्यान करना ॥ ५०—५४ ॥ इसके पश्चात् अपने-अपने कल्प में बताये अनुसार गायत्री का १०८ या २८ बार जप करना। फिर उस जप को 'गुह्येति गुह्यगोप्त्री त्व' द्वारा समर्पित करके गायत्री का ध्यान करना।५५।

उद्यदादित्य सकाशा पुस्तकाक्ष कराम्बुजाम् ।
कृष्णाजिनाम्बरा ब्राह्मी ध्यायेत्ताराकितेम्बरे ॥५६
मध्याह्ने वरदा देवी पार्वती सस्मरेत्वराम् ।
शुक्लाम्बरा वृषारूढा त्रिनेत्रा रविबिम्बगाम् ॥५७
वर पाश च शूल च दधाना नृकरोटिकाम् ।
सायाह्ने रत्नभूषाढ्या पीतकौशेय वाससाम् ॥५८
श्यामाङ्गी चतुर्हस्ता शख चक्र लसत्कराम् ।
गदा पद्म धरा देवी सूर्यासन कृताश्रयाम् ॥५९
ततो देवानृषीश्चैव पितृश्चापि विधानवित् ।
तर्पयित्वा स्वेष्टदेव तर्पयेत् वक्ष्यमाणत. ॥६०
गुरु पक्ति च सतर्प्य साय सावरण तथा ।
सायुध वैनतेय सतर्पयामीति तर्पयेत् ॥६१
नारद पर्वत विष्णु निषठोद्धव दारुकान् ।

विष्वक्सेन च दौलेय वैष्णव परितर्पयेत् ॥६२
एव सतर्थ विप्रेन्द्र दत्त्वार्घ्यं च विवस्वते ।
पूजागार समागत्य प्रक्षाल्याघ्रो उपस्पृशेत् ॥६३

प्रात उदय होते हुए सूर्य की प्रभा वाली, हाथो मे पुस्तक म माला लिये हुये कृष्णाजिनयुक्त श्वेत वस्त्र धारण किये ब्राह्मी शक्ति का ध्यान करे। मध्याह्न मे वर देने वाली वरदायिनी पार्वती देवी का स्मरण करे कि वह रौद्री शक्ति सफेद वस्त्र धारण किये है, वृषभ पर सवार है, तीन नेत्रयुक्त सूर्यमण्डल मे स्थित है, हाथो मे वर, पाश, शूल लिये है और मुण्डमाला से विभूषित है। सायकाल के समय रत्नाभूषणो से युक्त पीले कौषेय वस्त्र धारण किये श्याम वर्ण वाली, चार हाथो मे शख—चक्र—गदा—पद्म धारण किये, सूर्यासन पर विराजमान वैष्णवी शक्ति का ध्यान करे ॥ ५६—५९ ॥ इसके पश्चात् विधि के जानने वाले साधक को देवताओ, ऋषियो तथा अपने पितृो का तर्पण करके कल्प मे बतलाई रीति से अपने इष्टदेव का भी तर्पण करना। फिर पहले से चली आती हुई गुरु-परम्परा का तर्पण करके अङ्ग, आयुध और आवरण सहित विनता के पुत्र गरुड का "साङ्ग सावरण सायुध वैनतेय समर्पयामि" बोल कर तर्पण करना चाहिए। ॥ ६०—६१ ॥ इसके पश्चात् नारद, पर्वत, जिष्णु, निशठ, उद्धव, दारुक विष्वक्सेन तथा शैलेय का वैष्णव पुरुष को तर्पण करना चाहिए। हे विप्रेन्द्र! इतनी क्रिया करने के पश्चात्, सूर्य का अर्घ्य देकर पूजागृह मे आना और हाथ पैर धोकर आचमन करना चाहिए। ॥ ६२—६३ ॥

अग्निहोत्रस्थितानग्नीन् हुत्वोपस्थाय यत्नत ।
पूजा स्थल समागत्या द्वारपूजा समाचरेत् ॥६४
गणेश चोर्द्ध शाखाया महालक्ष्मी च दक्षिणे ।
सरस्वती वामभागे दक्षे विघ्नेश्वर पुन ॥६५

क्षेत्रपाल तथा वामे दक्षे गगा प्रपूजयेत् ।
वामे च यमुना दक्षे धातार वामतस्तथा ॥६६
विधातार शखपद्मनिधीश्च वामदक्षयो ।
द्वारपालास्ततोऽभ्यर्चेत्तत्कल्पोदितान् सुधी ॥६७
तत स्थित्वासने धीमानाचम्य प्रयत शुचि ।
दिव्यातरिक्ष भौमाश्च विघ्नानुत्सार्य यत्नत ॥६८

तत्पश्चात् अग्निहोत्र मे स्थित गार्हपत्य आदि अग्नियो की तृप्ति के लिए हवन करके यत्नपूर्वक उनकी उपासना करके पूजा के स्थान म आना और द्वार पूजा का समारम्भ करना ॥ ६४ ॥ द्वार की ऊपर की शाखा मे गणेश की दक्षिण भाग म महालक्ष्मी की वाम भाग म सरस्वती की दक्षिण म फिर विघ्नराज गणेश की वाम भाग में क्षेत्रपाल की दक्षिण मे गङ्गा की वाम भाग मे यमुना की दक्षिण मे धाता की वाम भाग म विधाता की दक्षिण म शखनिधि की वाम भाग में पद्मनिधि की पूजा करनी । इसके पश्चात् विद्वान् पुरुष को द्वारपालो की पूजा करनी ॥ ६५—६७ ॥ इसके पश्चात् पवित्र होकर मन और इन्द्रियो का सयम करके आसन पर बैठकर स्वर्ग अन्तरिक्ष तथा पृथ्वी के विघ्नो का निवारण करके केशव कीर्त्यादि मातृका न्यास करना ॥६८॥

केशवाद्या मातृका तु न्यसेद् वैष्णव सत्तम ।
केशव कीर्ति सयुक्त कान्त्या नारायण स्तथा ॥६९
माधवस्तुष्टि सहितो गोविन्द पुष्टि सयुत ।
विष्णुस्तु धृतिसयुक्त शांतियुड् मधुसूदन ॥७०
त्रिविक्रम क्रियायुक्तो वामनो दयिनायुत ।
श्रीधरो मेधया युक्तो हृषीकेशश्च हर्षया ॥७१
पद्मनाभ युता श्रद्धा लज्जा दामोदरान्विता ।
वासुदेवश्च लक्ष्मीयुक् सकर्षण सरस्वती ॥७२

करके उसके ऊपर आठ बार प्रणव का जप करना। मनुष्यों के लिये यह सर्वसिद्धिदायक अर्घ्य बतलाया गया है। श्रेष्ठ साधक को उसमें से थोड़ा-सा जल लेकर अपने ऊपर और समस्त सामग्री के ऊपर पृथक् २ छिड़कना। अपने बाँये भाग में आगे की तरफ एक त्रिकोण मण्डल बनाना, उस त्रिकोण को षट्कोण से आवृत्त करना, फिर उसके चारों तरफ एक गोल रेखा खींचनी। फिर उस सबको एक चौकोर रेखा से घेर कर अर्घ्य जल से उसका अभिषेक करना ॥६।७॥

ततस्तु साधक श्रेष्ठ स्तम्भयेच्छखमुद्रया।
आग्नेयादिषु कोणेषु हृदाद्यग चतुष्टयम् ॥८
नेत्र मध्ये दिक्षु चास्त्र त्रिकोणे पूजयेत्तत।
मूल खड नयेनाथा धारशक्ति तु मध्यगाम् ॥९
एव सपूज्य विधि वदस्त्र सक्षालित हृदा।
प्रतिष्ठाप्य त्रिपदिका पूजयेन्मनुनामुना ॥१०
म वह्निमडला येति ततो दश कलात्मने।
अमुक कार्येति पात्राते समापहृदयान्तिमे ॥११
चतुर्विंशति वर्णोयमाधारस्याचने मनु।
इत्यमत्र क्षालित शख सस्थाप्याथ समर्चयेत् ॥१२

उसके बाद श्रेष्ठ साधक को शखमुद्रा से स्तम्भन करना, आग्नेय आदि चारों कोणों में हृदय, शिर, शिखा और कवच (कन्धे) इन चार अङ्गों की पूजा करके मध्य भाग में नेत्रों तथा दिशाओं में पुष्प अक्षत आदि से अस्त्र की पूजा करनी। फिर त्रिकोणमडल के मध्य में स्थित आधार शक्ति का मूलखण्ड-त्रय से पूजन करना। ८।९। इस प्रकार विधिवत् पूजन करके अस्त्र (फट्) के उच्चारणपूर्वक धोई हुई तीन पैरों की तिपाई रखकर नीचे के मन्त्र से उसकी पूजा करनी। 'म वह्निमडलाय दशकलात्मने देवतार्घ्यपात्रासनाय नम।' आधार पूजन के लिए यह २४ अक्षरों का मन्त्र है। फिर शख को

उसके मन्त्र से धोकर स्थापित करना और उसकी पूजा करनी। ॥१०।१५॥

शंखमापूरयेत्तस्मिन्पूजयेन्मनुनामुना ।
ॐ सोम मडलायेति षोडशाते कलात्मने ॥१३
अमुकार्घ्यामृतायेति हृन्मनुश्चार्घ्यं पूजने ।
तत्र षोडश सख्याता यजेच्चन्द्रमस कला ॥१४
प्रोक्षण्या तज्जल किंचित् कृत्वात्मान त्रिधातत ।
आत्मतत्वात्मने हृच्च विद्यातत्वात्मने नम ॥१५
शिव तत्वात्मने हृच्च इत्यतंमनुभिस्त्रिभि ।
प्रोक्षेत् पुष्पाक्षतैश्चापि मडल विधि वत्सुधी ॥१६
अथवा मूलगायत्र्या पूजा द्रव्याणि प्रोक्षयेत् ।
पाद्यार्घ्या चमनीयाय मधुपर्कायमच्युत ॥१७
पात्राण्याधारयुक्तानि स्थापयद्विधिना पुर ।
पाद्य श्यामाकदूर्वाब्ज विष्णुक्रान्तजलै स्मृतम् ॥१८
अर्घ्यं पुष्पाक्षतयवं कुशाग्रतिलसर्षप ।
गध दूर्वादल प्रोक्त ततश्चामनीयकम् ॥१६
जातीफल च कक्कोल लवग च जलान्वितम् ।
क्षौद्राज्यदधि समिश्र मधुपर्कसमीरितम् ॥२०

गंध को शुद्ध जल में भरकर ॐ सोम मण्डलाय षोडश कला त्मने दर्वार्घ्यामृतना नम इस मन्त्र से उसकी पूजा करनी। फिर उस जल में चन्द्रमा की सोलह कलाओं का पूजन करना। शख में से थोड़ा जल प्रोक्षणी पात्र में डालकर तीन बार अपने ऊपर अभिषेक करना ओं आत्म तत्वात्मने नम। ॐ शिव तत्वात्मने नम विद्वान् पुरुष को इन तीन मन्त्रों द्वारा अपने साथ ही उस मडल का भी विधिवत् प्रोक्षण करना और उसमें पुष्प तथा अक्षत भी रखना।१३। १६। अथवा मूल गायत्री से पूजा सामग्री का प्रोक्षण करना और उसमें

पुष्प तथा अक्षत् भी डालना ।।१३।१९।। अथवा मूल गायत्री से पूजा-सामग्री का प्रोक्षण करना और किसी आधार पर पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय तथा मधुपर्क के लिए अनेक पात्र विधिपूर्वक स्थापन करे। सांवा चावल दूब, कमल, विष्णुक्रान्ता नामक औषधि और जल इनके मिश्रण से भगवान के लिए पाद्य बनता है। फूल, अक्षत, जौ, कुशा का अग्र-भाग, तिल, सरसो, गन्ध तथा दूब इनसे भगवान को अर्घ्य देने का विधान है। आचमन के लिए शुद्ध जल में जायफल, कंकोल और लौंग मिलाकर रखना चाहिए। शहद, घी और दही के मिश्रण से मधुपर्क बनता है।।३७।२०।

एकस्मिन्नथवा पात्रे पाद्यादीनि प्रकल्पयेत् ।
शंकरार्कार्चने शंखमये नैव प्रशस्यते ।।२१
श्वेतारुणारुणपीता श्यामारक्ताशितासिता ।
रक्ताम्बरामय ध्येयास्यु पीठशक्तय ।।२२
स्वर्णादिलिखिते यन्त्रे शालग्रामे मणौ तथा ।
विधिना स्थापितायां वा प्रतिमायां प्रपूजयेत् ।।२३
अगुष्ठादिवितस्त्यन्तमाना स्वर्णादि धातुभि ।
निर्मिता शुभदा गेहे पूजनाय दिने दिने ।।२४
वक्रा दग्धा खण्डिता च भिन्नमूर्द्धेक्षणा पुन ।
स्पृष्टावाप्यन्त्यजाद्यैश्च प्रतिमां नैव पूजयेत् ।।२५
बाणादिलिंगे वाभ्यर्चेत्सव लक्षण लक्षिते ।
मूलेन मूर्ति संकल्प्य ध्यात्वा देव यथोदितम् ।।२६
आवाह्य पूजयेत्तस्या परिवार गणै सह ।
शालग्रामे स्थापितायां नावाहनविसर्जने ।।२७

अथवा एक पात्र में पाद्य आदि की व्यवस्था करनी चाहिए। शंकरजी और सूर्यनारायण के पूजन में शंखमय पात्र को अच्छा नहीं माना गया है ।।२१।। श्वेत कृष्ण अरुण पीत, श्याम रक्त, शुक्ल

अमित (पूरा) लाल वस्त्र धारण करने वाली और अभय मुद्रा से युक्त पीठ शक्तियों का ध्यान करना चाहिए ।२२। सुवर्ण आदि के पत्र पर लिखे यन्त्र में, शालग्राम शिला में, मणि में, अथवा विधिपूर्वक स्थापित की गई प्रतिमा में इष्टदेव की पूजा करनी चाहिए ॥ २३ ॥ घर में प्रतिदिन पूजा करने के लिए वही प्रतिमा कल्याणकारी मानी गई है जो सुवर्ण आदि धातुओं की बनी होती है कम से कम अँगूठा के आकार की और अधिक से अधिक एक बालिश्त परिमाण की हो ॥२४॥ टेढ़ी जली हुई खण्डित जिसका मस्तक या आँख टूटी हो, जिसको चाण्डाल आदि किसी अस्पृश्य ने स्पर्श कर लिया हो, ऐसी प्रतिमा की पूजा नहीं की जाती ॥२५॥ अथवा समस्त शुभ लक्षणों से विभूषित बाण आदि लिंग का पूजन करना, अथवा मूलमन्त्र का उच्चारण करके मूर्ति का निर्माण करके इष्टदेव के शास्त्रोक्त स्वरूप का ध्यान करना ॥२६॥ फिर उसमें देवता का परिवार सहित आवाहन करके पूजन करना। शालग्राम शिला में तथा पहले से स्थापित देव प्रतिमा में आवाहन और विसर्जन करने की आवश्यकता नहीं होती ।२७।

पुष्पाञ्जलिं समादाय ध्यात्वा मन्त्रमुदीरयेत् ।
आत्मसंस्थमजं शुद्धं त्वामहं परमेश्वर ॥२८
अरण्यामिव हव्याशं मूर्तावावाहयाम्यहम् ।
तवेयं हि महामूर्तिस्तस्यां त्वां सर्वगं प्रभो ॥२९
भक्तस्नेहसमाकृष्टं दीपवत् स्थापयाम्यहम् ।
सर्वान्तर्यामिणं देव सर्वबीजमयं शुभम् ॥३०
स्वात्मस्थाय परं शुद्धमासनं कल्पयाम्यहम् ।
अनन्या तव देवेश मूर्तिशक्तिरियं प्रभो ॥३१
सान्निध्यं कुरु तस्यां त्वं भक्तानुग्रहकारक ।
अज्ञानाद्दुर्मनस्त्वाद्वा वैकल्यात् साधनस्य च ॥३२
यदपूर्णं भवेत् कृत्यं तथाप्यभिमुखो भव ।

दृशा पीयूष वर्षिण्या पूरयन यज्ञविष्टरे ॥३३
मूर्तो वा यज्ञसम्पूर्त्यै स्थितो भव महेश्वर।
अभक्त वाङमनश्चक्षु श्रोत्र दूरायित द्युते ॥३४
स्वतेज पजरेणाशु वेष्टितो भव सर्वत ।
यस्य दर्शनमिच्छन्ति देवा स्वाभीष्टसिद्धये ॥३५
तस्मै ते परमेशाय स्वागत स्वागत च मे ।
कृतार्थोऽनुगृहीतोऽस्मि सफल जीवित मम।
आगतो देवेदेवेश सुस्वागत मिद पुन ॥३६

फिर पुष्पाजलि लेकर इष्टदेव का ध्यान करके निम्न मन्त्र का उच्चारण करना। ("आत्मसस्थमज' शब्द से लेकर ३६वें श्लोक के 'सुस्वागतमिद पुन') शब्द तक मन्त्र है जिसका अर्थ इस प्रकार है—'हे परमेश्वर ! आप अपने ही भीतर स्थित, अजन्मा एवम् शुद्ध-बुद्ध स्वरूप हो। जिस प्रकार काष्ठ से बनी अरणी मे अग्नि अदृश्य रूप मे रहती है उसी प्रकार आप भी गूढ रूप मे इस मूर्ति मे व्याप्त हो। मैं आपका आवाहन करता हूँ। हे प्रभो ! यह आपकी महामूर्ति है, भक्त के प्रति स्नेहवश आप स्वय इसमे खिचकर आ गये हो। इस प्रकार के आप परमात्मा को मैं इसके भीतर दीपक की तरह स्थापित करता हूँ। हे देव ! अपने अन्त करण मे स्थित आप सर्वान्तर्यामी प्रभु के लिये मैं शुद्ध आसन दे रहा हूँ। हे प्रभो ! आपकी यह विशेष मूर्ति शक्ति स्वरूप है आप मेरे ऊपर अनुग्रह करके इसमे निवास करो। अज्ञान, प्रमाद अथवा साधना की कमी से यदि मेरा यह अनुष्ठान अधूरा भी रह जाय, तो भी आप मुझ अवश्य सान्निध्य प्रदान करें। हे महेश्वर! आप अपनी अमृत-वर्षा करने वाली दृष्टि द्वारा सब त्रुटियों का निवारण करके यज्ञ की पूर्णता के लिये इस यज्ञासन पर अथवा मूर्ति मे स्थित होओ। आपका प्रकाश अथवा तेज अभक्त जनो के मन वचन, नेत्र एवम् कानो से बहुत दूर रहता है। हे प्रभु ! आप चारो तरफ अपने तेज पुज

द्वारा शीघ्र आवृत हो जाओ। देवगण अपनी अभीष्ट पूर्ति के लिये सदा जिनके दर्शनों की इच्छा करते हैं, वही आप परमेश्वर का मैं अपनी तरफ से बारम्बार स्वागत करता हूँ। हे देव देवेश्वर प्रभो! आप आगये तो मैं भी कृतार्थ होगया। मुझ पर आपकी कृपा होगई। आज मेरा जीवन सफल होगया। मैं पुनः इस शुभ आगमन के लिये प्रभु का स्वागत करता हूँ।" इसके पश्चात् इन श्लोकों को पढ़कर भगवान का षोडशोपचार पूजन करे॥२८-३६॥

यद्भक्ति लेशसम्पर्कात् परमानन्द सम्भवः।
तस्मै ते चरणाब्जाय पाद्यं शुद्धाय कल्पते॥३७
तापत्रय हरं दिव्यं परमानन्द लक्षणम्।
तापत्रय विनिर्मुक्त्यै तवार्घ्यं कल्पयाम्यहम्॥३८
वेदानामपि वेदाय देवानां देवतात्मने।
आचाम कल्पयामीश शुद्धानां शुद्धि हेतवे॥३९
सर्वकालुष्य हीनाय परिपूर्ण सुखात्मने।
मधुपर्कमिदं देव कल्पयामि प्रसीद मे॥४०
उच्छिष्टोऽप्यशुचिर्वापि यस्य स्मरण मात्रतः।
शुद्धिमाप्नोति तस्मै ते पुनराचमनीयकम्॥४१
स्नेहं गृहाण स्नेहेन लोकनाथ महालय।
सर्वलोकेषु शुद्धात्मन् ददामि स्नेह मुत्तमम्॥४२

(पाद्य) जिनकी लेशमात्र भक्ति का सम्पर्क हो जाने से परम

है ॥३६॥ (मधुपर्क) आप समस्त कलुषता से रहित तथा परिपूर्ण सुख स्वरूप हो। हे देव! मैं आपके लिये मधुपर्क अर्पण करता हूँ। मेरे ऊपर प्रसन्न हो ॥४०॥ जिनका स्मरण करने मात्र से उच्छिष्ट अथवा अपवित्र मनुष्य पवित्र हो जाता है, उन्हीं आप परमेश्वर के लिये पुन आचमन करने को जल अर्पण करता हूँ ॥४१॥ (स्नेह) हे जगदीश्वर! आपका अन्तःकरण विशाल है। सम्पूर्ण लोकों में आप शुद्ध-बुद्ध आत्मा हो। मैं आपको यह उत्तम स्नेह (तैल) अर्पण करता हूँ, इसे स्नेहपूर्वक ग्रहण कीजिये ॥४२॥

परमानन्द बोधाब्धि निमग्ननिज मूर्तये।
साङ्गोपाङ्गमिदं स्नानं कल्पयाम्यहमीश ते ॥४३
सहस्र वा शतम् वापि यथा शक्त्यादरेण च।
गन्ध पुष्पादि करीश मनुना चाभिषिञ्चये ॥४४
माया चित्रपटच्छन्न निज गुह्योरुतेजसे।
निरावरण विज्ञान वासस्ते कल्पयाम्यहम् ॥४५
समाश्रित्य महामाया जगत्सम्मोहिनी सदा।
तस्मै ते परमेशाय कल्पयाम्युत्तरीयकम् ॥४६
यस्य शक्ति त्रयेणेद सम्प्रोतमखिल जगत्।
यज्ञसूत्राय तस्मै ते यज्ञसूत्र प्रकल्पये ॥४७
स्वभावसुन्दराङ्गाय नानाशक्त्याश्रयाय ते।
भूषणानि विचित्राणि कल्पयाम्यमरार्चित ॥४८
परमानन्द सौरभ्य परिपूर्ण दिगन्तरम्।
गृहाण परम गन्ध कृपया परमेश्वर ॥४९

(स्नान) हे ईश! आपका निजस्वरूप तो निरन्तर परमानन्द-मय ज्ञान के अगाध सागर में निमग्न रहता है। तो भी मैं आपके साङ्गोपाङ्ग स्नान की व्यवस्था करता हूँ ॥४३॥ (अभिषेक) हे ईश! मैं आदर पूर्वक यथा शक्ति गंध पुष्प आदि से तथा मन्त्रों द्वारा सहस्र

अथवा सौ बार आपका अभिषेक करता हूँ ।।४४।। (वस्त्र) हे निरावरण विज्ञान स्वरूप परमेश्वर ! आपने माया रूप विचित्र पट द्वारा अपने महान तेज को छुपा रखा है । मैं आपको वस्त्र अर्पण करता हूँ ।।४५।। (उत्तरीय) जिनके आश्रित रह कर महामाया समस्त जगत को मोहित करती रहती है, उन्ही आप परमेश्वर के लिये यह उत्तरीय वस्त्र अर्पण करता हूँ ।।४६।। (यज्ञोपवीत) जिनकी त्रिविध शक्तियों से यह जगत सदा तृप्त रहता है, जो स्वयं यज्ञ स्वरूप हैं, उन्हीं आप प्रभु को यह यज्ञ सूत्र अर्पण करता हूँ ।।४७।। (भूषण) हे देव पूजित प्रभो ! आपके अंग स्वभाव से ही परम सुन्दर हैं, आप नाना प्रकार की शक्तियों के आश्रय हो । मैं आपको ये विचित्र आभूषण अर्पण करता हूँ ।। ४८ ।। (गन्ध) जिसने परम आनन्द प्रदायक अपनी सुगन्ध से सब दिशाओं को परिपूर्ण कर दिया है, वे ही परमेश्वर इस गंध को कृपा करके स्वीकार करें ।।४९।।

तुरीय वन सम्भूत नानागुण मनोहरम् ।
अमन्द सौरभम् पुष्प गृह्यतामिदमुत्तमम् ।।५०
जपाक्षतार्कधत्तूरान् विष्णोर्नैवार्पयेत् क्वचित् ।
केतकी कुटज कुंद बंधूक केसर जपाम् ।।५१
मालती पुष्पकं चैव नार्पयेत् महेश्वरे ।
मातुलिंग च तगरं रवौ नैवार्पयेत् क्वचित् ।।५२
शक्तौ दूर्वार्कमदारान् गणेशे तुलसी त्यजेत् ।
सरोजिनी दमनको तथा मरुवक कुश ।।५३
विष्णु त्राता नागवल्ली दुर्वापामार्ग दाडिमौ ।
धात्री मुनियुतानाच पत्रैर्देवार्चनं चरेत् ।।५४
कदली वदरी धात्री तितणी वीजपूरकम् ।
आम्र दाडिम जंबीर जंबूपनसभूरुहा- ।।५५
एतेषा तु फलैं कुर्याद्देवतापूजन बुध ।

शुष्कैस्तु नार्चयेद्देवं पत्रैः पुष्पैः फलैरपि ॥५६

(पुष्प) हे प्रभो ! तीनों अवस्थाओं से परे सुरीश इन ऋतुओं में उत्पन्न इस परम उत्तम दिव्य पुष्प को आप ग्रहण करें। यह अनेक गुणों के प्रभाव से अति मनोहर है और इसकी सुगन्ध कभी मन्द नहीं पड़ती ।५०। केसरी, कुटज, कुन्द, बन्धूक नागकेसर, जपा तथा मालती-इन पुष्पों को भगवान शंकर पर कभी न चढ़ाना चाहिये। मातुलिङ्ग (बिजौरा) और तगर को सूर्य पर कभी नहीं चढ़ाना। दूब, आक (मदार) और मन्दार को दुर्गा को अर्पण नहीं करना। गणेश पूजन में तुलसी का सर्वं त्याग करना। कमल, मरुवा, कुश, विष्णुक्रान्ता, पान, दूब, अपामार्ग, अनार, आंवला और अगस्त के पत्तों से देवों का पूजन करना चाहिए। केला, बेर, आंवला, तिन्तरणी, बिजौरा, आम, अनार, जम्भीरी, जामुन, पनस—इन फलों से विद्वान पुरुष को देवों का पूजन करना चाहिये। पर सूखे हुये, मुरझाये हुए अथवा बींधे हुए पत्तों फूलों और फलों से पूजन नहीं करना ॥५०—५६॥

धात्री खदिर बिल्वाना तमालस्य दलानि च ।
छिन्न भिन्नान्यपि मुने न दूष्याणि जगुर्बुधा ॥५७
यममामलकं तिष्ठेच्छुद्धं चैव दिनत्रयम् ।
सर्वदा तुलसी शुद्धा बिल्वपत्राणि वै तथा ॥५८
पलाशकाश कुसुमैस्तमाल तुलसी दलै ।
धात्री दलैश्च दूर्वाभिर्नार्चयेत् जगदम्बिकाम् ॥५९
नार्चयेत् कुसुमैः पत्र फल देवे ह्यधोमुखम् ।
पुष्प पत्रादिक विप्र यथोत्पन्न तथार्पयेत् ॥६०
वनस्पतिरस दिव्य गन्धाढ्य सुमनोहरम् ।
आघ्रेय देवदेवेश धूप भक्त्या गृहाण मे ॥६१
सु प्रकाश महोदीप सर्वदा तिमिरापहम् ।
घृतवर्ति समायुक्त गृहाण मम सत्कृतम् ॥६२

अन्न चतुर्विध स्वादु रसैं षड्भि समन्वितम् ।
भक्त्या गृहाण मे देव नैवेद्य तुष्टिद सदा ॥६३
नागवल्लीदल श्रेष्ठ पूगखदिर चूर्णयुत् ।
कर्पूरादि सुगन्धाढ्य यद् दत्त तद् गृहाण मे ॥६४

हे मुने ! आवला, खैर बिल्व (बेल) और तमाल के पत्ते छिन्न भिन्न हों तो भी विद्वान् उनको दूषित नहीं कहते । कमल और आवला तीन दिन तक शुद्ध रहते हैं । तुलसीदल और बिल्व पत्र सदा शुद्ध माने गये हैं । पलाश और कास के फूलों तथा तमाल तुलसी आंवला और दूब से जगदम्बा की पूजा कभी नहीं करनी । पुष्प पत्र और देवता पर अधोमुख (औंधा) करके न चढाना चाहिये । पत्र पुष्प आदि जिस रूप मे उत्पन्न होते हैं उसी रूप में देवता पर चढ़ाने चाहिये ॥५७–६०॥ (धूप) हे देवदेवेश्वर ! यह सूँघने योग्य धूप भक्ति पूर्वक आप का सेवा में अर्पित है । यह वनस्पति का सुगन्ध युक्त परम मनोहर दिव्य रस है ॥६१॥ (दीप) भगवन् यह घी की बत्ती से युक्त महादीप आपकी सेवा में समर्पित है । यह उत्तम प्रकाश से युक्त और सदैव अन्धकार का दूर करने वाला है । आप इसे स्वीकार करो ॥ ६२ ॥ (नैवेद्य) हे देव ! इस छ रसो से युक्त चार प्रकार के अन्न का, भक्ति पूर्वक अर्पण करता हूँ । यह सदा सन्तोषप्रदायक है आप इसे स्वीकार करें ॥६३॥ (ताम्बूल) हे प्रभो ! यह उत्तम नागवेल का पान सुपाड़ी कत्था चूना से युक्त है । इसमें कपूर आदि सुगंधित द्रव्य डाले गये हैं । यह आपकी सेवा में अर्पित है इसे ग्रहण कीजिये ॥६४॥

दद्यात् पुष्पाञ्जलि पश्चात् कुर्यादावरणार्चनम् ।
यदाशाभिमुखो भूत्वा पूजन तु समाचरेत् ॥६५
सैव प्राची तु विज्ञेया तदन्या विदिशो दश ।
केशरेष्वग्नि कोणादि हृदयादीनि पूजयेत् ॥६६
नवमध्ये दिक्ष चास्त्र अगमगेयया क्रमम् ।

शुक्लश्वेतसितश्यामकृष्णारक्ताश्चिपे क्रमात् ॥६७
वराभयकरा ध्येया स्वस्वदिक्षु च शक्तयः ।
अमुकावरणाते तु देवता इति संवदेत् ॥६८
सालङ्कारास्तितो पश्चात्साङ्गा सपरिचारिका ।
सवाहना सायुधाश्च तत सर्वोप चार्चके ॥६९
सपूजितास्तर्पिताश्च वरदा भविद पठेत् ।
मूलांते च समुच्चार्य देवतायै निवेदयेत् ॥७०
अभीष्टसिद्धि मे देहि शरणागतवत्सल ।
भक्त्या समर्पये तुभ्यममुकावरणार्चनम् ॥७१

इसके पश्चात् पुष्पाञ्जलि अर्पित करके आवरण पूजा करनी। जिस दिशा की तरफ मुख रखकर पूजन किया जाय उसी को पूर्व दिशा समझना और उसी के अनुसार दसों दिशाओं का निश्चय करना। कमल के केसरों में आग्निकोण आदि से आरम्भ करके हृदय आदि अङ्गों की पूजा करनी। अपने सम्मुख नेत्र की और समस्त दिशाओं में अस्त्र की अंग-शक्तियों द्वारा क्रमशः पूजा करनी। शुक्ल, श्वेत, सित, श्याम, कृष्ण तथा रक्त वर्ण वाली अङ्ग शक्तियों का क्रमशः अपनी-अपनी दिशा में ध्यान करना ॥६५-६७॥ उन सबके हाथों में वर और अभय की मुद्रा सुशोभित है। यह कहना चाहिये कि 'अमुक आवरण के अन्तर्वर्ती देवताओं की पूजा करता हूँ।" इसके पश्चात् अलङ्कार, अङ्ग, परिचारक, वाहन तथा आयुधों सहित समस्त देवताओं की पूजा कर ' कहना कि 'ऊपर कहे गये समस्त देवगण पूजित तथा तृप्त होकर वर प्रदान करने वाले हों। मूल-मन्त्र के अन्त में ७१ वें श्लोक अभीष्ट - र्चनम्) को बोलकर इष्टदेव को पूजा अर्पण करनी ॥ ६८-७१ ॥

इत्युच्चार्य क्षिपेत् पुष्पाञ्जलिं देवस्य मस्तके ।
ततस्तदभ्यर्चनीयाः स्यु कल्पोक्तास्ता वृती क्रमात् ॥७२

सायुधास्तत इन्द्राद्यान् स्वस्वदिक्षु प्रपूजयेत् ।
इन्द्रो वह्निर्यमो रक्षो वरुणः पवनो विधुः ।
ईशानोऽथ विधिश्चैवमधस्तात्पन्नगाधिपः ॥७३
ऐरावतस्तथा मेषो महिषः प्रेतस्तिमिर्मृगः ।
वाजी वृषो हंस कूर्मौ वाहनानि विदुर्बुधाः ॥७४
वज्रं शक्ति दण्डखड्गौ पाशाङ्कुश गदा अपि ।
त्रिशूल पद्मचक्रे च क्रमादिन्द्रादि हेतयः ॥७५
समाप्यावरणार्चां तु देवतारार्तिक्यं चरेत् ।
शङ्ख तोयं परिक्षिप्योद्बाहुर्नृत्यन् पतेत्क्षितौ ॥७६
दण्डवच्चाप्यथोत्थाय प्रार्थयित्वा निजेश्वरम् ।
दक्षिणे स्थण्डिलं कृत्वा तत्र संस्कारमाचरेत् ॥७७

इस प्रकार षोडशोपचार पूजा के मन्त्र बोलकर इष्टदेव के मस्तक पर पुष्प चढ़ा देना और आवरणों की पूजा करनी चाहिए। आयुध और वाहनों सहित इन्द्र आदि ही आवरण देव हैं, इनकी पूजा अपनी-अपनी दिशाओं में करनी चाहिए ॥७२॥ इन्द्र, अग्नि, यम, निऋति, वरुण, वायु, सोम, ईशान, ब्रह्मा तथा नागराज यह प्रथम आवरण के देवता हैं। ऐरावत, भेड़ा, भैंसा, प्रेत, तिमि (मगर) मृग, अश्व, वृषभ, हंस और कछुआ (कूर्म)—ये विद्वानों द्वारा इनो देवताओं के वाहन माने गये हैं। इनकी पूजा द्वितीय आवरण में की जाती है ॥ ७३–७४ ॥ वज्र, शक्ति, दण्ड, खड्ग, पाश, अंकुश, गदा, त्रिशूल, कमल और चक्र—ये क्रमशः इन्द्रादि के आयुध हैं—इनकी पूजा तीसरे आवरण में की जाती है ॥ ७५ ॥ (इस प्रकार आवरण पूजा करके भगवान की आरती उतारनी। फिर शंख के जल को चारों तरफ छिड़क कर हाथ ऊँचा करके भगवान् का नाम लेते लेते नृत्य करते हुए दण्ड की तरह पृथ्वी पर गिरकर साष्टांग प्रणाम करना। प्रार्थना के पश्चात् दायीं तरफ वेदी बनाकर निम्न विधि से उसका संस्कार करना ॥७६–७७॥)

मूलेने क्षाणमस्त्रेण प्रोक्षण ताडन पुन ।
कुशैस्तद्वर्मणाभ्युदय पूज्य तत्र न्यसेद् वसुम् ॥७८
प्रदाप्य तत्र जुहुयाद्ध्यात्वा चेष्ट देवताम् ।
महाव्याहृतिभिर्यस्तु समस्ताभिश्चतुष्टयम् ॥७९
जुहुयात्सर्पिषा भक्तैस्तिलैर्वा पायसेन वा ।
सघृतं साधक श्रेष्ठ पञ्चविंशति सख्यया ॥८०
पुनव्यर्वाहृतिभिहुंत्वा गधाद्यं पुनरर्चयेत् ।
देव सयोजयेन् मूर्तो ततो वह्नि विसर्जयेत् ॥८१
भो भो वह्ने महाशक्त सर्व कर्म प्रसाधक ।
कर्मान्तरेपि सप्राप्ते सान्निध्य कुरु सादरम् ॥८२
विसृज्याग्निदेवतायै दद्यादाचमनीयकम् ।
अवशिष्टेन हविषा गध पुष्पाक्षतान्वितम् ॥८३
देवतापार्षदेभ्योपि पूर्वोक्तेभ्यो बलि ददेत् ।
ये रौद्र रौद्रकर्माणो रौद्रस्थान निवासिन ॥८४
योगिन्यो ह्य ग्ररूपाश्च गणानामधिपाश्च ये ।
विघ्नभूतास्तथा चान्ये दिग्विदिक्षु समाश्रिता ॥८५
सर्वे ते प्रीतमनस प्रतिगृह्णन्तु इमं बलिम् ।
इत्यष्टदिक्षु दत्वा च पुनर्भूत बलि चरेत् ॥८६

मूल-मन्त्र से ईक्षण, अस्त्र (फट) द्वारा प्रोक्षण और कुश से ताडन करके कवच (हुम) द्वारा वेदी का अभिषेक करना। इसके बाद वेदी की पूजा करके उसके ऊपर अग्नि की स्थापना करनी। फिर अग्नि को प्रज्ज्वलित करके उसमे इष्टदेव का ध्यान करके आहुति देनी। समस्त व्याहृतियो से चार बार घी की आहुति देकर श्रेष्ठ साधक भात, तिल अथवा घृतयुक्त खीर द्वारा पच्चीस आहुति दे ॥ ७८-८०॥ इसके पश्चात् व्याहृतियो से हवन करके गन्ध आदि द्वारा पुन इष्टदेव की पूजा करनी। भगवान् की मूर्ति के अग्नि के लीन हो जाने की भावना

करने फिर ('भोभो वह्ने महाभावते' वाला मन्त्र पढ़ना ८२) बोलकर अग्नि का विसर्जन करना । अर्थात्—'हे अग्निदेव ! आपकी शक्ति महान् है । आप ही समस्त कर्मों की सिद्धि कराने वाले हैं । पुन कोई अन्य कर्म किया जाय तो यहाँ सादर पधारना ॥ ८२ ॥ इस प्रकार अग्नि का विसर्जन करके उनके लिए आचमन को जल अर्पित करना । फिर शेष बचे हविष्य से इष्टदेव तथा पूर्वोक्त को गन्ध, पुष्प और अक्षत सहित बलि देना । फिर "ये रौद्र—शिवा बलिम्" इन श्लोकों से आठे दिशाओं मे योगिनी आदि को बलि देना ॥ ८१—८४ ॥ अर्थात्—'जो भयंकर हैं, जो भयंकर स्थानो मे निवास करते हैं, जो उग्ररूप वाली योगिनियाँ हैं, जो गणो के स्वामी तथा विघ्न स्वरूप हैं और प्रत्येक दिशा तथा विदिशा मे रहते हैं, वे सब प्रसन्न चित्त होकर इस बलि को ग्रहण करें । इसके पश्चात् भूत बलि देना ॥ ८५—८६ ॥

पानीयम मृती कृत्य मुद्रया धेनुसंज्ञया ।
देवतायाः करे दद्यात् पुनश्चाचमनीयकम् ॥८७
देवमुद्राम्य मूर्तिस्थ पुनस्तत्रैव योजयेत् ।
नैवेद्य च ततो दद्यात्तदुच्छिष्ट भोजिने ॥८८
महेश्वरस्य चण्डेशो विष्वक्सेनस्तथा हरे ।
चण्डांशुस्तरणेर्वक्रतुण्डश्चापि गणेशितु ॥८९
शक्तेरुच्छिष्ट चाण्डाली प्रोक्त उच्छि[redacted] भोजिन ।
ततो ऋष्यादिक स्मृत्वा कृत्वा मूलषडङ्गकम् ॥
जप्त्वा मत्र यथाशक्ति देवताये निवेदयेत् ॥९०
गुह्यातिगुह्यगोप्ता त्व गृहाणास्मत्कृत जपम् ।
सिद्धिर्भवतु मे देव त्वत्प्रसादात्त्वयि स्थिता ॥९१

फिर धेनु मुद्रा से जल का अमृतीकरण करके इष्ट देवता के हाथ मे आचमन करने को उसे देना । तत्पश्चात् मूर्ति मे उपस्थित

देवता का विसर्जन करके पुन उसी मूर्ति मे उनकी प्रतिष्ठा करनी। इसके बाद पार्षदो को नैवेद्य चढ़ाना ॥ ८७—८८॥ महादेव के पार्षद "चण्डेश" विष्णु के 'विष्वक्सेन' गणेश के "वक्रतुण्ड", भगवती दुर्गा की "उच्छिष्ट चाण्डाली'—ये सब उच्छिष्ट भोजी कहे जाते है ॥८७—॥९०॥ इसके पश्चात् मूल मन्त्र के ऋषि आदि का स्मरण करके मूल से ही षडङ्गन्यास करना और यथा शक्ति मन्त्र का जप करके उसे देवता को अर्पण करना—'हे देव आप गुह्य से भी अति गुह्य वस्तु की रक्षा करने वाले हो। आप मेरे द्वारा किये इस जप को ग्रहण करें। आपके प्रसाद से आपके भीतर रहने वाली सिद्धि मुझे प्राप्त हो ॥९१॥

तत पराङ्मुख चार्घं कृत्वा पुष्पै प्रपूजयेत् ॥९२
दोर्भ्यां पद्भ्या च जानुभ्यामुरसा शिरसा दृशा।
मनसा वचसा चेति प्रणामोऽष्टाङ्ग ईरित ॥९३
बाहुभ्या च सजानुभ्या शिरसा वचसापि वा।
पञ्चाङ्गक प्रणाम स्यात् पूजाया प्रवराविमौ ॥९४
न रवा च दण्डवन्मन्त्री तत कुर्यात् प्रदक्षिणा।
विष्णुसोमार्कविघ्नाना वेदाब्धीन्द्वद्रिवह्नय ॥९५
तत स्तोत्रादिक मन्त्री प्रपठेद् भक्तिपूर्वकम्।
इत पूर्वं प्राणबुद्धिदेहधर्माधिकारत ॥९६
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यते वस्थासु मनसा वदेत्।
वाचा हस्ताभ्या च पद्भ्यामुदरेण तत परम्। ९७
शिश्नाते यत्स्मृत पश्चाद्युदुक्त यत्कृत तत।
तत्सर्वं च ततो ब्रह्मायण भवतु ठद्वयम् ॥९८
मा मदीय च सकल विष्णवे च समर्पये।
तार तत्सदतो ब्रह्मार्पणमस्तु मनुर्मत ॥९९

तत्पश्चात् पराङ्मुख अर्घ्य देकर पुष्पो से पूजा करनी। पूजन के बाद प्रणाम करना चाहिये। दोनो हाथ, दोनो पैर,

दोनों घुटने, छाती, मस्तक, नेत्र, मन, वाणी—इन सबसे किया गया नमस्कार "अष्टाङ्ग प्रणाम" कहलाता है। दोनों भुजा, दोनों घुटने, छाती, मस्तक तथा मन से किया गया नमस्कार "पञ्चाङ्ग प्रणाम" कहा जाता है। पूजा में ये दोनों प्रणाम श्रेष्ठ माने गये हैं ॥९२-९४॥ मन्त्र के साधक को दण्डवत्, प्रणाम करके भगवान की परिक्रमा करनी। भगवान विष्णु की चार बार, शङ्कर की आधी बार भगवती दुर्गा की एक बार, सूर्य की सात बार और गणेश की तीन बार परिक्रमा करने का नियम है। उसके पश्चात् मन्त्रोपासक को भक्ति-पूर्वक यह स्तोत्र पाठ करना चाहिये—(९६ वें श्लोक में 'इतः पूर्वं' से लेकर ९९ वें श्लोक में "विष्णवे च समर्पये" तक) "इससे पहले प्राण, बुद्धि, देह धर्म के अधिकार में जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति अवस्थाओं में मन, वाणी, दोनों हाथ, दोनों हाथ, दोनों पैर, उदर, प्रजनन अङ्ग से मैंने जो कुछ विचारा है, जो कहा है, जो कर्म किया है वह ब्रह्मार्पण हो जाय। मैं अपने को तथा अपने सर्वस्व को आप विष्णु की सेवा में समर्पित करता हूँ। (विद्वानों ने इसे 'ब्रह्मार्पण मन्त्र' कहा है। इसके आदि में 'ॐ' और अन्त में "ॐ तत्सत्" लगाकर पाठ करने से भगवान् को 'आत्म समर्पण" होता है। इसके पश्चात् इस प्रकार क्षमा प्रार्थना की जाती है ॥९५-९९॥

अज्ञानाद् वा प्रमादाद् वा वैकल्यात् साधनस्य च।
यन्न्यूनमतिरिक्तं वा तत्सर्वं क्षन्तुमर्हसि ॥१००
द्रव्यहीनं क्रियाहीनं मन्त्रहीनं मयान्यथा।
कृतं यत्तत् क्षमस्वेश कृपया त्वम दयानिधे ॥१०१
यन्मया क्रियते कर्म जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु।
तत्सर्वं तावकी पूजा भूयाद् भूत्यै च मे प्रभो ॥१०२
भूमौ स्खलितपादानां भूमिरेवावलम्बनम्।
त्वयि जातापराधानां त्वमेव शरणं प्रभो ॥१०३

अन्यथा शरणं नास्ति त्वमेव शरणं मम ।
तस्मात् कारुण्य भावेन क्षमस्व परमेश्वर ॥१०४
अपराध सहस्राणि क्रियन्तेऽहर्निशं मया ।
दासोऽयमिति मां मत्वा क्षमस्व जगतां पते ॥१०५
आवाहनं न जानामि न जानामि विसर्जनम् ।
पूजां चैव न जानामि त्वं गतिः परमेश्वर ॥१०६
संप्रार्थ्यैव ततो मंत्री मूलान्ते श्लोक मुच्चरेत् ।
गच्छ गच्छ परं स्थानं जगदीश जगन्मय ॥१०७
यत्न ब्रह्मादयो देवा जानन्ति च सदाशिव ।
अकाल मृत्यु हरणं सर्वव्याधि विनाशनम् ॥१०८
सर्व पापक्षय करं विष्णुपादोदकं शुभम् ॥१०९

'हे भगवन् अज्ञान से, अथवा प्रमाद से तथा साधन के अभाव से मुझसे जो न्यूनता अथवा अधिकता का दोष हो गया हो उसे आप क्षमा करें। हे ईश्वर ! दयानिधे मैंने द्रव्य बिना, क्रिया बिना तथा मन्त्र बिना विधि से विपरीत जो कर्म किया हो उसे आप कृपा करके क्षमा करें ॥ १००–१०१ ॥ हे प्रभो ! मैंने जागृत स्वप्न सुषुप्ति अवस्थाओं में जो कर्म किया वह सब आपकी पूजा रूप हो जाय और मेरे लिये कल्याणकारी हो। जो व्यक्ति फिसल कर भूमि पर गिरता है उसे आश्रय देने वाली भी पृथ्वी ही होती है इसी प्रकार आपका कोई अपराध करने वाले व्यक्ति को शरण देने वाले भी आप ही है ॥१०२–१०३॥ हे परमेश्वर ! आपके अतिरिक्त और कोई शरण देने वाला नहीं है इसलिये कृपापूर्वक मेरी भूलों को क्षमा करके शरण प्रदान करें। हे जगत्पते ! रात दिन मुझसे हजारों अपराध होते हैं, इसलिये 'यह मेरा दास है' ऐसा समझ कर मुझे क्षमा करना ॥ १०४–१०५ ॥ हे भगवन् ! मैं न आवाहन करना जानता हूँ न विसर्जन करना मुझे ज्ञात है पूजा करने की विधि भी मुझे ठीक तरह नहीं आती इसलिये आप

ही गति हो—आधार हो ॥१०६॥ इस प्रकार प्रार्थना करके मन्त्र—राघव मूल—मन्त्र बोलकर विसर्जन के लिये "गच्छ-गच्छ-सदाशिव" (श्लोक १०८) अर्थात्—हे जगदीश्वर! आपके जिस परम धाम को ब्रह्मा आदि देवगण तथा भगवान् शिव भी नहीं जानते उसी परमधाम को आप सिधारिये" इस मन्त्र का उच्चारण करके पुष्पाञ्जलि अर्पण करे ॥१०७-१०८॥ अन्त में "अकाल मृत्यु ..... शुभम्।' (श्लोक १०९) अर्थात्—"भगवान् विष्णु का शुभ चरणामृत अकाल मृत्यु का अपहरण, समस्त व्याधियों का नाश और पापों का संहार करने वाला है" का उच्चारण करके चरणामृत पान करना। ॥१०९॥



॥ भगवान् राम के मंत्र की विधि ॥

अथ रामस्य मनवो वक्ष्यते सिद्धिदायका ।
येषामाराधनान्मर्त्यास्तरति भवसागरम् ॥१
सर्वेषु मन्त्रवर्गेषु श्रेष्ठं वैष्णव मुच्यते ।
गाणपत्येषु सौरेषु शाक्त शैवेष्व भीष्टदम् ॥२
वैष्णवेष्वपि मन्त्रेषु राममन्त्रो फलाधिका ।
गाणपत्यादि मन्त्रेभ्य कोटि कोटि गुणाधिका ॥३
विष्णुशय्यास्थितो वह्निरिन्दुभूषित मस्तका ।
रामाय हृदयान्तोय महाघौघ विनाशन ॥४
सर्वेषु राममन्त्रेषु ह्यतिश्रेष्ठ षडक्षर ।
कोटि कोटि सहस्राणि ह्युपपापानि यानि वै ॥५
मन्त्रस्योच्चारणमात्रेण लयं यान्ति न संशय ।
ब्रह्मा मुनि स्याद्गायत्रो छन्दो रामश्च देवता ॥६

आद्य बीज च हृच्छक्ति विनियोगोखिलाप्तये ।
षड्दीर्घभाजा बीजेन षडगानि समाचरेत् ॥७

सनत्कुमारजी कहने लगे—नारद ! अब मैं 'भगवान राम' के मन्त्रों का वर्णन करता हूँ । यह सिद्धिदायक हैं और इनकी आराधना से मनुष्य भवसागर से तर जाते हैं ॥१॥ सब उत्तम मन्त्रों में वैष्णव मन्त्र श्रेष्ठ है । वे गणेश, सूर्य, दुर्गा और शिव सम्बन्धी मन्त्रों की अपेक्षा अभिलाषा को शीघ्र पूर्ण करने वाले होते हैं । वैष्णव मन्त्रों में भी राम मन्त्र का फल अधिक है । गणपति-मन्त्र आदि की अपेक्षा राम नाम का महत्व करोड़ों गुना अधिक है ॥ २ ॥ ३ ॥ विष्णुशैया (आ) के ऊपर विराजमान अग्नि (र) का मस्तक के चन्द्रमा (अनुस्वार) से विभूषित हो और उसके आगे (रा रामाय नम) मन्त्र महान पापो के समूह को नाश करने वाला है ॥४॥ श्रीराम सम्बन्धी मन्त्रों में यह षडक्षर मन्त्र अत्यन्त श्रेष्ठ है । यह समस्त जाने और अनजाने पातकों तथा उपपातकों को तुरन्त नष्ट कर देता है इसमें संशय नहीं । इस मन्त्र के ब्रह्मा ऋषि, गायत्री छन्द, श्रीराम देवता, 'रां' बीज मन्त्र और 'नम' शक्ति है । समस्त मनोरथों के लिये इसका विनियोग किया जाता है । छ दीर्घ स्वरों से युक्त बीज मन्त्र द्वारा इसका षडन्यास करना ॥५–७॥

ब्रह्मरन्ध्रे भ्रुवोर्मध्ये हृन्नाभ्योर्गुह्य पादयो ।
मन्त्रवर्णान् क्रमाद्न्यस्य केशवादीन् प्रविन्यसेत् ॥८
पीठन्यासादिक कृत्वा ध्यानेद्धृदि रघूत्तमम् ।
बालाभोधरश्यामं च वीरासनसमास्थितम् ॥९
ज्ञानमुद्रां दक्षहस्ते दधत जानुनातरम् ।
सरोरुहकरा सीता विद्युदाभा च पार्श्वगाम् ॥१०
पश्यन्ती रामवक्त्राब्ज विविधाकल्प भूषिताम् ।
ध्यात्वैवं प्रजपेद्वर्णलक्ष मन्त्री दशाशत ॥११

कमलं तु हयावृवत्नी ब्राह्मणान्भोजयेत्तत ।
पूजयेद्वैष्णवे पीठे विमलादिसमन्विते ॥१२
मूर्तिमूलेन सकल्प्य तस्यामावाह्य साधक ।
सीता वामे समासीना तन्मन्त्रेण प्रपूजयेत् ॥१३
रमासीता पद ङे त द्विठान्तो जानकीमनु ।
अग्रे शारग च सपूज्य शरान् पार्श्वद्वयेऽर्चयेत् ॥१४

यह न्यास ब्रह्मरन्ध्र, भौंहो के मध्य हृदय, नाभि, गुह्य स्थान और पैर इन छ अगो मे करे। मन्त्र के अक्षरो का क्रम से एक एक अग मे न्यास करता जाय। फिर पीठन्यासादि करके हृदय मे रघुनाथ जी का नीचे श्लोक के 'कालाम्भोधर शब्द से ग्यारहवें श्लोक के 'भूषिताम्' शब्द तक उच्चारण करके ध्यान करे। इसका आशय है कि 'भगवान राम की अङ्गकान्ति मेघो की श्याम घटा के समान है। ये वीरासन पर बैठे है। दाँये हाथ मे ज्ञानमुद्रा धारण करके बाँया हाथ को जानु पर रखा है। उनके बाँयी ओर विद्युत जैसी काति वाली, विविध प्रकार के वस्त्र और आभूषणो से विभूषित सीताजी विराजमान हैं। उनके हाथ मे कमल है और वे अपने प्राण वल्लभ श्रीरामचन्द्रजी के मुखारविन्द को देख रही हैं। इस प्रकार ध्यान करके मन्त्र साधक को छ लाख जप करना और कमल द्वारा प्रज्वलित अग्नि मे दशाश हवन करना। फिर ब्राह्मण भोजन कराना। मूल-मन्त्र से इष्टदेव की मूर्ति बनाकर उसमे भगवान का आवाहन और प्रतिष्ठा करके विमल आदि गुण वार्यो से युक्त वैष्णव पीठ पर उनकी पूजा करनी, श्रीराम के वाम भाग मे बैठी हुई श्रीसीताजी की उन्ही के मन्त्र से पूजा करनी चाहिये। श्री सीतायै नम ' यह जानकी जी का मन्त्र है। भगवान राम के अग्रभाग मे शार्ङ्ग धनुष की पूजा करके दोनो पार्श्वों मे बाणो की पूजा कर ॥८।१४॥

केशरेषु षडङ्गानि पत्रेष्वेता-समर्चयेत् ।

हनुमत च सुग्रीव भरत सविभीषणम् ॥१५
लक्ष्मणागदशत्रुघ्नान् जाववत क्रमात्पुन ।
वाचयत हनूमतमग्रतो धृतपुस्तकम् ॥१६
यजेद्भरतशत्रुघ्नौ पार्श्वयोर्धृतचामरौ ।
धृतातछत्र हस्ताभ्या लक्ष्मणा पृष्ठतोचयेत् ॥१७
ततोष्टपत्रे सृष्टि च जय त विजय तथा ।
सुराष्ट्र राष्ट्रपालच अकोप धर्मपालकम् ॥१८
सुमत चेति सपूज्य लोकेशानायुधैर्युतान् ।
एव राम समाराध्य जीवन्मुक्त प्रजायत ॥१९
चदनाक्तै प्रजुहुयाज्जातीपुष्पै समाहित ।
राजवश्याय कमलैधनधान्यादि सिद्धये ॥२०
लक्ष्मीकाम प्रजुहुयात्प्रसूनैर्बिल्वसभवै ।
आज्याक्तैर्नीलकमलै वशयेदखिल जगत् ॥२१

कमल की केसरो म छ अङ्गो को पूजा करके दलो मे हनुमान, सुग्रीव भरत विभीषण लक्ष्मण अङ्गद शत्रुघ्न तथा जाम्बवान का क्रमश पूजन करना चाहिए । हनुमानजी भगवान के सम्मुख पुस्तक लेकर बाँच रहे है । श्रीराम के दोनो तरफ भरत और शत्रुघ्न चँवर लेकर खडे हैं । लक्ष्मणजी पीछे खडे होकर दोनो हाथो से भग वान के ऊपर छत्र लगाये हैं । इस प्रकार ध्यान करके सबकी पूजा करनी चाहिये ॥१२।१७॥ इसके पश्चात अष्ट दलो के अग्रभाग म सृष्टि जय त विजय सुराष्ट्र राष्ट्रपाल अकोप धर्मपाल तथा सुम त की पूजा करके बाह्य भाग मे इन्द्र आदि देवताओ की आ युधो सहित पू ा करनी । इस प्रक र भगवान राम की पूजा करक मनुष्य जीवन मुक्त होजाता है ॥१८।१९॥ जाती पुष्पो को च दन म लिप्त करक हवन करने से राजा वश मे होता है । कमलो से हवन करन से धन धान्य की प्राप्ति होती है । लक्ष्मी की इच्छा रखने वाल का बिल्व क

पुष्पों से हवन करना चाहिए। नील कमलों को घी में डुबा कर हवन करने से समस्त जगत वश में हो जाता है ॥२०।२१॥

घृतावत शतपर्वीभिर्दीर्घायुश्च निरामयः ।
रक्तोत्पलाना होमेन धन प्राप्नोति वाञ्छितम् ॥२२
पालाश कुसुमैर्हुत्वा मेधावी जायते नरः ।
तज्जप्ताभ पिबेत् प्रातर्वत्सरात् कविराड्भवेत् ॥२३
तन्मन्त्रितान्न भुञ्जीत महारोग प्रशान्तये ।
रोगोक्तौषध होमेन तद्रोगान् मुच्यते क्षणात् ॥२४
नदीतीरे च गोष्ठेवा जपेल्लक्ष पयोव्रत ।
पायसेनाज्ययुक्तेन हुत्वा विद्यानिधिर्भवेत् ॥२५
परिक्षीणाधिपस्थो य शाकाहारो जलान्तरे ।
जपेल्लक्ष च जुहुयाद बिल्वपुष्पैर्दशांशत ॥२६
तदेव पुनराप्नोति स्वाधिपत्य न सशय ।
उपोष्य गङ्गा तीरान्ते स्थित्वा लक्ष जपेन्नर ॥२७
दशाश कमलं हुत्वा बिल्वोत्थंवा प्रसूनकं ।
मधुरत्रय सयुक्तै राज्य श्रियमवाप्नुयात् ॥२८

घी में डुबाई हुई शतपर्वी (दूब) से हवन करने वाला दीर्घायु और निरोग होता है। रक्त कमलो का हवन करने से मन वाञ्छित धन प्राप्त होता है। पलाश के फूलो से हवन करने वाला मेधावी होता है और यदि कोई एक वर्ष तक प्रातःकाल में पूर्वोक्त मन्त्र से अभिमन्त्रित जल पिये तो वह कवि सम्राट बन जाता है ॥२२।२३॥ और इस मन्त्र से अभिमन्त्रित अन्न का भोजन करने से बड़े-बड़े भयङ्कर रोग मिट जाते हैं। किसी रोग के लिये बताई गई औषधि का हवन करने से मनुष्य क्षण भर में रोग मुक्त हो जाता है ॥ २४ ॥ केवल दूध का आहार रखकर नदी के तीर पर या गोशाला में एक लाख जप किया जाय और घृत युक्त खीर की आहुतियाँ दी जायें तो विद्यानिधि हो

जाता है ॥२५॥ जिसका अधिकार नष्ट हो गया हो वह मनुष्य शाका-हार पर आधार रखकर जल में खड़े होकर एक लाख जप करे और बिल्व के फूलों की दशांश आहुतियाँ दे तो उसको अपना नष्ट हुआ प्रभुत्व फिर से मिल जायगा, इसमें सन्देह नहीं। गङ्गा तट के समीप उपवास करके जो मनुष्य एक लाख जप करे और त्रिमधु (शहद, घी और शक्कर) युक्त कमल अथवा बिल्व फूलों की आहुतियाँ दे तो राज-लक्ष्मी को प्राप्त करता है ॥२६।२७॥

माघमासे जले स्थित्वा कन्दमूल फलाशन ।
लक्ष जप्त्वा दशांशेन पायसैर्जुहुयाद्वसौ ॥२८
श्रीरामचन्द्र सदृश पुत्र पौत्रोपि जायते ।
अन्येपि बहव सन्ति प्रयोगा मन्त्रराजके ॥३०
षट्कोणा वसुपत्र च तद्बाह्यार्क दल लिखेत् ॥३१
षट्कोणेषु षडर्णानि मन्त्रस्य विलिखेद् बुध ।
अष्ट पत्रे तथाष्टार्णाल्लिखेत् प्रणव गर्भितान ॥३२
कामबीज रविदल मध्ये मन्त्रावृताभिधाम् ।
सुदर्शनावृत बाह्ये दिक्षुयुग्मावृत तथा ॥३३
वज्रोल्लमद्भूमिगेह् कन्दार्पाङ्कुणप शके ।
भूम्या च विलसन्कोणयन्त्रराजमिदस्मृतम् ॥३४
भूर्जेष्टगर्धं सलिख्य पूजयेदुक्त वर्त्मना ।
षट्कोणेषु दलार्काब्जान्यावेष्ट वृतयुग्मत ॥३५
केशरेष्वष्ट पत्रस्य स्वरद्वद्व लिखेद्बुध ।
बहिस्तु मातृकाचैव मत्र प्राण निधापनम् ॥३६

मार्गशीर्ष मास में कन्द, मूल फल का आहार करते हुए जल में खड़े रह कर एक लाख जप करके प्रज्वलित अग्नि में खीर से दशांश होम करने वाले मनुष्य को भगवान राम जैसे सद्गुणी पुत्र और पौत्र की प्राप्ति होती है। इसी प्रकार इस मन्त्रराज के और भी बहुत से

कल्याणकारी प्रयोग है। पहले एक षट्कोण बनावे। उसके चारों ओर एक अष्टदल कमल का चित्र खींचना, उसके भी चारों ओर एक बारह दल का कमल बनाना, कोणों में विद्वान् पुरुष को मन्त्र के छः अक्षरों को लिखना। अष्टदल कमल में भी प्रणव सहित उक्त मन्त्र के आठ अक्षरों का उल्लेख करना। द्वादश कमल दलों में काम बीज (क्लीं) लिखना। बाह्य भाग में सुदर्शन मन्त्र से और दिशाओं में पुग्म बीज (रां श्रीं) से यन्त्र को आवृत करना ॥२६।३३॥ उसका 'भूपुर' वज्र से सुशोभित होना चाहिए। उसके चारों कोण कन्दर्प, अंकुश, पाश, भूमि से सुशोभित होने चाहिये। इसको मन्त्रराज माना गया है। भोज पत्र पर अष्ट गन्ध से ऊपर बताये अनुसार यन्त्र लिख कर छः कोणों पर दलों का आवेष्टन करना, यन्त्र के बाह्य भाग में मातृका वर्णों का उल्लेख करना, मध्य में प्राण प्रतिष्ठा का मन्त्र भी लिखना ॥३४।३६॥

यन्त्रमेतच्छुभे वस्त्रे कण्ठे वा दक्षिणे भुजे।
मूर्ध्नि वा धारयेन्मन्त्री सर्वं पापैः प्रमुच्यते ॥
ध्यायेत् कल्पतरोर्मूले सुवर्णमय मण्डपे ॥३७
पुष्पकाख्य विमानान्त सिंहासन परिच्छदे।
पद्मे वसुदले देवमिन्द्रनील समप्रभम् ॥३८
वीरासनसमासीन ज्ञान मुद्रोपशोभितम्।
वामोरुन्यस्तनद्धस्त सीतालक्ष्मणसेवितम् ॥३६
रत्नाकल्प विभु ध्यात्वा वण लक्ष जपन्मनुम्।
यद्वा स्मारादि मन्त्राणां जयामं च हरिं स्मरेत् ॥४०
रामश्च चद्रभद्रान्ता ह्र नमोन्तो ध्रुवादिक ।
मनायष्टाक्षरौ ह्यतो तारान्त्यौ चेन्नवाक्षरौ ॥४१
एतेषां भजनं सर्वं कुर्यान्मन्त्री षडर्णवत् ॥४२

मन्त्र के उपासक को किसी शुभ दिन में कण्ठ में, दायीं भुजा

मे अथवा मस्तक पर इस मन्त्र को धारण करना। इससे वह सर्व पापो से मुक्त हो जायगा ॥३७॥ भगवान राम का ध्यान इस प्रकार करना चाहिये कि 'कल्प वृक्ष के नीचे सुवर्ण का एक विशाल मण्डप बना है। उसमे पुष्पक विमान है। विमान मे एक दिव्य सिंहासन रखा है। उस पर अष्टदल कमल का आसन है। इसके ऊपर इन्द्र नीलमणि श्याम कान्ति वाले भगवान श्रीरामचन्द्र वीरासन पर बैठे हैं। उनका दाँया हाथ ज्ञानमुद्रा से सुशोभित है और बाँया हाथ बाँयी जाँघ पर रखा है। भगवती सीता तथा सेवा व्रत धारण करने वाले लक्ष्मण उनकी सेवा मे लगे हैं। वे सर्वव्यापी भगवान रत्नमय आभूषणों से शोभित हैं।' इस प्रकार ध्यान करने के पश्चात् छ अक्षरो की सख्या के अनुसार छ लाख मन्त्र जपे अथवा 'क्लीं' आदि से युक्त मन्त्रो के साधन के लिये हरि का चिन्तन करे ॥३८-४०॥ इसका पूजन तथा लौकिक प्रयोग पूर्वोक्त षडक्षर मन्त्र के समान ही करना चाहिये 'ॐ रामच द्राय नम' तथा ॐ रामभद्राय नम' से दो अष्टाक्षर मन्त्र हैं। इनके अन्त मे भी यदि 'हू' लगा दिया जाय तो ये नवाक्षर मन्त्र हो जाते हैं। इस मन्त्र का ध्यान निम्न प्रकार से करना चाहिये ॥ ४१।४२ ॥

अयोध्यानगरे रत्नचित्रसौवर्णमण्डपे ।
मन्दारपुष्पैराबद्धविताने तोरणान्विते ॥४३
सिंहासनसमासीन पुष्पकोपरि राघवम् ।
रक्षोभिर्हरिभिर्देव सुविमानगतं शुभै ॥४४
सस्तूयमान मुनिभि प्रह्वैश्च परिसेवितम् ।
सीतालकृतवामाङ्ग लक्ष्मणेनोप शोभितम् ॥४५
श्याम प्रसन्नवदन सर्वाभरण भूषितम् ।
एव ध्यात्वा जपेन्मत्री वर्णलक्ष समाहित ॥४६
दशाश कमलैर्होमो यजन च षडर्णवत् ।

रामो ङेन्तो धनुष्पाणिर्ङेन्तोन्ते वह्निसुन्दरी ॥४७
दशाक्षरोय मन्त्रोस्य मुनिर्ब्रह्मा विराट् पुन. ।
छन्दस्तु देवता प्रोक्तो रामो राक्षस मर्दन ॥४८
आद्यबीज द्विठ शक्तिर्बीजे नागानि कल्पयेत् ।
वर्णन्यास तथा ध्यानपुरश्चर्यार्चनादिकम् ॥४९
दशाक्षरोक्तवत् कुर्याच्चाप वाणधर स्मरत ।
तारो नमो भगवते रामाग्ते चद्रभद्रकौ ॥५०
ङेतावर्काक्षरो मन्त्रो ऋषिछ्न्दादि पूर्ववत् ।
श्रीपूर्व जयपूर्व च तद्द्विधा रामनाम च ॥५१

"दिव्य अयोध्या नगर मे रत्नो से चित्रित एक सुवर्णमय मडप है जिसमे मन्दार के पुष्पो से चँदोवा बनाया गया है, उसमे तोरण लगे हुये हैं। उसके अन्दर पुष्पक विमान मे एक दिव्य सिंहासन पर राघवेन्द्र श्रीराम बैठे हुये हैं। उस सुन्दर विमान मे एकत्रित होकर शुभ स्वरूप देवता बन्दर, राक्षस तथा विनीत महर्षिगणाम की स्तुति और परिचर्या करते हैं। श्रीराघवेन्द्र के वाम भाग मे भगवती सीता विराजमान होकर वामाङ्ग की शोभा बढा रही हैं। भगवान का दाहिना भाग लक्ष्मणजी से सुशोभित है। श्री रघुनाथजी की कान्ति श्याम है, उनका मुख प्रसन्न है, तथा वे समस्त आभरणो से विभूषित हैं। इस प्रकार ध्यान करके मन्त्रोपासक एकाग्रचित्त से दश लाख जप करे। कमल के फूलो से दशाश होम और पूजन षडक्षर मन्त्र के समान ही है। "रामाय धनुष्पाणये स्वाहा" यह दशाक्षर मन्त्र है। इसके ब्रह्मा ऋषि, विराट छन्द तथा राक्षस मदन श्रीरामचन्द्रजी देवता हैं। मन्त्र का आदि अक्षर अर्थात् 'रा' बीज है और 'स्वाहा' शक्ति है। बीज से षडगन्यास करना। वर्ण का न्यास, ध्यान, पुरश्चरण तथा पूजन आदि कार्य पहले बताये गये के अनुसार ही करना चाहिये। इसके जप मे धनुप बाण धारण किये भगवान श्रीरामचन्द्र का ध्यान करना चाहिये।

'ॐ नमो भगवते राम चन्द्राय" अथवा 'ॐ नमो भगवते रामभद्राय" यह दो प्रकार के द्वादशाक्षर मंत्र हैं। इनके ऋषि और ध्यान आदि पूर्ववत् हैं। श्रीपूर्वक, जय पूर्वक तथा जय-जय पूर्वक 'राम' नाम होना चाहिये ॥४३-५१॥

त्रयोदशाक्षरो मन्त्रो मुनिर्ब्रह्मा विराट् स्मृतम् ।
छन्दस्तु देवता प्रोक्तो रामः पापौघनाशनः ॥५२
षडङ्गानि प्रकुर्वीत द्विरावृत्त्या पदत्रयैः ।
ध्यानार्चनादिकं सर्वं यस्य कुर्याद्दशार्णवत् ॥५३
तारो नमो भगवते रामायाते महापदम् ।
पुरुषाय हृदन्तोयं मनुरष्टादशाक्षरः ॥५४
विश्वामित्रो मुनिश्छन्दो धृती रामोऽस्य देवता ।
तारो बीजं नमः शक्तिश्चन्द्रास्यव्यस्तिं पदपूर्वं ॥५५
वर्णैर्मन्त्रोत्थितैः कुर्यात् षडङ्गानि समाहितः ॥५६
नि शाणभेरीपटहशङ्खतुर्यादिनि स्वनैः ॥५७
प्रवृत्तनृत्ये परितो जयमंगल भाषिते ।
चन्दनागुरु कस्तूरी कर्पूरादि सुवासिते ॥५८
सिंहासने समासीनं पुष्पकोपरि राघवम् ।
सौमित्रिसीतासहितं जटामुकुटशोभितम् ॥५९
चाप बाणधरं श्यामं ससुग्रीवविभीषणम् ।
हत्वा रावणमायान्तं कृतत्रैलोक्यरक्षणम् ॥६०
एवं ध्यात्वा जपेद्वर्णं लक्षं मंत्री दशांशतः ।
घृताक्तैः पायसैर्हुत्वा ये जनः पूर्ववच्चरेत् ॥६१

यह (श्रीराम जयराम जय जय राम) तेरह अक्षर का मंत्र है। इसके ब्रह्मा ऋषि विराट छन्द तथा पाप राशि के नाश करने वाले भगवान श्रीराम देवता हैं। इसमे तीन पदों की दो दो आवृत्ति करके षडंगन्यास करना। ध्यान पूजन आदि सर्व कार्य दशाक्षर मन्त्र के

समान करे ॥५२-५३॥ "ॐ नमो भगवते रामाय महापुरुषाय नम" यह अठारह अक्षरों का मन्त्र है। इसके विश्वामित्र ऋषि, धृति छन्द, श्रीराम देवता, ॐ बीज और 'नम' शक्ति है। मंत्र का एक, दो, चार, छ और दो अक्षरों वाले पदों से एकाग्रचित्त होकर षडङ्गन्यास करना।५४-५६। इस अठारह अक्षर वाले मन्त्र का ध्यान इस प्रकार करे "भगवान राघवेन्द्र रावण को मार कर और त्रैलोक्य की रक्षा करके फिर लौट रहे हैं। वे सीता और लक्ष्मण के साथ पुष्पक विमान में सिंहासन पर विराजमान हैं। उनका मस्तक जटाओं के मुकुट से शोभायमान है। उनका वर्ण श्याम है और धनुष बाण धारण किये हैं। उनके साथ में सुग्रीव और विभीषण भी हैं। (उनकी विजय के उपलक्ष्य में निशान, भेरी, पटह, शख, तुरही आदि की ध्वनि के साथ नृत्य भी होने लग गया है।) चारों तरफ जय-जयकार और मङ्गल पाठ हो रहा है और चन्दन, अगुर, कस्तूरी और कपूर आदि की मधुर गन्ध सर्वत्र व्याप्त हो रही है ॥५७-५६॥ इस प्रकार ध्यान करके मन्त्रोपासक को मंत्र की अक्षर संख्या के अनुसार अठारह लाख जप करना चाहिए और घृत मिश्रित खीर की दशांश आहुतियां देकर पूर्ववत् पूजन करना चाहिए ॥६०–६१॥

एकाक्षरो रघुपतेर्मन्त्र कल्पद्रुमोपर ।
ब्रह्मा मुनि स्याद्गायत्री छन्दो रामोस्य देवता ॥६२
षड्दीर्घाढ्यवे न मन्त्रेण षडगानि समाचरेत् ।
सरयूतीर मन्दार वेदिका पङ्कजासने ॥६३
श्याम वीरासनासीन ज्ञानमुद्रोप शोभितम् ।
वामोरुन्यस्ततद्धस्त सीतालक्ष्मणसयुतम् ॥६४
अवेक्षमाणमात्मान मन्मथामिततेजसम् ।
शुद्धस्फटिक सकाश केवल मोक्षकाक्षया ॥६५
चिन्तयेत् परमात्मानमृतुलक्ष जपेन्मनुम् ।

सर्वं षडर्णवच्चास्य होमनित्यार्चनादिकम् ॥६६

भगवान राम का एकाक्षर मन्त्र भी है वह है "रां"। यह द्वितीय कल्प वृक्ष के समान ही फलदायक है। इसके ब्रह्मा ऋषि, गायत्री छन्द और श्रीराम देवता हैं। छः दीर्घ स्वरों से इसका षडङ्ग-न्यास करे और निम्न रीति से भगवान का ध्यान करे—' सरयू के तीर पर मन्दार (कल्पवृक्ष) के नीचे एक वेदी पर कमल का आसन है। उस पर श्याम वर्ण भगवान राम वीरासन पर बैठे हैं और उनका दाँया हाथ ज्ञान मुद्रा से सुशोभित है। बाँये हाथ को बाँयी जंघा पर रखा है। वे सीताजी और लक्ष्मण के साथ हैं और कामदेव से भी बढ़कर अत्यन्त सुन्दर हैं। वे शुद्ध स्फटिक के समान निर्मल हैं और ध्यान द्वारा आत्म साक्षात्कार कर रहे हैं। ऐसे परमात्मा श्रीराम का केवल मोक्ष की आकांक्षा से छः लाख जप करे। इसका होम और नित्यपूजन सब कार्य षडक्षर मन्त्र की ही भाँति है ॥६२—६६॥

पद्मामीतापद ङेंत ठद्वयात षडक्षर ।
वालमीकिश्च मुनिश्छन्दो गायत्री देवता पुनः ।
सीता भगवती प्रोक्ता श्री बीज वह्नि सुन्दरी ॥६७
शक्ति षड्दीर्घयुक्तेन बीजनागानि कल्पयेत् ।
ता ध्यायेन्महादेवी सीता त्रैलोक्य पूजिताम् ॥६८
तप्तहाटक वर्णाभा पद्म युग करद्वये ।
सद्रत्नभूषण स्फुरद्दिव्यदेहा शुभात्मिकाम् ॥६९
नानावस्त्रा शशिमुखी पद्माक्षी मुदितान्तराम् ।
पश्यन्ती राघव पुण्य शय्यायां षड्गुणेश्वरीम् ॥७०
एवं ध्यात्वा जपेद्वर्ण लक्ष मन्त्री दशांशत ।
जुहुयात् कमल फुल्लै पीठे पूर्वोदिते यजेत् ॥७१
मूर्ति सकल्प्य मूलेन तस्यामावाह्य जानकीम् ।
सपूज्य दक्षिणे राममभ्यर्च्याग्रे निलात्मजम् ॥७२

अब 'सीता मन्त्र' को बतलाते हैं। पद्मा (श्री) चतुर्थी अन्त वाला सीता शब्द (सीतायै) और अन्त में ठद्वय (स्वाहा) यह "श्री सीतायै स्वाहा" षडक्षर मन्त्र है। इसके वाल्मीकि ऋषि, गायत्री छन्द, भगवती सीता देवता, 'श्रीं' बीज और 'स्वाहा' शक्ति है। छ दीर्घ स्वरों से युक्त बीजाक्षर द्वारा षडङ्गन्यास करना। इसके पश्चात् त्रैलोक्य में पूजित महादेवी सीता का इस प्रकार ध्यान करना—श्री सीताजी की कान्ति तपाये हुए सुवर्ण के तुल्य है। दोनों हाथों में दो कमल पुष्प सुशोभित हैं। रत्न जटित सुन्दर आभूषण धारण किये हैं जिससे उनका शरीर शोभायमान हो रहा है। वे चन्द्रमा के सदृश सुन्दर मुख वाली, कमल के समान नेत्र वाली अन्तरात्मा में प्रमुदित सीताजी भाँति भाँति के वस्त्रों से सुशोभित हैं और शैया पर अपने प्राणनाथ परम पुण्यशील श्रीरामचन्द्रजी को निहार रही हैं। वे ऐश्वर्य आदि षड्गुणों की अधीश्वरी हैं ॥६७-७०॥ इस प्रकार सीता देवी का ध्यान करके छः लाख मन्त्र जप करना और खिले हुये कमल पुष्पों से दशांश हवन करना। पूर्वोक्त पीठ (वेदिका) पर यह पूजा करनी चाहिये। मूल मन्त्र से मूर्ति निर्माण करके उसमें सीताजी का आवाहन करना चाहिए। फिर उनका विधिवत् पूजन करके उनके दक्षिण भाग में भगवान राम की और अग्रभाग में हनुमान जी की पूजा करनी चाहिये ॥७१-७२॥



॥ विविध मंत्र द्वारा हनुमत्-उपासना ॥

अथोच्यते हनुमतो मन्त्राः सर्वेष्टदायकाः ।
यान्समाराध्य विप्रेन्द्र तत्तुल्याचरणा नराः ॥१
मनुः स्वरेन्दु संयुक्तं गगनं च भगान्विताः ।
हृत्फाग्निमनशाधीशा द्वितीयं बीजमीरितम् ॥२

आवाहन, स्थापना पूर्वक पाद्यादि द्वारा पूजन करना। हृदयादि अङ्गों की पूजा करके अष्टदल कमल को आठ दलों में हनुमानजी के निम्न आठ नामों की पूजा करनी—रामभक्त, महातेजा, कपिराज, महाबल, द्रोणाद्रिहारक, मेरुपीठार्चनकारक, दक्षिणाशा भास्कर तथा सर्व विघ्न विनाशक।११।१४।

इत्थं सम्पूज्य नामानि दलाग्रेषु ततोऽर्चयेत्।
सुग्रीवमगदं नीलं जाम्बवन्तं नलं तथा ॥१५
सुषेणं द्विविदं मैंदं लोकपालांस्ततोऽर्चयेत्।
वज्राद्यानीय सपूज्य सिद्धश्चैव मनुर्भवेत् ॥१६
मन्त्रं नवशतं रात्रौ जपेद्दशदिनावधि।
यो नरस्तस्य नश्यति राजशत्रुत्थभीतयः ॥१७
मातुलिंगाम्रकदली फलैर्हुत्वा सहस्रकम्।
द्वाविंशति ब्रह्मचारि विप्रान्सभोजयेच्छु चीन ॥१८
एवङ्कृते भूतविषग्रहरोगाद्युपद्रवा।
नश्यति तत्क्षणा देव विद्वेषिग्रह दानवा ॥१९
अष्टोत्तरशतेनाम्बु मंत्रितं विषनाशनम्।
भूताहस्मर कृत्योत्थ ज्वरे तन्मंत्रमंत्रितं ॥२०
भस्मभि सलिलैर्वापि ताडयेज्ज्वरिणं क्रुधा।
त्रिदिनाज्ज्वरमुक्तोसौ सुखं च लभते नरः ॥२१

इस प्रकार हनुमानजी की पूजा करके कमल दलों के अग्रभाग क्रमशः सुग्रीव, अङ्गद, नील, जाम्बवान्, नल, सुषेण, द्विविद तथा ... की पूजा करनी। फिर लोकपालों और उनके आयुधों वज्र आदि ... पूजा करनी। इस प्रकार साधन करने से मन्त्र सिद्ध हो जाता है। जो व्यक्ति दस दिन तक लगातार प्रति रात्रि को नौसौ मन्त्र का जप करता है उसको राजभय तथा शत्रु भय से छुटकारा मिल जाता ॥१६।१७॥ इस मन्त्र से मातुलिंग (बिजौरा), आम, केला के

पन्नो की एक सहस्र आहुतियाँ देकर हवन करने से और पवित्र बाईस ब्रह्मचारियों को भोजन कराने से भूत, विष, रोग, कुपित ग्रह, दानव आदि का प्रकोप तुरन्त नष्ट होजाता है ॥१८।१९॥ इसमें आठ बार मन्त्र द्वारा अभिमन्त्रित जल विष के प्रभाव को दूर कर देता है। भूत, अपस्मार (वाय) और कृत्या (तन्त्र द्वारा मारण प्रयोग) आदि के कारण जो ज्वर उत्पन्न हुआ हो तो इस मन्त्र से अभिमन्त्रित भस्म या जल को क्रोधपूर्वक रोगी पर फेंक कर मारना। इस प्रकार का प्रयोग, तीन दिन तक करने से तीन दिन में रोग मुक्त होकर स्वास्थ्य लाभ करता है ॥२०।२१॥

औषधं वा जलं वापि भुक्त्वा तन्मन्त्रमन्त्रितम् ।
सर्वान् रोगानपराभूय सुखी भवति तत्क्षणात् ॥२२
तज्जप्तभस्मनिमान्नो भुक्त्वा तन्मन्त्रितं पयः ।
योद्धुं गच्छेत्स वा मन्त्री शस्त्रं सर्वैर्न बाध्यते ॥२३
शस्त्र दान शमन्यादौ भूताच्छोटीति भस्मना ।
त्रिसंध्यं न च मन्त्रष्टा मुच्यन्तेत्र न संशय ॥२४
जपेदश्विमारभ्य यावदाश्वी भवेत् ।
भव गत दिन यावत्साशाय भस्म तीवसो ॥२५
निगदन्नभिमन्त्र्यान्तु शत्रूणां द्वार्यर्पितम् ।
विद्वेष मिष आपन्ना पराभवस्वादिवरा ॥२६
भस्मानु चन्दन मन्त्री मन्त्रेणानेन मन्त्रितम् ।
भस्मादि योजित तस्मै ददाति स तु वानरः ॥२७
स राजा जायते देव भवति सर्वदेव ॥२८

है उसका शस्त्र द्वारा कोई अनिष्ट नहीं हो पाता ॥२२॥२३॥ शस्त्र से लगा हुआ घाव, फोड़ा, मकड़ी से उत्पन्न फुंसी आदि तीन बार जप कर भस्म के लगाने [illegible] बहुत शीघ्र सूख जाते हैं ॥ २४ ॥ सात दिन सूर्यास्त से सूर्योदय तक मन्त्र का जप करे और उससे अभिमन्त्रित भस्म का शत्रु के द्वार के सम्मुख किसी गढे मे गाढ दे तो शत्रु का द्वेष भाव दूर हो जाता है ॥२५–२६॥ इस मन्त्र से अभिमन्त्रित चन्दन की भस्म या जल को भोजन के साथ मिला कर खिला दिया जाय तो वह अपना पूर्ण रूप से अनुयायी बन जाता है। मनुष्य की तो क्या बात क्रूर जंतु भी इस प्रयोग से वशवर्ती हो जाते हैं ॥२७–२८॥

गृहीत्वेशानदिवसस्थे करजतरुमूलकम् ।
कृत्वा तेनागुष्ठमाना प्रतिमा च हनूमतः ।
कृत्वा प्राणप्रथिष्ठा च सिंदूराद्यं प्रपूज्यच ॥२६
गृहस्याभिमुखी द्वारे निखनेन् मन्त्रमुच्चरन् ।
ग्रहाभिचार रोगाग्नि विष चौर नृपोद्भवा ॥३०
न जायते गृहे तस्मिन् कदाचिदप्युपद्रवा ।
तद्गृहे धनपुत्राद्यं रेधते प्रत्यह चिरम् ॥३१
ज्वरे दूर्वागुडूचीभिर्दध्ना क्षीरेणवा घृते ।
शूले करजवातारिस मिद्भिस्तैल लोलि ो ॥३२
जतोयुद्धे जय दद्याद्व्याधौ व्याधि विनाशन ।
एव यो भजते मन्त्री वायु पुत्र कपीश्वरम् ॥३३
सर्वान्स लभते कामान्दे वैरपि सुदुर्लभान् ।
धन धान्य सुतान्यौत्रान् सौभाग्य मतुल यश ॥३४
मेधा विद्या प्रभा राज्य विवादे विजय तथा ।
उपासितो जनागर्भं समूत प्रददात्यलम् ॥३५

ईशान दिशा मे स्थित करज वृक्ष की जड लाकर उससे अँगूठा के बराबर हनुमान जी की प्रतिमा बनावे। फिर उस प्रतिमा मे प्राण

।।४।। करके सिन्दूर आदि से उसकी पूजा करनी फिर प्रतिमा का मुख घर की तरफ करके, मन्त्र का उच्चारण करते हुए उसे दरवाजे पर गाड़ देना। ऐसा करने से ग्रह, अभिचार, रोग, अग्नि, विष, चोर तथा राजा आदि का उपद्रव उस घर मे कभी नही होता। वह घर दीर्घकाल तक धन पुत्र आदि से सुखी बना रहता है ।।२६–३१।। ज्वर से पीड़ित होने पर दूब, गिलोय (गुडूची) को दही, दूध अथवा घृत से मिश्रित करके हवन करे। शूल रोग मे करंज अथवा एरण्ड (वातारि) की समिधाओं को तैल मे डुबोकर हवन करे ।।३२।। इस प्रकार विधिपूर्वक वायुपुत्र कपीश्वर हनुमान जी का जप करने से युद्ध मे विजय प्राप्त होती है और सब प्रकार की आधि-व्याधि नष्ट हो जाती हैं। इससे साधक की वे सब कामनायें सिद्ध हो जाती हैं जो देवताओं को भी दुर्लभ हैं। अञ्जनिपुत्र हनुमानजी की उपासना धन, धान्य, पुत्र, पौत्र, अतुल सौभाग्य, यश, मेधा, विद्या, प्रभा, राज्य तथा विवाद मे जय प्रदान करने वाली है ।।३३–३५।।



।। श्रीकृष्ण मंत्र की अनुष्ठान विधि ।।

अथ वक्ष्ये कृष्ण मन्त्रान् भुक्ति मुक्ति फलप्रदान् ।
ब्रह्माद्या यान्समाराध्य सृष्ट्यादिकरणे क्षमा ।।१
काम कृष्णपद ङेंत गोविन्द च तथाविधम् ।
गोपीजन पद पश्चाद् वल्लभायाग्नि सुन्दरी ।।२
अष्टादशार्णो मन्त्रोय दुर्गाधिष्ठात् दैवत ।
नारदोस्य मुनिश्छन्दो गायत्री देवता पुन ।।३
श्रीकृष्ण परमात्मा च कामो बीज प्रकीर्तितम् ।
स्वाहा शक्तिर्नियोगस्तु चतुर्वर्ग प्रसिद्धये ।।४
ऋषि शिरशि वक्त्रे तु छन्दश्च हृदि दैवताम् ।

गुह्ये बीज पदो शक्ति न्यसेत्साधक सत्तम ॥५
युगवेदाब्धि निगमैर्द्वाभ्यां वर्णैर्मनूद्भवैः ।
पचागानि प्रविन्यस्य तत्त्वन्यास समाचरेत् ॥६
मूर्द्धास्य हृद्गुह्य पादेष्वाद्या शादीन् न्यसेत्तत ।
हृत्पुण्डरीकमर्केन्दु वह्नि विबान्यनुक्रमात् ।
द्विषट्‌षट्षट्दशकला व्याप्तानि च तथा मत ॥७

श्री सनत्कुमार बोले—नारद ! अब पार्थिव भोग और मोक्ष प्रदान करने वाले भगवान् कृष्ण के मन्त्रों का वर्णन करता हूँ । इन्हीं का साधन करने से ब्रह्माजी सृष्टि रचना करने में समर्थ होते हैं । काम (क्लीं) 'ङे' चतुर्थी विभक्ति युक्त "कृष्ण" और "गोविन्द" पद, फिर 'गोपीजन वल्लभाय स्वाहा' (क्लीं कृष्णाय गोविन्दाय गोपीजन वल्लभाय स्वाहा) यह अठारह अक्षरों का मन्त्र है । इसकी अधिष्ठात्री देवी दुर्गा है इस मन्त्र के नारद ऋषि, गायत्री छन्द, परमात्मा श्रीकृष्ण देवता 'क्लीं बीज और 'स्वाहा शक्ति है । धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के लिए इसका विनियोग किया जाता है । श्रेष्ठ साधक को ऋषि का शिर मे, छन्द का मुख मे, देवता का हृदय मे, बीज का गुह्य म और शक्ति का चरणो मे न्यास करना । (जैसे नारदऋषये नम शिरसि, गायत्री छन्द से नम मुखे, श्रीकृष्ण परमात्मदेवतायै नम हृदि, क्लीं बीजाय नम गुह्ये, स्वाहा शक्तये नम पादयो, इस प्रकार ऋष्यादि न्यास होता है) । मन्त्र के चार, चार, चार, चार और दो अक्षरो से पञ्च अङ्ग न्यास करना (जैसे—'क्लीं कृष्णाय' हृदयाय नम, 'गोविन्दाय शिरसे स्वाहा 'गोपीजन शिखायै वषट 'वल्लभाय कवचाय हुँ, स्वाहा अस्त्राय फट) । इस प्रकार पञ्चाङ्ग न्यास करके फिर तत्व न्यास करे । इसके बाद हृदय कमल म क्रमश द्वादश कला व्याप्त सूर्य षोडशकला व्याप्त चन्द्र मण्डल तथा दश कला व्याप्त अग्निमण्डल का न्यास करे ॥१-७॥

अथ वक्ष्ये महागुह्य सर्वन्यासोत्तमोत्तमम् ।
यस्य विज्ञानमात्रेण जीवन्मुक्तो भवेन्नर ॥
अणिमाद्यष्टसिद्धीनामीश्वर स्यान्न सशय ॥८
यस्याराधनतो मत्रो कृष्ण सानिध्यता व्रजेत् ।
ताराद्याभिर्व्याहृतिभि सपुट विन्यसेन्मनुम् ॥९
मत्रेण पुटिताश्चापि प्रणवाद्यास्ततो न्यसेत् ।
गायत्र्या पुटित मत्र विन्यसेन्मातृका स्थले ॥१०
मत्रण पुटिता वा च गायत्री विन्यसेत् क्रमात् ।
मातृका पुटित मूल विन्यसेत् साधकोत्तम ॥११
मूलेन पुटिता चैव मातृका विन्यसेत् क्रमात् ।
तृच न मातृका वर्णान्पूर्व तत्तत्स्थले सुधी ॥१२
विन्यसेन् न्यास षट्क च षोढा न्यासोयमीरित ।
अनेन न्यास वर्येण साक्षात् कृष्णसमो भवेत् ॥१३
न्यासेन पुटित दृष्ट्वा सिद्ध गन्धर्व किन्नरा ।
देवा अपि नमस्येन कि पुनर्मानवा भुवि ॥१४
सुदर्शनस्य मत्रेण कुर्याद्दिग्बधन तत ।
देव ध्यायन्स्वहृदये सर्वाभीष्टप्रदायकम् । १५

अब मैं न्यासो मे उत्तमोत्तम न्यास को बतलाता हूँ जो अत्यन्त गुह्य है। यह ऐसा प्रभावशाली है कि इसके जानने मात्र से मनुष्य जीवनमुक्त हो जाता है और अणिमा आदि आठो सिद्धियाँ करत लगत जान पडती हैं। इसकी आराधना से मन्त्र साधक भगवान् श्रीकृष्ण का सान्निध्य प्राप्त कर लेता है। प्रणवादि व्याहृतियो से सम्पुटित मन्त्र का और मन्त्र से सम्पुटित प्रणवादि का मातृकास्थल मे न्यास करे। फिर गायत्री से सम्पुटित मन्त्र का और मन्त्र से सम्पुटित गायत्री का उसी प्रकार मातृकास्थल मे क्रम से न्यास करना चाहिए। फिर मातृका से सम्पुटित मूल का और मूल से सम्पुटित मातृका वर्णों का नियत किये

स्थलों में न्यास करना। पहले मातृका वर्णों का न्यास करके पूर्वोक्त न्यास करने चाहिए। इस प्रकार छ प्रकार के न्यास करे। इसे षोढा न्यास कहा जाता है। इस महा न्यास के करने वाला साधक भगवान के सदृश्य ही बन जाता है और सिद्ध, गन्धर्व, किन्नर तथा देवगण भी उसे नमस्कार करते हैं, फिर इस पृथ्वी पर रहने वाले मनुष्यों को तो बात ही क्या है। तत्पश्चात् "ॐ नम सुदर्शनाय अस्त्राय फट्" इस मन्त्र से दिग्ब ध करके अपने हृदय में समस्त अभीष्टों की पूर्ति करने वाले इष्टदेव का इस प्रकार ध्यान करना ॥८-१५॥

उत्फुल्ल कुसुमव्रात नम्रशाखैर्वरद्रुमैः ।
सस्मेरमञ्जरी वृन्द वल्लरी वेष्टितैं शुभैं ॥१६
गलत्पराग धूलीभि सुरभीकृतदिङ्मुखं ।
स्मरेच्छिशिरित वृन्दावन मन्त्री समाहित ॥१७
उन्मीलन् नवकञ्जालि विगलन्मधु सञ्चयैं ।
लुब्धान्त करणंगु ञ्जद् द्विरेफ पतलैं शुभम् ॥१८
मराल परभृत कीर कपोत निकरैर्मुहुः ।
मुखरीकृत मानृत्यन् मायूरकुल मञ्जुलम् ॥१९
कालिन्द्या लोलकल्लोल विप्रुषैर्मन्दवाहिभि ।
उन्निद्राम्बुरुहव्रात रजोभिधसरं शिवै ॥२०
प्रदीपित स्मरं गोप सुन्दरी मृदु वाससाम् ।
विलोलनपरैं ससवित वा तैर्निरन्तरम् ॥२१
स्मरेत्तदन्ते गीर्वाणभूरुह सुमनोहरम् ।
तदध स्वर्णवेदा च रत्नपीठमनुत्तमम् ॥२२
रत्नकुट्टिमपीठेऽस्मिन्नरूण कमल स्मरेत् ।
अष्टपत्र च तन्मध्ये मुकुन्द सस्मरेत् स्थितम् ॥२३
फुल्ले दीवरकान्त च केकिवर्हावतंसकम् ।
पीतांशुक च प्रमुख सरसीरुह नेत्रकम् ॥२४

कौस्तुभोद्भासिताङ्गं च श्रीवत्साङ्कं सुभूषितम् ।
स्रजस्त्रो नेत्र कमलाभ्यर्चित गोगणावृतम् ॥
गोपवृन्दयुत वशी वादयन्त स्मरेत् सुधी ॥२५

'भगवान् कृष्ण का लीलास्थल वृन्दावन सुन्दर हरे भरे वृक्षों से परिपूर्ण तथा शीतल है। उन वृक्षों की शाखायें खिले हुए फूलों के भार से झुकी हुई हैं। उन पर प्रफुल्ल मञ्जरियों से युक्त बेलें लिपटी हुई हैं। उन वृक्षों पर से जो पुष्पपराग रूप धूल-कण झरते हैं उनसे दसों दिशाएँ सुगन्धमय हो रही हैं। वहां खिलने वाले कमलों से विगलित मधु धारा से आकर्षित होकर भौंरों के समूह मधुर गुञ्जार करते रहते हैं। (हंस कोयल, शुक और कपोतों के समूह उस प्रदेश को नाना प्रकार के शब्दों से पूर्ण किये रहते हैं और मयूर गण मनोहर नृत्य करते रहते हैं।) यमुनाजी के ऊपर बहने वाला शीतल सुखद वायु जल की चञ्चल लहरों से सूक्ष्म जल बिन्दुओं तथा कमलों के पराग को लेकर धूसर वर्ण का दिखाई पड़ने लगता है। वह व्रज-नारियों के वस्त्राञ्चलों को चञ्चल करता रहता है और प्राणियों के हृदय में प्रेमभाव को उद्दीपित करता रह कर वृन्दावन का निरन्तर सेवन करता है। उस वन में एक अत्यन्त मनोहर कल्प वृक्ष का चिन्तन करना। उसके नीचे सुवर्ण मय वेदी पर एक परमोत्तम रत्नमय पीठ शोभायमान है। वहां की भूमि भी रत्न जड़ित है। उस रत्नमय पीठ पर लाल रङ्ग के अष्टदल कमल की भावना करनी कि जिसके मध्य में श्री मुकुन्द विराजमान हैं। उनके स्वरूप का ध्यान इस प्रकार करना कि उनके अङ्ग की कान्ति विकसित नील कमल के समान है, उन्होंने मोरपंख का मुकुट धारण कर रखा है। कटि में पीताम्बर शोभित है। उनका मुख चन्द्रमा को लज्जित कर रहा है, और नेत्र खिले हुये कमलों की शोभा को छीने ले रहे हैं। समस्त अङ्ग कौस्तुभ मणि की प्रभा से प्रकाशित हो रहा है। वक्षस्थल पर श्रीवत्स का चिह्न सुशोभित है।

वे परम सुन्दर दिव्य आभूषण धारण किये हैं। व्रज की सुन्दर नारियाँ मानो अपने नेत्र रूपी कमलों का उपहार उनको अर्पित कर रही हैं, गायें उनको चारो ओर से घेरकर खड़ी हैं, गोपवृन्द उनके साथ हैं और वे बाँसुरी बजा रहे हैं। विद्वान पुरुषों को इसी प्रकार भगवान कृष्ण का ध्यान करना चाहिये ॥१६—२५॥

एवं ध्यात्वा जपेदादावयुतद्वितयं बुधः ॥२६
जुहुयादरुणाम्भोजैं स्तद्दशांश समाहित ।
जपेत् पश्चान्मन्त्रसिद्ध्यै भूतलक्ष समाहित ॥२७
अरुणै कमलैर्हुत्वा सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ।
पूर्वोक्ते वैष्णवे पीठे मूर्ति सकल्प्य मूलतः ॥२८
तस्यामावाह्य चाभ्यर्चेद् गोपीजन मनोहरम् ।
मुखे वेणुं समभ्यर्च्य वनमाला च कौस्तुभम् ॥२९
श्रीवत्स च हृदि प्राच्यं ततः पुष्पाञ्जलिं क्षिपेत् ।
तथ श्वेता च तुलसी शुक्ल चन्दन चर्चिताम् ॥३०
रक्ता च तुलसीं रक्तचन्दनाक्ता क्रमात् सुधीः ।
अर्पयेद् दक्षिणे वामभागे ध्यायन्सुरेश्वरम् ॥३१
हयमारद्वये नैव हृदि मूर्द्धनि तथा पुनः ।
पद्मद्वय च विधिवत्ततः शीर्षे समर्पयेत् ॥३२
तुलसीद्वयमम्भोजद्वयमश्वारियुग्मकम् ।
ततः सर्वाणि पुष्पाणि सर्वांगेषु समर्पयेत् ॥३३

बुद्धिमान मन्त्र-साधक को इस रीति से ध्यान करके पहले बीस हजार मन्त्र जपना फिर एकाग्रचित होकर लाल कमल पुष्पों से दशांश (दोहजार) आहुति देनी। फिर सावधान होकर मन्त्र सिद्धि के लिये पाँच लाख जप करना। तत्पश्चात् लाल कमलों से हवन करने से साधक समस्त सिद्धियों का स्वामी बन जाता है। पूर्वोक्त वैष्णव पीठ पर मूल मन्त्र से मूर्ति निर्माण करके उसमें गोपीजन मनोहर भगवान

श्रीकृष्ण का आवाहन और अर्चन करना। श्रीकृष्ण के मुख मे जो वशी है उसको पूजन कर फिर वक्ष स्थल पर वनमाला, कौस्तुभ मणि तथा श्रीवत्स का पूजन करना। इसके बाद पुष्पाजलि अर्पण करनी। फिर दायी और श्वेत चन्दन से लिप्त और बांयी ओर लाल चन्दन से युक्त तुलसीदल समर्पित करने। तत्पश्चात् कनेर के दो फूल लेकर भगवान के हृदय और मस्तक की पूजा करे। फिर विधिपूर्वक दो कमल के पुष्प उनके मस्तक पर चढावे और समस्त अङ्गो मे दो तुलसीदल, दो कमल और दो कनेर के फूल चढाकर सब प्रकार के पुष्पो को समर्पित करे ॥२६—३३॥

दक्षिण वासुदेवाख्य स्वच्छ चैतन्य मव्ययम्।
वामे च रुक्मिणी तद्वन्नित्या रक्ता रजोगुणाम् ॥३४
एव सपूज्य गोपाल कुर्यादावरणार्चनम्।
यजेद्दाम सुदामौ च वसुदाम च किङ्कणीम् ॥३५
पूर्वाद्याशासु दामाद्या ङेनमोन्त ध्रुवादिका।
अग्निनैऋ त्ति वाय्वीश कोणेषु हृदयादिकान् ॥३६
दिक्ष्वस्त्राणि समभ्यर्च्य पत्रेषु महिषी यजेत्।
रुक्मिणी सत्यभामा च नाग्नजित्यभिधा पुन ॥३७
सुविदा मित्रविदा च लक्ष्मणा चर्क्षजा तत।
सुशीला च लसद्रम्या चित्रितावर भूषणा ॥३८
ततो यजेद्दलाग्रेषु वसुदेवञ्च देवकीम्।
नन्दगोप यशोदा च बलभद्र सुभद्रिकाम् ॥३९
गोपान् गोपीश्च गोविन्द विलीन मति लोचनान्।
ज्ञानमुद्राभयकरौ पितरौ पीतपाण्डुरौ ॥४०

श्रीकृष्ण के दाहिने भाग मे वासुदेवजी का, जो अविनाशी चैतन्य स्वरूप है पूजन करे तथा बांयी ओर रक्त वर्ण रजोगुण स्वरूप रुक्मिणी जी का पूजे। भगवान श्रीकृष्ण का इस प्रकार विधिवत् पूजन

करने के पश्चात् उनके चार आवरण देवता दाम, सुदाम, वसुदाम और किंकणी का पूर्व आदि चारों दिशाओं में क्रमश पूजन करे। इनके नामों के आरम्भ में 'ॐकार' अन्त में चतुर्थी विभक्ति और 'नम' शब्द लगाना चाहिये (जैसे ॐ दामायनम, ॐ सुदामाय नम' आदि)। फिर अग्नि, नैऋत्य, वायव्य और ईशान—इन चारों कोणों में क्रमश हृदय, शिरशिखा तथा कवच का पूजन करके समस्त दिशाओं में अस्त्रों का पूजन करे। फिर कमल के आठों दलों में भगवान कृष्णकी आठों पटरानियों रुक्मिणी, सत्यभामा, नाग्नजिती, सुविन्दा, मित्रविंदा, लक्ष्मणा, जाम्बवती तथा सुशीला का पूजन करे। ये सभी पटरानियाँ बड़ी सुन्दर, रमणीक तथा दर्शनीय वस्त्राभूषणों से युक्त हैं सब अष्ट दलों के अग्रभाग में वसुदेव, देवकी, नन्द, यशोदा, बलभद्र, सुभद्रा तथा गोप और गोपियों का पूजन करे। इन सबका ध्यान और नेत्र गोविन्द की ओर ही लगे हुए है। दोनों पिता—वसुदेव और नन्द ज्ञान मुद्रा पीत गे और पाण्डु वर्ण के हैं ॥३४—४०॥

दिव्यमाल्याम्बर लेप भूषणे मातरौ पुन ।
धारयन्त्यौ चरु चैव पायसी पूर्णपात्रिकाम् ॥४१
कृष्ण च वासुदेव च देवकीनदन तथा।
नारायण यदुश्रेष्ठ वार्ष्णेय धर्म पालकम् ॥४२
असुराक्रांत-भूभारहारिण पूजयेत्तत ।
एभिरावरणै पूजा कर्तव्यासुर वैरिण ॥४३
ससारसागरोत्तीर्ये सर्व कामाप्तये बुधै ।
एव पूजादिभि सिद्धो भवेद्वैश्रवणो यम ॥
त्रिकाल पूजन चास्य वक्ष्ये सर्वार्थ सिद्धिदम् ॥४४

दोनों माताएँ—देवकी तथा यशोदा दिव्य वस्त्राभूषण, गन्ध, अङ्गराग आदि से युक्त हैं और हाथों में खीर से भरे पात्र लिए हुए हैं। इस प्रकार आठों नामों को लेकर भगवान श्रीकृष्ण का यजन करे।

वे आठ नाम ये हैं—कृष्ण, वासुदेव, देवकी नन्दन, नारायण, यदुश्रेष्ठ, वार्ष्णेय धर्मपालक, और असुराक्रान्त भूभारहारी । इस प्रकार असुरों का नाश करने वाले भगवान श्रीकृष्ण का आवरणों सहित पूजन करने से बुद्धिमान व्यक्ति समस्त कामनाओं को प्राप्त करते हुये संसार सागर से पार चले जाते हैं । अर्थात् भगवान की कृपा से उनको भुक्ति और मुक्ति दोनों की प्राप्ति हो जाती है । अब नीचे भगवान के तीनों काल में पूजा करने का विधान बताया जाता है जो समस्त मनोरथों को सिद्ध करने वाला है ।।४१—४४।।

श्री मदुद्यान संवीत हेमभूरत्नमण्डपे
लसत्कल्पद्रुमाधःस्थ रत्नाब्जपीठ संस्थितम् ।
सुत्रामरत्नसंकाश गुडस्निग्धालक शिशुम् ।।४५
चलत् कनक कुण्डलोल्लसित चारुगण्डस्थल-
सुघोणघरमद्भुत स्मितमुखाम्बुज सुन्दरम् ।
स्फुरद्विमल रत्नयुक्कनक सूत्रनद्ध दधत्-
सुवर्ण परिमंडित सुभग पौण्डरीक नखम् ।।४६
समुद्धूसरोर स्थले धेनुधूल्या
सुपुष्टाङ्गमष्टापदा कल्प दीप्तम् ।
कटीरस्थले चारुजयान्त युग्म
पिनद्ध क्वणित् किंकणी जालदाम्ना ।।४७
हसन्त हसद् बन्धुजीव प्रसून-
प्रभापाणि पादाम्बुजोदारकान्त्या ।
दधान करे दक्षिणे पायसान्न
सुहैयङ्गवीन तथा वामहस्ते ।।४८
लसद्गोपगोपी गवां वृन्दमध्ये
स्थित वासवाद्य सुरैरर्चिताङ्घ्रिम् ।
महोभारभूतामरारारि यूथा-

स्तत पूतना दीन् निहन्तु प्रवृत्तम् ॥४६
एव ध्यात्वार्च्चयेद्देव पूर्ववत् स्थिर मानस ।
दध्ना गुडेन नैवेद्य दत्वा दशशत जपेत् ॥५०
मध्यदिने यजेद्देव विशिष्ट रूप धारिणम् ।
नारदाद्यैर्मुनिगणै सुरवृन्दैश्च पूजितम् ॥५१

प्रात काल भगवान का ध्यान करने के लिए अपने चित्त मे भावना करे कि 'एक परम सुन्दर उद्यान के बीच मे सुवर्णमय भूमि पर एक रत्नो का मण्डप बना है। वहाँ कल्पवृक्ष के नीचे रत्नो की ही एक कमलाकार वेदी बनी है। उसके ऊपर नीलम के समान अङ्गआभा वाला तथा अत्यन्त सुन्दर घुँघराले केशो से युक्त एक शिशु विराजमान है। उसके कपोल कानो मे पहिने हिलते हुए कुण्डलो से बडे मनोहर लगते हैं। उसकी नासिका सुन्दर और सुघड है और मुख पर मन्द मुस्कान दिखाई पड़ती है। उसने गले मे सोने की जजीर म लटका और सोने से मढा रत्नो से युक्त बाघनख धारण कर रखा है। उसका वक्ष-स्थल गोधूलि से धूसरित है और अनेक दिव्य आभूषणों से दीप्तिमान हो रहा है। उसके समस्त अङ्ग खूब पुष्ट हैं उसके पैरो की दोनो पिण्डलियाँ अत्यन्त मनोहर हैं और उसने कमर मे घूँघरो वाली करधनी पहिन रखी है जिससे झकार युक्त मधुर शब्द होता रहता है। उसके चरणो की आभा खिले हुये बन्धुजीव पुष्प के समान लालिमा युक्त है और वह मन्द २ स्मित कर रहा है।' शिशु के दाँये हाथ म खीर की कटोरी और बाँये म तुरन्त का निकाला मक्खन है। ग्वाल, गोपी और गायो के समूह के मध्य म वह अत्यन्त शोभा पा रहा है। इन्द्र आदि देवगण उसके चरणो की आराधना करते हैं और उसने पृथ्वी के लिये भारभूत दैत्यगणों पूतना आदि का सहार करना आरम्भ कर दिया है।' इस प्रकार ध्यान करके पूर्ववत् एकाग्रचित्त से भगवान का पूजन करना उनके सम्मुख दही और गुड का नैवेद्य रख कर एक हजार मन्त्र जप

करे। इसी प्रकार नारद आदि मुनिगणो और देवताओ से पूजित विशिष्ट रूपयुक्त भगवान श्रीकृष्ण का ध्यान करना ॥४५-५१॥

लसद्गोपगोपीगवां वृन्दमध्य-
स्थितं सान्द्रमेघप्रभं सुन्दराङ्गम् ।
शिखण्डिच्छदापीडमब्जायताक्षं
लसच्चिल्लिकं पूर्णचन्द्राननं च ॥५२
चलत्कुण्डलोल्लासि गण्डस्थलश्री-
भरं सुन्दरं मन्दहासं सुनासम् ।
सुकार्तस्वराभाम्बरं दिव्यभूषं
क्वणित् किंकणीजालमत्तानुलेपम् ॥५३
वेणुं धमन्तं स्वकरे दधानं
सव्ये दरं यष्टि मुदारं वेपम् ।
दक्षे तथैवेप्सितदानदक्षं
ध्यात्वार्चयेन्नन्दनमिन्दिराप्त्यै ॥५४

मध्याह्न की पूजा के समय ध्यान करते हुये भावना करनी कि "वे श्रीकृष्ण भगवान गोप, गोपियों तथा गायों के मध्य विराजमान हैं, उनकी छवि स्निग्ध मेघ के समान श्याम है, और प्रत्येक अत्यन्त सुन्दर है। वे मोर पखो का मुकुट धारण किये हैं और नेत्र कमल दल के समान विशाल हैं। उनकी भौंहे बहुत शोभा सम्पन्न हैं और मुख चन्द्रमा से भी अधिक कान्ति युक्त है। हिलते हुए देदीप्यमान कुण्डलो से उनके कपोलो की शोभा अपूर्व हो जाती है। उनकी नासिका बड़ी मनोहर है और मन्दहास करने से मुख अत्यन्त सुन्दर जान पड़ता है। उनके वस्त्र तपाये हुए सुवर्ण की आभा के वर्ण के हैं, शरीर पर दिव्य आभूषण धारण कर रखे हैं, कटि मे धारण की हुई करधनी के घुंघरुओ मधुर शब्द हो रहा है और दिव्य गन्ध युक्त अङ्गराग धारण किये । वे अपने हाथ मे लेकर मुरली को बजा रहे हैं, उनके बांये हाथ में

एतत पूतना दीन् निहन्तु प्रवृत्तम् ॥४६
एव ध्यात्वार्च्चयेद्देव पूर्ववत् स्थिर मानस ।
दध्ना गुडेन नैवेद्य दत्वा दशशत जपेत् ॥५०
मध्यदिने यजेदेव विशिष्ट रूप धारिणम् ।
नारदाद्यैर्मुनिगणै सुरवृन्दैश्च पूजितम् ॥५१

प्रात काल भगवान का ध्यान करने के लिए अपने चित्त मे भावना करे कि 'एक परम सुन्दर उद्यान के बीच मे सुवर्णमय भूमि पर एक रत्नो का मण्डप बना है। वहाँ कल्पवृक्ष के नीचे रत्नो की ही एक कमलाकार वेदी बनी है। उसके ऊपर नीलम के समान अङ्गआभा वाला तथा अत्यन्त सुन्दर घुँघराले केशो से युक्त एक शिशु विराजमान है। उसके कपोल कानो मे पहिने हिलते हुए कुण्डलो से बडे मनोहर लगते हैं। उसकी नासिका सुन्दर और सुघड है और मुख पर मन्द मुस्कान दिखाई पडती है। उसने गले मे सोने की जजीर मे लटका और सोने से मढा रत्नो से युक्त बाघनख धारण कर रखा है। उसका वक्षस्थल गोधूलि से धूसरित है और अनेक दिव्य आभूषणो से दीप्तिमान हो रहा है। उसके समस्त अङ्ग खूब पुष्ट हैं उसके पैरो की दोनो पिण्डलियाँ अत्यन्त मनोहर हैं और उसने कमर मे घूँघरो वाली करधनी पहिन रखी है जिससे झकार युक्त मधुर शब्द होता रहता है। उसके चरणो की आभा खिले हुये बन्धुजीव पुष्प के समान लालिमा युक्त है और वह म द २ स्मित कर रहा है।' शिशु के दाँये हाथ म खीर की कटोरी और बाँये मे तुरन्त का निकाला मक्खन है। ग्वाल, गोपी और गायो के समूह के मध्य मे वह अत्यन्त शोभा पा रहा है। इन्द्र आदि देवगण उसके चरणो की आराधना करते हैं और उसने पृथ्वी के लिये भारभूत दैत्यगणो पूतना आदि का सहार करना आरम्भ कर दिया है।' इस प्रकार ध्यान करके पूर्ववत् एकाग्रचित्त से भगवान का पूजन करना उनके सम्मुख दही और गुड का नैवेद्य रख कर एक हजार मन्त्र जप

करे। इसी प्रकार नारद आदि मुनिगणों और देवताओं से पूजित विशिष्ट रूपयुक्त भगवान श्रीकृष्ण का ध्यान करना ॥४५–५१॥

लसद्गोपगोपीगवां वृन्दमध्य-
स्थितं सान्द्रमेघप्रभं सुन्दराङ्गम् ।
शिखण्डिच्छदापीडमब्जायताक्षं
लसच्चिल्लिकं पूर्णचन्द्राननं च ॥५२

चलत्कुण्डलोल्लासि गण्डस्थलश्री-
भरं सुन्दरं मन्दहासं सुनासम् ।
सुकार्तस्वराभाम्बरं दिव्यभूषं
क्वणत् किङ्किणीजालमात्तानुलेपम् ॥५३

वेणुं धमन्तं स्वकरे दधानं
सव्ये दरं यष्टिमुदारवेषम् ।
दक्षे तथैवेप्सितदानदक्षं
ध्यात्वार्चयेन्नन्दजमिन्दिराप्त्यै ॥५४

मध्याह्न की पूजा के समय ध्यान करते हुये भावना करनी कि 'वे श्रीकृष्ण भगवान गोप, गोपियों तथा गायों के मध्य विराजमान हैं, उनकी छवि स्निग्ध मेघ के समान श्याम है, और प्रत्येक अत्यन्त सुन्दर है। वे मोर पंखों का मुकुट धारण किये हैं और नेत्र कमल दल के समान विशाल हैं। उनकी भौंह बहुत शोभा सम्पन्न है और मुख चन्द्रमा से भी अधिक कान्ति युक्त है। हिलते हुए देदीप्यमान कुण्डलों से उनके कपोलों की आभा अपूर्व हो जाती है। उनकी नासिका बड़ी मनोहर है और मन्दहास करने से मुख अत्यन्त सुन्दर जान पड़ता है। उनके वस्त्र तपाये हुए सुवर्ण की आभा के सम के हैं, शरीर पर दिव्य आभूषण धारण कर रखे हैं, कटि में धारण की हुई करधनी के घुँघरुओं से मधुर शब्द हो रहा है और दिव्य गन्ध युक्त अङ्गराग धारण किये हैं। वे अपने हाथ में लेकर मुरली को बजा रहे हैं, उनके बांए हाथ में

शख और दाँये हाथ मे लठिया (छडी) है। उनका वेप उदारता युक्त है, वे मनोवाछित वस्तु प्रदान करने म दक्ष हैं। उन नन्द नन्दन श्री कृष्ण का ध्यान करके सुख-सम्पदा की प्राप्ति के हेतु उनका पूजन करना ॥५२-५४॥

एव ध्यात्वार्चयेत् कृष्णपूर्ववद्वैष्ण वोत्तम ।
अपूप पायसान्नाद्यैर्नैवेद्य परिकल्पयेत् ॥५५
हुत्वा चाष्टोत्तरशत पयोऽन्नै सर्पिषाप्लुतै ।
स्व स्वदिक्षु बलि दद्याद्दिशेदाचमन तत ॥५६
अष्टोत्तर सहस्र च प्रजपेन् मन्त्रमुत्तमम् ।
अहनो मध्ये यजेदेव य कृष्ण वैष्णवोत्तम ॥५७
देवा सर्वे नमस्यति लोकाना वल्लभो नर ।
मेधायु श्रीकातियुक्त पुत्रै पौत्रैश्च वर्द्धते ॥५८
तृतीय काल पूजायामस्ति काल विकल्पना ।
सायाह्ने निशि चेत्यत्र वदत्येके विपश्चित ॥५९
दशाक्षरेण चेद्रात्रौ सायाह्नेष्टादशार्णत ।
उभयोमुभये नैव कुर्यादित्य परे जगु ॥६०

इस प्रकार ध्यान करके श्रेष्ठ वैष्णव पुरुष को पूर्ववत् भगवान कृष्ण की पूजा करनी । पुआ, खीर तथा अन्य पदार्थों का नैवेद्य अर्पण करना। घृत युक्त खीर से १०८ आहुतियों का हवन करना और समस्त दिशाओ मे उसी खीर से बलि प्रदान करना। इसके पश्चात् एक हजार आठ बार मत्र जप करना। जो श्रेष्ठ भगवद्भक्त भगवान कृष्ण की इस प्रकार पूजा करता है देवगण भी उसका सम्मान करते हैं और सब मनुष्य भी उससे प्रेम रखने लगते हैं। वह मेधा, आयु लक्ष्मी तथा कांति को प्राप्त करके पुत्र और पौत्र के साथ अभ्युदय को प्राप्त होता है। तीसरी बार की पूजा कब की जाय इस सम्बन्ध मे लोगो म मत-भेद है। कुछ लोग सध्या का समय प्रशस्त मानते हैं और कुछ रात्रि

मे मानते हैं। इस विषय का निर्णय यह है कि दशाक्षर मन्त्र से पूजा करनी हो तो रात्रि मे करे और अठारह अक्षरो के मन्त्र से करनी हो तो सायकाल में करे। कुछ विद्वानो का कथन है कि दोनो प्रकार के मन्त्रो स दोनो समय पूजा की जानी चाहिये। सायकाल की पूजा के समय भगवान का ध्यान निम्न प्रकार करे ॥५५-६०॥

सायाह्ने द्वारवत्या तु चित्रोद्यानोप शोभिते ।
अष्टसाहस्रसङ्ख्यातै भवनैरुप मण्डिते ॥६१
हससारस सकीर्णं कमलोत्पलशालिभि ।
सरोभिर्निर्मलाम्भोभि परीते भवनोत्तमे ॥६२
उद्यत् प्रद्योतनो द्योतद्युती श्रीमणिमण्डपे ।
हेमाम्भोजासनासीन कृष्ण त्रैलोक्य मोहनम् । ६३
मनिवृन्दै परिवृतमात्मतत्त्व विनिर्णये ।
तेभ्यो मुनिभ्य स्व धाम दिशन्त परमक्षरम् ॥६४
उन्निन्द्रन्दी वरश्याम पद्मपत्रायतेक्षणम् ।
स्निग्ध कुन्तल सभिन्न किरीट वनमालि नम्॥६५
चारुप्रसन्न वदन स्फुरन्मकरकुण्डलम ।
श्रीवत्सवक्षस भ्राजत् कौस्तुभ मुमनोहरम् ॥६६
काश्मीर कपि शिरोरस्क पीतकौशेय वाससम् ।
हारकेयूरकुटकटिसूत्रं रलकृत ॥६७
हृत विश्वम्भरा भूरिभार मुदित मानसम् ।
शखचक्रगदापद्मराजद्भुज चष्टयम् ॥६८

'सायकाल क समय भगवान द्वारका पुरी के एक अत्यन्त मनोहर उद्यान म बन भवन म विराजमान हैं। वह आठ हजार गृहो से शोभायमान है। उस अष्ट गृह युक्त स्थान में निर्मल जल से युक्त दर्शनीय सरोवर है जिसम हस और सारस आदि पक्षी विहार कर रहे हैं और भाँति भाँति क कमल पुष्प शोभा द रह है। वहाँ एक बड़ा सुन्दर रत्न

निर्मित मण्डप है, जो उदय कालीन सूर्य के समान प्रकाश से जगमगा रहा है। उसमें कमलाकृति सुवर्ण सिंहासन पर श्यामवर्ण मोहन भगवान श्रीकृष्ण विराजमान हैं। वे मुनियों के समुदाय के मध्य आत्म तत्व का निर्णय कर रहे हैं और उनको अपने अविनाशी परमधाम को प्राप्त कर सकने का उपदेश दे रहे हैं। भगवान की अङ्गकान्ति नील कमल के समान है, दोनों नेत्र कमल दल के समान विशाल हैं। घुंघराले केशों से युक्त मस्तक पर किरीट और गले में वनमाला शोभायमान है। मुख अत्यन्त सुन्दर और प्रसन्नभाव युक्त है और मकराकृति कुण्डलों से सुशोभित है। वक्ष स्थल पर श्रीवत्स का चिह्न है और कौस्तुभमणि जगमगा रही है जो अत्यन्त सुन्दर जान पड़ती है। वक्ष स्थल केशर के लेप से सुवर्ण की सी प्रभायुक्त हो रहा है। उन्होंने रेशमी वस्त्र धारण कर रखे हैं। हार, बाजूबन्द, कड़ा, करधनी आदि आभूषणों को उन्होंने धारण किया हुआ है। भगवान् ने पृथ्वी के भार को उठा दिया है, वे चारों हाथों में शंख, चक्र, गदा और पद्म धारण किये हुये परम प्रमुदित हो रहे हैं ॥६१—६८॥

एवं ध्यात्वार्चयेन्मन्त्री स्यादङ्गैः प्रथमावृती ।
द्वितीया महिषीभिस्तु तृतीयायां समर्चयेत् ॥६९
नारदं पर्वतं जिष्णुं निशठोद्धवदारुकान् ।
विष्वक्सेनं च शैनेयं दिक्ष्वग्रे विनतासुतम् ॥७०
लोकपालैश्च वज्राद्यैः पूजयेद्वैष्णवोत्तमः ।
एवं सम्पूज्य विधिवत् पायसं विनिवेदयेत् ॥७१
तर्पयित्वा षडधिकद्युग्धबुद्ध्या जलैरिह ।
जपेदष्टशतं मन्त्री भावयं पुरुषोत्तमम् ॥७२
पूजासु होमं सर्वासु कुर्यान्मध्यदिनेऽथवा ।
आसनादर्घ्यपर्यन्तं कृत्वा स्तुत्वा नमेत्सुधीः ॥७३
समर्थात्मानमुद्वास्य स्वीय हृत्सरसीरुहे ।
विन्यस्य तन्मयो भूत्वा पुनरात्मानमर्चयेत् ॥७४

सायाह्ने वासुदेवं यो नित्यमेवं समर्चयेत् ।
सर्वान्कामानवाप्याते स याति परमां गतिम् ॥७५

इस प्रकार ध्यान करके मन्त्रोपासक को भगवान की पूजा करनी । हृदय, शिर, शिखा, कवच नेत्र और अस्त्र—इन षडाङ्ग द्वारा प्रथम आवरण होता है । दूसरा आवरण रुक्मिणी, सत्यभामा आदि पटरानियों का कहा गया है। तीसरे में नारद, पर्वत, जिष्णु, निशठ, उद्धव, दारुक, विष्वक्सेन तथा सात्यकि की गणना की जाती है। इन आठों का आठ दिशाओं में और विनता पुत्र गरुड़ का भगवान के सम्मुख पूजन करना चाहिये । चौथे आवरण में इन्द्रादि लोकपालों और पाँचवे में वज्र आदि आयुधों के साथ भगवान का पूजन करना । इस प्रकार भगवान की विधिवत् पूजा करके खीर नैवेद्य अर्पण करना । फिर जल में खाडमिश्रित दूध की भावना करके उसके द्वारा तर्पण करना । उसके पश्चात् मन्त्रोपासक को भगवान कृष्ण का ध्यान करके एक सौ आठ बार जप करना । हवन चाहे तीनों काल की पूजा में करे अथवा मध्याह्न के समय ही करे । आसन से लेकर अर्घ्य पर्यन्त सम्पूर्ण पूजा करके ज्ञानी पुरुष को भगवान की स्तुति और नमस्कार करना । फिर भगवान को आत्म समर्पण करके उनका विसर्जन करने के पश्चात् अपने हृदय कमल में उनकी स्थापना करनी और फिर तन्मयतापूर्वक आत्मस्वरूप भगवान की पूजा करनी । जो व्यक्ति सायंकाल के समय इस प्रकार नियमित रूपसे भगवान वासुदेव की पूजा-अर्चा करता है उसकी समस्त कामनायें पूर्ण हो जाती हैं और अन्त में वह परम गति को प्राप्त करता है ॥६६–७५॥

रात्रौ चेन्मदनाक्रान्त चतस नन्दनन्दनम् ।
यजद्रासपरिश्रान्त गोपीमण्डलमध्यगम् ॥७६
विकसत् कुन्द कह्लार मल्लिका कुसुमोद्गते ।
रजोभिधूं सरैर्मन्दमारुते शिशिरी कृते ॥७७

उन्मील-नवकरवालिविगलन्माध्वीक लब्धान्तर-
भ्राम्यन्मत्तमिलिन्द गीतललिते सन्मल्लिकोज्जृम्भिते ।
पीयूषांशुकरैर्विशालित हरित् प्रान्ते स्मरोद्दीपने
कालिन्दीपुलिनाङ्गणे स्मितमुख वेणु रणन्त मुहु ॥७८
अन्तस्तोयलसन्नवाम्बुद घटासङ्घट्टकान्तिवित
चञ्चच्चिल्लिकमम्बुजाय तदृश बिम्बाधर सुन्दरम् ।
मायूरच्छदवद्धमौलि विलसद्धम्मिल्ल माल चलद-
दीप्यन् कुण्डल रत्न रश्मि विलसद्गण्ड द्वयोद्भासितम् ॥७६
काञ्चीनूपुरहारकङ्कण लसत्केयूर भूषान्वित -
गोपीना द्वितयान्तरे सुललित वन्य प्रसून स्रजम् ।
अन्योन्य विनिवद्धगोपद यतादोर्वल्लिवीत लस-
द्रास क्रीडनलोलुप मनसिजाक्रान्त मुकुन्द भजेत् ॥८०
विविध श्रुति भिन्न मनोज्ञतर स्वरसप्तकं मूर्छनतानगणै ।
भ्रममाणममूभिरुदार मणिस्फुटमडन शिञ्जति चारुतनुम् ॥८१
इतरेतरबद्धकरप्रमदागण कल्पित रास विहार विधौ ।
मणिशङ्कुगमप्यमुना वपुषा बहुधा विहितस्वक दिव्यतनुम् ॥८२

यदि रात्रि काल में भगवान की पूजा की जाय तो उनका ध्यान इस प्रकार किया जाय भगवान कृष्ण के हृदय में प्रेम भाव का विशेष रूप से उदय हो रहा है और वे रास क्रीडा में यथ पर गोपियों की मण्डली के मध्य विराजमान हैं। इस समय यमुनाजी का वह तट प्रदेश चन्द्रमा के धवल प्रकाश में चमक रहा है। खिले हुये कुन्द कह्लार मल्लिका आदि पुष्पों के पराग से युक्त सुगन्धित वायु मन्द मन्द बह रहा है और उस प्रदेश को शीतल बना रहा है जिससे वहां उपस्थित सभी में भगवत् प्रेम का उद्दीपन हो रहा है। विकसित नूतन कुमुदों का मकरन्द पान करके उन्मत्त भ्रमर मधुर गुञ्जार कर रहे हैं। इस प्रकार वह वनस्थली अत्यन्त सुन्दर लग रही है। ऐसे

रम्य वातावरण में भगवान श्रीकृष्ण मधुर मुस्कान बिखेरते हुये बार-म्बार वंशी बजा रहे हैं। उनके अङ्ग की कान्ति जल से भरे मेघ की श्याम घटा के तुल्य दिखाई पड रही है, भौंहों का मध्य भाग कुछ चञ्चल हो उठा है। दोनों नेत्र पद्मपत्र के समान सुन्दर और ओष्ठ अपनी अरुणता से बिम्बा फल को लज्जित कर रहे हैं। भगवान का स्वरूप अत्यन्त सुन्दर और आकर्षक है। माथे पर मोरपखों का मुकुट है और बँधी हुई केशो की लटे बडी मनोहर जान पडती हैं। दोनों कपोल हिलते हुये रत्न जडित कुण्डलों की चमक से प्रकाशित हो रहे हैं। (वे काञ्ची, नूपुर, हार, कङ्कण, केयूर आदि आभूषणों से विभूषित होकर प्रथम दो गोपियों के बीच में स्थित हैं। उनके गले में वन्य प्रसूना की माला शोभायमान है। एक गोपी दूसरी का हाथ पकड कर और उनके बीच में भगवान कृष्ण को घेर कर रास-नृत्य कर रही है।) इस प्रकार परम सुन्दर शोभायमान रास-लीला के लिए उन्मुख ब्रज के आभरणभूत भगवान कृष्ण का ध्यान करना। वे नाना प्रकार की श्रुतियों और सातों स्वरों की मूर्छना और तानों के साथ-साथ गोपियों सहित विचर रहे हैं। सुन्दर, दर्शनीय आभूषणों की छवि से भगवान का सम्पूर्ण अङ्ग ही प्रकाश कर रहा है। एक दूसरे का हाथ पकडे हुए मण्डलाकार खडी हुई गोपियों के बीच भगवान श्यामसुन्दर मणिमणि के समान स्थित हैं पर अपनी दिव्य लीला से वे प्रत्येक गोपी के समीप जान पडते हैं।)
॥७९–८२॥

एवं ध्यात्वार्चयेन्मन्त्री स्वादशैं प्रथमावृति ।
श्रीदाम सुदामादीन् ... ॥८३
मध्ये ... त्रिपुरारि च पार्श्व ।
... ॥८४
(पृथु ... ।
आ... ॥८५)

सपूज्यैव च पयसा ससितोपलसर्पिषा ।
नैवेद्यमचयित्वा तु चपकैर्न्नृसद्यके ॥८६
ससित पायस मत्रो मिथुनेष्वर्पयेत्क्रमात् ।
विधाय पूर्ववच्छेष सहस्र प्रजपेन्मनुम् ॥८७
स्तुत्वा नत्वा च सप्रार्थ्य पूजाशेष समापयेत् ।
एव य पूजयेत् कृष्णा स समृद्ध पद भवेत् ॥८८
अणिमाद्यष्टसिद्धी नामीश्वर स्यान्न सशय ।
भुक्त्वे हविविधान् भोगानते विष्णुपद व्रजेत् ॥८६
एव पूजादिभि सिद्ध मनो काम्यानि साधयेत् ।
अष्टाविंशतिवार वा त्रिकाल पूजयेत्सुधी ॥६०
स्वकालविहितान् भूप परिवाराश्च तर्पयेत् ।
प्रातर्दध्ना गुडाक्तेन मध्याह्ने पयसापुन ॥६१
नवनीतयुतेनाथ सायाह्ने तर्पयेत् पुन ।
ससितोपलमिश्रेण पयसा वैष्णवोत्तम ॥६२
तर्पयामिपद योज्य मन्त्रान्ते स्वेषु नामसु ।
द्वितीयादिषु पुन पूजा शेष समापयेत् ॥६३

इस प्रकार भगवान कृष्ण का ध्यान करके मन्त्रोपासक को पूजा करनी । हृदय आदि षडङ्ग से प्रथम आवरण की पूजा होती है । लक्ष्मी की इच्छा रखने वाले भक्त को पूर्वोक्त केशव कीर्ति नारायण कान्ति आदि सोलह युगलो की कमल पुष्पों द्वारा पूजा करनी । उनके नामो के आग क्रमश सोलह स्वरो का जोड दिया जाय जैसे 'अ केशव कीर्तिभ्या नम आ नारायण कान्तिभ्या नम आदि । इसके पश्चात् इन्द्र आदि लोकपालो और उनके आयुधो की पूजा करनी । (एक मारा, सोलह मिलना एक बित्ता (बालिश्त) ऊँचा खूँटा पृथ्वी पर गाडना । उस ओर से दबाकर एक दूसरे का हाथ पकड कर उसके चारो तरफ चक्राकार घूम जाना । इसी को रास कहा जाता है ।) इस प्रकार पूजा करके दूध, घी, खाड मिलाकर उसे

नैवेद्य रूप में भगवान को अर्पित करना। साथ ही पूर्वोक्त सोलह युगलों को सोलह प्यालों में खीर और खाँड रखकर अर्पण करना। फिर शेष क्रिया पूर्ववत् करके एक हजार मन्त्रों का जप करना। फिर स्तुति, नमस्कार, प्रार्थना आदि करके पूजा के समस्त कार्यों को सम्पन्न करना। जो उपासक इस प्रकार भगवान की पूजा-अर्चा करता है वह सभी ऋद्धि सिद्धियों को प्राप्त करके इस लोक के भोगों को भोगकर अन्त में भगवान के विष्णु लोक में जाता है। इस प्रकार की पूजा द्वारा मन्त्र सिद्ध होजाने पर सकाम उपासक अपने अभीष्ट मनोरथों की सिद्धि कर सकता है। अथवा वह निष्काम भाव से अट्ठाईस बार मन्त्र जप करके तीनों समय भगवान की पूजा करता रहे। इन तीनों समय में पूर्व कथित आवरण देवताओं का तर्पण भी करना आवश्यक है। प्रातःकाल गुड़ और दही मिलाकर, मध्याह्न काल में मक्खन युक्त दूध से और सायङ्काल खाँड मिले दूध से तर्पण करना चाहिये। मन्त्र के अन्त में तर्पणीय देवता का नाम लगा कर उसके आगे द्वितीय विभक्ति तथा 'तर्पयामि' शब्द का प्रयोग करे। इस प्रकार पूजा कार्य सम्पन्न करके तन्मयता पूर्वक मन्त्र जप करता रहे ॥८१—९३॥



॥ नारद सनक सम्वाद समाप्ति ॥

इत्येवमुक्त्वा मुनिना हि पृष्टास्ते वै कुमाराः किल नारदेन ।
सम्पूजिताः शास्त्रविदा वरिष्ठाः कृताह्निका जग्मुरमेयशीलाः ॥१
तत्रैशमभ्यर्च्यमिभंमुनीन्द्रैः श्रीवामदेवादिभिरर्चिताङ्घ्रिम् ।
सुरासुरेन्द्रैरभिवन्द्यमुग्रं तन्वाज्ञया तस्य निषद्गुरुस्थाम् ॥२
अथ त्राप तत्राखिलशास्त्रसारं शिवागमं तं पशुपाशमोक्षणम् ।
जग्मुस्ततो ज्ञानघनस्वरूपा नत्वा पुरारिं स्वपितुर्निवासम् ॥३
सत्पादपद्मे प्रणतिं विधाय पितापि तत्सु च सभाजितास्ते ।

लब्ध्वाशिषोऽद्यापि चरन्ति शश्वल्लोकेषु तीर्थानि च तीर्थभूता ॥४
जग्मुस्ततो वै बदरीवनान्ते सुरेन्द्रवर्गैरुपसेव्यमानम् ।
दध्युश्चिर विष्णुपदाब्जमव्यय ध्यायन्ति यद्यतया वीतरागा ॥५
नारदोऽपि ततो विप्रा कुमारेभ्य समीहितम् ।
लब्ध्वा ज्ञान सविज्ञान भृश प्रीतमनाह्यभूत् ॥६
स तस्मात्स्वर्णदीतीरादागत्य पितुरन्तिके ।
प्रणम्य सस्कृत पित्रा ब्रह्मणा निषसाद च ॥७

महर्षि प्रवर श्री सूतजी ने कहा—जिस समय म श्री सनकदेवजी इस रीति से कह चुके थे तब श्री नारदजी ने उन चारो (सनक-सनन्दन सनातन, सनत्कुमार) कुमारो से भगवान स सम्ब ध रखने वाली बहुत सी बातें पूछी थी और इसके अनन्तर श्री नारदजी ने उनका श्रवन किया था । इसके उपरान्त वे शास्त्रो के ज्ञाता दिग्गज चारो कुमार आह्निक कृत्य समाप्त करके शिव लोक की ओर प्रयाण कर गये थे । वहाँ पर पहुँचकर परमोग्र ईशानदेव शिव की सेवा मे प्रणाम करके उनका आदेश प्राप्त कर भूमि पर बैठ गय थे । वहाँ पर अग्नि तथा सूय के समान प्रकाशमान वामदेव प्रभृति मुनिगण भगवान शङ्कर का पूजन करने मे निरत रहा करते हैं और सुर-असुर गण चरणो की व दना करने मे सलग्न थे ॥१।२॥ वहाँ पर उन कुमारो ने पशुत्व—अज्ञत्व—जीवत्वरूपी पाश का छेदन कर देने वाल समस्त शास्त्रो के सार शिवागम का श्रवण कर ज्ञानघन स्वरूप होकर त्रिपुरारि देव को प्रणाम करके अपने पिता ब्रह्माजी के समीप मे प्रस्थान कर गये थे ॥३॥ वहा पर प्राप्त होकर उन चारो कुमारो ने अपने पिता श्री ब्रह्माजी के चरणो म प्रणाम किया था । इस विधि स आशीर्वाद प्राप्त करके लोको के तीर्थभूत होकर सभी तीर्थों म वे विचरण करते रहा करते हैं ॥४॥ इसक पश्चात् सनकादिक बदरी वन म पहुँचे थे । यह बदरी वन ऐसा परम पावन स्थान है जिसका यजन

महेन्द्र भी किया करते हैं। वहाँ पर वीतराग ऋषिगण भगवान का ध्यान किया करते हैं। सनकादिक मुनीश्वरों ने प्राप्त होकर अच्युत भगवान का अत्यधिक समय तक ध्यान किया था ॥५॥ हे ब्राह्मणो! देवर्षि श्री नारदजी कुमारों के द्वारा प्राप्त हुये विज्ञान के सहित ज्ञान को प्राप्त करके अपने चित्त में अत्यन्त प्रसन्न हुये थे ॥ ६ ॥ फिर वे स्वर्ग गङ्गा के तीर से उठकर पुनः अपने पिताजी की सेवा में प्राप्त हुये थे और वहाँ जाकर ब्रह्माजी के चरणों में प्रणाम किया था। उस समय में ब्रह्माजी ने सत्कारपूर्वक उनको अपने समीप में बिठाया था॥७॥

कुमारेभ्यः श्रुतं यच्च ज्ञानं विज्ञानसंयुतम् ।
वर्णयामास तत्त्वेन सोऽपि श्रुत्वा मुमोद च ॥८
अथ प्रणम्य शिरसा लब्धाशीर्मुनिसत्तमः ।
आजगाम च कैलासं मुनिसिद्धनिषेवितम् ॥६
नानाश्चर्यमयं शश्वत्सर्वर्तुकुसुमद्रुमैः ।
मंदारैः पारिजातैश्च चंपकाशोकवंजुलैः ॥१०
अन्यैश्च विविधैर्वृक्षैर्नानापक्षिगणावृतैः ।
वातोद्धूतशिखैः पाथानाह्वयद्भिरिवावृतम् ॥११
नानामृगगणाकीर्णं सिद्धकिन्नरसंकुलम् ।
सरोभिः स्वच्छसलिलैर्लसत्काञ्चनपङ्कजैः ॥१२
शोभितं सारसैर्हंसैश्चक्राह्वाद्यैर्निनादितम् ।
स्वर्द्धुनीपातनिर्घुष्टं क्रीडद्भिश्चाप्सरोगणैः ॥१३
सलिलेऽलकनन्दाया कुचकुंकुमपिङ्गले ।
आमोदमुदितैर्नागैः सलिलं पुष्करोद्धृतैः ॥१४
स्नापयद्भिः करेणूश्च कलभाश्च समाकुले ।
अथ श्वेताभ्रसदृशे शृङ्गे तस्य च भूभृतः ॥१५
वटं मालाभ्रसदृशं ददर्श शतयोजनम् ।
तस्याधस्तात् समासीनं योगिमण्डलमध्यगम् ॥१६

उस समय मे नारदजी ने जो ज्ञान-विज्ञान के सहित प्राप्त किया था, उसका तात्विक वर्णन किया था। उसका श्रवण करके ब्रह्माजी बहुत अधिक प्रसन्न हुये थे ॥८॥ इसके अनन्तर परम श्रेष्ठ नारदजी ने ब्रह्माजी को प्रणाम करके उनसे आशीर्वाद प्राप्त किया था। फिर इसके पश्चात् मुनिमण्डल और सिद्धों के द्वारा सेवित कैलाश पर्वत पर पहुँच गये थे ॥ ६ ॥ उस कैलास पर्वत पर सब ऋतुओ मे विकसित होने वाले पुष्पो से युक्त वृक्ष थे। उस पर्वत पर मन्दार—पारिजात—चम्पा—अशोक—बेल के वृक्ष थे जिन पर विभिन्न प्रकार के पक्षी बैठे हुये थे। वे वृक्ष वायु से हिलने वाली टहनियो से ऐसे प्रतीत होते थे मानो राहगीरो को बुला रहे हो। इनके अतिरिक्त अन्य भी कई तरह के वृक्ष उस पर्वत पर लहरा रहे थे जिनसे उस पर्वत की शोभा अत्यधिक हो रही थी ॥१०।११॥ उस पर्वत मे अनेक तरह के मृग रहा करते थे। वह चारों ओर सिद्ध और किन्नरों से घिरा हुआ था। उसमे एक सरोवर था जो अजीव स्वच्छ जल से भरा हुआ था और उसमें सुनहरी कमल खिले हुये थे ॥१२॥ हम सारस प्रभृति विविध पक्षियो के सञ्चार से अद्भुत सुषमा वहा पर हो रही थी। चक्रवाक पक्षी की ध्वनि से वह पर्वत गूँज रहा था। अप्सराओ की क्रीडा तथा स्वर्ग गङ्गा के प्रपात की श्रुतिप्रिय ध्वनि से वह कैलाश गिरि शुद्ध हो रहा था ॥१३॥ अलकनन्दा का जल अप्सराओ के अवगाहन मे उनके स्तनो पर लगी हुई कुङ्कुम के घुल जाने के कारण पीत वर्ण का हो गया था। उस सुगन्ध समन्वित पीत वर्ण वाले जल को हाथी अपनी सूँड मे भरकर हथिनियो के तथा अपने छोटे २ बच्चों का स्नान करा रहे थे। उस पर्वत के शिखर पर जो हिमाच्छादित होने के कारण श्वेतमय के सदृश था काले वर्ण के मेघ के समान सौ योजन तक फैले हुये वट वृक्ष को देवर्षि श्रेष्ठ नारदजी ने देखा था जिसके नीचे जटाजूट धारण करने वाले व्याघ्र

चर्मधारी भगवान विरूपाक्ष योगियो के समुदाय के मध्य मे विराजमान थे ॥१४—१६॥

कपर्दिन विरूपाक्ष व्याघ्रचर्माम्बरावृतम् ।
भूमिभूषितसर्वाङ्ग नागभूषणभूषितम् ॥१७
रुद्राक्षमालया शश्वच्छोभित चन्द्रशेखरम् ।
स दृष्ट्वा नारदो विप्रा भक्तिनम्रात्मकधर ॥१८
ननाम शिरसा तस्य पादयोर्जगदीशितु ।
तत प्रसन्नमनसा स्तुत्वावाभिवृं षध्वजम् ॥१६
निषसादाज्ञया स्थाणो सत्कृतो योगिभिस्तदा ।
अथापृच्छच्च कुशल नारद जगता गुरु ॥२०
स च प्राह प्रसादेन भवत सर्वमस्ति मे ।
सर्वेषा योगिवर्याणा शृण्वता तत्र वाडवा ॥२१

भगवान शिव के सब अङ्ग भस्म लेपन से विभूषित थे और सर्पों के आभूषणो से सुशोभित थे । भगवान शिव के कण्ठ मे रुद्राक्ष की माला अनन्त शोभा दे रही थी । श्री नारद मुनि ने उनका दर्शन करके अपना मस्तक झुका कर हे विप्रगण ! बहुत ही भक्ति भाव से जगदीश्वर प्रभु के चरणो मे प्रणाम किया था और परम प्रसन्न मन वाले होकर वृषभध्वज सदाशिव का स्तवन किया था ॥१७—१६॥ इसके अनन्तर भगवान शिव की आज्ञा पाकर नारदजी वहाँ पर पूविष्ट हो गये थे । उस समय मे वहाँ पर स्थित योगिराज ने देवर्षि श्री नारदजी का स्वागत सत्कार किया था । इसके उपरान्त उन जगन्नायक प्रभु शङ्कर भगवान से नारदजी कुशल पुश्न पूछने लगे ॥२०॥ देवर्षि नारदजी ने कहा—हे भगवन् ! आपकी परम कृपा मे मेरे पास सभी कुछ विद्यमान है । इस नारदजी की वचनावलि को वहाँ पर सभी योगीजन श्रवण कर रहे थे ॥२१॥

पप्रच्छ शाभव ज्ञान पशुपाशविमोक्षणम् ।

स शिवं सादरं तस्य भक्त्या सतुष्टमानस ॥२२
योगमष्टागसयुक्त प्राह प्रणतवत्सल ।
स लब्ध्वा शाम्भव ज्ञान शकराल्लोकशकरात् ॥२३
सुप्रसन्नमना नत्वा ययौ नारायणान्तिकम् ।
तत्रापि नारदोऽभीक्ष्ण गतागतपरायण ॥२४
सेवितं योगिभि सिद्धैर्नारायणमसोपयत् ।
एतद्व कीर्तित विप्रा नारदीय महन्मया ॥२५
उपाख्यान वेदसम सर्वशास्त्रनिदर्शनम् ।
धर्मोप्याख्यासमायुक्त शृण्वता ज्ञानवर्द्धनम् ॥२६
य एतत्कीर्तयेद्विप्रा नारदीय शिवालये ।
समाजे द्विजमुख्याना तथा केशवमदिरे ॥२७
मथुराया प्रयागे च पुरुषोत्तमसन्निधौ ।
सेतौ काञ्च्या कुशस्थल्या गगाद्वारे कुशस्थले ॥२८
पुष्करेषु नदीतीरे यत्र कुत्रापि भक्तिमान् ।
स लभेत्सर्वयज्ञाना तीर्थाना च फल महत् ॥२६

हे अग्निसम तेज धारण करने वाले ऋषियो ! उस समय मे समस्त योगीश्वरगण के समक्ष में ही देवर्षि न पशुपाश के विमोचन करने वाले शाम्भव ज्ञान की प्राप्ति करने की जिज्ञासा प्रकट की थी। उस समय मे प्रणत पालक भक्त वत्सल भगवान शिव नारदजी की श्रद्धा भक्ति से हृदय में परम प्रसन्न होकर अष्टाग योग का वर्णन करने लगे थे। उस समस्त समाज का श्रेष्ठ सम्पादन करने वाले शाम्भव ज्ञान की प्राप्ति कर नारद मुनि अत्यन्त प्रसन्न होगये थे तथा भगवान शिव के चरणो में प्रणाम करके भगवान नारायण के समीप मे पहुँचने के लिये वहाँ स चल दिये थे। इस तरह से देवर्षि नारदजी वहाँ पर अनवरत आवागमन किया करते थे ॥२२-२४॥ हे विप्रो ! वहाँ पर सिद्धगण और योगिजनों से वन्द्यमान भगवान नारायण को

सन्तुष्ट किया करते थे। हे विप्रो ! मैंने यह नारायण पुराण रूपी एक महान उपाख्यान आप लोगों के सामने वर्णित कर दिया है। यह उपाख्यान वेदों के ही सदृश है। इसमें विविध प्रकार के धर्मों का वर्णन हुआ है इसीलिये इस पुराण के श्रवण करने वाले को बहुत अधिक ज्ञान की प्राप्ति हुआ करती है ॥२५।२६॥ हे विप्रगण ! जो भी इस नारद पुराण को श्रेष्ठ द्विजों की सेवा में अथवा शिव मन्दिर में, विष्णु के देवालय में, मथुरा, प्रयाग, पुरुषोत्तमपुरी के समीप में, सेतुबन्ध रामेश्वर में, पुष्कर क्षेत्र में इन स्थलों में से किसी भी स्थल में इस पुराण का प्रवचन किया करता है उस पुरुष को समस्त यज्ञों के यजन करने का और सम्पूर्ण तीर्थों की यात्रा करने का महान पुण्य फल मिल जाया करता है ॥२७।२८॥

दानानां चापि सर्वेषां तपसां चाप्यशेषतः ।
उपवासपरो वापि हविष्याशी जितेंद्रिय ॥३०
श्रोता चैव तथा वक्ता नारायणपरायण ।
शिवभक्तिरतो वापि शृण्वन् सिद्धिमवाप्नुयात् ॥३१
अस्मिन्नशेषपुण्यानां सिद्धीनां च समुद्भव ।
पवित्र सर्वपापघ्न पठतां शृण्वतां सदा ॥३२
कलिदोषहरं पुंसां सर्वसम्पत्तिवर्द्धनम् ।
सर्वपापमीप्सित वेद सर्वज्ञानप्रकाशकम् ॥३३
य एतत्पठते भक्त्या शृणुयाद्वा समाहित ।
स लभेद्वाञ्छितान्कामान्देवानामपि दुर्लभान् ॥३४
श्रुत्वेद नारदीय तु पुराण वेदसम्मितम् ।
वाचक पूजयेद्भक्त्या धनरत्नांशुकादिभि ॥३५

यदि कोई भी मनुष्य इन नियमों को धारण करता हुआ सदाचारी रहकर इसके वाचन का अनुष्ठान किया करता है तो इस विविध भांति के महा दानों का तथा तपस्याओं का भी पूरा पुण्य-फल मिल

जाया करता है। चाहे कोई नारायण का भक्त हो अथवा शिव की भक्ति करने वाला हो, भले ही इस पुराण का वक्ता हो या श्रवण करने वाला हो, यदि इन्द्रियजित होकर उपवास करके अथवा हविष्याहार करके इस परम श्रेष्ठ नारद पुराण का श्रवण किया करता है तो अवश्य ही परम सिद्धि की प्राप्ति किया करता है ॥३०।३१॥ इस परमोत्तम पुराण में समस्त सिद्धियों की और तपश्चर्या की प्राप्ति बतलायी गयी है। अतएव इसके श्रवण करने वाले के महान से भी महान पाप नष्ट होजाया करते हैं ॥३२॥ इस पुराण को सभी चाहा करते हैं क्योंकि यह पुराण कलियुग के सब दोषों को दूर भगा देने वाला है। इसके पठन श्रवण से मनुष्यों की सभी तरह की सम्पत्ति की वृद्धि हुआ करती है। इससे सभी तरह की सम्पत्ति की वृद्धि हुआ करती है तथा पूर्ण ज्ञान का प्रकाश होजाया करता है ॥ ३३ ॥ जो परम समाहित होकर इसका भक्ति भाव के साथ पठन किया करता है अथवा सुनता है उसके बड़े से बड़े मनोरथ पूर्ण होजाया करते हैं जो देवों को भी परम दुर्लभ हुआ करते हैं ॥३४॥ इस वेद के सदृश नारद पुराण के वाचन करने वाले व्यास का धन रत्न, वस्त्र आदि अनेक पदार्थों से समुचित सत्कार करना चाहिये ॥३५॥

भूमिदानैर्गवां दानै रत्नदानैश्च सततम् ।
हस्त्यश्वरथदानैश्च प्रीणयेत्सततं गुरुम् ॥३६
यस्तु व्याकुरुते विप्रा पुराणं धर्मसंग्रहम् ।
चतुर्वर्गप्रदं नृणां कोऽन्यस्यत्सदृशो गुरु ॥३७
कायेन मनसा वाचा धनाद्यैरपि सन्ततम् ।
प्रियं समाचरेत्तस्य गुरोर्धर्मोपदेशिनः ॥३८
श्रुत्वा पुराणं विधिवद्धोमं कृत्वा सुरार्चनम् ।
ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चाच्छत मिष्टान्नपायसैः ॥३९
दक्षिणां प्रदद्देच्छक्त्या भक्त्या प्रीयेत माधव ।

यथा श्रेष्ठा नदी गंगा पुष्करं च सरो यथा ॥४०
काशी पुरी नगो मेरुर्देवो नारायणो हरिः ।
कृतं युगं सामवेदो धेनुर्विप्रोऽन्नमंबु च ॥४१
मार्गो मृगेन्द्र. पुरुषोऽश्वत्थः प्रह्लाद आननम् ।
उच्चैःश्रवा वसंतश्च जप. शेषोऽर्यमा धनु ॥४२
पावको विष्णुरिंद्रश्च कपिलो वाचस्पतिः कविः ।
अर्जुनो हनुमान्दमंश्चित्त चित्ररथोऽग्रजम् ॥४३
उर्वशी काचनं यद्वच्छ्रेष्ठास्वैने स्वजातिषु ।
तथैव नारदीयं तु पुराणेषु प्रकीर्तितम् ॥४४

श्रीनारदपुराण के वाचक गुरुदेव का भक्ति और शक्ति के अनुसार वित्तशाठ्य न करता हुआ हुआ सब प्रकार के पदार्थ समर्पित कर सत्कार करना चाहिए और सर्वदा उनको प्रसन्न रक्खे ॥ ३६ ॥ हे विप्रो ! जो भी कोई भक्त इस धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष से भरी पूरी मञ्जूषा को मानवो के उद्धार के लिये खोला करता है उसकी समानता रखने वाला अन्य महान उपकारक गुरु कौन हो सकता है ? ॥३७॥ अतएव शास्त्र की यही आज्ञा है कि धर्म का उपदेश करने वाले गुरुदेव का मन, वचन और कर्म के द्वारा तथा धन से सर्वदा ही प्रिय करते रहना चाहिये ॥३८॥ जो कोई भी इस नारद पुराण का श्रवण करे उसका कर्तव्य है कि विधि-विधान के साथ हवन करे और वेदो का अर्चन करके ब्राह्मणो को मिष्टान्न और पायस का भोजन करावे ॥३९॥ अपनी शक्ति के अनुसार उन सब ब्राह्मणों को दक्षिणा देवे । भगवान माधव की प्रसन्नता केवल शुद्ध भक्ति से ही हुआ करती है । यह थी नारद पुराण समस्त अन्य पुराणो मे परम श्रेष्ठ कहा गया है । जिस तरह से गङ्गा समस्त सरिताओ मे श्रेष्ठ है । पुष्कर सब सरोवरों मे परम श्रेष्ठ है । सब पुरियो मे काशीपुरी श्रेष्ठ है, पर्वतो मे मेरु गिरि परम श्रेष्ठ है। सब देवो मे

नारायण, विष्णु श्रेष्ठतम हैं । जिस तरह से सत्ययुग, कामधेनु सामवेद, विप्र, अन्न जल, राजमार्ग, सिंह, पुरुष, अश्वत्थ वृक्ष, प्रह्लाद आनन, उच्चैःश्रवा वसन्त, जय, शेष अयमा, धनुर्धारक, इन्द्र, कपिल, विष्णु शुक, सुरगुरु, अर्जुन, हनुमान, दर्भ, चित्ररथ, चित्त, उर्वशी, अम्बुज और कञ्चन आदि अपनी २ जातियों में परम श्रेष्ठ एवं अत्युत्तम माने जाया करते हैं उसी तरह से यह नारद पुराण भी परमोत्तम एवं सर्व श्रेष्ठ माना गया है ॥४०—४४॥

शान्तिस्तु शिवं चास्तु सर्वेषां वो द्विजोत्तमाः ।
गमिष्यामि गुरो पार्श्वं व्यासस्यामिततेजसः ॥४५
इत्युक्त्वाभ्यर्चितः सूतः शौनकाद्यैर्महात्मभिः ।
आज्ञप्तश्च पुनः सर्वैर्दर्शनार्थं गुरोर्ययौ ॥४६
तेऽपि सर्वे द्विजश्रेष्ठाः शौनकाद्याः समाहिताः ।
श्रुतं सम्यगनुष्ठाय तत्र तस्युश्च संश्रिताः ॥४७
कलिकल्मषविपनाशनं हरिं यो जपपूजनविधिभिःपजोपसेवो ।
स तु निर्विषमनसा समेत्य योगं लभते ,
सततमभीप्सितं हि लोकम् ॥४८
अत्र सम्यग्धर्मः क्ति साध्यतेऽनुपदं नृणाम् ।
नारदीयं पुराणं तु विविधाख्यानसंयुतम् ॥४६

हे द्विजोत्तमो ! अन्त में यही आशीर्वाद देता हुआ परम शुभ करता हूँ कि आप सब का पूर्णतया कल्याण हो सर्वत्र शान्ति हो। अब मैं अपने श्री गुरुदेव व्यासजी की सेवा में उपस्थित होऊँगा जो अपरिमित तेज के धारण करने वाले ॥४५॥ शौनक प्रभृति समस्त मुनिगणों ने यह सूतजी का वचन कर उनका अत्यधिक सम्मान-सत्कार किया था। उस समय म सूतजी सबसे सम्मानित होकर वहाँ से विदा हुए थे और अपने श्री गुरुदेव व्यासजी के दर्शन प्राप्त करने के लिये वहाँ से चले गये थे

॥४६॥ इसके अनन्तर श्री शौनकादि समस्त मुनिगण भी परम सावधान होकर श्रवण किये हुये ज्ञान के ही अनुसार यज्ञों के रूप में अनुष्ठान करने में प्रवृत्त हो गये थे ॥४७॥ जो कलियुग के कल्मषरूपी विष को नष्ट करने के लिये उपयुक्त श्री हरि का पूजन विधि रूप से औषध समझ कर सेवन किया करता है उसके मन से कल्मष का विष निकल जाया करता है और परम विशुद्ध होजाता है। फिर जो भी धर्मादि का पुण्य-फल होता है उसे प्राप्त करके सर्वदा अपने अभीष्ट फल की प्राप्ति कर लिया करता है और जिस लोक का निवास चाहता है वही उसे मिल जाया करता है ॥४८॥ यह नारद पुराण बहुत से उपाख्यानों से भरा हुआ है। इसमें पद-पद पर श्री हरि भगवान की भक्ति सिद्ध हुआ करती है ॥४६॥

य: शृणोति नरो भक्त्या स गच्छेद्वैष्णवं पदम् ।
धर्मार्थकाममोक्षाणां चतुर्णां कारणं परम् ॥५०
सर्वेषां च पुराणानामिदं बीजं सनातनम् ।
प्रवृत्तं च निवृत्तं च पुराणेऽस्मिन् द्विजोत्तमाः ॥५१
विस्तराद्गदितं सर्वं पाराशर्येण धीमता ।
अनौपिकलविदाख्य पुराणं नारदीयकम् ॥५२
यस्म कस्मै न दातव्यं महा शमेन कीर्तितम् ।
हित्वा स्वशिष्यान्पैलादीन्महा नारदसंहिताम् ॥५३
यो व्याजं नमस्तस्मै वेदव्यासाय विष्णवे ।
पुराणसंहितामेतां नारदाय विपश्चते ॥५४
सनकाद्या महाभागा मुनयः प्रचवाशिरे ।
इत्थम्वन्तो भगवान्पदात यज्ञ शाश्वतम् ॥५५
तद्पादिशदेवेभ्यो विज्ञानेन विजृम्भितम् ।
भदिर भगवान्साक्षा नारदो-ध्यात्मदर्शनं ॥५६
वेदव्यासाय मुनये रहस्य निर्दिदेश ह ।

मया प्रकाशितं ह्येतद्रहस्यं भुवि दुर्लभम् ।।५७

जो भी कोई मनुष्य भक्ति-भाव के साथ इस नारद पुराण का श्रवण किया करता है उसको विष्णुलोक का निवास प्राप्त होजाया करता है। यह अत्युत्तम नारद पुराण धर्म—अर्थ—काम—मोक्ष इन चारों पदार्थों के प्राप्त कराने का अत्युत्तम साधन है ।। ५० ।। यह समस्त पुराणों का सनातन (सदा चले आने वाला) बीज है । हे द्विजगणो ! परम बुद्धिमान पाराशर ऋषि के पुत्र श्री व्यासदेव ने इस पुराण में प्रवृत्ति मार्ग और निवृत्ति मार्ग दोनों ही मार्गों का जो धर्म कलाप है उन सबका एक परम विस्तृत वर्णन किया है । यह नारद पुराण परम अलौकिक चरित्रों से भरा हुआ है ।।५१।५२।। यह परम गोपनीय है । इस पुराण के श्रवण करने के सर्व साधारण मनुष्य अधिकारी नहीं होते हैं । अतएव हर एक के सामने इसका वर्णन कभी नहीं करना चाहिये । श्री गुरुदेव व्यासजी ने भी अपने परम प्रिय पैल प्रभृति शिष्यों को न सुना कर इसका उपदेश केवल मुझको ही किया है ।।५३।। भगवान श्री व्यासदेव जी भगवान विष्णु की ही एक दूसरी मूर्ति है अर्थात् भगवान् विष्णु ने ही श्री व्यासदेव के स्वरूप में अवतार धारण किया है । उन श्री व्यासदेवजी की सेवा में जिन्होंने इस परमोत्तम संहिता की रचना की है । मेरा परम समादर के साथ प्रणाम समर्पित है । करुणा दयालु

चतुर्वर्गप्रद नृणां शृण्वतां पठतां सदा ।
विप्रो वेदनिधिर्भूयात्क्षत्रियो जयते महीम् ॥५८
वैश्यो धनसमृद्धः स्याच्छूद्रो मुच्येत दुःखतः ।
धर्मांख्यानसमायुक्ता कृष्णद्वैपायनेन ह ॥५९
भोगमोक्षप्रदा चैव संहितेयं प्रकीर्तिता ।
अस्या वै श्रूयमाणाया सर्वसंदेहभञ्जनम् ॥६०
पुंसां भक्तिमयुक्तानां निष्कामानां विमोक्षणम् ।
पुण्यतीर्थं समासाद्य सिंलेप पुष्कर गयाम् ॥६१
मथुरा द्वारका विप्रा नरनारायणाश्रमम् ।
कुरुक्षेत्र नर्मदा च क्षेत्र श्रीपुरुषोत्तमम् ॥६२

यह नारद पुराण ऐसा उत्तम फल प्रदान करने वाला है जो इसका श्रवण किया करते हैं उनको यह धर्म अर्थ काम मोक्ष इन चारों पदार्थों का दे दिया करता है । इसके श्रवण मात्र से ब्राह्मण वेदों का निधि होजाया करता है और क्षत्रिय समस्त पृथ्वी पर विजय प्राप्त किया करता है । वैश्य वर्ण का मनुष्य इसके सुनने से प्रचुर धन-सम्पत्ति प्राप्त कर लिया करता है तथा शूद्र समस्त दुःखों से मुक्त होजाता है । भगवान् श्रीकृष्ण द्वैपायन व्यासजी ने धर्म-कर्म के [illegible] आख्यानों से परिपूर्ण भोग तथा मोक्ष दोनों के प्रदान करने वाली इस अद्भुत संहिता की रचना की है । इसके श्रवण से [illegible] पूर्ण होती है तथा सब [illegible] दूर हो जाया करते हैं । [illegible] फल होते हैं उनको मोक्ष [illegible] पृथ्वी पर [illegible] करने वाला हो [illegible] सहित [illegible] मथुरा द्वारका [illegible] नर्मदा क्षेत्र [illegible]

[illegible]

निरंजनात्समुत्पन्नं जगदेतच्चराचरम् ।
तिष्ठत्यप्येति वा यस्मिंस्तत्सत्यं ज्ञानमद्वयम् ॥७४
शिवं शैवा वदन्त्येनं प्रधानं सांख्यवेदिनः ।
योगिनः पुरुषं विप्रा कर्म मीमांसका जनाः ॥७५
विभुं वैशेषिकाद्याश्च चिच्छक्तिं शक्तिचिंतकाः ।
ब्रह्माद्वितीयं तद्वन्दे नानारूपक्रियास्पदम् ॥७६
भक्तिर्भगवतः पुंसां भगवद्रूपकारिणी ।
तां लब्ध्वा चापरं लाभं को वाछति विना पशुम् ॥७७

जहाँ पर वाणी की पहुँच नहीं है और दूर से ही वापिस लौट आया करती है—जहाँ तक मन का प्रवेश ही नहीं हो पाता है उसको रूप से रहित ज्ञान स्वरूप नामी आत्मा का रूप ही जानना चाहिए। ॥ ७१ ॥ जिसकी सत्यता स्वरूप सत्ता के कारण से यह सम्पूर्ण जगत् सत्यवत् रूप में प्रकाशित हो रहा है उस अज्ञान से दूर परात्पर गुण विहीन निरञ्जन निश्चित रूपधारी भगवान् की सेवा में मेरा प्रणाम अर्पित है ॥ ७२ ॥ जो महा पुरुष कभी भी जन्म धारण नहीं किया करता है अर्थात् उत्पत्ति से रहित है तथा सृष्टि के आदि काल में मध्य काल में और अवसान के समय अन्तकाल में प्रकाशित हुआ करता है तथा जो विभु एक अक्षर (अकार) है उसी अनेक स्वरूपों में प्रकाशमान निरञ्जन परमात्मा की मैं वन्दना करता हूँ ॥ ७३ ॥ जिन निरञ्जन प्रभु से यह चराचर जगत् प्रकट हुआ है और जिसमें सदा स्थिति प्राप्त किया करता है तथा जिसमें ही यह लीन हो जाता है वह परमात्मा ईश्वर—सत्य स्वरूपधारी—ज्ञानात्मक और द्वैत से रहित है ॥ ७४ ॥ उस परमात्मा परब्रह्म को भगवान् शिव की उपासना करने वाले शैव शिव—इस नाम से कहा करते हैं—सांख्य दर्शन के मानने वाले उनको प्रधान कहकर पुकारा करते हैं—योगाभ्यास करने वाले योगीजन पुरुष नाम से सम्बोधित किया करते हैं—मीमांसक

अर्थात् पूर्व मीमांसा दर्शन के मानने वाले जिनके यहाँ कर्म ही की प्रधानता मानी जाया करती है और कर्म द्वारा ही आत्मा का परम श्रेय होता है ऐसा सिद्धान्त है उस परब्रह्म परमात्मा को 'कर्म' कह कर पुकारा करते हैं ॥ ७५ ॥ वैशेषिक दर्शन के मानने वाले जिस परात्पर प्रभु को 'विभु' कहा करते हैं तथा जो शक्ति उपासक जन हैं वे उसी को चित् - शक्ति कहा करते हैं इस प्रकार से उसी एक प्रभु के अनेक स्वरूप भिन्न - भिन्न उपासना करने वालों के द्वारा कहे जाया करते हैं और वही अनेक क्रियाओं के आस्पद भी हैं। उसी अद्वितीय ब्रह्म को मैं वन्दना करता हूँ ॥ ७६ ॥ भगवान् की अद्भुत शक्ति का ऐसा ही महत्व है कि वहाँ उसकी उपासना करने वाले भक्त पुरुषों को भगवद्रूप ही बना दिया करती है। ऐसी भगवान की भक्ति को प्राप्त कर इसके अतिरिक्त अन्य किसी तरह से लाभ की प्राप्ति करना पशु के बिना अन्य कौन पाना चाहगा ॥७७॥

भगवद्विमुखा ये तु नरा संसारिणो द्विजा ।
तेषां मुक्तिर्भवाटव्या नास्ति सत्सगमंतरा ॥७८
साधव समुदाचारा सर्वलोकहितावहा ।
दीनानुकम्पिनो विप्रा प्रपन्नास्तारयन्ति हि ॥७९
यूय धन्यतमा लोके मुनय साधुसमता ।
यन्मुहुर्वासुदेवस्य कीर्ति पल्लवनूतनाम् ॥८०
धन्योऽस्म्यनुगृहीतोऽस्मि भवद्भिर्मलोक्मगलम् ।
यत्स्माहितो हरि साक्षात्सर्वकारणकारणम् ॥८१

हे द्विजगण ! जो इस महान् घोर संसार के माया मोह में फँसे हुए मनुष्य ऐसे परम कारुणिक एवं जीवात्माओं के उद्धार करने वाले भगवान् से विमुख रहा करते हैं वे बिना सत्पुरुष महापुरुषों की सङ्गति प्राप्त किये इस संसाररूपी अत्यन्त गहन जङ्गल से बाहिर किसी

भी प्रकार से निकल ही नहीं सकते हैं ॥ ७८ ॥ सत्पुरुष साधुजन परमाधिक श्रेष्ठ आचरण वाले हुआ करते हैं और सत्पुरुष सर्वदा समस्त प्राणियों का हित ही चाहा करते हैं। ये लोग हमेशा ही दीन-हीन जीवों पर अपनी परम कृपा की दृष्टि किया करते हैं और जो जानकर या अनजाने ही इनकी शरण ग्रहण किया करते हैं उनको वे महापुरुष तार दिया करते हैं तथा इनके उद्धार का कोई सन्मार्ग बताकर संसार के जन्म मरण के बन्धन से मुक्त कर दिया करते हैं। इन महा पुरुषों की सङ्गति क्षण मात्र भी यदि हो जाया करती है तो उतने ही से महान् से महान् पापिष्ठ लोग भी विशुद्ध होकर परम सद्गति प्राप्त करने के अधिकारी हो जाया करते हैं ॥७९॥ हे मुनिगणो ! इस घोर संसार में आप लोग परम धन्य एवं महान् सौभाग्यशाली हैं। सभी सज्जन पुरुष आप लोगों का सम्मान किया करते हैं। आपने एक अंकुर के समान एक नवीन स्वरूप में ही भगवान् वासुदेव की कीर्त्ति को प्रकाशित किया है ॥ ८० ॥ यह आपके ही परम उद्योग एवं प्रबल प्रयत्न का फल है कि इस प्रकार का परम मङ्गल करने वाले—समस्त कारणों के भी कारण साक्षात् श्रीहरि भगवान् का स्मरण एवं ध्यान कराया है। इसीलिये मैं इस समय में परम धन्य हो गया हूं। आप सब लोगों ने मिलकर इस समय में अत्यधिक अनुग्रह मुझ पर किया है कि ऐसा सत्संग का अवसर प्राप्त हो गया है जिससे भली भांति श्री हरि का स्मरण एवं गुण कीर्त्तन हो सका है। इसीलिये सत्पुरुषों की सङ्गति का परम अधिक महत्व हुआ करता है ॥८१॥

ᨒ०ᨒ

नारद पुराण

(उत्तरार्द्ध)



॥ एकादशी माहात्म्य वर्णन ॥

पान्तु वो जलदश्याम शार्ङ्गज्याघात कर्कशा।
त्रैलोक्य मण्डपस्तम्भाश्चत्वारो हरि बाहवा ॥१
सुरासुरशिरोरत्ननिघृष्ट मणिरंजितम् ।
हरिपादाम्बुज द्वन्द्वमभीष्ट प्रदमस्तु नः ॥२

"जो भगवान् मेघ के समान श्याम वर्ण वाले हैं, जिनकी भुजायें शार्ङ्ग धनुष की प्रत्यञ्चा को खींचते रहने से कठोर हो गई हैं और त्रिभुवन रूपी विशाल भवन को संभाले रखने के लिये स्तम्भ स्वरूप हैं, वे ही चारों भुजाएँ सदा तुम्हारी रक्षा करें। भगवान् के जो चरण देवताओं और असुरों के मुकुटों में लगे रत्नों तथा मणियों की चमक से सदा अनुरंजित रहते हैं, वे ही चरण-युगल हमारे अभीष्ट मनोरथों की पूर्ति करें।"

राजा मांधाता ने महामुनि वशिष्ठजी से पूछा—हे द्विजोत्तम ! भयङ्कर पापरूप सूखे अथवा गीले काष्ठ को जला सके, ऐसी अग्नि कौन सी है यह बताने की कृपा करें। अज्ञान अवस्था में किये गये पाप को 'सूखा' कहा गया है और जान बूझकर किया गया पाप 'गीला' कहा गया है। वह चाहे पुराने समय अथवा इसी जन्म का हो, चाहे वर्तमान काल का और चाहे आगे आने वाले भविष्य का। पर वह जिस अग्नि से भस्म किया जा सकता है, वही जानने की मेरी इच्छा है।

वसिष्ठजी कहने लगे—राजन् ! सुनो, जिस अग्नि से सूखा और गीला सब प्रकार का काष्ठ जलकर भस्म हो सकता है, उसको बतलाता हूँ। जो व्यक्ति भगवान् विष्णु की एकादशी के दिन इन्द्रियों के विषयों से उपराम होकर उपवास करता है, भगवान् की पूजा करता है, आँवला से स्नान करता है, रात को जागरण करता है, वह सब पापों से मुक्त हो जाता है। मनुष्य जब तक भगवान् पद्मनाभ के शुभदिवस एकादशी का व्रत नहीं करता तभी तक उसकी देह में पाप का निवास रहता है। एकादशी का व्रत सैंकड़ों अश्वमेध और राजसूय यज्ञों से अधिक महत्वपूर्ण है। हे राजन् ! ग्यारह इन्द्रियों से जो पाप होते हैं वे सब ग्यारस (एकादशी) के व्रत से नष्ट हो जाते हैं। यह एकादशी स्वर्ग और मोक्ष देने वाली है, राज्य और पुत्र प्रदान करने वाली है तथा शरीर को रोग रहित बनाने वाली है। गङ्गा, गया, काशी, पुष्कर के तीर्थ महा पवित्र हैं, पर एकादशी उनसे भी बढ़कर है। कुरुक्षेत्र, नर्मदा, देविका, यमुना तथा चन्द्रभागा भी एकादशी से अधिक पुण्यप्रद नहीं है। एकादशी के व्रत के प्रभाव से विष्णु धाम सहज ही प्राप्त हो सकता है।

राजेन्द्र ! एकादशी का व्रत करने वाला पुरुष अपने पितृकुल, मातृकुल तथा पत्नीकुल की दस-दस पीढ़ियों का उद्धार कर देता है और स्वयं भी बैकुण्ठ को जाता है। एकादशी तिथि का व्रत चिन्तामणि अथवा निधि के समान है। अथवा वह सङ्कल्पों की पूर्ति करने वाले कल्पवृक्ष और वेद वाक्यों के सदृश कल्याणकारी है। हे राजन् जो कोई एकादशी युक्त द्वादशी की शरण लेता है, वह चार भुजाओं से युक्त होकर गरुड़ की पीठ पर आरूढ़ हो, वनमाला और पीताम्बर से सुशोभित हो भगवान विष्णु के धाम को जाता है। इस एकादशी युक्त द्वादशी का प्रभाव घोर पाप रूपी ईंधन के लिये अग्नि के समान है। पुत्र-पौत्र तथा अतुल वैभव आदि की इच्छा रखने वाले धर्मपरायण

पुरुष को सदैव एकादशी का उपवास करना चाहिये। इसी से कहा है—

हरिदिनमिहमर्त्यो य करोत्यादरेण,
नरवर स तुकुक्षि मातुराप्नोति नैव।
वहुवृजिन समेतो ऽ कामत कामतोवा,
प्रजति पदमनन्त लोकनाथस्य विष्णो ॥

अर्थात्—"जो मनुष्य भक्तिपूर्वक हरि दिवस (एकादशी) का व्रत करता है वह पुन माता के उदर मे प्रवेश नही करता अर्थात् उसे पुनर्जन्म ग्रहण करना नही होता। जो पापी मनुष्य भी निष्काम अथवा सकाम भाव से एकादशी का व्रत करता है वह पापमुक्त होकर भगवान् के लोक को प्राप्त होता है।"

एकादशी का ऐसा माहात्म्य सुनकर नैमिषारण्य निवासी मुनियो ने पौराणिक सूतजी से प्रश्न किया—"कृपा करके यह बताये कि किसी भी तिथि का व्रत उसके आरम्भ मे करना चाहिए अथवा अन्तिम भाग मे। चाहे देव-कर्म हो अथवा पितृकर्म, उसमे तिथि के किस भाग मे उपवास करना उचित है?

सूतजी बोले—'हे महर्षिगण ! देवताओ की प्रसन्नता के लिये तो तिथि के अन्त भाग मे उपवास करना उत्तम माना गया है। पर पितरो को तिथि का मूल भाग (आरम्भ) प्रिय है। इसलिये देवताओं से दस गुना फल प्राप्त करने की इच्छा रखने वाले को तो तिथि के अन्तिम भाग में ही उपवास रखना चाहिए और पितरों की तृप्ति

पूर्वविद्धा तिथि ही उत्तम है। सूर्योदय के समय यदि थोड़ी सी भी पूर्व तिथि शेष रह गई हो तो उसे 'पूर्वविद्धा' मानना चाहिये। यदि सूर्योदय से पहले ही वर्तमान तिथि आ गई हो तो उसे 'प्रभूता' मानना चाहिये। उपवास या पारण करने तथा मरण में उसी तिथि को ग्रहण करना उचित है जो उस समय वर्तमान हो। पितृकार्य में सूर्यास्त काल में विद्यमान तिथि ही माननीय है। हे द्विजोत्तमो! तिथि की गणना सूर्य और चन्द्रमा की गति पर निर्भर है। चन्द्रमा और सूर्य की गति का ज्ञान होने से कालवेत्ता विद्वान् तिथि काल का निर्णय करते हैं।

इसके पश्चात् मैं स्नान, पूजा आदि की विधि का क्रम बतलाता हूँ। यदि दिन में शुद्ध समय न हो तो रात को पूजा करनी चाहिये। दिन का समस्त कार्य प्रदोष (रात्रि का आरम्भिक काल) में पूर्ण करना चाहिये। यह विधि व्रत रखने वालों के लिये बताई गई है। यदि सूर्योदय काल में थोड़ी भी द्वादशी शेष रही हो तो उसी में स्नान, पूजन, होम, दान आदि सब काम करना चाहिये। द्वादशी का व्रत, करने के पश्चात् यदि शुद्ध त्रयोदशी में पारण करने का अवसर मिले तो उसका पुण्यफल अत्यधिक होता है।



॥ गंगा-माहात्म्य वर्णन ॥

राजा रुक्माङ्गद की पत्नी मोहिनी एकादशी का विरोध करने के कारण जब दुर्दशा को प्राप्त हो गई तो उसने राज पुरोहित वसु से अपने उद्धार का उपाय पूछा। वसु बोले—मोहिनी! मैं तुमको प्रमुख तीर्थों के लक्षण पृथक्-पृथक् कहता हूँ जिससे पापग्रस्त व्यक्ति भी श्रेष्ठ गति प्राप्त कर सकते हैं। पृथ्वी के समस्त तीर्थों में गंगा श्रेष्ठ है। वे देश, नगर, ग्राम पर्वत और आश्रम धन्य हैं, जिनके समीप पवित्र जल युक्त गङ्गाजी सदैव बहती हैं, जैसा कि कहा गया है—

ते देशास्ते जनपदास्ते शैलास्तेऽपि चाश्रमाः ।
येषां भागीरथी पुण्या समीपे वर्तते सदा ।।

मनुष्य गङ्गाजी का सेवन करके जिस गति को पाता है वैसी गति तप, ब्रह्मचर्य, यज्ञ अथवा दान द्वारा भी नहीं मिल सकती। जिन मनुष्यों ने पहले पाप कर्म किये हों पर तत्पश्चात् वे उनसे छुटकारा पाने के निमित्त गङ्गा का सेवन करें तो वे श्रेष्ठ गति के अधिकारी बनते हैं। इस संसार में दुःख से व्याकुल होकर जो जीव उत्तम गति का मार्ग ढूँढ रहे हैं उनके लिये गङ्गा के समान अन्य गति नहीं है। अंधे, जड़ और दरिद्रियों का उद्धार भी गङ्गा करती है।

हे देवी! विशेष रूप से कृष्ण पक्ष की षष्ठी से अमावस्या तक दस दिन गङ्गाजी इस पृथ्वी पर निवास करती हैं। शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से लेकर दशमी तक वह पाताल में रहती हैं और शुक्ल पक्ष की एकादशी से कृष्णपक्ष की पंचमी तक—दस दिन स्वर्ग में रहती हैं। इसी कारण उसे त्रिपथगा कहा गया है इसीलिये गङ्गा को सदैव मोक्षदायिनी मान कर कहा है—

कृते तु सर्वतीर्थानि त्रेतायां पुष्करं परं ।
द्वापरे तु कुरुक्षेत्रं कलौ गंगा विशिष्यते ।।
कलौ तु सर्वतीर्थानि स्वं स्वं वीर्यं स्वभावतः ।
गङ्गायां प्रतिमुञ्चंति सा तु देवी न कुत्रचित् ।।
गंगाम्भः कणदिग्धस्य वायोः संस्पर्शनादपि ।
पापशीला अपि नराः परां गतिमवाप्नुयुः ।।
योऽसौ सर्वगतो विष्णुश्चित्स्वरूपी जनार्दनः ।
स एव द्रवरूपेण गङ्गाम्भो नात्र संशयः ।।
क्षेत्रस्थमुद्धृतं वापि शीतमुष्णमथापि वा ।
गाङ्गेयं तु हरेत्तोयं नात्र कार्या विचारणा ।।
नवर्ज्यं पर्युषितं तोयं वर्ज्यं पर्युषितं दलम् ।

न वर्ज्यं जाह्नवीतोय न वर्ज्यं तुलसी दलम् ॥
मेरो सुवर्ण्य च सर्व रत्नै सख्योपलानामुदकस्य वापि ।
गङ्गा जलानां न तु शक्तिरस्ति वक्तु गुणाख्यापरिमाणमत्र ।

अर्थात्—सतयुग मे सभी तीर्थ फलदायक होते हैं, त्रेता मे पुष्कर तीर्थ, द्वापर मे कुरुक्षेत्र और कलियुग मे गङ्गा श्रेष्ठ है। कलियुग मे सभी तीर्थ अपनी अपनी शक्ति को गङ्गाजी मे छोड देते हैं, पर गङ्गा अपनी शक्ति को कभी नही छोडती। गङ्गा के जलकणो से युक्त वायु का स्पर्श होने से भी अनेक पाप दूर हो जाते हैं। जो सर्वत्र व्याप्त हैं, जिनका चिन्मय स्वरूप है वे जनार्दन भगवान विष्णु ही द्रव रूप मे गङ्गाजल होगये हैं। गगाजल चाहे अपने क्षेत्र मे हो अथवा उसमे से किसी शाखा (नहर आदि) के रूप मे हो, चाहे वह ठण्डा हो या गरम हो, पर उसके सेवन से समस्त जीवन के पाप नष्ट हो जात हैं। बासी जल और बासी दल (अन्न) त्याग करने योग्य माना गया है, परन्तु गगाजल और तुलसी बासी होने पर भी त्याज्य नहीं होते। जल के समस्त कणों की गणना हो सकती है, मेरुपर्वत के सुवर्ण की, रत्नो की और वहाँ के पत्थरो की गणना हो सकती है, पर गगाजल के गुणो का परिमाण कोई नही बतला सकता।

तीर्थ यात्रा की विधि को पूरा न कर सकने वाला व्यक्ति केवल गगाजल मे स्नान करने से श्रेष्ठ फल को प्राप्त करता है। गगाजल से भक्ति पूर्वक एक बार कुल्ला करने वाला स्वर्ग लोक मे जाकर कामधेनु के दुग्ध का आस्वादन करता है। शालग्राम शिला पर गगाजल चढाने वाला मनुष्य पाप रूपी तीव्र अधकार को दूर करके उदयकाल के सूर्य का समान प्रकाशित होता है। भिक्षान्न पर गगाजल छिडक कर भोजन करने वाला केंचुल को त्याग करके निकलने वाले सर्प की तरह पाप रहित हो जाता है। इस सम्बन्ध मे कहा गया है—

गङ्गातोयाभिषिक्ता तु भिक्षामशना गतयः सदा ।
सर्पवरकञ्चुकं मुक्त्वा पापहीनो भवेत् स वै ॥

और भी कहा है—

मनोवाक्कायजैर्ग्रस्तः पापैर्बहुविधैरपि ।
वीक्ष्य गङ्गां भवेत् पूतः पुरुषो नात्र संशयः ॥
गङ्गातीरे वसेन्नित्यं गङ्गातोयं पिबेत् सदा ।
यः पुमान् स विमुच्येत पातकं पूर्वसंचितं ॥
यो वै गङ्गां समाश्रित्य नित्यं तिष्ठति निर्भयं ।
स एव देवैर्मर्त्यैश्च पूजनीयो महर्षिभिः ॥

अर्थात्—जो मनुष्य मन, वाणी व काया सम्बन्धी अनेक प्रकार के पापो से ग्रस्त हो वह भी श्रीगंगाजी के दर्शन करने से निश्चय ही पवित्र हो जाता है। जो सदा गंगा के तट पर निवास करता है और गंगा जल पान करता रहता है, वह मनुष्य पूर्व संचित समस्त पापों से छूट जाता है। जो कोई गंगा का आश्रय लेकर सदैव निर्भय भाव से रहता है, वह देवगण, मनुष्य और ऋषियों द्वारा भी पूजनीयहोता है।"

सरस्वती नदी का जल तीन महीना, यमुनाजी का जल सात महीना, नर्मदाजी का जल दस महीना और गङ्गाजी का जल हमेशा ताजा बना रहता है अज्ञात स्थान मे मरे हुए मनुष्यो और जिनका शास्त्रानुसार तर्पण न किया गया हो, ऐसे लोगो की हड्डियो को गंगाजी मे डालते ही उनकी सद्गति होजाती है। शरीर की शुद्धि करने वाले सैकड़ों चान्द्रायण व्रतो की अपेक्षा नियमित गंगाजल पीने वाला श्रेष्ठ है। इस सम्बन्ध में यह वचन ठीक ही है—

स स्वर्गं ज्ञानममलं योगं मोक्षं च विन्दति ।
यस्तु सूर्यांशुनिष्टप्तं गाङ्गेयं पिबते जलम् ।
गोमूत्र यावकाहाराद् गाङ्गपानं विशिष्यते ॥

अर्थात् "जो भक्ति पूर्वक गंगाजी में स्नान करता है और सूर्य

की किरणों से तप्त गंगाजल पीता है वह स्वर्ग, ज्ञान, योग, मोक्ष सब कुछ प्राप्त कर लेता है। गंगाजल का सेवन गो मूत्र और जौ के आहार से भी अधिक पवित्र है।" ज्ञान, अनुपम ऐश्वर्य, प्रतिष्ठा, आयु, यश तथा शुभ आश्रमों की प्राप्ति यह सब गंगाजी के दर्शनों से सुलभ होती है। उनके दर्शन से समस्त इन्द्रियों की चंचलता, दुर्व्यसन, पातक तथा निर्दयता आदि दोष नष्ट हो जाते हैं। दूसरे जीवों की हिंसा, कुटिलता, अन्य लोगों के दोष ढूँढना तथा दम्भ आदि दोष भी गङ्गाजी के प्रभाव से दूर हो जाते हैं। अविनाशी सनातन पदवी की इच्छा करने वाले मनुष्य को बारम्बार गंगाजी का दर्शन करना और उसके जल का स्पर्श करना उचित है। बावड़ी, कुँआ, तालाब आदि बनाने का पुण्यफल गंगाजी के दर्शन से अनायास प्राप्त हो जाता है। नैमिषारण्य, कुरुक्षेत्र, नर्मदा तथा पुष्कर तीर्थ में स्नान, स्पर्श और सेवन करने से मनुष्य जो फल प्राप्त करते हैं वही फल कलियुग में गङ्गाजी के दर्शनों से मिल जाता है।

हे देवी! अब मैं गंगाजल में स्नान करने के फल का वर्णन करता हूँ। गंगा के जल में स्नान करने वाले मनुष्य के समस्त पाप शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं और उसे अपूर्व पुण्य की प्राप्ति होती है। गङ्गाजी के पवित्र जल में स्नान करके शुद्धचित्त हुये मनुष्यों को जो फल प्राप्त होता है वह बहुत से यज्ञों के करने पर भी नहीं मिल सकता। जिस प्रकार सूर्य उदय काल में गाढ़ अन्धकार का नाश करके प्रकाशित होता है, उसी प्रकार गङ्गाजल से अभिषिक्त होने वाला मनुष्य पाप-समूह का नाश करके प्रकाशमान होता है। गङ्गाजी में स्नान करने से अनेक जन्मों के पाप नष्ट हो जाते हैं और वह उसी समय पुण्यात्मा हो जाता है। समस्त तीर्थों में स्नान करने, और मन्दिरों में देव दर्शन का फल गंगास्नान से ही मिल जाता है। गंगा स्नान से श्रेष्ठ अन्य कोई स्नान नहीं है, विशेषतः कलियुग में गङ्गाजी सब पापों का हरण

करने वाली है। गङ्गा में नित्य स्नान करने वाला मनुष्य जीवन्मुक्त होजाता है तथा मृत्यु के उपरान्त विष्णु के लोक जाता है। गङ्गा में मध्याह्न काल में स्नान करने से प्रातः के स्नान से भी अधिक फल प्राप्त होता है। सायंकाल के स्नान से उससे अत्यधिक तथा शिवजी के समीप स्नान करने से अनन्त गुना फल प्राप्त होता है। गङ्गा में चाहे जहाँ स्नान किया जाय वह कुरुक्षेत्र के समान पुण्यदायक होता है। परन्तु हरिद्वार, प्रयाग और गंगा-सागर में किया गया स्नान विशेष फलदायक माना गया है। सूर्य भगवान ने गङ्गाजी से कहा—"हे जाह्नवी ! जो मनुष्य मेरी किरणों से तप्त तुम्हारे जल से स्नान करता है वह मेरे मण्डल को देख कर मोक्ष को प्राप्त होता है।" वरुण ने भी गंगा की महिमा का बखान करते हुये कहा—

ये गृहे स्वे स्थितोऽपि त्वां स्नाने संकीर्तयिष्यति ।
सोऽपि यास्यति नाकं वै इत्याह वरुणश्च ताम् ॥

अर्थात्—"जो मनुष्य अपने स्थान में रह कर स्नान करते समय भी तुम्हारा नाम स्मरण करेगा वह भी स्वर्ग का अधिकारी बन जायगा।"

पुरोहित वसु ने कहा— हे मोहिनी ! अब मैं विशेष काल और स्थानों में गंगास्नान का फल बतलाता हूँ। माघमास में निरन्तर गंगा स्नान करने वाला दीर्घ काल तक अपने कुटुम्ब सहित इन्द्र लोक में निवास करता है। समस्त संक्रान्तियों में गंगाजी में स्नान करने वाला सूर्य समान तेजस्वी विमान में बैठ कर वैकुण्ठधाम को जाता है। माघ के समान कार्तिक मास में भी गंगास्नान करने का महान फल बताया गया है। सूर्य के तुला राशि में प्रवेश करने समय और कार्तिक की पूर्णिमा को गंगा स्नान करने से माघ स्नान की अपेक्षा भी अधिक फल होता है। कार्तिक अथवा वैशाख की अक्षय तृतीया के दिन गंगास्नान करने से एक वर्ष तक स्नान करने का फल मिलता है। संक्रान्ति और

युगादि तिथियों में गंगास्नान करने का फल निरन्तर तीन मास तक स्नान करने के समान होता है।

द्वादशी में श्रवण, अष्टमी में पुष्य और चतुर्दशी में आर्द्रा नक्षत्र का योग हो तो उस दिन गंगास्नान अत्यन्त दुर्लभ है। वैशाख, कार्तिक और माघ की पूर्णिमा और अमावस्यायें अत्यन्त पवित्र मानी गई हैं। इन तिथियों में गंगास्नान का सुयोग अत्यन्त पुण्यप्रद होता है। भाद्रपद की कृष्णाष्टमी को गंगास्नान करने से साधारण तिथि के स्नान की अपेक्षा अनेक गुणा पुण्य होता है। माघ कृष्णाष्टमी और अमावस्या का स्नान भी बड़ा पुण्यदायक होता है। फाल्गुन और आषाढ़ मास में तथा चन्द्र ग्रहण के समय हुआ स्नान तीन मास तक स्नान करने का फल प्रदान करता है। जो मनुष्य सम्पूर्ण माघ मास अरुणोदय काल में विधिपूर्वक स्नान करते हैं वे जातिस्मर (पूर्व जन्म की बातों को याद रखने वाले) हो जाते हैं। इतना ही नहीं वे सब शास्त्रों के अर्थ को जानने वाले, ज्ञानी और निरोगी भी होते हैं। ज्येष्ठ मास की शुक्ला दशमी तिथि को मङ्गलवार और हस्त नक्षत्र में भगवती भागीरथी का हिमालय से मर्त्यलोक में अवतरण हुआ है। उस दिन स्नान करने से दसगुणा फल प्राप्त होता है। माघमास की पूर्णिमा यदि मघा नक्षत्र और गुरुवार के योग में युक्त हो तो उस तिथि का महत्व बहुत अधिक हो जाता है।

अब देश विशेष की दृष्टि से गङ्गास्नान का फल कहा जाता है। गंगाजी में कहीं भी स्नान किया जाय उसका फल कुरुक्षेत्र के स्नान से दस गुना होता है। परन्तु गंगाजी जहाँ विन्ध्याचल पर्वत से मिलती हैं वहाँ स्नान करने का फल कुरुक्षेत्र स्नान से सौ गुना होता है। वैसे तो गंगास्नान सर्वत्र दुर्लभ, पर गंगाद्वार (हरिद्वार,, प्रयाग तथा गंगासागर में वह बहुत अधिक हो जाता है। हरिद्वार के कुशावर्त तीर्थ में गंगा स्नान करने से राजसूय और अश्वमेघ यज्ञों का फल प्राप्त होता है।

कुशावर्त में गोविन्द के और कनखल में भगवान रुद्र के दर्शन करने से अक्षय पुण्य की प्राप्ति होती है। जहाँ पूर्वकाल में वाराह रूपधारी भगवान विष्णु प्रकट हुये थे, वहाँ स्नान करने से सहस्रों अग्निष्टोम का फल मिलता है। वहीं के ब्रह्म तीर्थ में स्नान करने वाला भी ऐसे ही अपरिमित पुण्य का भागी होता है। इसी प्रकार कुब्जतीर्थ, कपिल क्षेत्र (हरिद्वार), बिल्वक, नील पर्वत, कनखल में स्नान करने से निस्सन्देह स्वर्ग की प्राप्ति होती है। एक 'पवित्र' नामका तीर्थ सब तीर्थों में उत्तम है उसमें स्नान करने वाले को विश्वजित यज्ञ का पुण्यफल मिलता है। फिर 'वेणीराज्य' नाम का एक तीर्थ है, जहाँ पुण्यमयी सरयू पवित्र गंगा से बहिन की तरह मिलती है। भगवान विष्णु के दाहिने चरण को पखाने से देवसरिता गंगाजी की उत्पत्ति हुई है और बायें चरण से सरयू जी का प्रादुर्भाव हुआ है। इस "वेणीराज्य" तीर्थ में भगवान विष्णु और शिव की पूजा करने वाला पुरुष विष्णु रूप ही हो जाता है। इससे आगे गाण्डव तीर्थ है, जहाँ गंगा के साथ गण्डकी का संगम होता है। वहाँ स्नान करने से एक सहस्र गौओं के दान का फल प्राप्त होता है। तत्पश्चात् 'रामतीर्थ' 'धामतीर्थ' 'चपकतीर्थ' "बलतीर्थ" तथा "सोमद्वीपतीर्थ' हैं। फिर "कौशिकी" तथा गंगा का संगम है जिसमें स्नान करने से मनुष्य इन्द्रलोक का प्रिय अतिथि बनता है।



॥ गंगाजी की पूजन विधि ॥

वसोर्वचनमाकर्ण्य गङ्गामाहात्म्य सूचकम्।
पुन पप्रच्छ राजेन्द्र त विप्र स्व पुरोहितम् ॥

पुरोहित वसु के मुख से इस प्रकार गङ्गाजी का माहात्म्य श्रवण करके मोहिनी ने प्रार्थना की कि हे महात्मन्! मैंने गङ्गाजी का कल्याणकारी माहात्म्य और उसमें स्नान तथा दान आदि के विषय में

तो सुन लिया, अब आप कृपा करके गङ्गाजी के पूजन की विधि सुनाइये।

वसु ने कहा—देवि! तुमने यह बड़ा ओर कल्याणकारी प्रश्न किया है। गङ्गाजी का माहात्म्य और उनकी आराधना बड़े बड़े पापों से छुटकारा दिलाने में समर्थ हैं। पूर्वकाल में पार्वतीदेवी के प्रश्न करने पर भगवान शिव ने इसका वर्णन किया था। उन्होंने बतलाया था कि देवताओं के भोजन का समय पूर्वाह्न, ऋषियों के भोजन का मध्याह्न तथा पितरों के भोजन का अपराह्न काल होता है। पर गङ्गाजी का व्रत और साधना करने वाले को 'नक्त भोजन' (रात्रिकालीन भोजन) करना चाहिये। साथ ही उसे ये छ कर्म भी अवश्य करने चाहिये। स्नान, हविष्य-भोजन, सत्य भाषण, स्वल्पाहार, अग्निहोत्र तथा भूमिशयन, साधक को माघ मास में गङ्गा-तट पर शिवालय के पास रात्रि में एक बार घृतयुक्त खिचड़ी का भोजन करना चाहिये। भोजन करते समय पूर्ण रूप से मौन रहना चाहिये और भगवान शिव का स्मरण करके जितेन्द्रिय रहते हुये पलाश के पत्तों में नियमपूर्वक भोजन करना चाहिये। दोनों पखवारों की चतुर्दशी के दिन उपवास करना चाहिय।

पूर्णिमा के दिन गन्ध तथा गङ्गा जल से, तथा दूध दही, घी, शहद और खांड से भगवान शिव का स्नान कराके शिवलिङ्ग पर धतूरा का फूल चढाना। माघ मास पूरा होने पर आठ ब्राह्मणों का भोजन कराना। इस प्रकार जो व्यक्ति यम, नियम, श्रद्धा तथा भक्ति से युक्त होकर एक बार भी शास्त्र के विधानानुसार इस व्रत का पालन कर लेता है वह इस लोक में सुख शान्ति प्राप्त करके मरण के उपरान्त उत्तम गति पाता है।

वैशाख शुक्ल चतुर्दशी को एकाग्र चित्तहोकर शालि चावल के भात और दूध का भोजन रात में करना पुण्य आदि से भगवान शिव

की पूजा करती। भगवान शिव का पूजन करके उनको भोज्य पदार्थ नैवेद्यरूप से निवेदन करके भोजन करना। भोजन करते समय मौन रहना और अन्य समय भी मौन धारण करना और वट वृक्ष की दातुन करना। रात्रि में गङ्गा तट पर शिवलिंग के पास शयन करना। पूर्णिमा के दिन प्रातःकाल स्नान करके उपवास का सङ्कल्प करना और रात्रि भर जागरण करना। शिवलिङ्ग को घी से स्नान कराके गन्ध, पुष्प, धूप, दीप और नैवेद्य अर्पण करना। गङ्गाजी के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हो जाने से, मृत्यु भी गङ्गातीर पर ही होती है। मृत्यु समय गङ्गा का स्मरण करने से उसे निश्चय ही मोक्ष की प्राप्ति होती है।

ज्येष्ठ मास की शुक्ला दशमी के दिन गङ्गा-पूजा का विशेष महत्व है। उस दिन गङ्गा तट पर ही निवास करके रात्रि में जागरण करना। दस प्रकार के पुष्प, दस प्रकार की गन्ध, दस प्रकार के नैवेद्य, दस ताम्बूल तथा दस दीपकों से श्रद्धा पूर्वक गङ्गाजी का पूजन करना चाहिये। पूजन करने से पहले शास्त्रोक्त विधि के अनुसार भक्ति पूर्वक दस बार गङ्गाजी में स्नान करना चाहिये। जल में दस मुट्ठी काले तिल और घी अर्पण करना चाहिये। इसी प्रकार सत्तू और गुड़ के दस २ पिंड भी जल में डालने चाहिये। फिर गङ्गा तट पर आटे से गङ्गाजी का रूप चित्र की तरह बना कर उसका पूजन करना चाहिये। पूजा का मन्त्र यह है 'ॐ नमो दशहरायै नारायण्यै गङ्गायै नमः' उस रात को और दिन में भी इस मन्त्र को पाँच हजार बार जप लेना चाहिये। ऐसा करने से साधक को भगवान मनु के बतलाये दश धर्मों (धैर्य, क्षमा, मनोनिग्रह, चोरी न करना, अन्दर और बाहर की पवित्रता, इन्द्रियनिग्रह, सात्विक बुद्धि, अध्यात्म विद्या, सत्य और अक्रोध) का फल प्राप्त होता है। तत्पश्चात निम्नलिखित स्तोत्र का भक्ति पूर्वक पाठ करना।

ॐ नमो शिवायै शिवदायै नमोस्तु ते ।
नमोस्तु विष्णु रूपिण्यै गङ्गायै ते नमो नम ॥
सर्व देवस्य रूपिण्यै नमो भेषज मूर्तये ।
सर्वस्य सर्व व्याधीना भिषक् श्रेष्ठे नमोस्तु ते ॥
स्थाणु जङ्गम सम्भूत विष हन्त्रि नमोस्तु ते ।
ससार विष नाशिन्यै जीवनायै नमो नम ॥
तापत्रितयहन्त्र्यै च प्राणेश्वर्यै नमो नम ।
शान्त्यै सताप हारिन्यै सर्व मूर्तये ॥
सर्वसशुद्धिकारिण्यै नम पाय विमुक्तये ।
भुक्तिमुक्ति प्रदायिन्यै भोगवत्यै नमो नम ॥
मन्दाकिन्यै नमस्तेऽस्तु स्वर्गदायै नमो नम ।
नमस्त्रैलोक्यमूर्त्तायै त्रिदशायै नमो नम ॥
नमस्ते शुक्ल सस्थायै क्षेमवत्यै नमो नम ।
त्रिदशासन सस्थायै तेजोवत्यै नमोऽस्तु ते ॥
मन्दायै लिङ्ग धारिण्यै नारायण्यै नमो नम ।
नमस्ते विश्वमित्रायै रेवत्यै ते नमो नम ॥

अर्थात्—'ॐ शिवस्वरूपा गङ्गा को नमस्कार है, ॐ कल्याण कारिणी गङ्गा को नमस्कार है, ॐ विष्णुरूपिणी गङ्गा देवी को नमस्कार है। समस्त देवता आपके स्वरूप है, आपको नमस्कार है। आप सर्व जीवो के सम्पूर्ण रोगो का निवारण करने के लिये वैद्य स्वरूप हो, आपको नमस्कार है। आप स्थावर तथा जङ्गम, जीवो से उत्पन्न होने वाले विषो का नाश करने वाली जीवनदायिनी गङ्गादेवी का बारम्बार नमस्कार है। आप तीनो तापो की निवारण करने वाली और सब प्राणों की अधीश्वरी हो, आपको नमस्कार है नमस्कार है। आप शान्तिस्वरूप हो तथा सबका सन्ताप हरण करने वाली हो सब कोई आपका ही स्वरूप है आपका नमस्कार है। आप सबका पूणत

शुद्ध करने वाली और सर्व पापों से मुक्त करने वाली हो, आपको नमस्कार है। आप भोग और मोक्ष प्रदान करने वाली भागवती (पाताल गङ्गा) हैं—आपको नमस्कार है। आप ही मन्दाकिनी के नाम से प्रसिद्ध आकाश गङ्गा है, आपको नमस्कार है। तीनों लोकों मे इस प्रकार मूर्त स्वरूप में प्रगट होने वाली आपको नमस्कार है। शुक्ल रूप में रहने वाली आपको नमस्कार है। सबकी कुशल चाहने वाली आप क्षेमवती को नमस्कार है। देवताओं के सिंहासन पर विराजमान आप गङ्गादेवी को नमस्कार है। मन्द गति धारण करने वाले मन्दा और शिवलिङ्ग का आधार स्वरूप होने से आपको लिङ्गधारिणी भी कहा जाता है। भगवान नारायण के चरणारविन्द से उत्पन्न होने से आप नारायणी कहलाती हो, आपको नमस्कार है, रेवती नाम से प्रसिद्ध गङ्गा को नमस्कार है।'

बृहत्यै ते नमो नित्य लोकाधाम्नै नमो नम ।
नमस्ते विश्वमुख्यायै नन्दिन्यै ते नमो नम ॥
पृथ्व्यै शिवामृतायै च विरजायै नमो नम ।
परावर गताद्यायै तारायै ते नमो नम ॥
नमस्ते स्वर्ग सत्यायै अभिन्नायै नमो नम. ।
शान्तायै ते प्रतिष्ठायै वरदायै नमो नम ॥
उग्रायै सुखजल्पायै सजीविन्यै नमो नम ।
ब्रह्मगायै ब्रह्मदायै दुरितघ्न्यै नमो नम ॥
प्रणतार्ति प्रभञ्जिन्य जगन्मात्रे नमो नम ।
विप्लुपायै दुर्गहन्त्र्यै दक्षायै ते नमो नम ॥
सर्वापत्प्रतिपक्षायै मङ्गलायै नमो नम ।
परापरे परे तुभ्य नमो मोक्षप्रदे सदा ॥
गङ्गा ममाग्रतो भूयाद गङ्गा मे पार्श्वयोस्तथा ।

गङ्गा मे सर्वतो भूयात्त्वयि गङ्गेऽस्तु मे स्थिति ॥
आदौ त्वमन्ते मध्ये च सर्वा त्वं गाङ्गते शिवे ।
त्वमेव मूल प्रकृतिस्त्वं हि नारायण-प्रभुः ।
गङ्गे त्वं परमात्मा च शिवस्तुभ्य नमो नमः ॥

'आप बृहतीदेवी को नित्य नमस्कार है, लोक धारिणी को नमस्कार है। आप विश्व के मुखरा होने से विश्वमुख्या कहलाती हैं, जगत को आनन्द प्रदान करने से आपका नाम नन्दिनी होता है, आपको बारम्बार नमस्कार है। आपको पृथ्वी, शिवामृता और विरजा भी कहा जाता है, आपको नमस्कार है। आप पर (स्वर्ग) तथा अम्बर (पाताल) दोनों मे रहने से 'पराम्बरगता' कही जाती हो, आदि शक्ति स्वरूपा होने से 'आद्या' हो, सब लोगो को ससार सागर से तारने वाली होने से 'तारा' कहलाती हो, आपको बारम्बार नमस्कार है। आप स्वर्ग मे विराजमान हैं और सबसे अभिन्न है, आपको नमस्कार है। आप शास्त्र-स्वरूपा, प्रतिष्ठा प्राप्त और वरदायिनी हो, आपको नमस्कार है। पाप-समूहों के लिये आप 'उग्रा' हो, आपने सोत रूप मुख से जो सदैव कलकल नाद होता है उसे 'मुख अल्पा' हो, अपने भक्तो को जन्म मरण के पाश से छुडाने वाली होने के कारण 'सजीविन्या हो' आपको नमस्कार है, नमस्कार है। आप ब्रह्म लोक तक पहुँचती है और ब्रह्म की प्राप्ति भी करा देती है। पापो का नष्ट करने वाली है, आपको नमस्कार है। आप प्रणत जनो के कष्टो को दूर करने वाली अखिल जगत की मातास्वरूपिणी हैं, आपको नमस्कार है। सब प्रकार की विपत्तियों को निवारण कर मङ्गल करने वाली गङ्गाजी को नमस्कार है। पर और अपर सब आपके ही स्वरूप हैं, आप ही परा शक्ति हैं, मोक्ष प्रदान करने वाली हो, आपको नमस्कार है। मेरे सम्मुख गङ्गाजी रहे, मेरे बगल-बगल भी गङ्गा ही हो, गङ्गा ही मेरे चारो तरफ हो और मैं गङ्गा मे ही लीन हो जाऊँ।

हे परमात्मा और शिवस्वरूपा देवी । आदि, मध्य और अन्त मे आप ही हो, आपको नमस्कार है नमस्कार है ।'

जो प्रतिदिन भक्तिभाव से इस स्तोत्र का पाठ करता है वह मन, वाणी और शरीर मे होने वाले दस प्रकार के पापो अथवा दोषो से मुक्त हो जाता है । रोगी रोग से और किसी सङ्कट मे ग्रस्त उस सङ्कट से छुटकारा पाता है । शत्रुओ से, बन्धन से और सब प्रकार के भय से भी वह मुक्त होजाता है । इस लोक मे उसकी कामनायें पूरी होती हैं और देहान्त के पश्चात् वह परमात्मा का सान्निध्य प्राप्त करता है । जिस घर मे इस स्तोत्र को लिखकर इसकी पूजा की जाती है वहाँ अग्नि अथवा चोर का भय नही रहता । ज्येष्ठ शुक्ल दशमी के दिन गङ्गाजी के जल मे खड़े होकर इस स्तोत्र का दस बार पाठ करने से दरिद्रता अथवा असमर्थता दूर होती है । गङ्गाजी की महिमा गौरी के समान ही है, इसलिये गौरी के पूजन की विधि ही गङ्गाजी के पूजन मे भी काम लाई जा सकती है ।



।। गया माहात्म्य और पिण्डदान विधि ।।

पुरोहित वसु ने कहा—अब मैं तुम्हारे द्वारा प्रश्न किये गये गयातीर्थ के विषय मे बतलाता हूँ । यह "पितृ-तीर्थ' है और यहाँ पर पितामह ब्रह्माजी स्वयं निवास करते हैं । इसकी उत्पत्ति की कथा इस प्रकार है कि "गयासुर" नामका एक बड़ा प्रतापी असुर प्राचीन काल मे हुआ था । उसने एक बार बड़ा उग्रतप किया जिससे तेज से सब प्राणी कम्पित हो गये । जब देवगण ने अपनी कष्ट गाथा विष्णु भगवान को सुनाई तो उन्होने अपनी गदा से उसे मार डाला । तत्पश्चात् विष्णु ने ही वहाँ पर एक पुण्य-क्षेत्र की मर्यादा स्थापित की और स्वयं भी गदाधर के रूप मे वहाँ स्थापित होगये ।

गया तीर्थ को उत्तम जानकर ब्रह्माजी ने वहाँ पर यज्ञ किया और सरस्वती नाम की नदी का भी सृजन किया। वे स्वयम् भी उस क्षेत्र में स्थापित हो गये। गया में धर्म पृष्ठ, ब्रह्मसभा, गया शीर्ष तथा अक्षयवट के समीप पितरों को जो कुछ दिया जाता है वह अक्षय हो जाता है। गोतीर्थ और गृध्र वटतीर्थ में किया गया श्राद्ध महान फल प्रदान करता है। वहाँ मतङ्ग ऋषि महान के आश्रम का भी दर्शन करते हैं और घोषणा करते हैं कि "समस्त देवगण इस बात का प्रमाण दें और सब लोकपाल इसके साक्षी रहें कि मैंने मतङ्ग तीर्थ में आकर पितरों का श्राद्ध किया है। गृध्रोवालीर्थ, पादतीर्थ, नि श्रीरामहल तीर्थ, महाह्रद तथा कौशिक तीर्थ में श्राद्ध करने का भी महान फल है। "मुण्डपृष्ठ" में महादेवजी ने अपना चरण रखा था। अनदमन्दा तीर्थ में ब्रह्मर्षिगण का निवास बतलाया जाता है। ब्रह्म सरोवर में स्नान करने से ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है। धेनुक तीर्थ में तिल धेनु का दान करने का महान पुण्य कहा गया है। गृध्रवट में जाकर भगवान शंकर के समीप में शरीर पर भस्म लगावें।

फिर उदयगिरि पर्वत पर जाना। वहाँ सावित्री देवी के परम पुण्यदायक चरण का चिह्न दृष्टिगोचर होता है। वहीं पर योनिद्वार तीर्थ है, वहाँ जाने से फिर जन्म लेना नहीं पड़ता। धर्मपृष्ठ में साक्षात् धर्मराज विराजमान हैं वहाँ दर्शन करने वाले को अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है। ब्रह्मतीर्थ में ब्रह्माजी के दर्शनों से राजसूय यज्ञ का पुण्य प्राप्त होता है। फिर फल्गुतीर्थ है जहाँ कौशिकी नदी में किया गया श्राद्ध अक्षय होता है। पर्वत के ऊपर गयाशिर नाम का सरोवर है और पवित्र जल वाली महा नदी भी विद्यमान है। विख्यात् अक्षय वट भी इसी स्थान पर है। काशी में विशालाक्षी देवी, प्रयाग में ललिता देवी, कृतशौचतीय सैंहिका देवी के दर्शनों से जितना पुण्यफल प्राप्त होता है उतना ही पुण्य गया में मङ्गला देवी के दर्शनों से मिलता है।

गया मे पिण्ड देने का सबसे मुख्य तीर्थ "प्रेत शिला" है, जहाँ पर पिण्ड देने से मृत व्यक्ति प्रेतयोनि से मुक्त हो जाता है। वही पर महानदी और प्रभास-अद्रि के सगम पर स्नान करने से साधक वामदेव (शिव) स्वरूप होजाता है, इसलिये उसे 'वामतीर्थ' कहते हैं। देवताओ की प्रार्थना पर जब भगवान रामने महानदी मे स्नान किया तब से वहाँ मनुष्यो को पवित्र करने वाला 'रामतीर्थ' प्रकट होगया। वहाँ स्नान करके निम्न श्लोक बोलने से पाप-समूह नष्ट हो जाते हैं—

राम राम महाबाहो देवानाम भयकर।
त्वा नमस्ये तु देवेश मम नश्यतु पातकम् ॥

अर्थात्—"हे महाबाहु राम! आप देवताओ को अभय प्रदान करने वाले हैं। मैं आपको बारम्बार नमस्कार करता हूँ, मेरे पाप भी नष्ट होजायें।" प्रेत शिला के जघन प्रदेश को यमराज ने दबा रखा है। इसलिये यहाँ यमराज को बलि देने के पश्चात् उसके दोनो कुत्तो को भी बलि दी जाती है और उस समय निम्न श्लोक बोला जाता है—

श्वानौ द्वौ श्यामशवलौ वैवस्वत कुलोद्भवौ।
ताभ्या पिण्ड प्रदास्यामि स्यातामेताव हिंसकौ ॥

अर्थात्—"वैवस्वत कुल मे उत्पन्न दो श्याम और शबल कुत्तो को मैं पिण्ड देता हूँ। वे मेरी हिंसा न करें।" इसके पश्चात् प्रेतशिला आदि तीर्थों में घृत युक्त चरु के पिण्ड बना कर और पितृो का आवाहन करके मन्त्रोच्चार पूर्वक पिंड देना (प्रेतशिला पर) पवित्र चित्त होकर यज्ञोपवीत को अपसव्य करना अर्थात् बाँय कधे पर से दाहिने कन्धे पर कर लेना और दक्षिण दिशा की तरफ मुख करके पितरो का ध्यान और स्मरण करना।

दूसरे दिन पवित्र होकर प्रेत पर्वत पर जाना और ब्रह्मकुण्ड मे स्नान करके देवता आदि का तर्पण करना और पिंडदान करके इस प्रकार प्रार्थना करनी—

ये केचित्प्रेतरूपेण वर्तन्ते पितरो मम ।
ते सर्वे तृप्तिमायान्तु सक्तुभिस्तिलमिश्रितैः ।।
आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं यत्किञ्चित्स चराचरम् ।
मया दत्तेन पिण्डेन तृप्तिमायान्तु सर्वशः ।।

अर्थात् जो कोई मेरा पितृ प्रेतरूप से विद्यमान हो वह सब इस तिल मिश्रित सत्तू के दान से तृप्ति हो । ब्रह्मा से लेकर कीट पर्यन्त जो कुछ इस जगत में है, वे मेरे दिए हुये पिंड से पूर्णतः तृप्त हो ।" सबसे पहले पाँच तीर्थों में और उत्तरमानस में श्राद्ध करने की विधि है । पहले हाथ में दभ लेकर आचमन करना, फिर कुशयुक्त जल मस्तक पर छिड़कना और उत्तर मानस में आकर मन्त्रोच्चारण पूर्वक स्नान करना । इस समय निम्न प्रार्थना करनी—

उत्तरे मानसे स्नानं करोम्यात्मविशुद्धये ।
सूर्य लोकादि सम्प्राप्ति सिद्धये पितृमुक्तये ।।

अर्थात्—' मैं उत्तरमानस में आत्म शुद्धि सूर्यादि लोकों की प्राप्ति तथा पितृो की मुक्ति के लिये स्नान करता हूँ ।" इस प्रकार स्नान करके देवता आदि का तर्पण करता और अन्त में इस प्रकार बोलना—

आब्रह्मस्तम्बपर्यन्त देवर्षि पितृ मानवा ।
तृप्यन्तु पितरः सर्वे मातृमातामहादयः ।।

अर्थात्— ब्रह्मा से लेकर कीट पर्यन्त समस्त जगत, देवता, ऋषि, दिव्य पितृ, मनुष्य पिता पितामह, माता पितामही, मातामही आदि सब तृप्त हो जाये । अपनी शाखा के गृह्यसूत्र में बताये विधानानुसार पिण्डदान सहित श्राद्ध करना चाहिये । फिर सूर्य भगवान को निम्न श्लोक से प्रार्थना करनी चाहिये—

ॐ नमोऽस्तु भानवे भर्त्रे सोमभौमज्ञ रूपिणे ।
जीवभार्गवशनैश्चरराहुकेतु स्वरूपिणे ।।

अर्थात्—"सोम मङ्गल, बुध, बृहस्पति, शुक, शनैश्चर, राहु तथा केतु जिनका स्वरूप हैं, उन समस्त प्राणियों के पोषण करने वाले भगवान सूर्य को नमस्कार है।" इस मन्त्र से सूर्य को नमस्कार करके पूजा करने वाला पुरुष अपने पितरों को सूर्य लोक में पहुँचा देता है। ऊपर बतलाये हुये पर्वत से उत्तर की तरफ जो सरोवर है उसे 'उत्तर मान सरोवर' कहा जाता है। वहाँ से दक्षिण मान सरोवर तक मौन धारण करके यात्रा करनी चाहिए। दक्षिण मानस में तीन तीर्थ स्थित हैं। उनमें विधिपूर्वक स्नान करके श्राद्ध करना चाहिये। स्नान करते समय निम्न मन्त्र बोले—

दिवाकर करोमीह स्नानं दक्षिण मानसे।
ब्रह्महत्यादि पापौघघातनाय विमुक्तये॥

'हे सूर्य भगवान मैं सब प्रकार के पापों को नाश करने और मोक्ष प्राप्ति के लिये यहाँ दक्षिण मानस में स्नान करता हूँ।' वहाँ पर स्नान पूजन, पिण्डदान आदि करके अन्त में सूर्यदेव को प्रणाम करते समय यह मन्त्र बोलना चाहिये—

नमामि सूर्यं तृप्त्यर्थं पितृणां तारणाय च।
पुत्र पौत्र धनैश्वर्यायुरारोग्य वृद्धये॥

अर्थात्—'मैं पितरों की तृप्ति तथा उद्धार के लिये और पुत्र, पौत्र धन, ऐश्वर्य, आयु आरोग्य की प्राप्ति के निमित्त भगवान सूर्य को नमस्कार करता हूँ।' फिर मौन भाव से सूर्य का पूजन करके नीचे लिखा मन्त्र बोले—

कव्यवाडादयो ये च पितृणां देवतास्तथा।
मदीयैं पितृभिः सार्द्धं तर्पिता स्थ स्वधाभुजः॥

अर्थात्—'कव्यवाड आदि पितृलोक के देवता ये मेरे पितरों के साथ तृप्त होकर स्वधा का उपभोग करें।"

वहाँ से सब तीर्थों में उत्तम फल्गुतीर्थ में जाना चाहिये वहाँ श्राद्ध

करने से पितरों तथा श्राद्धकर्ता को सदा के लिये मुक्ति हो जाती है। प्राचीन काल में ब्रह्माजी द्वारा प्रार्थना करने पर भगवान विष्णु स्वयं फाल्गु के रूप में प्रकट हुये थे। उसमें स्नान करते समय निम्न मन्त्र बोलना चाहिये—

फल्गुतीर्थे विष्णुजले करोमि स्नानमद्य वै।
पितृणां विष्णु लोकाय भुक्ति मुक्ति प्रसिद्धये॥

अर्थात्—'जिस फल्गु के जल रूप में स्वयं भगवान विष्णु उपस्थित हैं उसमें आज मैं स्नान करता हूँ, जिससे पितरों को विष्णु लोक की और मुझे सांसारिक भोगों तथा मुक्ति की प्राप्ति हो।" फल्गुतीर्थ में स्नान करने के पश्चात् वहाँ पर शिवलिंग रूप में स्थित ब्रह्माजी को नमस्कार करना चाहिये—

नम शिवाय देवाय ईशान पुरुषाय च।
अघोर वामदेवाय सद्योजाताय शम्भवे।

अर्थात्—"ईशान, तत्पुरुष, अघोर, वामदेव तथा सद्योजात—इन पाँच नामों से प्रसिद्ध भगवान शिव को नमस्कार है।" फल्गुतीर्थ में स्नान करके भगवान गदाधर का दर्शन तथा नमस्कार करने वाला मनुष्य अपने पितरों के साथ बैकुण्ठ को जाता है। भगवान गदाधर के दर्शन का मन्त्र यह है—

ॐ नमो वासुदेवाय नम सकर्षणाय च।
प्रद्युम्नायानिरुद्धाय श्रीधराय च विष्णवे॥

अर्थात्—"वासुदेव, सकर्षण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध—इन चार व्यूहों वाले सर्वव्यापी भगवान् श्रीधर को नमस्कार है।" पाँच तीर्थों में स्नान करने से मनुष्य अपने पितरों को ब्रह्मलोक पहुँचाता है। भगवान गदाधर को पाँचों तीर्थों के जल से स्नान कराके जो उनको पुष्प और वस्त्र आदि से सुशोभित नहीं करता, उसका किया हुआ श्राद्ध

व्यर्थ चला जाता है। फिर धर्मारण्य तीर्थ पर जाकर मतङ्गवापी में स्नान करना और मतंगेश्वर का दर्शन करके यह मंत्र बोलना—

प्रमाण देवता: शम्भुर्लोकपालश्च साक्षिण: ।
मयागत्य मतंगेऽस्मिन्पितृणा निष्कृति: कृता ॥

अर्थात्—"समस्त देवता और भगवान शंकर प्रमाण भूत हैं तथा सब लोकपाल भी इसके साक्षी हैं कि मैंने मतंग तीर्थ में आकर पितरों का उद्धार किया है—उनका ऋण चुकाया है।" इसके पश्चात् तीसरे दिन ब्रह्म सरोवर में स्नान करते समय यह मन्त्र उच्चारण करना—

स्नानं करोमि तीर्थेऽस्मिन्नृणत्रय विमुक्तये ।
श्राद्धाय पिण्डदानाय तर्पणायार्थ सिद्धये ॥

अर्थात्—मैं तीनों ऋणों से मुक्ति पाने, श्राद्ध, तर्पण तथा पिण्ड-दान करने तथा अभीष्ट मनोरथों की सिद्धि के लिये इस तीर्थ में स्नान करता हूँ।' ब्रह्म सरोवर के समीप ही 'गो प्रचार तीर्थ' में जो आम्र वृक्ष हैं उन्हें ब्रह्माजी का लगाया हुआ कहा गया है। उनको सींचने से पितरों की मोक्ष होती है। उस अवसर पर यह मंत्र बोलना—

आम्र ब्रह्मसरोद्भूत सर्व देव मय विभुम् ।
विष्णुरूप प्रसिञ्चामि पितृणा चैव मुक्तये ॥

अर्थात्—'ब्रह्म सरोवर में प्रकट होने वाला यह आम्र वृक्ष सर्व देवमय और भगवान विष्णु का स्वरूप है। मैं पितरों की तृप्ति के लिये इसका सिंचन करता हूँ।" यहाँ पर ब्रह्मरूप की परिक्रमा करनी चाहिये—

ॐ नमो ब्रह्मणेऽजाय जगज्जन्मादि कारिणे ।
भक्ताना च पितृणा च तारकाय नमो नम: ॥

अर्थात्—"जगत की सृष्टि करने वाले सच्चिदानन्द स्वरूप महात्मा ब्रह्माजी को नमस्कार है। भक्तों और पितरों के उद्धारक

पितामह को बारम्बार नमस्कार है।" फिर इन्द्रियों का संयम करते हुए यमराज को बलि देते हुए यह मन्त्र पढ़े—

यमराज धर्मराजो निश्चलार्था इति स्थितौ।
ताभ्यां बलिं प्रयच्छामि पितृणां पितृहेतवे॥

अर्थात्—"यमराज और धर्मराज निश्चल प्रयोजन वाले हैं। पितरों की मुक्ति के लिये मैं उनको बलि देता हूँ।" उसी स्थल पर "काकबलि" भी इस मन्त्र से देनी चाहिये—

एन्द्रवारुणवायव्या याम्या वै नैर्ऋतास्तथा।
वायसा प्रतिगृह्णन्तु भूमौ पिण्डं मयार्पितम्॥

अर्थात्—"पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, वायव्य कोण तथा नैर्ऋत्य-कोण के काकगण भूमि पर मेरे दिये हुये पिण्ड को ग्रहण करें।" इसके पश्चात् हाथ में दर्भ लेकर ब्रह्मतीर्थ में स्नान करना और भगवान गदाधर को नमस्कार करके ब्रह्मचर्य पूर्वक रहना।

प्राचीन काल में हेति नाम का एक असुर था। उसने अति अद्भुत तपस्या करके ब्रह्मा आदि देवों को सन्तुष्ट करके यह वर प्राप्त किया कि मैं दैत्यों तथा मनुष्यों के किसी शस्त्र से और विष्णु, शिव के चक्र आदि आयुधों से भी न मरूँ, इस प्रकार अवध्य तथा महा बलवान हो जाऊँ, इसके बाद उसने देवताओं को जीत कर इन्द्रासन पर अधिकार कर लिया। तब ब्रह्मा, शिव आदि देवता विष्णु की शरण में गये और कहने लगे—"भगवान, हेति का वध करो।" विष्णुजी ने कहा—"हे देवो" हेति तो समस्त सुर और असुरों से अवध्य हो गया है। इस लिये अब तुम मुझे ब्रह्माजी का बनाया कोई नया अस्त्र दो तो मैं उसे मारूँ। तब ब्रह्माजी ने अन्य देवताओं के सहयोग से एक अमोघ गदा बनायी। उसे लेकर विष्णुजी ने हेति से युद्ध किया और उसे मार दिया। इसके पश्चात् भगवान ने जिस स्थान पर उस गदा को धोया था वह 'गदालोल तीर्थ' के नाम से प्रसिद्ध है। वहीं पर "अक्षय वट"

भी है, जिसके निकट पितरों का श्राद्ध किया जाता है। गदालोल में स्नान करते समत भगवान की प्रार्थना इस प्रकार करे—

गदालोले महातीर्थे गदाप्रक्षालने वरे।
स्नान करोमि शुद्धयर्थमक्षय्याय स्वराप्तये ॥
एकान्तरे वटस्याग्रे य. शेते योग निद्रया।
वालरूपधरस्तस्मै नमस्ते योगशायिने।
ससार वृक्ष शास्त्राया शेष पाप क्षयाय च।
अक्षय्य ब्रह्मदाग्रे च नमोऽक्षय्य वटायवै ॥

अर्थात्—"जहाँ भगवान ने गदा धोई है उस गदालोल नामक श्रेष्ठ महातीर्थ में आत्म शुद्धि तथा अक्षय स्वर्ग की प्राप्ति के लिये मैं स्नान करता हूँ। जो बालरूप धारण करके वट की शाखा के अग्रभाग पर एकान्त स्थल पर योग निद्रा द्वारा शयन करते हैं, उन योगशायी श्री हरि को नमस्कार है। जो ससार बन्धन रूपी वृक्ष का उच्छेद करने के लिये शस्त्र रूप हैं, जो समस्त पापों का नाश तथा अक्षय ब्रह्मलोक प्रदान करने वाले हैं, उन अक्षय वट स्वरूप श्री हरि को नमस्कार है।"

भस्मकूट पर्वत के पास भस्म नामधारी भगवान शिव का स्थान है। वहीं पर भगवान जनार्दन का मन्दिर है। वहाँ भगवान के हाथ में तिल रहित तथा मठ्ठ रहते हुए दही मिश्रित पिण्ड देने से वे सब पुरुष विष्णु लोक के अधिकारी हो जाते हैं जिनके लिये वह पिंड दिया जाता है। वहाँ पिंड देने के पश्चात् भगवान से इस प्रकार प्रार्थना करनी चाहिए—

एप पिण्ड मया दत्तस्तव हस्ते जनार्दन।
गया श्राद्धे त्वया देयो मह्य पिण्डो मृते मयि ॥
तुभ्यं पिण्डो मया दत्तो यमुदिश्य जनार्दन।
देहि देव गया शीर्षे तस्मै तस्मै मृते तत. ॥

जनार्दन नमस्तुभ्यं नमस्ते पितृरूपिणे ।
पितृपात्र नमस्तुभ्यं नमस्ते मुक्ति हेतवे ॥
तं दृष्ट्वा पुण्डरीकाक्ष मुच्यते च ऋण त्रयात् ।
नमस्ते पुण्डरीकाक्ष ऋण त्रय विमोचन ।
लक्ष्मीकान्त नमस्तेऽस्तु नमस्ते पितृमोक्षद ॥

अर्थात्—हे जनार्दन ! मैंने आपके हाथ में यह पिंड दिया है । मेरी मृत्यु के उपरान्त गया श्राद्ध में आप मुझे पिंड देना । हे जनार्दन ! जिनके उद्देश्य से मैंने आपको पिण्ड दिया है उनके मरने के पश्चात् आप गयाशीर्ष में उनको अवश्य पिंड देना । हे जनार्दन ! आप पिता स्वरूप हैं, आपको नमस्कार है, बारम्बार नमस्कार है । पितरों के पात्र रूप नारायण ! आपको नमस्कार है । आप सब प्राणियों की मुक्ति के लिये हेतुभूत हैं, आपको नमस्कार है । गया में साक्षात् जनार्दन ही पितृरूप में विद्यमान हैं । उन पुण्डरीकाक्ष हरि का दर्शन करने मात्र से मनुष्य तीनों ऋणों से मुक्त हो जाता है । हे कमल नयन ! आपको नमस्कार है । हे तीनों ऋणों से मुक्त कराने वाले लक्ष्मीकान्त ! आपको नमस्कार है । पितरों को मोक्ष प्रदान करने वाले प्रभो ! आपको नमस्कार है ।'

हे देवी मोहिनी ! इस प्रकार गया तीर्थ का उत्तम माहात्म्य मैंने तुमको बताया । यह सब पापों को शान्त करने वाला तथा पितरों को मुक्ति प्रदान करने वाला है । इतना ही नहीं—

इदं स्वस्त्ययनं पुण्यं धन्यं स्वर्गतिदं नृणाम् ।
यशस्यमपि चायुष्यं पुत्र पौत्र विवर्धनम् ॥

"यह कल्याण करने वाला, पवित्र और धन्य करने वाला है । इससे मनुष्यों को स्वर्ग की प्राप्ति होती है । यह माहात्म्य यश, आयुष्य, पुत्र-पौत्रों की वृद्धि करने वाला है ।

।। काशी माहात्म्य वर्णन ।।

मोहिनी ने पुरोहित वसु से कहा—हे द्विजश्रेष्ठ ! आपको बारम्बार धन्यवाद कि आपने गया तीर्थ का ऐसा कल्याणकारी माहात्म्य सुनाया। अब आप काशीधाम का उत्तम माहात्म्य सुनाने की कृपा करें।

पुरोहित वसु ने कहा—हे मोहिनी ! परम मङ्गलमयी काशी नगरी धन्य है और जो भगवान् महादेव वहाँ सदैव निवास करते है, वे भी धन्य हैं। काशीपुरी तीनों लोकों का सार है। उस रमणीय पुरी का सेवन करने से वह मनुष्यों को उत्तम गति प्रदान करती है। यह गुह्यतम प्रदेश सब प्राणियों को सुख देने वाला और विष्णु तथा शिव के भक्तों को मोक्ष प्राप्त कराने वाला है। जो सज्जन पुरुष इस क्षेत्र में निवास करते हैं उनके कर्म समूह पूर्णरूप से शुद्ध हो जाते हैं और वे जन्म-मृत्यु के गहन जाल को भेद कर मुक्ति को प्राप्त कर लेते हैं। काशी नगरी का विस्तार पूर्व से पश्चिम तक दस कोस और दक्षिण से उत्तर दो कोस है। काशी में जो असी' नाम की नदी है वह पिंगला नाड़ी के समान है और 'वरुणा' नदी इड़ा नाड़ी के समान है। (इन्हीं वरुणा और असी नदियों के सङ्गम पर बसा होने से 'वाराणसी' नाम प्रसिद्ध हुआ है।) इन दोनों नदियों के बीच जो 'मत्स्योदरी' (वर्तमान मछोदरी) है वही सुषुम्णा नाड़ी के तुल्य है। इस महाक्षेत्र को भगवान शिव और विष्णु ने कभी नहीं त्यागा है और न कभी त्याग करेंगे। इसलिये इसका नाम 'अविमुक्त क्षेत्र' कहा गया है।

काशी के योगपीठरूप श्मशान तीर्थ को मणिकर्णिका कहते हैं। अपने कर्म से पतित हो जाने वाले प्राणियों को वहाँ मुक्ति प्राप्त होती है। इस मणिकर्णिका में भगवान धूर्जटि नित्य निवास करते हैं। इस महातीर्थ में स्नान करने से दस अश्वमेध यज्ञों का फल प्राप्त होता है। अविमुक्त क्षेत्र में भगवान शिव की पूजा और स्तुति करने वाला पापो

से मुक्त और अजर-अमर होकर स्वर्ग में निवास करता है। जहाँ गङ्गा और वरणा का सङ्गम है वहाँ बुधवार को श्रवण नक्षत्र युक्त द्वादशी के दिन स्नान करने से मोक्षरूप फल की प्राप्ति होती है। उस अवसर वहाँ श्राद्ध करने वाला मनुष्य पितरो का उद्धार करके विष्णुलोक जाता है। गङ्गा के साथ जहाँ वरुणा और असी का सङ्गम हुआ है वहाँ सगमेश्वर शिव हैं। उनका भक्तिपूर्वक पूजन करने वाला शिवरूप ही होजाता है।

सगमेश्वर पीठ के वायव्य भाग मे राजा सगर का स्थापित किया चतुर्मुख शिवलिंग है। उसके भी वायव्य कोण म भद्रदेह नामक सरोवर है (जिसे गायो के दूध से भरा गया था) पूर्वभाद्रपदा नक्षत्र से युक्त पूर्णिमा का समय उसमे स्नान करने का पुण्यकाल माना गया है। उससे थोडे अन्तर पर कृतिवासेश्वर शिवलिङ्ग है, जिसका दर्शन और पूजन करने से मनुष्य एक ही जन्म से भगवान शिव का सान्निध्य प्राप्त कर लेता है। सतयुग म इसका नाम ष्यम्बकेश्वर था, त्रेता मे कृतिवासेश्वर हुआ द्वापर मे यह महेश्वर के नाम से विख्यात हुआ और कलियुग मे सिद्ध पुरुष उसे 'हस्तिपालेश्वर' कहते हैं। सनातन मोक्षप्रद ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा हो तो बारम्बार भगवान् कृतिवासेश्वर के दर्शन करते रहना चाहिये। इस शिवलिंग का महा शिवरात्रि के दिन फल, फूल विल्व पत्र से पूजन करने पर परमपद की प्राप्ति होती है। पश्चिम दिशा में घण्टाकर्ण नाम का सरोवर है उसमे स्नान करके व्यासेश्वर का दर्शन करने वाला मनुष्य चाहे जहाँ मृत्यु को प्राप्त हो उसको काशी मे मरण का फल ही प्राप्त होता है। हे देवी! काशीपुरी का माहात्म्य विशद है। मैंने इसे सक्षेप मे कहा है। इससे मनुष्यों को स्वर्ग, यश, धन तथा पुत्र-पौत्रो की प्राप्ति होती है।

॥ नारद पुराण (द्वितीय खंड) समाप्त ॥

